प्रकाशक—
स्वामी भास्करेश्वरानन्द,
अध्यक्ष, श्रीरामकृष्ण आश्रम,
धन्तोली, नागपुर–१, म. प्र.

श्रीरामकृष्ण-शिवानन्द-स्मृतिग्रन्थमाला

पुष्प ४ था

मुद्रक—
रामगोपाल गिरधारीलाल श्रीवास,
बजरंग मुद्रणालय,
कर्नलबाग, स. नं. २, नागपुर।

मूल्य १ रु.

अनुक्रमणिका

विषय		पृष्ठ

मुद्रक—
गिरधारीलाल श्रीवास,
नागपुर।







भगवान् श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्णलीलामृत

१—श्रीरामकृष्ण की वेदान्तसाधना

(१८६५–६६)

"न्यांगटा ने वेदान्त का उपदेश दिया और तीन दिन में ही मुझे समाधि लग गई। माधवी लता के नीचे मेरी उस समाधि-अवस्था को देखकर वे अवाक् रह गये। कहने लगे 'अरे! यह क्या है रे?' और तब तो वे मुझसे जाने की आज्ञा माँगने लगे। यह सुनकर मुझे भावावस्था प्राप्त हो गई और उसी अवस्था में मैं बोला, 'मुझे वेदान्त का बोध हुए बिना आप यहाँ से नहीं जा सकते।' उसी समय से मैं रात दिन उनके समीप रहने लगा और लगातार वेदान्त की ही बातें चलने लगीं। ब्राह्मणी बोली, 'बाबा! वेदान्त मत सुनो। भक्ति का ह्रास होगा।"

"जिस अवस्था में पहुँचकर साधारण साधक वहाँ से वापस नहीं लौट सकता तथा जिसमें इक्कीस दिनों में ही उसका शरीर पके हुए पत्ते के समान झड़ जाता है, उसी अवस्था में माता की कृपा से मैं पूरे छः महीने तक रहा।"

—श्रीरामकृष्ण

मधुरभावसाधना में सिद्ध होकर श्रीरामकृष्ण अब भावसाधना की चरम सीमा में पहुँच चुके थे। अतः अब इसके आगे उनके अपूर्व साधनाओं का वृत्तान्त लिखने के पूर्व उनकी उस समय की मानसिक अवस्था पर विचार करना उचित होगा।

किसी भी भाव की साधना में सिद्धि प्राप्त करने के पूर्व साधक को

३५७

संसार के रूप रस आदि सभी भोग्य पदार्थों के विचारों से दूर रहना पड़ता है। विख्यात भगवद्भक्त तुलसीदासजी की यह उक्ति—

"जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूं होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम॥"

यथार्थ में सत्य है। श्रीरामकृष्ण का अलौकिक जीवन इस सिद्धान्त का अत्युत्तम उदाहरण है। काम और कांचन के त्याग की सुदृढ़ नींव पर ही उन्होंने अपनी भावसाधना की इमारत खड़ी की और यह नींव कभी भी कमज़ोर नहीं होने दी। इसी कारण उन्होंने जिन जिन साधनाओं का प्रारम्भ किया, उन सभी में वे थोड़े समय में ही सिद्ध होते गये। इससे यह स्पष्ट है कि इस समय उनका मन निरन्तर काम और कांचन के प्रलोभन की सीमा से बहुत दूर रहा करता था।

विषयवासनाओं का सर्वथा त्याग करके लगातार नौ वर्ष से अधिक ईश्वर-प्राप्ति के प्रयत्नों में ही व्यतीत करते रहने के कारण उनका मन एक ऐसी अवस्था में पहुँच गया था कि ईश्वर के सिवाय अन्य किसी विषय का स्मरण या मनन करना उन्हें विषवत् प्रतीत होता था। मनसा, वाचा और कर्मणा ईश्वर को ही सारासार परात्पर वस्तु सर्वतोभावेन समझने के कारण उनका मन इहलोक या परलोक की अन्य वस्तुओं की प्राप्ति के सम्बन्ध में बिलकुल निःस्पृह और उदासीन बन गया था।

रूप, रस आदि बाह्य विषयों तथा अपने शारीरिक सुख-दुःखों को भूलकर अपने अभीष्ट विषय का अत्यन्त एकाग्रता के साथ ध्यान करने का उन्हें इतना अभ्यास हो गया था कि क्षणार्ध में ही साधारण प्रयत्न द्वारा वे अपने मन को सब विषयों से हटाकर अपने इष्ट विषय

में चाहे जिस समय प्रविष्ट करके उसमें तन्मय होकर आनन्द का अनुभव करते थे। लगातार कई दिन या महीने या वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी उनके उस विषय के चिन्तन और आनन्दानुभव में कोई कमी नहीं होती थी, और ईश्वर के सिवाय संसार में और भी कोई दूसरी वस्तु प्राप्त करने योग्य है या हो सकती है यह कल्पना क्षणभर के लिए भी उनके मन में उदय नहीं होती थी।

जगत्कारण ईश्वर को "गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत" जानकर उनके प्रति श्रीरामकृष्ण के मन में अनन्य प्रेम, दृढ़ विश्वास और पूर्ण निर्भरता अमर्यादित रूप से व्याप रही थी। इसी कारण वे अपने को ईश्वर का अत्यन्त निकट प्रेमी या सम्बन्धी होने का ही अनुभव करते हों सो ही नहीं, वरन् जैसे बालक अपनी माता के भरोसे पर रहते हुए उसके प्रेम और छत्रछाया में सदा निश्चिन्त रहता है, वैसी ही स्थिति साधक के मन की हो जाने पर अपने अनन्य प्रेम के कारण वह ईश्वर को सदा अपने समीपस्थ अनुभव करता है, ईश्वर को अपने पास प्रत्यक्ष देखता है, ईश्वर से बोलता है, ईश्वर की वाणी को सुनता है और ईश्वर के करकमल की छाया में रहते हुए सदा निर्भय होकर संसार में निःशङ्क विचरता है — इस बात का प्रमाण अनेक बार पाने के कारण उन्हें अब छोटे बड़े सभी कार्यों में श्री जगदम्बा का आदेश प्राप्त करके उसी की प्रेरणा के अनुसार निर्भयतापूर्वक व्यवहार करने का पूर्णतः अभ्यास हो गया था।

यहाँ शायद यह शङ्का हो सकती है कि जगत्कारण के इस प्रकार स्नेहमयी माता के रूप में सदा अपने समीप रहने पर अब श्रीरामकृष्ण को आगे साधना करने की क्या आवश्यकता थी। जिसको प्राप्त करने

के लिए साधक योग, तपस्या आदि करता है, उसे ही जब वे प्राप्त कर चुके या अपना चुके तब फिर और साधना की क्या आवश्यकता? इसकी चर्चा एक बार इसके पूर्व एक दृष्टि से की जा चुकी है, तथापि इस सम्बन्ध में और भी एक दो बातें हम पाठकों को बताते हैं। श्रीरामकृष्ण के चरणकमलों के पास बैठकर उनके साधना-इतिहास का मधुपान करते समय हमें भी यही शङ्का हुई और जब हमने उसे श्रीरामकृष्ण के पास प्रकट की, तब वे बोले— "देखो, समुद्र के किनारे सदा निवास करने वाले व्यक्ति के मन में भी कभी कभी यह इच्छा हो जाया करती है कि देखें तो भला इस रत्नाकर के गर्भ में कैसे कैसे रत्न हैं। उसी प्रकार माता को प्राप्त कर लेने पर और सदा उसके साथ रहते हुए भी उस समय मेरे मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हो जाती थी कि अनन्तभावमयी अनन्तरूपिणी माता का भिन्न भिन्न भावों और भिन्न भिन्न रूपों में मैं दर्शन करूँ। अतः जिस समय जिस विशेष भाव से या रूप में उसके दर्शन की इच्छा मुझे होती थी उसी भाव या रूप में दर्शन देने के लिए मैं व्याकुल अन्तःकरण से उसके पास हठ पकड़ता था और मेरी दयामयी माता भी उसी समय अपने उस भाव से दर्शन देने के लिए जिन जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती थी उनके संग्रह का सुभीता स्वयं करा देती, मेरे द्वारा अपनी यथोचित सेवा करा लेती और मुझे मेरे वांछित भाव या रूप में दर्शन दे देती थी! इसी प्रकार माता ने मेरे द्वारा भिन्न भिन्न मतों की साधनाएँ कराईं।"

हम पहले कह चुके हैं कि मधुरभाव में सिद्ध होकर श्रीरामकृष्ण भावसाधना की अन्तिम भूमिका में पहुँच गये थे। तदुपरान्त उनके मन में सर्व-भावातीत वेदान्तोक्त अद्वैतभाव की साधना करने की प्रबल

इच्छा उत्पन्न हुई। मधुरभाव की साधना के बाद अद्वैतभाव की ही साधना की इच्छा श्रीरामकृष्ण को क्यों हुई? इस पर विचार करने से इनमें भी कोई हेतु दिखाई देता है। भावराज्य और भावातीत राज्य में परस्पर कार्यकारण-सम्बन्ध सदा दिखाई देता है; क्योंकि भावातीत अद्वैत राज्य में का भूमानन्द ही मर्यादित बनकर भावराज्य में दर्शन-स्पर्शनादि संभोगजन्य आनन्दरूप से प्रकट हुआ करता है। इसी कारण मधुरभाव की पराकाष्ठा प्राप्त होने पर, भावराज्य की चरम सीमा तक पहुँच चुकने पर, भावातीत अद्वैत भूमिका के अतिरिक्त उनका मन अन्यत्र कहाँ आकृष्ट होता? अद्वैतभावसाधना का वर्णन करने के पूर्व लगभग इसी समय की एक महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख करके हम मुख्य विषय की ओर बढ़ेंगे।

श्रीरामकृष्ण के ज्येष्ठ भ्राता रामकुमार की मृत्यु होने पर उनकी शोकसंतप्त वृद्ध माता अपने और दो पुत्रों का मुख देखते हुए किसी प्रकार कड़ी छाती करके अपने दिन बिताने लगीं। पर थोड़े ही दिनों के बाद जब उन्होंने लोगों के मुँह से अपने कनिष्ठ पुत्र गदाधर के पागल होने का हाल सुना तब तो उनके दुःख की सीमा न रही। पुत्र को अपने घर बुलवाकर माता ने उसकी चिकित्सा कराई और दैवी कोप की शान्ति के लिए स्वस्त्ययन आदि अनुष्ठान भी कराये और जब उन्होंने अपने पुत्र के स्वास्थ्य को सुधरते देखा तब कहीं उनके जी में जी आया। "आशा बड़ी बलवती होती है।" पुत्र के कल्याण की आशा से उन्होंने उसका विवाह भी कर दिया, परन्तु विवाह के बाद दक्षिणेश्वर में अपने काम पर लौटते ही गदाधर की पुनः वही अवस्था हो गई, यह सुनकर माता का धीरज छूट गया।

यद्यपि मुकुन्दपुर के जागृत महादेव ने गदाधर को दिव्योन्माद होने का दैवी निर्णय प्रकट किया था तथापि माता का मन संसार से उचट गया और उन्होंने अपनी शेष आयु भागीरथी के किनारे दक्षिणेश्वर में अपने उस कनिष्ठ पुत्र के ही साथ रहकर बिताने का निश्चय किया और तदनुसार वह दक्षिणेश्वर में ही आकर रहने लगीं (सन् १८६४)। मथुरबाबू ने उनके रहने के लिए नौबतखाने में सब प्रकार का प्रबन्ध कर दिया और उनकी सेवा में एक दासी भी नियुक्त कर दी। स्वयं श्रीरामकृष्ण भी नित्य प्रातः सायं वहाँ जाकर कुछ समय तक उनकी सेवा-शुश्रुषा करते थे। मथुरबाबू के अन्नमेरुव्रत अनुष्ठान की वार्ता हम पीछे कह चुके हैं। लगभग उसी अनुष्ठान के समय वह दक्षिणेश्वर में आईं और उस समय से अपनी आयु के अन्तिम * बारह वर्ष की अवधि उन्होंने दक्षिणेश्वर में ही व्यतीत की अर्थात् श्रीरामकृष्ण ने वात्सल्य, मधुर और अद्वैत भावों की साधना श्री चन्द्रादेवी के दक्षिणेश्वर में रहते समय की।

श्रीमती चन्द्रादेवी के निर्लोभ और उदार स्वभाव का एक उदाहरण यहाँ पर दे देना उचित होगा। यह घटना श्री चन्द्रादेवी के

---

* चन्द्रादेवी का स्वर्गवास सन् १८७६ में हुआ। उसकी उत्तर-क्रिया श्रीरामकृष्ण ने स्वयं संन्यासी होने के कारण अपने भतीजे रामलाल के हाथ से कराई। माता की मृत्यु से उन्हें अत्यन्त दुःख हुआ। अपनी माता की उत्तर-क्रिया अपने हाथों न कर सकने के कारण उन्हें खेद हुआ और वे एक दिन उसके नाम से तर्पण करने बैठे, परन्तु हाथ में जल लेते ही उंगलियाँ ऐंठने लगीं और सम्पूर्ण जल गिर पड़ा! एक दो बार इसी तरह हो जाने पर वे रो पड़े और "माता! तेरे नाम से तर्पण करना भी मुझसे नहीं बनता" ऐसा कहते हुए वे समाधिमग्न हो गए। बाद में एक पण्डित के मुँह से उन्होंने सुना कि आध्यात्मिक उन्नति की पराकाष्ठा में पहुँच जाने पर "गलितकर्म–अवस्था" प्राप्त हो जाती है, तब सभी कर्म आप ही आप नष्ट हो जाते हैं।

दक्षिणेश्वर आने के कुछ ही दिनों के पश्चात् हुई। हम कह आए हैं कि इस समय काली-मन्दिर के प्रबन्ध का सारा अधिकार मथुरानाथ के हाथ में आ गया था और वे मुक्तहस्त होकर कई प्रकार के सत्कार्यों में पैसा खर्च कर रहे थे। श्रीरामकृष्ण पर उनकी अपार भक्ति, श्रद्धा और प्रेम होने के कारण उन्हें इस बात की सदा चिन्ता बनी रहती थी कि उनके बाद श्रीरामकृष्ण का प्रबन्ध ठीक ठीक कैसे होगा; परन्तु श्रीरामकृष्ण के तीव्र वैराग्य के कारण उनके सामने इस विषय की चर्चा करने का उन्हें साहस नहीं होता था, क्योंकि इसके पहले एक बार उन्होंने हृदय से जान बूझकर कहा था कि "श्रीरामकृष्ण के नाम से बैंक में कुछ रकम जमा कर देने का मेरा इरादा है।" ऐसा कहने से उनका उद्देश यही था कि हृदय यह बात श्रीरामकृष्ण से कहेंगे तब यह बात उन्हें कहाँ तक पसन्द है इसका अंदाज लग जायगा। पर इसका परिणाम कुछ और ही हुआ। कुछ दिन में मथुरबाबू और श्रीरामकृष्ण की जब भेंट हुई तो श्रीरामकृष्ण किसी उन्मत्त के समान हाथ में लाठी लेकर मथुर बाबू की तरफ झपटे और "क्या तू मुझको विषयी बनाना चाहता है?" ऐसा चिल्लाते हुए उन्हें मारने को तैयार हो गये! इस घटना के कारण श्रीरामकृष्ण के नाम से कुछ तजवीज़ कर देने की उनकी उत्कट इच्छा पूर्ण होने की कोई सम्भावना नहीं दिखती थी; परन्तु अब श्रीमती चन्द्रादेवी के यहीं रहने के लिए आ जाने के कारण उन्हें अपनी उस इच्छा के सफल होने की कुछ आशा दिखाई देने लगी। वे (मथुरबाबू) नित्य उनके यहाँ जाते और बड़े आदर से "माताजी, माताजी!" कहकर उनसे वार्तालाप किया करते थे। ऐसे प्रेमयुक्त व्यवहार से वे थोड़े ही दिनों में चन्द्रादेवी को भी प्रिय

हो गये। बाद में एक दिन अच्छा अवसर पाकर बातों ही बातों में मथुरबाबू ने कहा "माताजी! आप इतने दिनों से यहाँ हैं, पर मुझसे आपने कोई सेवा करने को नहीं कहा। आप ऐसा क्यों करती हैं? यदि आप मुझे यथार्थ में 'अपना' जानती हैं तो आपके मन में जो आवे सो मुझसे आपको अवश्य माँगना चाहिए।" सरल स्वभाव वाली माता को इसका कोई उत्तर नहीं सूझा। उन्होंने बहुत सोचकर देखा, पर उन्हें किसी वस्तु की कमी नहीं मालूम पड़ी। तब वह मथुरबाबू से बोलीं—"बेटा! तेरे यहाँ मेरे लिए किसी वस्तु की कमी नहीं है। यदि किसी वस्तु की कभी जरूरत होगी तो मैं तुझसे माँग लूँगी, तब तो ठीक होगा न?" ऐसा कहते हुए चन्द्रादेवी ने अपना सन्दूक खोलकर दिखा दिया और बोलीं, "यह देखो, मेरे पास अभी तक इतने कपड़े बचे हुए हैं और यहाँ खाने पीने की तो कोई चिन्ता ही नहीं है; उसका पूर्ण प्रबन्ध तो तूने पहले से ही कर रखा है और अब तक तू कर ही रहा है; फिर, भला इतने पर भी ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसे मैं तुझसे माँगू?" पर मथुरबाबू ने किसी तरह पीछा न छोड़ा। "मुझसे आज कुछ अवश्य माँगो" यह हठ ठानकर वे बैठ गये। बहुत कुछ विचार करने पर चन्द्रादेवी को अपनी जरूरत की एक वस्तु का स्मरण हो आया और वह बोलीं, "अच्छा, बेटा! तुम जब इस तरह देने पर तुले ही हो तो इस समय मेरे पास तमाखू नहीं है, इसलिए चार पैसे की तमाखू ला दो!" विषयी मथुरानाथ की आँखों में प्रेमाश्रु भर आये और वे उन्हें प्रणाम करते हुए बोले, "धन्य है! माता ऐसी न हो तो ऐसा अलौकिक पुत्र कैसे जन्म ले!" इतना कहकर उन्होंने चार पैसे की तमाखू मँगाकर चन्द्रादेवी को दे दी।

श्रीरामकृष्ण के वेदान्तसाधना प्रारम्भ करने के समय उनके चचेरे भाई हलधारी श्री राधागोविन्दजी के पुजारी के पद पर नियुक्त थे। उम्र में बड़े होने और श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रीय ग्रन्थों का कुछ अभ्यास होने के कारण उन्हें कुछ अभिमान या अहंकार था जिससे वे श्रीरामकृष्ण की आध्यात्मिक अवस्था को मस्तिष्क-विकार कहा करते थे; इस उक्ति को सुनकर श्रीरामकृष्ण के मन में संशय उत्पन्न होता था और इस संशय के निवारण के लिए वे बारम्बार किस तरह श्री जगदम्बा की शरण में जाया करते थे और उन दोनों में इस विषय के सम्बन्ध में सदा किस प्रकार विवाद चला करता था, इत्यादि सब वृत्तान्त हम पहले कह आये हैं। मधुरभावसाधना के समय श्रीरामकृष्ण के स्त्रीवेष आदि को देखकर तो उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया कि श्रीरामकृष्ण अवश्य ही पागल हो गये हैं। श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से हमने यह सुना है कि वेदान्तसाधना के समय हलधारी दक्षिणेश्वर में थे और उनका तथा श्री तोतापुरी का आध्यात्मिक विषय पर कभी कभी वादविवाद हुआ करता था। एक बार इन दोनों में इसी तरह अध्यात्मरामायण-विषयक विवाद चलते समय श्रीरामकृष्ण को श्री सीता और लक्ष्मणजी के सहित श्री रामचन्द्रजी का दर्शन हुआ था।

सन् १८६५ के आरम्भ में श्री तोतापुरी का दक्षिणेश्वर में आगमन हुआ। उसके कुछ ही महीनों के बाद बीमार हो जाने के कारण हलधारी ने पुजारी-पद त्याग दिया और उनके स्थान में श्रीरामकृष्ण के भतीजे अक्षय (रामकुमार के पुत्र) की नियुक्ति हुई।

अन्य साधनाओं के समान वेदान्तसाधना के समय भी श्रीरामकृष्ण

को गुरु ढूंढना नहीं पड़ा। स्वयं गुरु ही उनके पास आ पहुँचे। श्रीरामकृष्ण की वेदान्तसाधना का इतिहास बताने के पूर्व उनके गुरु का जो वृत्तान्त उपलब्ध हो सका है वह इस प्रकार है।

श्रीमत् परमहंस तोतापुरी जी अच्छे ऊँचे पूरे दीर्घाकृति के भव्य पुरुष थे। लगातार चालीस वर्षों की दीर्घ तपस्या द्वारा उन्होंने निर्विकल्प समाधि की अवस्था प्राप्त की थी। तथापि वे अपना बहुत सा समय ध्यान, धारणा और समाधि में ही बिताते थे। वे सदा नग्न ही रहते थे और इसी कारण श्रीरामकृष्ण 'न्यांगटा' (नग्न) नाम से उनका जिक्र किया करते थे। सम्भव है गुरु का नाम न लेने के कारण उन्होंने उनका यह बनावटी नाम रखा हो। तोतापुरी कभी घर में नहीं रहते थे। नागा सम्प्रदाय के होने के कारण वे अग्निपूजा किया करते थे। नागापंथी साधु लोग अग्नि को बहुत पवित्र मानते हैं और वे जहाँ कहीं जाते हैं अपने पास अग्नि निरन्तर प्रज्वलित रखते हैं, जिसका सामान्य नाम 'धूनी' है। नागापंथी साधु प्रातः सायं धूनी की पूजा और आरती करते हैं और भिक्षा में मिले हुए अन्न को पहिले अग्नि देव को नैवेद्य लगाकर फिर स्वयं ग्रहण करते हैं। दक्षिणेश्वर में रहते समय श्री तोतापुरी पंचवटी के नीचे ही रहते थे और वहीं उनकी धूनी सदा प्रज्वलित रहती थी। ग्रीष्म ऋतु हो अथवा वर्षा ऋतु उनकी धूनी सर्वदा जलती ही रहती थी। उनका खान-पान, शयन-विश्राम, उठना-बैठना सब उसी धूनी के पास होता था और रात्रि हो जाने पर जब थका-मांदा सारा संसार अपनी चिन्ताओं और दुःखों को भूलकर विराम-दायिनी निद्रादेवी की गोद में शान्तिसुख के अनुभव करने में निमग्न रहता है, उस समय श्री तोतापुरी उठकर अपनी धूनी को अधिक प्रज्व-

लित करते थे और उसके समीप दृढ़ आसन जमाकर अपने निवात-निष्कम्प-प्रदीप के समान मन को गम्भीर समाधि में निमग्न कर देते थे। दिन में भी वे बहुत सा समय ध्यान-धारणा में बिताते थे, पर उनका वह ध्यान साधारण लोगों की समझ में आने योग्य नहीं होता था; क्योंकि वे उस समय वस्त्र से अपने सारे शरीर को ढांककर धूनी के समीप सोते से दिखाई देते थे। देखने वाले लोग समझते थे कि तोतापुरीजी सोये हुए हैं।

एक लोटा, एक लम्बा चिमटा और एक आसन यही श्री तोतापुरी का सामान था। वे एक लम्बी चौड़ी चादर से अपने शरीर को सदा लपेटे रहते थे। अपने लोटे और चिमटे को रोज घिसकर माँजते थे और चमकीला बनाए रखते थे। उन्हें रोज अपना बहुत सा समय ध्यान में बिताते देख श्रीरामकृष्ण ने एक दिन उनसे पूछा कि—"आप को तो ब्रह्मज्ञान हो गया है, आप तो सिद्ध हो चुके हैं, फिर आप को इस तरह प्रतिदिन ध्यानाभ्यास की क्या आवश्यकता है?" तोतापुरी गम्भीरतापूर्वक श्रीरामकृष्ण की ओर देखते हुए बोले, "देख, मेरे इस लोटे की ओर। देखा यह कैसा चमक रहा है। और यदि मैं इसे रोज न माँजूं तो क्या होगा? तब क्या यह बिना मैला हुए रहेगा? मन की भी ठीक यही दशा है। ध्यानाभ्यास द्वारा मन को भी यदि प्रतिदिन इसी प्रकार माँज धोकर स्वच्छ न करो तो वह भी मलिन हो जाता है।" तीक्ष्णबुद्धि श्रीरामकृष्ण ने अपने गुरु का यह उत्तर सुनकर पुनः पूछा—"परन्तु यदि लोटा सोने का हो तब तो रोज बिना माँजे भी वह स्वच्छ रहेगा?" तोतापुरी हँसते हुए बोले, "हाँ, यह तो सच है।" ध्यानाभ्यास की आवश्यकता की यह बात श्रीरामकृष्ण

के मन में सदैव बनी रहती थी और प्रसंगानुसार वे सदा इसका जिक्र करते थे।

वेदान्तशास्त्र का वाक्य है कि ब्रह्मज्ञान हो जाने पर मनुष्य पूर्ण निर्भय हो जाता है। मैं स्वयं ही नित्य-शुद्ध-बुद्ध-स्वभाव अखण्ड सच्चिदानन्द-स्वरूप, सर्वव्यापी अजर अमर आत्मा हूँ—यह प्रत्यक्ष अनुभव हो जाने पर उसके मन में भय ही किसका और कहाँ से उत्पन्न हो सकता है? जगत् में एक "सत्" वस्तु के सिवाय दूसरा कुछ भी नहीं है—ऐसा जिसने प्रत्यक्ष देख लिया है उसे भय किसका? श्रीमत् परमहंस तोतापुरी इसी उच्च कोटि के जीवन्मुक्त महापुरुष थे। चालीस वर्ष के दीर्घोद्योग द्वारा उन्हें यह अवस्था प्राप्त हुई थी; इसलिए उनकी दिनचर्या भी साधारण मनुष्य के समान नहीं थी। नित्यमुक्त वायु के समान वे जहाँ मन चाहता था विचरते रहते थे। संसार के कोई भी गुणदोष उन्हें वायु के समान स्पर्श नहीं कर सकते थे और वायु के सदृश वे एक ही स्थान में कभी अधिक समय तक बंधकर नहीं रहते थे। वे तीन दिन से अधिक किसी एक स्थान में कभी नहीं रहते थे, परन्तु श्रीरामकृष्ण की अद्भुत मोहिनी शक्ति ऐसी प्रबल थी कि तोतापुरी श्रीरामकृष्ण के पास ग्यारह महीने रहे!

तोतापुरी की निर्भयता के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण हमें अनेक बातें बताते थे। उनमें से एक घटना दक्षिणेश्वर में ही हुई थी। एक बार रात्रि के समय सर्वत्र सूनसान हो जाने पर तोतापुरी नित्य के समान अपनी धूनी को अधिक प्रज्वलित करके ध्यान में बैठने की तैयारी में थे। सब ओर शान्ति का ही साम्राज्य था। कीड़ों की आवाज़ के सिवाय और कुछ नही सुनाई देता था। हवा भी नहीं

चल रही थी। इतने में अकस्मात् पंचवटी के पेड़ों की डालियाँ हिलने लगीं और पेड़ पर से एक बड़ा ऊँचा पूरा भव्य पुरुष नीचे उतरा और तोतापुरी की ओर एकटक देखते हुए एकएक पग आराम से रखते रखते बिलकुल उनके समीप आ गया और धूनी की एक ओर जाकर बैठ गया। उसे देखकर तोतापुरी ने आश्चर्ययुक्त होकर उससे पूछा, "तू कौन है?" उस पुरुष ने उत्तर दिया—"मैं देवयोनि का हूँ, भैरव हूँ, इस देवस्थान की रक्षा करने के लिए मैं सदा इसी वृक्ष पर रहता हूँ।" तोतापुरी तिलमात्र भी विचलित नहीं हुए और उससे बोले, "वाह! ठीक है। जो तू है वही मैं भी हूँ। तू भी ब्रह्म का एक रूप है और मैं भी ब्रह्म का ही एक रूप हूँ। आ, यहाँ बैठ और ध्यान कर।" यह सुनकर वह पुरुष हँसा और देखते ही देखते अदृश्य हो गया और मानो कुछ हुआ ही न हो इस प्रकार निश्चिन्त वृत्ति से शान्ति के साथ तोतापुरी ने भी अपना ध्यान प्रारम्भ किया! दूसरे दिन सवेरे श्रीरामकृष्ण के आते ही उन्होंने उनसे रात की सारी घटना बताई जिसे सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले, "हाँ, वह यहाँ रहता अवश्य है, मुझे भी कई बार उसका दर्शन हुआ है, कभी कभी तो मुझे भविष्य में होने वाली बातें भी बताता है। एक बार पंचवटी की सारी जमीन बारूदखाने (Powder magazine) के लिए लेने का प्रयत्न कम्पनी कर रही थी, यह सुनकर मुझे चैन नहीं पड़ती थी। संसार के सारे कोलाहल से दूर हटकर एक कोने में माता का शान्तिपूर्वक चिन्तन करने के लिए अच्छी जगह मिल गई है; पर यदि इसे कम्पनी ले लेगी तो ऐसी जगह फिर कहाँ मिलेगी—इसी चिन्ता में मुझे कुछ नहीं सूझता था। रासमणि की

ओर से मथुरबाबू ने भी इस जमीन को बचाने की बड़ी कोशिश की। ऐसे समय में एक दिन यह भैरव मुझे पेड़ पर बैठा हुआ दिखाई दिया और मुझे पुकारकर बोला —"डरो मत। यह जगह कम्पनी नहीं ले सकेगी। अदालत में कम्पनी के विरुद्ध फैसला होगा।" और बाद में हुआ भी ऐसा ही!—

श्री तोतापुरी का जन्म पश्चिम हिन्दुस्तान के किसी स्थान में हुआ था, पर गाँव के नाम का पता श्रीरामकृष्ण की बातों से नहीं चला। सम्भव है उन्होंने तोतापुरी से इस विषय में न पूछा हो, क्योंकि संन्यासी लोग अपने पूर्वाश्रम की वार्ता — नाम, ग्राम, गोत्र आदि — कभी किसी को नहीं बताते। ऐसी बातें संन्यासी से पूछना और संन्यासी को उनका उत्तर देना शास्त्रनिषिद्ध है; इसीलिए श्रीरामकृष्ण ने ये बातें नहीं पूछी होंगी। तथापि श्रीरामकृष्ण के ब्रह्मलीन होने के बाद उनके संन्यासी शिष्यों को पंजाब, हिमालय आदि की ओर घूमते घूमते वृद्ध संन्यासियों से पता लगा कि तोतापुरी पंजाब के आसपास के रहनेवाले थे। उनके गुरु का मठ कुरुक्षेत्र के समीप लुधियाना नामक स्थान में था। वे भी एक प्रसिद्ध योगी थे। लुधियाने का मठ उन्होंने ही स्थापित किया था अथवा उनके गुरु ने — इसका पता नहीं लगता; कुछ भी हो, तोतापुरी के गुरु इस मठ के महंत थे और प्रतिवर्ष उस मठ में उनका उत्सव भी मनाया जाता है — यह इन भ्रमण करनेवाले संन्यासियों को पता लगा। वे तमाखू खाते थे। अतः उत्सव में अभी भी लोग तमाखू लेकर आते हैं और मठवालों को बाँटते हैं। गुरु के समाधिस्थ होने पर श्रीमत् तोतापुरी गुरु की गद्दी पर बैठे।

श्री तोतापुरी ने बचपन से ही अपने गुरु के साथ रहते हुए साधना आदि का अभ्यास उन्हीं के निरीक्षण में किया था। तोतापुरी की बताई हुई वार्ताओं में से कोई कोई बातें श्रीरामकृष्ण हमसे कहा करते थे। वे कहते थे, "न्यांगटा कहता था कि हमारी जमात (मण्डली) में सात सौ नागा थे। जो पहिले ही ध्यान करना सीखना शुरू करते थे, उन्हें पहिले गद्दी पर बिठाकर ध्यान करना सिखाया जाता था; क्योंकि कड़े आसन पर बैठने से पैर में दर्द होता है और सब ध्यान ईश्वर की ओर जाने के बदले शरीर की ही ओर चला जाता है। गद्दी पर बैठकर ध्यान लगाने का अभ्यास हो जाने के बाद उसे उत्तरोत्तर कड़े आसन पर बिठाया जाता था और अन्त में केवल चर्मासन या खाली जमीन पर ही बैठकर ध्यान करना पड़ता था। आहार आदि सभी विषयों में इसी प्रकार के नियम थे। पहिनने के कपड़ों के बारे में भी यही अवस्था थी। धीरे-धीरे उसे नग्न रहने का अभ्यास करना पड़ता था। लज्जा, घृणा, भय, जाति, कुल, शील इत्यादि अष्टपाशों द्वारा मनुष्य जन्म से बंधा रहता है। अतः क्रमशः प्रत्येक को त्याग करने की शिक्षा दी जाती थी। जब ध्यान आदि में शिष्य प्रवीणता प्राप्त कर लेता था, तब उसे प्रथम अन्य साधुओं के साथ और फिर बाद में अकेले ही तीर्थाटन करने के लिए जाना पड़ता था। सभी बातों में उस जमात के ऐसे ही सूक्ष्म नियम थे। महंत के निर्वाचन की प्रथा के विषय में श्रीरामकृष्ण बताते थे कि "उनकी मण्डली में जो संन्यासी परमहंस पद को पहुँच चुकता था उसी को गद्दी खाली होने पर वे महंत बनाते थे। यदि ऐसा न किया जाय तो पैसा और अधिकार दोनों प्राप्त हो जाने से अधकचरे संन्यासी के भ्रष्ट हो जाने की सम्भा-

बना रहती है; इसीलिए जो पूर्णत: कांचनत्यागी होता था उसी को वे अपना महंत चुनकर उसके हाथ में पैसे का कुल कारोबार सौंप देते थे जिससे कि उसके सद्व्यय की चिन्ता का कोई कारण ही शेष नहीं रहता था।"

नर्मदा-तीर से प्रस्थान करके गंगा-सागर का स्नान और श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र जगन्नाथ जी की यात्रा करके घूमतेघामते श्री तोता-पुरी परमहंस जी पंजाब में अपने मठ को वापिस जाते हुए रास्ते में दक्षिणेश्वर में उतरे थे। वहाँ दो तीन दिन रहकर आगे जाने का उनका विचार था। वहाँ उन्हें लाने में श्री जगदम्बा देवी का कौनसा उद्देश था इसकी उन्हें कुछ भी कल्पना नहीं थी।

काली-मन्दिर में आकर श्री तोतापुरी पहिले घाट पर गये। वहाँ एक किनारे पर अन्य लोगों के समान ही एक वस्त्र लपेटकर श्रीराम-कृष्ण ईश्वरध्यान में तल्लीन बैठे थे। उनके तेज:पुंज और भावोज्ज्वल मुखाकृति की ओर दृष्टि जाते ही तोतापुरी को निश्चय हो गया कि ये असाधारण पुरुष हैं। वेदान्तसाधना के लिए इतना उत्तम अधिकारी विरला ही दिखाई देता है। "तंत्रमार्गी बंगाल में वेदान्त का ऐसा अधिकारी पुरुष मिलना आश्चर्य की बात है" ऐसा कहते हुए वे बड़ी उत्सुकता से श्रीरामकृष्ण के पास गये और बारीकी से देखकर अपने अनुमान का ठीक होने का निश्चय हो जाने पर श्रीरामकृष्ण से बोले, "तू मुझे वेदान्तसाधना के लिये उत्तम अधिकारी प्रतीत होता है, क्या तेरी वेदान्तसाधना करने की इच्छा है?"

श्रीरामकृष्ण—"मैं वेदान्तसाधना करूँ या नहीं यह मैं नहीं कह सकता, यह सब मेरी माता जाने। माता कहेगी तो करूँगा।"

तोतापुरी — "तो फिर जा, अपनी माता से पूछकर शीघ्र आ; क्योंकि मुझे यहाँ अधिक दिन तक रहने का अवकाश नहीं है।" श्रीरामकृष्ण इस पर कुछ नहीं बोले। वे वैसे ही सीधे श्री जगदम्बा के मन्दिर में चले गए। वहाँ भावाविष्ट अवस्था में उन्हें श्री जगदम्बा ने कहा, "जा सीख। वेदान्त की शिक्षा दिलाने के लिए ही उस संन्यासी को लाई हूँ।"

श्रीरामकृष्ण वहाँ से उठकर बड़े हर्ष से तोतापुरी के पास आए और अपनी माता की आज्ञा प्राप्त होने का वृत्तान्त उन्होंने उनसे बताया। मन्दिर की देवी को ही यह प्रेम से माता कहता है, यह बात तब कहीं श्री तोतापुरी के ध्यान में आई और श्रीरामकृष्ण के बालकवत् सरल स्वभाव को देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ तथा उनके इस प्रकार के स्वभाव को अज्ञान और कुसंस्कार का परिणाम समझकर उन्हें श्रीरामकृष्ण की दशा देखकर दया आई; क्योंकि वे तो थे कट्टर वेदान्ती; उन्हें वेदान्तोक्त कर्मफलदाता ईश्वर के सिवाय अन्य कोई देव विदित ही नहीं था। निर्गुण ब्रह्म के ध्यानाभ्यास से ही निर्विकल्प समाधि अवस्था में पहुँचे हुए तोतापुरी को श्रीरामकृष्ण के समान उत्तम अधिकारी पुरुष का सगुण ब्रह्म पर बालक के समान सरल विश्वास रखना असंगत मालूम पड़ा। पुनश्च श्रीरामकृष्ण की माता कौन थी? वही त्रिगुणमयी ब्रह्मशक्ति माया! माया को तो तोतापुरी केवल भ्रम ही समझते थे और उसके अस्तित्व को मानने की या उसकी उपासना करने की कोई आवश्यकता नहीं है, यही उनका सिद्धान्त था; इसीलिए वे यह मानते थे कि अज्ञान के बंधन से मुक्त होने के लिए ईश्वर की या शक्तिसंयुक्त ब्रह्म की आराधना करने की

कोई आवश्यकता साधक को नहीं रहा करती, यह सब तो स्वयं उसके प्रयत्न पर अवलम्बित है।

मुझसे दीक्षा लेकर ज्ञानमार्ग की साधना प्रारम्भ करने से इसके ये संस्कार और अज्ञान शीघ्र ही दूर हो जायँगे, ऐसा सोचकर तोतापुरी ने इसके सम्बन्ध में और कुछ न कहकर दूसरा विषय प्रारम्भ किया। वे बोले, "वेदान्तसाधना की दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व तुझे शिखा-सूत्र का त्याग करके यथाशास्त्र संन्यास ग्रहण करना होगा।" श्रीरामकृष्ण ने कुछ विचार के बाद उत्तर दिया कि "यदि यह सब गुप्त रीति से हो सके तब तो ठीक है, पर प्रकट रूप से संन्यास लेने में मेरी वृद्धा माता को बड़ा दुःख होगा और उसका दुःख मुझसे देखा नहीं जा सकता।" तोतापुरी ने उनका कहना मान लिया और "अच्छा मुहूर्त देखकर तुझे गुप्त रूप से संन्यास दूँगा" कहकर वे इधर उधर की अन्य बातें करने लगे। तत्पश्चात् वे काली-मन्दिर के उत्तरी भाग में रमणीय पंचवटी के नीचे आसन बिछाकर बैठ गए।

फिर शुभ मुहूर्त देखकर श्रीमान् तोतापुरी ने श्रीरामकृष्ण को अपने पितृपुरुषों की तृप्ति के लिए श्राद्धादि क्रिया करने को कहा। उसकी समाप्ति होने पर उन्होंने उनसे अपने स्वयं का भी श्राद्ध यथाविधि कराया। इसका कारण यह है कि संन्यासग्रहण के समय से ही साधक को 'भूः' आदि सब लोकों की प्राप्ति की आशा और अधिकार त्याग देना पड़ता है। अतः उसके पूर्व ही साधक को स्वयं अपना श्राद्ध कर डालना चाहिए यही शास्त्र की आज्ञा है।

जिसे गुरु कहते थे उस पर पूर्ण भरोसा रखकर उसी के कहने के अनुसार अक्षरशः कार्य करने का श्रीरामकृष्ण का स्वभाव था,

अतः श्रीमान् तोतापुरी ने जैसी आज्ञा दी उसका अक्षरशः पालन श्रीरामकृष्ण ने किया। श्राद्धादि पूर्व क्रिया समाप्त होने पर उन्होंने व्रत धारण किया और गुरु की बताई हुई सब सामग्री को एकत्र करके उन्हें पंचवटी के नीचे अपनी साधना-कुटी में ठीक तरह से रख दिया और वे उत्कण्ठापूर्वक शुभ मुहूर्त की राह देखने लगे।

रात बीत गई। शुभ ब्राह्म मुहूर्त का समय देखकर यह गुरु-शिष्य की अलौकिक जोड़ी उस शान्त और पवित्र साधना-कुटी में प्रविष्ट हुई। पूर्वकृत्य समाप्त होने पर होमाग्नि प्रज्वलित की गई और ईश्वरार्थ सर्वस्वत्यागरूप जो व्रत सनातन काल से गुरुपरम्परा से इस भारतवर्ष में प्रचलित है और जिसके कारण भारतवर्ष को ब्रह्मज्ञपद का मान आज भी सारे संसार में प्राप्त है, उस त्यागव्रत के अवलम्बन करने के पूर्व उच्चारण करने के लिए जो मन्त्र विहित हैं, उन मन्त्रों की पवित्र और गम्भीर ध्वनि से सम्पूर्ण पंचवटी गूँज उठी! उस ध्वनि के सुखस्पर्श से पवित्रसलिला भागीरथी का स्नेहपूर्ण वक्षःस्थल कम्पित होने लगा और आज बहुत दिनों के बाद पुनः एक बार भारतवर्ष तथा सारे संसार के कल्याण के लिए एक साधक सर्वस्वत्यागरूप असिधाराव्रत का अवलम्बन कर रहा है—यही जानकर मानो इस आनन्दमयी वार्ता को दिग्दिगान्तर में पहुँचाने के लिए गंगा माता अत्यन्त हर्ष से शब्द करती हुई बड़ी शीघ्रता के साथ अपना मार्ग अनुसरण कर रही थीं!

गुरु जी मन्त्र कहते जाते थे और उनके अलौकिक शिष्य भी अत्यन्त एकाग्रता से उन मन्त्रों का पुनरुच्चारण करते हुए अग्नि में आहुति डालते थे। पहले प्रार्थना के मन्त्र * कहे गये।

* त्रिसुपर्ण मन्त्र का भावार्थ।

"परब्रह्मतत्त्व मुझे प्राप्त हो। परमानन्द लक्षणोपेत वस्तु मुझे प्राप्त हो। अखण्डैकरस मधुमय ब्रह्मवस्तु मुझमें प्रकाशित हो। ब्रह्मविद्या के साथ नित्य वर्तमान रहनेवाले हे परमात्मन्! तेरे देव-मनुष्यादि सब सन्तानों में मैं ही तेरी करुणा के योग्य बालक हूँ। हे संसाररूप दुःस्वप्नहारिन् परमेश्वर! मेरे द्वैतप्रतिभासरूप सर्व दुःस्वप्नों का विनाश कर। हे परमात्मन्! मैं अपनी सर्व प्राणवृत्तियों की तुझमें आहुति देकर सर्व इन्द्रियों का निरोध करके त्वदेकचित्त हो गया हूँ। हे सर्व-प्रेरक देव! ज्ञानप्रतिबंधक सर्व मलिनता मुझमें से बाहर करके असं-भावना-विपरीत-भावना-रहित तत्त्वज्ञान प्राप्त होने योग्य मुझे बना। सूर्य, वायु, सभी नदियों के पवित्र जल, व्रीहियवादि शस्य, सर्व वनस्पति और जगत् के अन्य सर्व पदार्थ तेरे आदेश से मेरे अनुकूल होकर तत्त्वज्ञानप्राप्ति के कार्य में मेरी सहायता करें! हे ब्रह्मन्! तू ही इस जगत् में नाना प्रकार के रूपों में प्रकाशित हो रहा है। शरीर और मन शुद्ध होकर तत्त्वज्ञान धारण की योग्यता मुझे प्राप्त होवे — एत-दर्थ अग्निरूप तुझमें मैं आहुति दे रहा हूँ। अतः प्रसन्न होओ।"

तत्पश्चात् विरजा होम प्रारम्भ हुआ — "मेरे भीतर के पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश इन पंचभूतों के अंश शुद्ध होवें। आहु-तियों के योग से रजोगुण-प्रसूत मलिनता से मुक्त होकर मैं ज्योतिः-स्वरूप बनूँ!"

"मेरे भीतर के प्राणपंचक, कोषपंचक शुद्ध होवें!"

"मेरे भीतर के शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध-प्रसूत सर्व विषयसंस्कार शुद्ध होवें! मेरे मन, वाक्य, कार्य, कर्म आदि सभी शुद्ध होवें!"

"हे अग्नि! शरीर में सोये हुए ज्ञानप्रतिबंधहरणकुशल लोहि-

ताक्ष पुरुष ! जागृत होओ। हे अभीष्टपूरणकारिन् ! ज्ञानप्रतिबन्धक सभी वस्तुओं का नाश करके गुरुमुख से सुने हुए ज्ञान को अन्तःकरण में यथार्थ रीति से धारण करने योग्य मुझे बना। मुझमें जो कुछ है वह सभी शुद्ध हो जावे !"

"चिदाभास ब्रह्मस्वरूप मैं दारा, पुत्र, धनसम्पत्ति, लोकमान्यता, सुंदर शरीर आदि की प्राप्ति की सब वासनाओं को अग्नि में आहुति देता हूँ!"

इस तरह अनेक आहुतियाँ देने के बाद "भूः आदि सर्व लोक-प्राप्ति की सभी आशायें मैंने इसी क्षण से त्याग दीं और इसी समय से मैं संसार के समस्त प्राणीमात्र को अभय दान देता हूँ!" ऐसा कहकर होम समाप्त किया गया। शिखा-सूत्र का भी यथाविधि होम हुआ और पुरातन काल से प्रचलित परम्परा के अनुसार गुरु के दिये हुए कौपीन, काषाय वस्त्र और नाम * से विभूषित होकर श्रीरामकृष्ण श्रीमत् परमहंस तोतापुरी के पास उपदेश ग्रहण करने के लिए एकाग्र होकर बैठ गये !

तदनन्तर श्रीमत् तोतापुरी अनेक प्रकार की युक्तियों और सिद्धान्त वाक्यों द्वारा उस दिन श्रीरामकृष्ण को समाधि-अवस्था प्राप्त कराने का प्रयत्न करने लगे। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि ऐसा मालूम होता था कि उस दिन न्यांगटा ने अपने सर्व साधनलब्ध अनुभव और उपलब्धि का निश्चय मुझे करा देने के लिए मानो कमर ही कस ली थी। वे कहते थे—"मुझे दीक्षा देकर न्यांगटा अनेक सिद्धान्तवाक्यों का

* श्री तोतापुरी ने ही संन्यास दीक्षा के समय श्रीरामकृष्ण को "श्रीरामकृष्ण" नाम दिया।

उपदेश करने लगा और मन को सर्वथा निर्विकल्प करके आत्मध्यान में निमग्न होने के लिए कहने लगा, परन्तु मेरी स्थिति तो ऐसी थी कि ध्यान करने के लिए बैठने पर अनेक प्रयत्न करने पर भी मन को पूर्णतः निर्विकल्प करके नाम-रूप की सीमा के परे जाना मुझसे बनता ही नहीं था। अन्य सब विषयों से मन को सहज ही परावृत्त कर लेता था, परन्तु इस प्रकार निर्विषय होते ही श्री जगदम्बा की चिर परिचित चिद्घन उज्ज्वल मूर्ति आँखों के सामने खड़ी हो जाती थी और नाम-रूप त्याग का समूल विस्मरण करा देती थी! ध्यान करते बैठता था और मन निर्विषय होते ही माता की मूर्ति सामने आ जाती थी। इस प्रकार लगातार तीन दिन बीत गये। तब तो मैं निर्विकल्प समाधि के विषय में करीब करीब निराश सा हो गया और आँखें खोलकर न्यांगटा से कहने लगा, "मन पूर्णतः निर्विकल्प नहीं होता क्या करूँ?" यह सुनकर न्यांगटा को क्रोध आ गया और मेरा तिरस्कार करते हुए वह बोला, "नहीं होता, इसका क्या मतलब?" ऐसा कहते हुए इधर उधर देखने पर उसे एक कांच का टुकड़ा मिल गया और उसकी सुई के समान तीक्ष्ण नोक को वह मेरे माथे पर दोनों भौंहों के बीच में ज़ोर से गड़ाकर मुझसे बोला, "इस जगह अपना मन एकाग्र कर।" तब फिर एक बार मैं पूरा दृढ़ निश्चय करके ध्यान करने लगा और पूर्ववत् श्री जगदम्बा की मूर्ति आँखों के सामने आते ही ज्ञानरूपी तलवार से मन में ही उस मूर्ति का खण्डन कर डाला। तब तो मन में किसी भी प्रकार का विकल्प शेष नहीं रह गया और मन तुरन्त ही नामरूपात्मक राज्य की सीमा को पार कर जल्दी जल्दी ऊपर जाकर समाधिमग्न हो गया!" इस प्रकार श्रीरामकृष्ण को समाधि लग

जाने पर बहुत समय तक श्रीमत् तोतापुरी उनके समीप ही बैठे रहे। बाद में धीरे से उस पवित्र कुटी के बाहर आकर उन्होंने किवाड़ बन्द करके ताला लगा दिया जिससे कोई मनुष्य वहाँ जाकर उनके शिष्य को कष्ट न दे और वे स्वयं पास ही पंचवटी के नीचे अपने आसन पर शान्तिपूर्वक बैठकर प्रतीक्षा करने लगे कि श्रीरामकृष्ण किवाड़ खोलने के लिए कब पुकारते हैं। दिन बीत गया, रात आई। रात भी बीत गई और दूसरा दिन निकल आया। फिर दिन बीत गया और रात आई, इस तरह लगातार तीन दिन हो गए तो भी किवाड़ खुलवाने के लिए श्रीरामकृष्ण की पुकार सुनाई नहीं दी! तब तो श्री तोतापुरी को बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अपने अद्भुत शिष्य की अवस्था देखने की उत्सुकता से धीरे से किवाड़ खोलकर कुटी के भीतर गए। वहाँ उन्होंने देखा कि उनका शिष्य तीन दिनों के पूर्व समाधि लगाते समय जैसे बैठा था वैसे ही बैठा हुआ है, देह में प्राणों का बिलकुल चिन्ह नहीं है, केवल मुखमण्डल शान्त और गम्भीर है और उस पर एक अपूर्व तेज झलक रहा है! बाह्य जगत् के सम्बन्ध में अभी तक वह मृतप्राय बना है और उसका चित्त निवात-निष्कम्प-प्रदीप के समान ब्रह्म में लीन है। यह अवस्था देखकर श्री तोतापुरी चकित हो गए और अपने आप कहने लगे, "क्या यह बात सचमुच सम्भव है? जिसे सिद्ध करने के लिए मुझे चालीस वर्ष तक सतत परिश्रम करना पड़ा क्या उसे इस महापुरुष ने तीन ही दिनों में सिद्ध कर डाला?" यह शंका उन्हें हुई और उन्होंने श्रीरामकृष्ण के शरीर के सभी लक्षणों की — जैसे, हृदय की स्पन्दन-क्रिया चल रही है अथवा नहीं, नाक द्वारा श्वासोच्छ्वास हो रहा है

या नहीं — इस सब की बारीकी के साथ जाँच की, परन्तु हृदय की क्रिया बन्द थी, श्वासोच्छ्वास भी बन्द था? तब उन्होंने श्रीरामकृष्ण के उस काष्ठवत् शरीर को चुटकी देकर देखा पर उसका भी कोई परिणाम नहीं हुआ; तब तो तोतापुरी के आश्चर्य और आनन्द की सीमा नहीं रही। "यह कैसी दैवी माया! यह तो सचमुच समाधि ही है!" ये शब्द उस आश्चर्य और आनन्द के आवेश में उनके मुँह से निकल पड़े।

तत्पश्चात् अपने उस अलौकिक शिष्य को समाधि-अवस्था से उठाने के लिए श्री तोतापुरी ने कोई एक क्रिया आरम्भ की और थोड़ी ही देर में "हरिःॐ" मंत्र की गम्भीर ध्वनि से वह पवित्र पुण्य पंचवटी गूँज उठी।

अपने शिष्य के असाधारण होने की जानकारी श्री तोतापुरी को प्रथम भेंट के समय ही हो गई थी और अब तो उन्हें उसकी अलौकिकता का प्रत्यक्ष निश्चय हो गया। अतः उन्होंने अपने शिष्य को 'परमहंस' की पदवी दे दी। अपने शिष्य पर उन्हें बड़ा प्रेम हो गया, इतना ही नहीं, उसके प्रति उनके मन में बड़ा आदरभाव भी उत्पन्न हो गया और उसकी संगति का लाभ हो सके तो बड़ा अच्छा होगा यह भाव उनके मन में आने लगा। इस असाधारण शिष्य के अद्भुत आकर्षण के कारण उनके जाने का दिन भी अधिकाधिक दूर होने लगा और उनका जो एक स्थान में तीन दिन की अवधि से अधिक न रहने का नियम था, वह अवधि भी समाप्त हो गई; तो भी वहाँ से हटने का विचार भी उनके मन में नहीं आता था! सप्ताह बीत गया, पक्ष भी बीत गया, एक महीना हो गया, छः मास बीत गये तथापि श्रीरामकृष्ण की

संगति के दिव्य आनन्द को छोड़कर अन्यत्र जाने का उनका मन ही नहीं होता था।

रोज प्रातः सायं उस पुण्यस्थल में पंचवटी के नीचे बैठे हुए उन दोनों महापुरुषों में जो ब्रह्मानन्द की वार्ता होती रही होगी और उस समय जो आनन्द का स्रोत उमड़ता होगा उसकी कुछ भी कल्पना करना हम जैसे सामान्य मनुष्यों के लिए असम्भव है। अब श्रीरामकृष्ण को वेदान्त के सिवाय और कोई धुन नहीं थी और श्री तोतापुरी को भी अपने शिष्य को वेदान्त-शास्त्र के गूढ़ तत्त्वों को अपने निज के अनुभव की अधिकारयुक्त वाणी द्वारा समझा देने के अतिरिक्त दूसरा कोई आनन्द का विषय नहीं था। कई बार तो उन दोनों को अपने आनन्द की लहर में दिन-रात और खान-पान तक का ध्यान नहीं रहता था।

ऊपर बता ही चुके हैं कि श्री तोतापुरी वेदान्तोक्त कर्मफलदाता ईश्वर के अतिरिक्त किसी और देवी-देवता को नहीं मानते थे और किसी को देवी-देवता पर विश्वास करते देख उसे वे अज्ञान और कुसंस्कार का परिणाम समझा करते थे। बिल्कुल छुटपन से ही सब प्रकार के मायाजाल से दूर रहकर अपने गुरु के चरणों में वास करने का सौभाग्य इन्हें प्राप्त हो गया था, इसी कारण वे आत्मज्ञानलाभ के कार्य में अपने स्वयं के प्रयत्नों को छोड़कर अन्य किसी बात को महत्त्व नहीं देते थे। श्रीमदाचार्य ने अपने विवेकचूड़ामणि के आरम्भ में ही कहा है कि "इस संसार में मनुष्यत्व, ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा और सद्गुरु का आश्रय इन तीनों वस्तुओं का प्राप्त होना परम दुर्लभ है—इसके लिए ईश्वर की ही कृपा चाहिए।" इन तीनों वस्तुओं का लाभ श्री तोतापुरी को बचपन में ही हो गया था। तभी से अपने

ध्येय की ओर दृष्टि रखकर लगातार चालीस वर्ष परिश्रम करते हुए उन्होंने उसकी सिद्धि प्राप्त की। उन्हें अपने मन के साथ भी बहुत झगड़ा नहीं करना पड़ा होगा; क्योंकि बचपन में ही उन्हें सद्गुरु का आश्रय प्राप्त हो जाने और गुरु के प्रति उनकी पूर्ण निष्ठा होने के कारण अक्षरशः सद्गुरु की आज्ञा के अनुसार ही उनका आचरण सहज ही हुआ करता था। बंगाल के वैष्णव सम्प्रदाय में एक कहावत प्रचलित है:—

गुरु कृष्ण वैष्णव तिनेर दया हइल।
एकेर दयाविने जीव छारे खारे गेल॥

अर्थात् गुरु, भगवान् और सन्त तीनों की दया होने पर भी एक की दया अर्थात् अपने मन की दया न होने पर जीव के कल्याण का नाश हो जाता है। जिस मन की दया के बिना जीव का सत्यनाश हो जाता है, ऐसे दुष्ट मन के पंजे में श्री तोतापुरी कभी भी नहीं फँसे होंगे। ईश्वर पर भरोसा और विश्वास रखकर गुरु की आज्ञा के अनुसार अपने ध्येय के मार्ग में चलते हुए उन्होंने एक बार भी पीछे मुड़कर संसार के झगड़े और झंझटों की ओर दृष्टि नहीं डाली। स्वभावतः वे पूर्णरूप से उद्योग, प्रयत्न और आत्मविश्वास पर अवलंबित थे। अपने मार्ग में चलते चलते यदि बीच में ही मन किसी अड़ियल टट्टू के समान अड़ जाय, तो यह सारा प्रयत्न और आत्मविश्वास उस झंझावात में तृणसमूह के समान कहीं का कहीं चला जाता है और उसकी जगह अविश्वास आ घेरता है और उस शूरवीर की दशा किसी क्षुद्र असहाय कीट की अपेक्षा अधिक करुणाजनक हो जाती है—इस बात का अनुभव श्री तोतापुरी को नहीं था। ईश्वर की कृपा से बाह्यजगत् के अनेक पदार्थों की अनुकूलता प्राप्त न होने पर जीव के समस्त प्रयत्नों और

उद्योगों का कुछ भी उपयोग नहीं होता तथा उसकी आशा के अनुसार उसे फलप्राप्ति नहीं होती —— इस बात का भी अनुभव तोतापुरी को नहीं हुआ था। इसी कारण वे यह नहीं समझ सकते थे कि आत्मज्ञान-प्राप्ति के लिए साधक को देवी-देवता की सहायता मांगनी चाहिये। वे कहा करते थे कि भक्तिमार्ग दीन दुर्बल तथा असमर्थ लोगों का मार्ग है। श्रीमत् तोतापुरी के ध्यान में यह बात नहीं आती थी कि भक्त-साधक किस प्रकार ईश्वरभक्ति और प्रेम में तन्मय होकर संसार के सभी विषयों को, यहाँ तक कि आत्मतृप्ति को भी भूलकर अपनी भक्ति के बल से ईश्वर का दर्शन प्राप्त कर सकता है तथा भक्ति की अत्यन्त उच्च अवस्था में वह शुद्ध अद्वैत ज्ञान का भी अधिकारी हो जाता है। वे यह भी समझ सकने में असमर्थ थे कि इस उद्देश्य के हेतु भक्त-साधक के जप, कीर्तन तथा भजनादि किस प्रकार उपयोगी होते हैं और न यही समझ सकते थे कि ये सब पागलपन या दुर्बलता के लक्षण नहीं हैं। यही कारण है कि वे (तोतापुरी) कभी कभी भक्त की भावतन्मयता की दिल्लगी उड़ाया करते थे। पर इसका यह मतलब नहीं है कि श्री तोतापुरी नास्तिक थे या उन्हें ईश्वरानुराग नहीं था। वे स्वयं शमदमादि सम्पत्तिवान शान्त प्रकृति के पुरुष थे और भक्ति के शान्तभाव के साधक थे तथा दूसरों में भी उस भाव की ईश्वरभक्ति को वे समझ सकते थे, परन्तु ईश्वर को अपना सखा, पुत्र, स्वामी आदि मानकर उन भावों से भक्ति करने से साधक की उन्नति शीघ्रता से हो सकती है, इस विषय की ओर उन्होंने कभी ध्यान नहीं दिया था। अतएव ऐसे भक्तों का ईश्वर के प्रति विशिष्ट सम्बन्धयुक्त प्रेम, उनकी प्रार्थनाएँ, ईश्वर-विरह में उनका बेहोश हो जाना, उनकी व्याकुलता, अभिमान, हठ, भाव

की प्रबलता में उनके हास्य, नृत्य, क्रन्दन आदि को वे पागलपन के लक्षण समझते थे। उन्हें इस बात की कल्पना तक न थी कि उपर्युक्त लक्षणों के संयोग से साधक की उन्नति का वेग बढ़ जाता है और उसे अपने ध्येय की प्राप्ति अत्यन्त शीघ्र हो जाती है। इसी कारण उनमें और श्रीरामकृष्ण में अनेक बार ब्रह्मशक्ति जगदम्बा की मनोभावयुक्त भक्ति, पूजा-अर्चा और अन्य भक्ति सम्बन्धी विषयों के बारे में वादविवाद छिड़ जाया करता था।

बचपन से ही श्रीरामकृष्ण नित्य प्रातः सायं हाथों से ताली बजाते हुए और कई बार भावावेश में नाचते नाचते कुछ समय तक "हरि बोल हरि बोल", "हरिगुरु, गुरुहरि", "प्राण हे गोविन्द मम जीवन", "मनकृष्ण, प्राणकृष्ण, ज्ञानकृष्ण, ध्यानकृष्ण, बोधकृष्ण, बुद्धिकृष्ण", "तू ही जगत्, जगत् तुझमें" "मैं यंत्र, तू यंत्री"—इत्यादि भजन ज़ोर ज़ोर से किया करते थे। वेदान्त-ज्ञान द्वारा अद्वैतभाव से निर्विकल्प समाधि का लाभ होने पर भी उन्होंने अपना यह नित्यक्रम कभी भी नहीं छोड़ा। एक दिन पंचवटी के नीचे श्री तोतापुरी के साथ अनेक प्रकार की धार्मिक बातें करते करते संध्या हो गई। तुरन्त ही सभी बातें एकदम बन्द करके वे ऊपर लिखे अनुसार भजन करने लगे। यह दृश्य देखकर श्री तोतापुरी को बड़ा आश्चर्य हुआ कि जो पुरुष वेदान्त-मार्ग का इतना उत्तम अधिकारी है कि उसे केवल तीन ही दिनों में निर्विकल्प समाधि प्राप्त हो गई वही पुरुष एक अत्यन्त हीन अधिकारी के समान ताली ठोंककर भजन कर रहा है। इस समस्या को वे हल नहीं कर सके। और वे दिल्लगी करने के इरादे से श्रीरामकृष्ण की ओर देखकर बोले, "क्यों रोटी ठोंकते हो?" श्रीरामकृष्ण हँसते हँसते बोले,

'ज़रा चुप बैठियेगा! मैं तो ईश्वर का नामस्मरण कर रहा हूँ और आप कहते हैं 'क्यों रोटी ठोंकते हो?'" श्रीरामकृष्ण के इस सरल वाक्य को सुनकर श्री तोतापुरी को भी आनन्द आया और वे उनके ऐसा करने में कोई अर्थ अवश्य होगा यह समझकर चुप हो गये और कुछ न बोले।

इस तरह और भी एक दिन संध्याकाल के बाद श्रीरामकृष्ण श्री तोतापुरी की धूनी के पास ही बैठे थे! ईश्वरी कथा-प्रसंग में दोनों के मन ऐसी उच्च स्थिति को प्राप्त हो गए थे कि वे अद्वैत अनुभव में तन्मय हो गए थे। उनके सामने की धूनी में अग्निनारायण की आत्मा भी मानो इनकी आत्मा के साथ एकता का अनुभव करते हुए आनन्द के मारे अपनी सम्पूर्ण शतजिह्वाओं को बाहर निकालकर खिलखिलाकर हँस रही थी! उन दोनों को ही जगत् की विस्मृति सी हो गई थी। इसी समय बगीचे के नौकरों में से एक मनुष्य अपनी चिलम भरकर आग लेने के लिए वहाँ आया और धूनी से एक लकड़ी बाहर खींचकर उसमें से अँगार निकालने लगा। दोनों ही ब्रह्मानन्द में ऐसे मग्न थे कि इस मनुष्य का आना और लकड़ी का खींचना इन दोनों को मालूम तक न पड़ा। इतने ही में एकाएक तोतापुरी की नज़र उस पर पड़ी और हमारी पवित्र अग्नि को इस मनुष्य ने छू दिया, यह देखकर उन्हें बड़ा क्रोध आया और वे उसे गाली देते हुए अपना चिमटा लेकर उसे मारने का भी भय दिखाने लगे।

यह सब हाल देखकर श्रीरामकृष्ण उस तन्मय स्थिति में अर्ध-बाह्य अवस्था में ज़ोर ज़ोर से हँसने लगे और बारम्बार "वाह वाह! वाह वाह! शाबास शाबास!" कहने लगे। श्रीरामकृष्ण को ऐसा कहते

देख उन्हें बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ और वे बोले, "तू ऐसा क्यों कह रहा है? देख भला! इस मनुष्य ने कितना बड़ा अपराध किया है!" श्रीरामकृष्ण ने हँसते हँसते उत्तर दिया — "हाँ! उसका अपराध तो जरूर है पर मुझको उसकी अपेक्षा आपके ब्रह्मज्ञान की ही अधिक दिल्लगी मालूम पड़ती है। अभी ही आप कहते थे न कि एक ब्रह्म के सिवाय इस जगत् में और दूसरा कुछ भी सत्य नहीं है, संसार की सभी वस्तुएँ और व्यक्ति उसी के प्रकाश हैं — और तुरन्त दूसरे ही क्षण में आप यह सब भूलकर उस मनुष्य को मारने के लिए तैयार हो गये! इसीलिए हँसता हूँ कि महामाया का प्रभाव कितना प्रबल है!" श्रीरामकृष्ण के ये वचन सुनकर तोतापुरी कुछ देर तक गम्भीर होकर बैठे रहे। फिर वे श्रीरामकृष्ण से बोले, "तूने ठीक कहा। मैं क्रोध के आवेश में सचमुच ही सब बातें भूल गया था। क्रोध बड़ा दुष्ट है, आज से मैं कभी भी क्रोध नहीं करूँगा।" और सचमुच ही तोतापुरी उस दिन के बाद कभी भी गुस्सा होते हुए नहीं देखे गये।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे — "पंचभूतों के चपेटों में पड़कर ब्रह्म रोया करता है। आँखें मूंदकर आप कितना ही कहिए — 'मुझे कांटा नहीं गड़ा, मेरा पैर दर्द नहीं करता' — पर कांटा चुभते ही वेदना से तुरन्त व्याकुल होना पड़ता है। उसी तरह मन को कितना भी सिखाइए कि तेरा जन्म नहीं होता, मरण नहीं होता, तुझे न पाप होता है न पुण्य, तेरे लिए न शोक है न दुःख, न क्षुधा है न तृष्णा, तू जन्म-जरा-रहित, निर्विकार, सच्चिदानन्दस्वरूप आत्मा है — पर शरीर थोड़ा सा भी अस्वस्थ हुआ, या मन के सामने थोड़ा भी संसार का रूपरसादि विषय आया, अथवा काम-कांचन के ऊपरी दिखने वाले सुख में

भूलकर हाथ से कोई दुष्कर्म हो गया कि तुरन्त ही मन में मोह, दुःख, यातना की तरंगें उमड़ पड़ती हैं और मनुष्य सभी आचार-विचारों को भूलकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। इसी कारण यदि ईश्वर की कृपा न हुई, महामाया ने यदि गले की फांसी की डोरी न खोली, तो किसी को भी आत्मज्ञान और आनन्द की प्राप्ति हो नहीं सकती यह निश्चय जानिये —

"सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।" — उस जगदम्बा ने कृपा करके यदि मार्ग साफ़ नहीं कर दिया तो कुछ भी सिद्ध होने की आशा नहीं है।

"राम, सीता और लक्ष्मण वन में से जा रहे थे। वन का मार्ग सकरा था। एक बार में सिर्फ एक ही मनुष्य चलने लायक चौड़ा था। धनुष बाण हाथ में लेकर श्रीरामचन्द्र सब से आगे चल रहे थे, उनके पीछे पीछे सीताजी चल रही थीं और उनके पीछे लक्ष्मणजी धनुष बाण लेकर जा रहे थे। लक्ष्मणजी की श्रीरामचन्द्रजी पर अत्यन्त भक्ति और प्रीति थी। वे चाहते थे कि उन्हें श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन प्रतिक्षण होता रहे। पर वे करें क्या? उनके और श्रीरामचन्द्रजी के बीच में सीताजी चल रही थीं। अतः रामचन्द्र जी का दर्शन न होने के कारण लक्ष्मणजी को लगातार व्याकुलता रहा करती थी। बुद्धिमति सीताजी के ध्यान में यह बात आगई और ज्योंही उनके मन में करुणा उत्पन्न हुई त्योंही वे रास्ता चलते चलते कुछ हट गईं और बोलीं, "अच्छा! अब दर्शन कर लो।" तब कहीं लक्ष्मणजी नेत्र भरकर अपनी इष्ट मूर्ति के दर्शन कर सके। उसी तरह जीव और ईश्वर के बीच में भी मायारूपी सीता रहा करती है। उसने जीवरूपी लक्ष्मण

पर कृपा करके यदि राह नहीं छोड़ दी और अपना पाश नहीं तोड़ दिया तो जीव को रामरूपी ईश्वर का दर्शन नहीं होगा, यह निश्चय जानिये। उसकी कृपा हुई कि जीवरूपी लक्ष्मण को रामरूपी ईश्वर के दर्शन होने में कुछ भी देरी नहीं लगती और यदि उसकी कृपा नहीं हुई, तो फिर हजार विचार कीजिये उससे कुछ नहीं होगा। अस्तु—

तोतापुरी पर श्री जगदम्बा की कृपा जन्म से ही थी। सत्संस्कार, सरल मन, योगी महापुरुष का आश्रय, बलिष्ठ और निरोगी शरीर उन्हें बाल्यावस्था से ही प्राप्त था। महामाया ने उन्हें अपना उग्र रूप कभी नहीं दिखाया। इसी कारण श्री तोतापुरी को उद्योग और सतत परिश्रम द्वारा निर्विकल्प समाधि-अवस्था प्राप्त करना बिल्कुल सहज बात मालूम पड़ती थी। उन्हें यह कैसे जान पड़े कि श्री जगदम्बा की कृपा होने के कारण ही उसी ने परमार्थ-मार्ग की सभी अड़चनों को स्वयं दूर करके उनका मार्ग सुगम कर रखा था। पर अब इतने दिनों के बाद श्री जगदम्बा के मन में आया कि इस बात का अनुभव उन्हें करा दिया जाय। इसी कारण अब इतने दिनों में उनके मन के भ्रम के दूर होने का समय आया।

श्री तोतापुरी की शारीरिक प्रकृति अत्यन्त निरोगी थी। उन्हें अजीर्ण आदि रोगों का कुछ भी अनुभव नहीं था। वे जो खाते थे सब हजम हो जाता था। जहाँ सोते थे वहीं उन्हें नींद आ जाती थी। उनका मन सदैव शान्ति और आनन्द से पूर्ण रहता था। चिन्ता या उदासीनता उन्हें कभी नहीं हुई! पर बंगाल के पानी और सर्द हवा ने उनके शरीर पर अपना असर किया। श्रीरामकृष्ण के अद्भुत आकर्षण के कारण उन्होंने दक्षिणेश्वर में कुछ ही महीने बिताये थे कि

उनके फौलाद के समान शरीर में भी रोग का प्रवेश हो गया। उन्हें रक्तआमांश हो गया, रातदिन पेट में मरोड़ होकर दर्द होने लगा और उनका धीर गम्भीर और स्थिर मन भी ब्रह्म-विचार और समाधि-अवस्था से हटकर शरीर की ओर आकृष्ट होने लगा। पंचभूतों के चपेटे में ब्रह्म के पड़ जाने पर अब सर्वेश्वरी श्री जगदम्बा के सिवाय दूसरा रक्षक कौन हो सकता है? रोग होने के पूर्व ही उन्हें ऐसा मालूम होने लगा था कि इस प्रान्त में मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं रहेगा, अतः यहाँ अधिक रहना ठीक नहीं है; परन्तु श्रीरामकृष्ण की दिव्य संगति के सुख का लोभ उनसे नहीं छूटता था और अन्त में वे बीमार हो ही गये। रोग को बढ़ते देखकर कभी कभी उन्हें वहाँ से अन्यत्र चले जाने की इच्छा होती थी। आज श्रीरामकृष्ण की अनुमति लेंगे यह वे विचार करते थे, परन्तु जब श्रीरामकृष्ण उनके समीप आकर बैठते थे और भगवत्कथा प्रसंग छिड़ जाता था, तब वे अपना विचार भूल जाते थे और उनके जाने का दिन दूर होता जाता था। एक-आध बार ऐसा भी हुआ कि श्रीरामकृष्ण के उनके पास आते ही उनसे अनुमति मांगने की बात उनके बिलकुल ओंठ तक आ जाती थी पर इतने में ही वे सोचने लगते थे कि "ऊँह, जल्दी क्या है? आज रहकर कल चला जाऊँगा।" ऐसा होते होते रोग क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था। श्री तोतापुरी के स्वास्थ्य को दिनोंदिन अधिक बिगड़ते देखकर श्रीरामकृष्ण ने मथुरबाबू से कह-कर औषधि की व्यवस्था कराई और उनकी सेवाशुश्रूषा वे स्वयं करने लगे। पेट के दर्द से उन्हें अधिक कष्ट होने लगा, तथापि अपने मन को समाधिमग्न करके शरीर के सभी दुःखों को भुला देने लायक शक्ति उनमें अभी भी शेष थी। आज रात्रि के समय तोतापुरी के पेट में बड़ा

दर्द हुआ। वे सोने का प्रयत्न करते थे, पर तुरन्त ही पेट में मरोड़ होने से वे उठ बैठते थे। किन्तु बैठ रहने पर भी उन्हें चैन कहाँ? फिर लेटते थे, फिर बैठते थे, ऐसा लगातार हो रहा था। तब उन्होंने सोचा कि बस अब समाधि लगाकर बैठ जाना चाहिए; फिर इस शरीर का जो कुछ होना होगा सो हो जाएगा। पर आज तो उनसे समाधि भी नहीं लगती थी। सारा मन उस पेट की वेदना की ओर ही लगा था। समाधि लगाने का उन्होंने बहुत प्रयत्न किया पर सब व्यर्थ हुआ। तब तो उन्हें अपने शरीर पर क्रोध आया। वे स्वयं अपने आप कहने लगे — "आज इस शरीर के भोग के कारण मेरा मन भी मेरे काबू में नहीं है! यह कैसी बात है? मैं शरीर तो हूँ नहीं! तब यह बात कैसी है? अब शरीर का ही अन्त कर डालता हूँ; फिर सब ठीक हो जाएगा; व्यर्थ इसकी संगति में अपने को कष्ट क्यों दूँ? अभी समय भी ठीक है। अभी ही इस शरीर को गंगाजी में विसर्जन करके सभी भोगों और दुःखों का अन्त कर डालता हूँ!" ऐसा सोचकर वे पुनः एक बार बलपूर्वक प्रयत्न करके अपने मन को ब्रह्मचिन्तन में स्थिर करके धीरे धीरे सरकते हुए गंगाजी के किनारे पर पहुँचे और पानी में उतरकर धीरे धीरे आगे बढ़ने लगे। पर बड़े आश्चर्य की बात हुई। इतनी बड़ी गंगा नदी मानो आज सचमुच सूख गई हो ऐसा मालूम पड़ा। उस प्रवाह में एक मनुष्य के डूबने लायक भी पानी नहीं था। यह क्या हुआ और कैसे हुआ? श्री तोतापुरी चलते चलते करीब करीब दूसरे किनारे तक पहुँच गये, तो भी गंगाजी में डूबने लायक पानी कहीं पर नहीं मिला। क्रमशः उस पार के गृह, वृक्ष आदि रात्रि के अन्धकार में दीखने लगे। तब आश्चर्यचकित होकर तोतापुरी अपने आप कहने लगे — "यह कैसी

दैवी माया है! मेरे डूब मरने लायक भी पानी आज इस नदी में नहीं है! ईश्वर की यह कैसी अपूर्व लीला है!" इतने में ही भीतर से किसी ने उनकी बुद्धि पर के आवरण को दूर हटा दिया और उनके अन्तःकरण में एकदम प्रकाश हो गया कि——

"यह सब उस जगदम्बा, उस विश्वजननी, अचिन्त्य शक्तिरूपिणी माया का खेल है! यह सब उसी की लीला है! जल में, स्थल में, काष्ठ में, पाषाण में—सर्वत्र वही माया, वही जगदम्बा! वही शरीर, मन भी वही, भोग वही और यातना भी वही है। वही ज्ञान, अज्ञान भी वही, जन्म वही और मृत्यु भी वही है! दृश्य और अदृश्य, ज्ञेय और अज्ञेय सब कुछ वही है। मन और बुद्धि की सीमा के भीतर वही है और उस सीमा के परे भी वही है। अघटनघटनापटीयसी वही है, कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ भी वही है! इसकी इच्छा न रहने पर किसी को भी उसके माया-जाल से छूटते नहीं बनता। उसकी इच्छा न हो तो मरने की शक्ति भी किसी में नहीं है! इतने दिनों तक ब्रह्म नाम से पहिचानकर जिसका मैं चिन्तन करता था, वही यह जगदम्बा है! शिव और शिवशक्ति, ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति एक ही है।"

रात्रि का समय! अमावस्या का सा अन्धकार! सर्व जगत् शान्त! कहीं कोई आवाज़ सुनाई नहीं देती थी। श्री तोतापुरी उस गंगाजी के पानी में——डूब मरने लायक भी पानी जहाँ नहीं था ऐसी गंगाजी के पानी में——श्री जगदम्बा की अचिन्त्य लीला का चिन्तन करते हुए खड़े थे! उन्हें हर तरफ जगदम्बा ही दिखाई देने लगी और "जय जगदम्बे" "जय जगदम्बे" ऐसा जयघोष करते हुए वे अपने आपको उसके चरणों में सब प्रकार से समर्पण करके जैसे गंगा में आगे सरकते-

सरकते गये थे उसी प्रकार पीछे लौटकर धीरे-धीरे जहाँ से गये थे वहीं पर पुनः आ पहुँचे और किनारे पर आकर वहीं से पंचवटी के नीचे अपनी धूनी के समीप आ गये। उन्हें अब शारीरिक कष्ट का स्मरण तक न था और मन को भी एक प्रकार की अपूर्व शान्ति प्राप्त हो गई थी। शेष बची हुई रात्रि उन्होंने श्री जगदम्बा के नाम-स्मरण और ध्यान में बिताई।

प्रभात होते ही नित्य के अनुसार, श्रीरामकृष्ण उनसे मिलने आये तो देखते हैं कि वे बिलकुल बदल गये हैं! मुखमण्डल आनन्द से प्रफुल्लित है, मुख पर हास्य की छटा विराज रही है और शरीर तेजस्वी हो गया है—मानो वे कभी बीमार ही न रहे हों! श्रीरामकृष्ण को उन्होंने इशारे से अपने पास आकर बैठने के लिए कहा और रात्रि का सब वृत्तान्त धीरे-धीरे उनको सुना दिया। वे बोले—"यह रोग ही मेरा बंधु हुआ और इसी ने कल रात्रि को मुझे श्री जगदम्बा का दर्शन करवाया। इतने दिनों तक मैं कितना अज्ञानी था। कुछ भी हो; तू अब अपनी माता से पूछकर मुझे यहाँ से जाने की अनुमति दे। अब कहीं यह मेरे ध्यान में आया कि यह सब उसी का खेल है! मेरी आँखें खोलने के लिए ही उसी ने मुझे इतने दिनों तक यहाँ रहने का मोह उत्पन्न किया। नहीं तो मैं यहाँ से कब का ही चला गया होता। पर उसकी वैसी इच्छा नहीं थी! अब मेरे यहाँ से जाने में कोई हर्ज नहीं है; इसलिए मैं तुझसे कहता हूँ कि मुझे अब उसकी अनुमति प्राप्त करा दे। यह सुनकर श्रीरामकृष्ण हँसते हँसते बोले, "क्यों? हुआ अब निश्चय? मेरी माता को आप इतने दिनों तक मानते ही नहीं थे और शक्ति मिथ्या है, झूठ है कहकर मुझसे विवाद करते थे। मुझे उसने

कव से समझ रखा है कि जैसे अग्नि और उसकी दाहक शक्ति एक हैं, उसी तरह ब्रह्म और ब्रह्म शक्ति भी बिलकुल एक है। अब आप स्वयं अनुभव कर चुके यह ठीक हुआ।"

प्रभात हो गया। नौवतखाने में नौवत वजने लगी। शहनाई की आवाज़ होने लगी। मन्दिर में जगन्माता उठ गई होंगी ऐसा सोचकर, शिव और राम के सदृश गुरु और शिष्य के सम्बन्ध में बंधे हुए ये दोनों महापुरुष उठे और श्री जगदम्बा के मन्दिर में जाकर उन्होंने उसके चरणकमलों में साष्टांग प्रणाम किया। दोनों को ही निश्चय रूप से यह मालूम होने लगा कि अब श्री जगदम्बा ने तोतापुरी को दक्षिणेश्वर से जाने की अनुमति सहर्ष दे दी है। इसके बाद एक दो दिनों में ही श्री तोतापुरी श्रीरामकृष्ण से विदा लेकर दक्षिणेश्वर से पश्चिम की ओर कहीं चले गये। तदुपरान्त उनके सम्बन्ध की कोई वार्ता मालूम नहीं हुई।

श्री तोतापुरी के सम्बन्ध में एक और बात का उल्लेख कर देने से श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से सुने हुए उनके सम्बन्ध का लगभग सभी वृत्तान्त पूरा हो जाएगा। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि श्री तोतापुरी कीमिया की विद्या जानते थे और उन्होंने उसके द्वारा कई बार तांबे आदि धातुओं का सोना बनाया था। यह विद्या उन्हें गुरु-परम्परा से प्राप्त हुई थी। तोतापुरी कहते थे—"इस विद्या का उपयोग अपने स्वार्थ साधने या भोग-विलास प्राप्त करने के लिए कभी नहीं करना चाहिए ऐसा कड़ा प्रतिबन्ध है। ऐसा करने से यह विद्या नष्ट होकर गुरु का भी अकल्याण होता है; तथापि मठ में जो अनेक लोग रहते हैं, उनके योगक्षेम के लिए, या उनके तीर्थाटन के खर्च के लिए इस विद्या के उपयोग करने की स्वतन्त्रता दी गई है।" अस्तु—

इस तरह तीन दिनों के बदले पूरे ग्यारह मास दक्षिणेश्वर में बिताकर और श्रीरामकृष्ण से भी कुछ बातें सीखकर श्री तोतापुरी परमहंस वहाँ से चले गये (सन् १८६५–६६)। तदनन्तर श्रीरामकृष्ण ने अपने मन में यह निश्चय किया कि अब इसके आगे निर्विकल्प अद्वैत भाव में ही रहना चाहिए। अब मैं, तू, जगत् आदि सर्व कल्पना छोड़कर श्रीभगवान् के अद्वय, अखण्ड सच्चिदानन्द स्वरूप में ही एक होकर रहना चाहिए। उनके मन में कोई विचार आ जाने पर उसे अधूरा करके छोड़ना वे जानते ही नहीं थे। अब भी वही बात हुई। वे निरन्तर समाधि-अवस्था में ही रहने लगे। अन्य सब विषयों की बात तो जाने दीजिए, स्वयं अपने शरीर का भी ज्ञान उन्हें नहीं रहता था! खाने, सोने, शौचादि नित्य व्यवहार के कार्य करने का विचार भी उनके मन में उदय नहीं होता था। बोलना चालना बिलकुल बन्द हो गया। उस अवस्था में कहाँ "मैं और मेरा" और "तू और तेरा!" द्वैत भी नहीं और एक भी नहीं! क्योंकि जहाँ दो की कल्पना ही नहीं है वहाँ एक की भी कल्पना कैसे हो? उस अवस्था में मन की सभी वृत्तियाँ शान्त और स्थिर रहती हैं। केवल —

किमपि सततबोधं केवलानन्दरूपं
निरुपममतिवेलप्रख्यमाख्याविहीनम्।
निरवधि गगनाभं निष्कलं निर्विकल्पं
हृदि कलयति विद्वान् ब्रह्म पूर्णं समाधौ॥
प्रकृतिविकृतिशून्यं भावनातीतभावम्। इत्यादि

—विवेकचूड़ामणि

उस अवस्था में केवल आनन्द ही आनन्द रहता है। वहाँ न दिशा है, न देश है, न आलम्बन है, न नाम है, न रूप है। केवल

अशरीरी आत्मा अपनी अनिर्वचनीय आनन्दमयी अवस्था में मनबुद्धि-गोचर समस्त भावों के परे एक प्रकार की भावातीत अवस्था में स्थिर होकर रहती है। शास्त्रों में इस अवस्था को "आत्मा से आत्मा का रमण" कहा है। अब श्रीरामकृष्ण इस प्रकार की अनिर्वचनीय अवस्था में ही सदैव रहने लगे। अब इस अवस्था में स्थिर रहने के लिए उनके मार्ग में कुछ भी बाधा नहीं थी। सांसारिक सभी वस्तु, व्यक्ति, आशा, इच्छा आदि के साथ इन्होंने अपना सम्बन्ध बहुत पहिले ही तोड़ दिया था; क्योंकि श्री जगदम्बा के दर्शन के लिए रातदिन व्याकुल रहते समय ही उन्होंने इन सब विषयों को उनके पादपद्मों में अर्पण कर दिया था। उस समय वे कहा करते थे — "माता! तेरा यह ज्ञान-अज्ञान, धर्म-अधर्म, भलाई-बुराई, पाप-पुण्य, यश-अपयश सब अपना तू ही ले जा; मुझे इसमें से कुछ भी नहीं चाहिए; मुझे तू केवल अपने पादपद्मों में शुद्ध भक्ति मात्र दे।" इस प्रकार इन सब का उन्होंने उसी समय स्थायी रूप से त्याग कर दिया था; इसी कारण अब उनके मन के प्रतिबन्ध के लिए कोई भी विषय शेष नहीं बचा। केवल एक श्री जगदम्बा की मूर्ति ही बची थी। उसे भी उन्होंने ज्ञानरूपी तलवार द्वारा अपने मार्ग से अलग हटा दी थी। तब फिर और क्या बाकी रहा? अब तो रातदिन उस अनिर्वचनीय आनन्दमय अवस्था के सिवाय और कुछ भी शेष नहीं था।

इस अवस्था में श्रीरामकृष्ण लगातार छः महीने रहे! वे कहते थे, "जिस स्थिति में पहुँच जाने पर, साधारण साधक वहाँ से लौट नहीं सकता, इक्कीस दिनों में ही उसका शरीर पके हुए पत्ते के समान गिर पड़ता है, उस स्थिति में मैं माता की कृपा से छः महीने तक

रहा! दिन कब निकला, रात कब हुई, यह भी नहीं जान पड़ता था। मरे हुए मनुष्य के नाक-मुँह आदि में जैसे मक्खियाँ चली जाती हैं वैसी चली जावें तो भी कुछ मालूम नहीं हो। सिर के केश की जटा बन गई। पहने हुए कपड़े में ही मल मूत्र हो जावे, पर जान न पड़े। ऐसी अवस्था में क्या शरीर का टिकना सम्भव है? वह तो कब का नष्ट हो गया होता; परन्तु लगभग उसी समय दक्षिणेश्वर में एक साधु आये हुए थे। उन्होंने देखते ही मेरी अवस्था पहचान ली और उनके मन में आया कि इस देह द्वारा श्री जगदम्बा के अनेक काम अभी होने को बाकी हैं। अत: यदि इसकी रक्षा हम कर सकें तो अनेक लोगों का कल्याण होगा। उनके पास रूल के समान एक लकड़ी थी। उस लकड़ी से मार मारकर मुझे होश में लाने का प्रयत्न वे किया करते थे और जब मैं कुछ थोड़ा सा भी होश में आता सा दिखाई देता था, तब तुरन्त ही वे और हृदय एक दो कौर मेरे मुँह में डाल देते थे! उसमें से कुछ अंश किसी दिन गले के नीचे उतर जाता था और किसी दिन नहीं उतरता था। इसी तरह छ: महीने तक चला! तत्पश्चात् कुछ दिनों में जगदम्बा का आदेश हुआ कि 'भावमुखी हो, लोक-कल्याणार्थ भावमुखी बन।' उसके बाद मैं रक्त-आमांश से बीमार पड़ा। पेट के दर्द से असह्य वेदना होती थी। पेट में बहुत मरोड़ हो, बारम्बार शौच के लिये जाना पड़े, ऐसी बीमारी में छ: महीने बीतने के बाद कहीं शरीर की सुध आई और लोगों के समान देह की स्मृति हुई; नहीं तो तब तक बीच बीच में मन अपने आप स्वतन्त्रतापूर्वक दौड़ लगाकर देखते ही देखते निर्विकल्प अवस्था में पहुँचकर उसी में मग्न हो जाता था।

और एक दिन अपनी अद्वैत अवस्था के सम्बन्ध में बोलते हुए श्रीरामकृष्ण ने कहा—"कैसी अवस्था हो गई थी! कितने ही दिन हरगौरी-भाव में बिताये, कितने ही राधाकृष्ण-भाव में और कितने ही दिन सीताराम-भाव में! राधा-भाव के समय लगातार श्रीकृष्ण का ध्यान और सीता-भाव के समय राम का ध्यान बना रहता था।

तथापि सगुण से—लीला से—ही सब कुछ पूर्ण नहीं हो जाता। इस सब भावावस्थाओं के बाद माता से मैं बोला—"पर हे माता! इन सब में विच्छेद है; जहाँ विच्छेद न हो ऐसी अवस्था मेरी बना दे।"—तब तो अखण्ड सच्चिदानन्द अवस्था प्राप्त हुई। मन अखण्ड में लीन रहता था। इस तरह कितने ही दिन बीत गए। मन में से सारा भक्तिभाव लुप्त सा हो गया। भक्तों की स्मृति भी चली सी गई। सिर कैसा भारी हो गया। ऐसा मालूम हो कि प्राण जा रहे हैं। एक बार तो मन में आया कि रामलाल की काकी को बुलवा लें। कमरे के देवी-देवताओं के चित्र निकालकर फेंक दिए। निर्विकल्प अवस्था में से मन जब कुछ नीचे उतरा तब कहीं जी में जी आया। ऐसा मालूम होने लगा कि जीवन किसके आधार पर धारण किया जाए? तब फिर भक्ति और भक्तों की ओर मन लगने लगा। तब तो हर किसी से मैं पूछने लगा कि "यह मुझे क्या हो गया है?" भोलानाथ बोला—"इसका कारण महाभारत में बताया गया है—समाधिस्थ पुरुष का मन जब समाधि से वापस लौटकर आता है तब वह किसके आधार पर रहे? इसीलिए उस समय वह भक्ति और भक्तों में रमने लगता है; यदि वैसा न हो तो फिर वह किसके आधार पर रहे?"

और सचमुच ही जिन्होंने श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के दस

वर्ष पूर्व (सन् १८७६) उनको देखा था, उन लोगों के मुँह से सुना गया है कि उस समय भी श्रीरामकृष्ण के मुख के शब्द उन्हें बहुधा सुनने को नहीं मिलते थे। चौवीसों घण्टे भावसमाधि लगी हुई है तब बोले कौन? नैपाल दरबार के कलकत्ता के प्रतिनिधि श्रीयुत विश्वनाथ उपाध्याय थे, (उन्हें श्रीरामकृष्ण 'कप्तान' कहा करते थे) उनसे सुना गया है कि उन्होंने एक बार लगातार तीन दिन तक दिन रात श्रीरामकृष्ण को सतत समाधिमग्न रहते हुए देखा है। वे कहते थे— "इस प्रकार की लम्बी समाधि लग जाने पर उनकी पीठ पर, गर्दन से नीचे कमर की हड्डी तक और घुटनों से लेकर तलवे तक गाय का घी बहुत मल मलकर लगाना पड़ता था तब उनकी समाधि उतरती थी और वे होश में आते थे!"

श्रीरामकृष्ण ने स्वयं भी कई बार हम लोगों से बताया है कि "मेरे मन की स्वाभाविक गति ऊर्ध्व दिशा की ओर (निर्विकल्प अवस्था की ओर) रहती है और समाधि लग जाने पर वहाँ से उतरने की उसकी इच्छा नहीं होती। इसी कारण तुम लोगों के लिए उसको जबरदस्ती नीचे लाना पड़ता है। पर कोई एक-आध वासना शेष रहे बिना तो उसे नीचे नहीं ला सकते, इसी कारण 'पानी पीना है', 'अमुक से भेंट करना है' इस तरह की छोटी मोटी वासना को मन में कुछ समय तक लगातार घुमाते रहना पड़ता है, तब कहीं मन धीरे-धीरे नीचे उतरता है। कभी कभी नीचे उतरते उतरते वह बीच से ही अपने मूल पद (निर्विकल्प अवस्था) की ओर दौड़ जाता है, तब फिर किसी वासना का जप करके उसे फिर नीचे खींचना पड़ता है!"

श्रीरामकृष्ण को रक्त-आमांश होने के करीब उसी समय एक विशेष

घटना हुई। मथुरानाथ का उनके प्रति अपार भक्तिभाव और अलौकिक प्रेम तो था ही, पर इस घटना से उनकी भक्ति और प्रेम में सहस्र गुणित वृद्धि हुई। मथुरानाथ की पत्नी श्री जगदम्बा दासी को उस समय संग्रहणी रोग हो गया था। बड़े बड़े वैद्यों और डॉक्टरों की औषधि देने पर भी कुछ फायदा न होकर रोग उलटा बढ़ता ही गया और असाध्य समझा जाने लगा।

श्रीरामकृष्ण कहते थे कि मथुरानाथ रूप से सुन्दर था, पर उसका जन्म साधारण घराने में हुआ था। उसके रूप और गुण को ही देखकर रानी रासमणि ने उसे अपना दामाद बनाया था। विवाह हो जाने से उसका क्लेश दूर हो गया था और वह अपनी बुद्धि और चतुराई के कारण रानी का दाहिना हाथ बन गया था। रानी की मृत्यु के पश्चात् उसकी सारी सम्पत्ति की व्यवस्था का कार्य इसीके हाथ में था; पर अब तो जगदम्बा दासी का इस असाध्य रोग में यदि अन्त हो जाता, तो रानी की सम्पत्ति पर से उसके अधिकार उठ जाने की नौबत आ जाती। इसी कारण उसका मन इस समय बड़ा अशान्त था।

रोग असाध्य है ऐसा कहकर डॉक्टर चले गये और मथुरानाथ का कलेजा सूख गया। उन्हें घर में चैन नहीं पड़ती थी। वे एकदम दक्षिणेश्वर आये और वहाँ श्री जगदम्बा का दर्शन करके श्रीरामकृष्ण को ढूंढ़ते हुए पंचवटी के समीप आये। श्रीरामकृष्ण उस समय वहीं पर थे। उनके चेहरे को उदास देखकर श्रीरामकृष्ण ने उनसे इस उदासी का कारण पूछा। मथुरानाथ दुःख के कारण अपने को सम्भाल न सके और श्रीरामकृष्ण के पैरों में लोट गये और गद्गद होकर आँसू बहाते हुए सब बातें बतलाकर सिसकियाँ भरते हुए कहने लगे – "मेरा

जो कुछ होना है सो तो हो ही रहा है। पर बाबा! अब इसके आगे मुझे आपकी सेवा से वंचित होना पड़ेगा ऐसा दिख रहा है।" मथुरानाथ के ये दीन वचन सुनकर श्रीरामकृष्ण का हृदय पिघल गया। वे भावाविष्ट होकर उनसे बोले—"डरो मत, तुम्हारी पत्नी अच्छी हो जाएगी!" श्रीरामकृष्ण के मुख से यह अभय-वाक्य सुनकर मथुरानाथ के जी में जी आया, क्योंकि वे जानते थे कि श्रीरामकृष्ण की वाणी कभी मिथ्या नहीं होती। घर वापस आने पर उन्हें मालूम हुआ कि जगदम्बा दासी की बीमारी की अत्यन्त भयानक अवस्था दूर होकर उसके स्वास्थ्य में कुछ सुधार हो रहा है। श्रीरामकृष्ण कहते थे—"उस दिन से जगदम्बा दासी की तबीयत सुधरने लगी और उसका सब रोग (अपनी ओर उंगली दिखाते हुए) इस शरीर में आ गया! उसके अच्छे होने के बाद छः माह तक मुझको उदरशूल, रक्त-आमांश आदि रोगों की पीड़ा से व्याकुल रहना पड़ा।"

इस तरह छः महीने तक श्रीरामकृष्ण बीमार थे। हृदय सदा उनकी सेवा-शुश्रूषा में लगा रहता था। मथुरबाबू ने सुप्रसिद्ध वैद्य गंगा प्रसाद सेन से उनकी चिकित्सा शुरू कराई और उनके पथ्य आदि का उचित प्रबन्ध किया। श्रीरामकृष्ण का शरीर अपना भोग भोग रहा था, पर मन अपने दिव्यानन्द में निमग्न था। साधारण बाह्य जगत की ओर मन का झुकाव होना अभी ही प्रारम्भ हुआ था; पर उसकी स्वाभाविक गति अभी निर्विकल्प अवस्था की ओर ही दौड़ लगाने की थी। अतः किसी छोटे मोटे कारण से भी उन्हें एकदम समाधि लग जाती थी। लगभग इन्हीं दिनों दक्षिणेश्वर में संन्यासियों के दल के दल आने लगे थे। रातदिन इन संन्यासियों का वेदान्तविषयक वादविवाद

चला करता था और अपना शरीर भोग भुगतते हुए श्रीरामकृष्ण यह सब सुनते रहते थे और किसी प्रश्न का ठीक समाधान न होने पर वे उसे दो चार सरल वार्ताओं द्वारा समझाकर हल कर देते थे जिससे उन लोगों का समाधान हो जाता था और विवाद मिट जाता था।

अद्वैत भावभूमि में रहते हुए इस समय श्रीरामकृष्ण को एक तत्व का पूर्ण ज्ञान हो गया। वह तत्व यह है कि अद्वैत भाव में स्थिर होना ही सब प्रकार के साधन-भजनादि का अन्तिम ध्येय है। इसका कारण यह है कि अब तक भारतवर्ष में प्रचलित सभी धर्म-सम्प्रदायों के अनुसार साधना करने से उन्हें यह प्रत्यक्ष अनुभव हो गया था कि इनमें से किसी भी मत की साधना करने से अन्त में साधक को उसी एक अवस्था की प्राप्ति होती है, और वह एक अवस्था है अद्वैत अवस्था। इस अवस्था के सम्बन्ध में उनसे पूछने पर वे कहते थे—"वह अवस्था बिलकुल अन्तिम स्थिति है; ईश्वरप्रेम की अत्युच्च अवस्था में वह साधक को आप ही आप प्राप्त हो जाती है; सभी मतों का अन्तिम ध्येय वही अवस्था है और यह भी ध्यान रखो कि जितने मत-मतान्तर हैं उतने ही मार्ग हैं।" अस्तु—

उदरशूल और रक्त-आमांश से छः महीने तक अत्यन्त पीड़ित रहने के बाद धीरे धीरे श्रीरामकृष्ण का स्वास्थ्य सुधरने लगा और कुछ दिनों में वे पूर्ववत् हो गये। उनका स्वास्थ्य ठीक होने के थोड़े ही दिनों बाद और एक विशेष महत्व की घटना हुई। वह है गोविन्दराय नामक मुसलमानी धर्मसाधक का दक्षिणेश्वर में आगमन (सन् १८६६–६७)।

२—इस्लामधर्मसाधना और जन्मभूमिदर्शन

(१८६६–६७)

गोविन्दराय का जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ था। उन्हें अरबी और फ़ारसी भाषा का अच्छा ज्ञान था। भिन्न भिन्न धर्मों का अध्ययन करते हुए उनका ध्यान मुसलमान धर्म की ओर आकृष्ट हुआ और सब धर्मों में वही धर्म उन्हें पसन्द आया। अतः उन्होंने मुसलमान धर्म की दीक्षा ली और तभी से वे कुरान के पाठ और उसमें बताई हुई साधनाओं के अनुष्ठान में ही निमग्न रहने लगे। वे बड़े प्रेमी स्वभाव के थे। सम्भवतः वे मुसलमान धर्म में के सूफी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। उनका दक्षिणेश्वर में आने का क्या कारण था यह कहा नहीं जा सकता, पर लगभग इसी समय वे दक्षिणेश्वर आये और काली-मन्दिर के समीप की पंचवटी के नीचे उन्होंने अपना आसन जमाया। उस समय रानी रासमणि की अतिथि-शाला में हिन्दू संन्यासियों के समान मुसलमान फ़कीरों का भी प्रबन्ध कर दिया जाता था। अतः भिक्षा के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो जाने के कारण गोविन्दराय वहाँ बड़े आनन्द से दिन बिताने लगे।

प्रेमी स्वभाव वाले गोविन्दराय और श्रीरामकृष्ण की घनिष्ठता हो गई और गोविन्दराय के सरल विश्वास और ईश्वरप्रेम को देखकर श्रीरामकृष्ण उन पर बड़े मुग्ध हो गये। इस तरह श्रीरामकृष्ण का मुसल-

मान धर्म से परिचय हुआ। गोविन्दराय की संगति में कुछ दिन व्यतीत करने पर उनके मन में यह विचार आने लगा कि क्या यह भी ईश्वरप्राप्ति का ही एक मार्ग नहीं है? अनन्तलीलामयी जगदम्बा क्या इस मार्ग से भी कितने ही लोगों को अपना दर्शन देकर कृतार्थ नहीं करती? तब तो इस मार्ग से जाने वालों को वह किस रीति से कृतार्थ करती है यह अवश्य देखना चाहिये। शायद गोविन्दराय को भी वह इसी उद्देश से यहाँ लाई हो! अतः उन्हीं के पास इस मार्ग की दीक्षा लेना उचित होगा।"

मन में कोई इच्छा उत्पन्न हो और उसे वे पूर्ण न करें, ऐसा कभी नहीं हुआ। उन्होंने तुरन्त ही अपनी इच्छा गोविन्दराय के पास प्रकट की और मुसलमान धर्म की दीक्षा लेकर यथाविधि साधनाओं का प्रारम्भ भी कर दिया। श्रीरामकृष्ण कहते थे—"उस समय मैं 'अल्लाह' मंत्र का जप करता था; बिना कछोटा बांधे धोती पहनता था और तीन बार नमाज़ पढ़ता था। उन दिनों मन से हिन्दूभाव का निःशेष लोप हो गया था और हिन्दू देवी-देवताओं को प्रणाम करना तो दूर रहा उनके दर्शन करने तक की प्रवृत्ति मन में नहीं होती थी। इस रीति से तीन दिन व्यतीत करने पर मुसलमानी धर्म का अन्तिम ध्येय मुझे प्राप्त हो गया। प्रथम तो मुझे एक लम्बी दाढ़ी बढ़ाये हुए गम्भीर, भव्य और ज्योतिर्मय दिव्य पुरुष का दर्शन हुआ और बाद में मेरा मन अद्वैत भाव में लीन हो गया।"

हृदय कहते थे—"श्रीरामकृष्ण को मुसल्मान धर्म की साधना के समय खान-पान तक बिल्कुल मुसलमानों के समान करने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हुई। इतना ही नहीं, उन्हें गोमांस भी खाने की प्रबल इच्छा

हुई, परन्तु केवल मथुरबाबू के अत्यन्त आग्रह और विनती के कारण अपनी इच्छा को उन्होंने दबा दिया; परन्तु बालक स्वभाव वाले श्रीरामकृष्ण जब एक बार कोई हठ पकड़ लेते थे तो उसे पूरा करना ही पड़ता था। इस बात को जानते रहने के कारण मथुरबाबू ने एक मुसलमान रसोइए को बुलवाया और उसके निरीक्षण में एक ब्राह्मण रसोइए के द्वारा उनके लिए मुसलमानी ढंग से भोजन बनवाने का प्रबन्ध किया। उन तीन दिन में श्रीरामकृष्ण ने काली-मन्दिर के अहाते के अन्दर एक बार भी कदम नहीं रखा। अहाते के बाहर मथुरानाथ के नित्य के उतरने के स्थान में ही वे रहा करते थे।"

मुसलमान धर्मसाधना के सम्बन्ध में इतनी ही जानकारी हमें श्रीरामकृष्ण और हृदय के पास से प्राप्त हुई है। इस्लामधर्मसाधना के लिए श्रीरामकृष्ण को केवल तीन ही दिन लगे!

श्रीरामकृष्ण की बीमारी अभी ही दूर हुई थी, पर इतने ही में वर्षा के दिन आ गए। वर्षाऋतु में गंगाजी का पानी गंदला हो जाने के कारण पीने के लिए स्वच्छ पानी न मिलने से उनके पेट में कहीं फिर कुछ खराबी पैदा न हो जाए इस डर से मथुरबाबू आदि ने निश्चय किया कि श्रीरामकृष्ण कुछ दिनों तक कामारपुकूर में ही जाकर रहें। कामारपुकूर में श्रीरामकृष्ण की गृहस्थी शिव की गृहस्थी के ही समान थी यह बात मथुरबाबू और उनकी भक्तिमती पत्नी जगदम्बा दासी दोनों को ही पूर्ण रूप से विदित थी! इसीलिए वहाँ रहते समय 'बाबा' को किसी प्रकार का कष्ट न हो और उनकी सभी व्यवस्था ठीक रहे इस उद्देश से उस पुण्य दम्पति ने याद करके गृहस्थी के लिए आवश्यक सब प्रकार की सामग्री और बाबा की जरूरत की

सभी वस्तुएँ जुटाकर उनके साथ भेज दीं। शुभमुहूर्त देखकर ये लोग रवाना हुए। श्रीरामकृष्ण के साथ हृदय और ब्राह्मणी भी थी। श्रीरामकृष्ण की माता ने जन्म भर दक्षिणेश्वर में रहने का निश्चय कर लिया था। इसलिए वे उनके साथ नहीं गईं।

इसके पूर्व आठ वर्ष तक श्रीरामकृष्ण अपने गांव को गए भी नहीं थे। अतः यह स्वाभाविक ही था कि इतने वर्षों तक भेंट न होने के कारण उनके कुटुम्बी तथा सभी ग्रामनिवासी उनसे मिलने के लिए बड़े उत्सुक थे। इन आठ वर्षों में उनके कानों में श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में तरह तरह की बातें आया करती थीं; कभी तो वे स्त्रियों का वेष लेकर 'हरि हरि' करते रहते हैं और कभी 'अल्लाह अल्लाह' ही करते रहते हैं; आज 'राम राम' पुकार कर रहे हैं तो कल 'माता माता' करते हुए व्याकुल हो रहे हैं; इस प्रकार की कुछ न कुछ भिन्न भिन्न बातें हुआ करती हैं —— यही वे लोग सुना करते थे। अतः अब वे स्वयं ही यहाँ आ रहे हैं तो सच्ची अवस्था प्रत्यक्ष देखने को मिल जाएगी —— यही सोचकर उनकी भेंट के लिए लोगों में बड़ी उत्कण्ठा थी।

श्रीरामकृष्ण अपने गांव में पहुँच गए; पर लोगों को उनके पूर्व के और वर्तमान आचरण तथा स्वभाव में कोई अन्तर दिखाई नहीं दिया। वही प्रेमयुक्त विनोदी स्वभाव, वही सत्यनिष्ठा, वही धर्मपरायणता और वही ईश्वरनाम-स्मरण का उल्लास —— सब कुछ पूर्ववत् ही था। अन्तर केवल इतना ही था कि वे पहले की अपेक्षा अब अधिक अन्तर्मुखी वृत्ति से रहते थे और उनके मुख पर एक प्रकार की गम्भीरता झलकती थी जिसके कारण एकदम उनके सामने आने में

या उनसे क्षुद्र सांसारिक बातें करने में संकोच मालूम पड़ता था। पर चाहे जो हो, जब से श्रीरामकृष्ण अपने ग्राम में आकर रहने लगे तब से वहाँ पहिले के समान आनन्द का स्रोत उमड़ पड़ा। श्रीरामकृष्ण के बहुत समय के बाद आने के कारण उनके घर के लोगों ने उनकी पत्नी को भी वहाँ लिवा लाने के लिए जयरामबाटी को मनुष्य भेजा। इस सम्बन्ध में स्वयं श्रीरामकृष्ण ने अपनी सम्मति या असम्मति कुछ भी प्रकट नहीं की। विवाह के पश्चात् अब तक उनकी पत्नी ने उन्हें केवल एक ही बार देखा था। उसे सातवाँ वर्ष लगने पर, कुल की रीति के अनुसार, श्रीरामकृष्ण अपनी ससुराल में एक दिन के लिए गये थे तभी उसने उन्हें देखा था। उस समय तो वह बिलकुल छोटी थी और उस समय का उसे केवल इतना ही स्मरण था कि श्रीरामकृष्ण के आने पर उसके मन में यह भाव आया कि घर में किसी जगह छिपकर बैठ रहना चाहिए; पर वह अपनी इस इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकी; क्योंकि घर के पास एक तालाब से उस समय हृदय बहुत से कमल ले आए और उसे घर में से ढूंढकर निकाल लाए तथा उन कमलों से उसे श्रीरामकृष्ण के पादपद्मों की पूजा करनी पड़ी! इसके पश्चात् और छः वर्ष बीतने पर जब उसे तेरहवाँ वर्ष लगा तब उसे कामारपुकूर में एक मास रहने के लिए लाये थे; परन्तु उस समय श्रीरामकृष्ण और उनकी मातेश्वरी दोनों के दक्षिणेश्वर में रहने के कारण उसने उस समय उन दोनों में से किसी को भी नहीं देखा था। उसके छः मास पश्चात् वह पुनः डेढ़ मास अपनी ससुराल में कामारपुकूर में रही; परन्तु उस समय भी वैसा ही हुआ। इस कारण इसे विवाह के उपरान्त श्रीरामकृष्ण और उनकी पत्नी की पहली ही भेंट कहना अनुचित न होगा।

इस वार कामारपुकूर में श्रीरामकृष्ण छः सात महीने रहे। उनके लड़कपन के सभी मित्रगण उनके आसपास जमा हो गये और उन्हें देखकर श्रीरामकृष्ण को भी आनन्द हुआ। जैसे किसी मनुष्य को दिन भर वाहर परिश्रम करने के वाद संध्या को घर आने पर अपने लड़के-बच्चों से मिलकर आनन्द होता है वैसा ही आनन्द श्रीरामकृष्ण को आज आठ वर्ष की कठोर तपश्चर्या के वाद अपने गाँव में लौटकर हुआ; तथापि ऐहिक सुखों की नश्वरता का उन्हें अब पूर्ण ज्ञान हो गया था, इसलिए हास्यविनोद में मग्न रहते समय भी वे सदैव इसी वात पर दृष्टि रखते थे कि उनके पास आने वाले लोगों का ध्यान ईश्वर-प्राप्ति की ओर किसी तरह आकृष्ट हो! इन दिनों उनके पास सदा लोगों की भीड़ लगी रहती थी। वालक, वृद्ध, गरीब, अमीर, सभी उनके पास बैठना पसन्द करते थे। धर्मदास लाहा की भक्तिमती विधवा भगिनी प्रसन्न, उसका पुत्र और श्रीरामकृष्ण का बचपन का साथी गयाविष्णु लाहा, सरल स्वभाव वाला श्रद्धावान् श्रीनिवास शांखारी, पाईनवावू के घर की भक्तिपरायण स्त्रियाँ, श्रीरामकृष्ण की भिक्षामाता धनी—इत्यादि मण्डली सदा ही उनके पास रहा करती थी। उन लोगों की भक्ति, श्रद्धा, सरल स्वभाव आदि के सम्बन्ध की अनेक वातें श्रीरामकृष्ण हमें वताया करते थे। इन लोगों के अतिरिक्त जिन लोगों को उनके पास सदा रहना सम्भव नहीं था वे लोग भी प्रातः दोपहर या संध्या को समय मिलते ही उनके पास आकर कुछ वार्तालाप कर लिया करते थे। किसी के घर में प्रसंगवश कोई पक्वान्न वना हो तो वह उसमें से कुछ भाग अलग रखकर वड़े प्रेम और भक्ति से श्रीरामकृष्ण के लिए ला देता था।

श्रीरामकृष्ण ने स्वयं अपनी इच्छा या अनिच्छा प्रकट ही नहीं की थी। तिस पर भी जब घर के लोगों ने उनकी पत्नी को कामारपुकूर बुलवा लिया, तब उन्होंने उसे अच्छी शिक्षा देने का अपना कर्तव्य ठीक तरह से पूर्ण करने का निश्चय किया। श्रीरामकृष्ण का विवाह हो गया है यह जानकर उनके संन्यासाश्रम के गुरु श्री तोतापुरी ने उनसे एक बार कहा था—"विवाह हो जाने से क्या हुआ? स्त्री के समीप रहने पर भी जिसका त्याग, वैराग्य, विवेक, विज्ञान ज्यों का त्यों बना रहता है वही सच्चा ब्रह्मज्ञानी है और उसी में ब्रह्मज्ञान का यथार्थ प्रकाश हुआ है ऐसा समझना चाहिए। स्त्री और पुरुष के भेदभाव की कल्पना ही जिसके मन से समूल नष्ट हो गई उसी में ब्रह्मज्ञान यथार्थ में रहता है। जिसके मन से स्त्री-पुरुष के भेद की कल्पना नष्ट नहीं हुई है, उसे अभी ब्रह्मज्ञान होने में विलम्ब है ऐसा समझना चाहिए।" श्रीरामकृष्ण सोचने लगे कि इतने दिनों की तपश्चर्या को कसौटी पर कसने का अच्छा अवसर आया। साथ ही साथ उन्होंने अपनी पत्नी को योग्य शिक्षा देने का निश्चय किया।

गृहकार्य कैसे करना चाहिए—यहाँ से लगाकर लोगों का स्वभाव कैसे पहचानना, पैसे का सदुपयोग किस तरह करना, व्यवहार में किसके साथ कब कहाँ कैसा बर्ताव करना, परमेश्वर के चरणों में अपना सर्व भार समर्पण करके किस तरह रहना—इत्यादि सभी विषयों की ठीक ठीक शिक्षा अपनी पत्नी को देना उन्होंने अभी से शुरू कर दिया। इस सम्बन्ध में स्वयं माताजी जो कहती थीं उसका वर्णन प्रथम भाग में किया जा चुका है (भाग १, प्रकरण १९, विवाह और पुनरागमन)। इससे यह स्पष्ट दिखता है कि श्रीरामकृष्ण

ने इस सम्बन्ध में अपना कर्तव्य पूर्ण रूप से पालन किया। इतना ही बतला देना पर्याप्त होगा कि श्रीरामकृष्ण की इस शिक्षा के और कामगन्धहीन दिव्य प्रेम के कारण श्री माताजी की पारमार्थिक उन्नति शीघ्रता से होने लगी और वे प्रत्यक्ष निर्विकल्प समाधि की मंज़िल तक पहुँच गईं तथा श्रीरामकृष्ण को इष्ट देवता जानकर आमरण उनकी पूजा करती रहीं।

श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी को सब प्रकार की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। पर उनका यह कार्य ब्राह्मणी की समझ में नहीं आया। संन्यास दीक्षा लेते समय भी ऐसा ही हुआ था। वह समझती थी कि संन्यास लेने से श्रीरामकृष्ण का ईश्वर-प्रेम समूल नष्ट हो जायगा। उसी तरह इस समय भी उसे ऐसी भ्रमात्मक कल्पना होने लगी कि यदि श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी से अधिक सम्बन्ध रखा तो उनके ब्रह्मचर्य को क्षति पहुँचेगी; यह बात उसने श्रीरामकृष्ण से कह भी दी। परन्तु इस बार भी श्रीरामकृष्ण ने पहिले के समान ही उसके कहने की ओर ध्यान नहीं दिया। इस पर से उसे उन पर क्रोध भी आया और आगे चलकर उसे कुछ अभिमान आ जाने पर कुछ समय तक श्रीरामकृष्ण पर से उसकी श्रद्धा कुछ उठ सी भी गई थी। हृदय कहते थे कि उसका यह भाव कभी कभी स्पष्ट दिखाई भी पड़ता था। उदाहरणार्थ — किसी आध्यात्मिक विषय की चर्चा उसके पास निकालकर यदि कोई कहे कि 'इस विषय के बारे में श्रीरामकृष्ण का मत क्या है, सो जानना चाहिए' तब इस पर से वह क्रुद्ध होकर कह बैठती थी — "वह और अधिक क्या बता सकेगा? उसको भी ज्ञान देने वाली तो मैं ही हूँ न?" अथवा कभी कभी वह किसी छोटी सी

बात पर से या विना कारण ही घर की स्त्रियों पर व्यर्थ नाराज़ हो जाती थी। पर श्रीरामकृष्ण उसकी इन बातों की ओर ध्यान ही नहीं देते थे और उसके प्रति अपना प्रेमपूर्ण और भक्तियुक्त वर्ताव उन्होंने पूर्ववत् जारी रखा। श्रीरामकृष्ण के उपदेश के अनुसार माताजी ब्राह्मणी को अपनी सास के समान मानती थीं, उनका मान करती थीं और आज्ञापालन करती थीं।

क्रोधाद्भवति संमोहः
संमोहात्स्मृतिविभ्रमः
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशः—

यही अवस्था ब्राह्मणी की उस समय होने लगी। कहाँ कैसा वर्ताव करना यह भी कभी कभी उसकी समझ में ठीक ठीक नहीं आता था। कामारपुकूर जैसे छोटे से गांव में समाज-बन्धन में शिथिलता न रहने के कारण किसी मनुष्य को उसका उद्देश चाहे कितना भी अच्छा और शुद्ध क्यों न हो —इच्छानुसार वर्ताव करने की स्वतंत्रता नहीं रहती है। पर इस बात को भूलकर वह इन्हीं दिनों एक बार बड़े झगड़े में पड़ गई थी।

श्रीनिवास शांखारी का इसके पूर्व ही उल्लेख हो चुका है। उसकी जाति यद्यपि उच्च नहीं थी तथापि ईश्वर-भक्ति में वह बहुतेरे ब्राह्मणों से श्रेष्ठ था। एक दिन वह श्रीरामकृष्ण के यहाँ भोजन करने के लिए आया था। दोपहर तक भक्तिविषयक अनेक वार्ताएँ होती रहीं। स्वयं ब्राह्मणी को भी उसकी भक्ति और विश्वास को देखकर बड़ा सन्तोष हुआ। श्रीनिवास भोजन करने के बाद गाँव के रिवाज के अनुसार अपनी जूठन साफ करने लगा, परन्तु ब्राह्मणी उसको रोकने लगी।

वह बोली —"तू आराम से बैठ, मैं तेरी जूठन साफ कर देती हूँ।" ब्राह्मणी के सामने वह बेचारा कुछ बोल न सका और बिना जूठन साफ किए ही अपने घर चला गया। श्रीनिवास की जूठन ब्राह्मणी साफ करने वाली है यह समाचार स्त्री-समाज में पहुँचा और उनमें इस विषय पर विवाद होने लगा। आसपास की बहुत सी स्त्रियाँ जुट गईं और विवाद उग्र रूप धारण करने लगा। यह बात हृदय के कान तक पहुँची और "इस विवाद का परिणाम बुरा होगा, आप उसकी जूठन मत साफ करिये" कहकर उन्होंने बारम्बार ब्राह्मणी को समझाया पर उसने अपना हठ न छोड़ा। हृदय को भी बहुत क्रोध आया और उनका और ब्राह्मणी का झगड़ा शुरू हो गया। अन्त में उन्होंने कहा कि "यदि तुमको अपना ही हठ कायम रखना है तो मैं तुमको इस घर में न रहने दूँगा।" ब्राह्मणी ने भी उत्तर दिया—"नहीं रहने दोगे तो न सही, तेरे घर के भरोसे मैं थोड़े ही हूँ। उसके बिना मेरा कोई काम नहीं रुक सकता। शीतला का मन्दिर तो मेरे लिए कहीं नहीं गया है। मैं वहीं जाकर रह जाऊंगी—समझा?" बात जब इस हद तक पहुँच गई तब घर के सभी लोगों ने बीच में पड़कर ब्राह्मणी को किसी प्रकार समझा बुझाकर इस झगड़े को मिटाया।

ब्राह्मणी चुप तो रह गई पर यह बात उसके अन्तःकरण में चुभ गई। क्रोध का वेग उतर जाने पर इस घटना का उसने शान्तिपूर्वक अपने मन में विचार किया और उसे यह निश्चय हो गया कि जो कुछ हुआ सो ठीक नहीं था। उसने यह सोचा कि इतना झगड़ा हो जाने के बाद आपस में मन इतना कुलषित हो गया है कि अब यहाँ रहना उचित नहीं है। उसी तरह उसने इस पर भी विचार किया कि श्रीराम-

कृष्ण के प्रति मेरे मन में प्रेम और भक्ति कम क्यों हो रही है— उसका मुख्य कारण क्या है? तब इसका कारण उसके ध्यान में आजाने पर वह स्वयं अपने ऊपर क्रुद्ध हुई और अपने अनुचित आचरण के लिए उसे बहुत पश्चात्ताप हुआ।

तदनन्तर थोड़े दिनों के बाद उसने एक दिन श्रीरामकृष्ण की श्रीगौरांगभाव से अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजा की और अपने सब अपराधों के लिए उनसे क्षमा माँगकर वहाँ से जाने की अनुमति प्राप्त की। इस तरह श्रीरामकृष्ण की दिव्य संगति में छः वर्ष बिताकर भैरवी ब्राह्मणी काशी के लिए रवाना हुई।

इस प्रकार छः सात महीने कामारपुकूर में रहकर श्रीरामकृष्ण सन् १८६७ के अक्टूबर-नवम्बर मास में दक्षिणेश्वर वापस आये। उसके थोड़े ही दिनों के बाद उनके जीवन में और एक विशेष घटना हुई। वह है उनकी तीर्थयात्रा जिसका वर्णन अगले अध्याय में किया जाएगा।

---

३ – श्रीरामकृष्ण की तीर्थयात्रा

(सन् १८६८)

"जिसके हृदय में भक्तिभाव रहता है, वह यदि तीर्थयात्रा करने जाता है, तो उसका वह भाव और अधिक बढ़ जाता है। जिसके हृदय में भक्तिभाव है ही नहीं, उसे तीर्थयात्रा से कोई लाभ नहीं होता।"

"देवस्थान और तीर्थों के दर्शन के पश्चात् उन्हीं भावों का बारम्बार मनन करना, और पुनः पुनः स्मरण करना चाहिए।"

"मथुरबाबू ने तीर्थयात्रा में एक लाख रुपये से अधिक खर्च किया।"

—श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण के जीवन-चरित्र की सामान्य बातें भी सूक्ष्म रीति से विचार करने पर अर्थपूर्ण दिखाई देती हैं। उनमें से एक भी उद्देश-रहित नहीं मालूम पड़ती। तब फिर बड़ी बातों के सम्बन्ध में कहना ही क्या है! श्रीरामकृष्ण की तीर्थयात्रा उनके जीवन का एक विशेष प्रसंग है। अतः उनकी तीर्थयात्रा में कौन सा गूढ़ अर्थ भरा हुआ है इसका यहाँ कुछ विचार करना उपयुक्त होगा।

श्रीरामकृष्ण के दिव्य ईश्वर-प्रेम, अलौकिक चरित्र, अपूर्व और उदार आध्यात्मिक उपलब्धि और शक्तिसंचय का सारे संसार में विस्तार होना तथा प्रभाव पड़ना उनके साधनाकाल से ही प्रारम्भ हो गया था। हम देख चुके हैं कि जिस समय श्रीरामकृष्ण किसी भाव में सिद्ध हो जाते थे उस समय उस भाव के अनेक साधक उनके पास आया करते थे और उनमें अपने विशिष्ट भाव का पूर्णादर्श देखकर उनसे अपनी

साधना में सहायता प्राप्त करके वहाँ से चले जाते थे। इस साधनाकाल के बाद उनकी अलौकिक दैवी शक्ति का विस्तार उनकी तीर्थयात्रा के समय हुआ। उस समय भी श्रीरामकृष्ण के अनेक तीर्थों में पहुँचने पर वहाँ के साधकों पर उनके आध्यात्मिक शक्तिसंचय का परिणाम होता था। अतः ऐसा मालूम पड़ता है कि भिन्न भिन्न स्थानों के यथार्थ साधकों के सामने भावों का पूर्ण आदर्श उपस्थित करना भी सम्भवतः इस तीर्थयात्रा का उद्देश रहा हो।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि "चौसर की गोट जब सभी घरों में घूम चुकती है तभी वह अपने घर में पककर विश्राम करती है। बिल्कुल हलके दर्जे के मनुष्य से लेकर सार्वभौम सम्राट तक के संसार के दर्जे के लोगों की अवस्था देखने, सुनने और उसका अनुभव प्राप्त कर लेने पर ही जब मन की यह दृढ़ धारणा हो जाती है कि यह सब कुछ तुच्छ और असार है, तभी साधक परमहंस पद को प्राप्त करता है और यथार्थ ज्ञानी बनता है।" यह तो हुई साधारण साधकों की स्वयं की उन्नति की बात। अब जिसे जगद्गुरु होना है उसे और कितना अधिक परिश्रम करना पड़ता होगा? इसके सम्बन्ध में श्रीराम-कृष्ण कहा करते थे—"आत्महत्या करने के लिए एक सुई भी बस होती है, पर जब दूसरे को मारना है तो ढाल तलवार आदि सभी शस्त्र चाहिए!" यही बात जगद्गुरु होने वाले पर लागू होती है। उसे सब प्रकार की आध्यात्मिक अवस्थाओं की पूरी जानकारी हो तभी वह दूसरों के संशयों का निवारण करके उन्हें योग्य मार्ग दिखा सकता है। इसके लिए उसे पूर्व के अवतारों और आचार्यों द्वारा प्रदर्शित उन्नति के मार्गों को यथार्थ रूप से जानना पड़ता है। लोग उनके

अनुसार चलते हैं या नहीं, और यदि नहीं चलते हैं तो उसका कारण खोजकर उसे आधुनिक काल के लिए उचित मार्ग ढूँढ़ना पड़ता है; इसीलिए इस युग के अवतार श्रीरामकृष्ण के लिए यह जानना आवश्यक था कि देश की आध्यात्मिक स्थिति उस समय कैसी थी। तीर्थयात्रा से उनका यह कार्य बहुत कुछ सिद्ध हो गया।

शास्त्रीय दृष्टि से देखने से उनकी यात्रा का एक कारण और दिखाई देता है। शास्त्रों का कहना है कि ईश्वर-दर्शन करके जो पुरुष धन्य हो गये हैं उन महापुरुषों के आगमन से तीर्थों का तीर्थत्व स्थिर रहता है। ऐसे महापुरुष उस स्थान में ईश्वर का किसी विशेष प्रकार से दर्शन करने के लिए व्याकुल होकर आते हैं और वहाँ रहते हैं; इसलिए वहाँ नये नये ईश्वरी भाव उत्पन्न हुआ करते हैं या पहिले से रहनेवाले भाव ही अधिक जागृत हो जाते हैं। ऐसे स्थानों में जब साधारण मनुष्य जाते हैं, तो उन पर वहाँ के उन ईश्वरी भावों का कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता ही है। यद्यपि वर्तमान विषय से तीर्थों का प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, तो भी तीर्थों के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण क्या कहा करते थे यह यहाँ पर बता देना विषयान्तर नहीं होगा। वे कहा करते थे — "ईश्वर के दर्शन के लिए व्याकुल होकर जिस स्थान में अनेक साधक जप, तप, अनुष्ठान आदि करते आए हैं उस स्थान में यह निश्चय जानो कि ईश्वर का प्रकाश अवश्य ही है। उस स्थान में साधकों की प्रबलता के कारण ईश्वरी भावना एकत्रित होकर उसके संयोग से वहाँ का वातावरण भी ईश्वरमय हो जाता है! अतः ऐसे स्थानों में साधकों का ईश्वरी भाव तुरन्त जागृत हो जाता है। ईश्वर का दर्शन करने के उद्देश से उस स्थान में पुरातनकाल से कितने ही

साधु, भक्त और सिद्ध पुरुष जा चुकते हैं। ये लोग सारी वासनाओं का त्याग करके उस स्थान में एकाग्रचित्त हो ईश्वर की भक्ति कर चुकते हैं। अतः यद्यपि अन्य सभी स्थानों में ईश्वर समान रूप से व्याप्त है, तथापि ऐसे स्थानों में उसका अधिक अंश प्रकाशित रहता है। पानी की आवश्यकता होने से पृथ्वी जहाँ पर खोदी जाती है वहीं पानी मिल जाता है; पर तो भी जहाँ पर कुआँ, बावली, तालाब या सरोवर हैं वहाँ तो ज़मीन को खोदने की भी जरूरत नहीं है; थोड़ा हाथ नीचा करते ही पानी मिल जाता है।"—वैसे ही "ईश्वर के विशेष प्रकाश से संयुक्त इन तीर्थों के दर्शन के बाद वहाँ के भावों का चर्वण तथा मनन करते रहना चाहिए" ऐसा श्रीरामकृष्ण कहते थे। वे यह भी कहते थे कि—"जैसे गाय बैल पहले इधर उधर घूमकर बहुतसा खा लेते हैं और बाद में एक स्थान में निश्चिन्त बैठकर उस खाए हुए पदार्थ को पुनः मुँह में लाकर जुगाली करते हैं उसी तरह देवस्थान, तीर्थस्थान आदि का दर्शन करने से मन में जो पवित्र भावनाएँ उत्पन्न होती हैं उन पर निश्चिन्त होकर एकान्त में बैठकर पुनः पुनः विचार करना चाहिए, उन्हीं में विलीन होना चाहिए। ऐसा न करके यदि घर लौटने पर उन भावनाओं को भूलकर पुनः उसी चक्कर में पड़ गए और संसार के प्रपंचमय विचारों में ही मन को दौड़ाते रहे तो इन देवस्थानों और तीर्थों के दर्शन से क्या लाभ हुआ? ऐसी अवस्था में वे ईश्वरी भावनाएँ मन में कैसे स्थिर रह सकती हैं?

एक समय की बात है कि श्रीरामकृष्ण के साथ कालीघाट पर श्री जगदम्बा के दर्शन के लिए बहुत सा शिष्य-समुदाय गया था।

वहाँ से वापस आते समय उनमें एक की ससुराल रास्ते में ही पड़ने के कारण वह वहाँ गया और वहाँ के लोगों के आग्रह करने पर रात को वहीं रह गया। दूसरे दिन जब वह श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए पहुँचा तब उन्होंने उससे पूछा—"तू रात को कहाँ था?" उसके सब वृत्तान्त बताने पर श्रीरामकृष्ण बोले—"अरे यह क्या किया? जगदम्बा का दर्शन करके आया था तो उसी के चिन्तन में मग्न होकर उसी का निदिध्यास करना था। सो तूने उसे तो छोड़ दिया और किसी विषयी मनुष्य के समान रात भर ससुराल में जाकर रहा; क्या कहा जाय तुझको? देवदर्शन करने के बाद उस समय उत्पन्न होने वाली पवित्र भावनाओं का बारम्बार सतत मनन न किया जाय तो वे भावनाएँ मन में स्थिर कैसे रहेंगी?" अस्तु—

श्रीरामकृष्ण की इस तीर्थयात्रा में ये ही भिन्न भिन्न उद्देश दिखाई देते हैं।

कामारपुकूर से श्रीरामकृष्ण के लौटने के बाद मथुरानाथ को तीर्थयात्रा करने की इच्छा हुई। माघ के महीने में प्रस्थान करने का मुहूर्त निश्चित हुआ। मथुरानाथ के कुलगुरु के पुत्र को साथ ले जाना तय हुआ। सब योजना निश्चित हो जाने पर मथुरबाबू ने श्रीरामकृष्ण से अपने साथ चलने के लिए विनती की। श्रीरामकृष्ण ने भी—अपनी वृद्धा माता और हृदय यदि साथ चलते हों तो—अपनी स्वीकृति दे दी। उन दोनों ने भी जाना स्वीकार किया और श्रीरामकृष्ण का मथुरबाबू के साथ चलना निश्चित हो गया। श्रीरामकृष्ण का साथ मिल जाने से मथुरबाबू को बड़ा आनन्द हुआ और वे यात्रा की सभी तैयारी बड़ी शीघ्रता और उत्साह के साथ करने लगे।

सब तैयारी हो जाने पर सब लोग यात्रा के लिए चले। मथुरानाथ के साथ उनकी पत्नी, श्रीरामकृष्ण और उनकी माता, हृदय, मथुरानाथ का गुरुपुत्र, कामदार, मुंशी, रसोइया, पानीवाला और अन्य नौकर चाकर सब मिलकर लगभग १२५ आदमी थे। एक सेकंड क्लास का डब्बा और तीन थर्डक्लास के डब्बे रिजर्व कराए गए और रेलवे कम्पनी से यह तय कर लिया गया कि कलकत्ते से काशी तक रास्ते में किसी भी स्टेशन पर ये डब्बे अलग करके खड़े रखे जा सकेंगे।

सबसे पहले यह मण्डली वैद्यनाथ के दर्शन के लिए गई और वहाँ कुछ दिन रुकी रही। इस क्षेत्र के समीप एक छोटे से गांव में लोगों की दीन हीन दशा देखकर श्रीरामकृष्ण ने मथुरबाबू से उन सभी को एक दिन पेट भर भोजन और प्रत्येक को एक एक वस्त्र दिलाया —यह वृत्तान्त "श्रीरामकृष्ण और मथुरबाबू—" शीर्षक प्रकरण में बता चुके हैं (भाग १, प्रकरण १६)।

वैद्यनाथ से ये लोग सीधे काशी आए। मार्ग में कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। सिर्फ़ काशी के पास के एक स्टेशन पर एक मज़ेदार बात हुई। स्टेशन पर गाड़ी खड़ी हुई और हृदय तथा श्रीरामकृष्ण गाड़ी छुटने के लिए कुछ विलम्ब देखकर स्टेशन के बाहर इधर उधर टहल रहे थे। इधर गाड़ी का समय हो गया और वह छुट गई। ये दोनों वहीं रह गये। मथुरबाबू अगले स्टेशन में देखते हैं तो गाड़ी में श्रीरामकृष्ण और हृदय नहीं हैं! तब एकाएक उनके ध्यान में आया कि पिछले स्टेशन पर ये दोनों उतरे थे, शायद ये वहीं रह गये होंगे। अब क्या करना चाहिए यह चिन्ता उन्हें होने लगी, परन्तु हृदय श्रीरामकृष्ण के साथ है यह सोचकर उनकी चिन्ता कुछ कम हुई। उन्होंने

तुरन्त पिछले स्टेशन के स्टेशन मास्टर को तार भेजा कि अब जो गाड़ी आवे उसमें उन दोनों को बिठाकर भेज दें; परन्तु इधर श्रीरामकृष्ण को अधिक समय तक रुकना नहीं पड़ा। राजेन्द्रलाल बंद्योपाध्याय नामक एक रेलवे के अधिकारी स्पेशल गाड़ी से काशी जा रहे थे। उनकी गाड़ी थोड़े ही समय में वहाँ आई और वे उन दोनों को अपनी गाड़ी में बिठाकर काशी ले आए।

काशी में मथुरबाबू ने केदारघाट के पास दो बड़े बड़े घर किराये पर लिए। काशी में मथुरबाबू का ठाटबाट किसी राजा से कम नहीं रहता था। बाहर जाते समय एक नौकर उन पर चांदी का छत्र लेकर चलता था और आगे पीछे भालदार चोबदार चांदी का डंडा लेकर चलते थे।

काशी पहुँचने के दिन से मथुरबाबू ने पण्डित, विद्वान्, संन्यासी आदि लोगों के लिए अन्नदान शुरू कर दिया था। एक दिन उन्होंने मुक्तद्वार भोजन भी कराया और भोजन के लिए आने वाले प्रत्येक मनुष्य को एक एक वस्त्र और एक एक रुपया दक्षिणा दिया। उसी प्रकार वृंदावन आदि की यात्रा से लौटने पर उन्होंने श्रीरामकृष्ण के आदेश से एक दिन 'कल्पतरु' बनकर माँगने वालों की इच्छा के अनुसार नित्य व्यवहार की वस्तुओं का दान दिया। मधुकरी बाँटते समय लेने वालों में लड़ाई झगड़े हो जाते थे और कभी कभी मारपीट तक हो जाती थी। अन्य स्थानों के समान ऐसी बात काशी जैसे क्षेत्र में और वह भी मधुकरी लेने के लिए आए हुए ब्राह्मणों में होते देख श्रीरामकृष्ण को बुरा लगा और वहाँ के रहने वाले लोग भी ऐसे काम-कांचनासक्त हैं, यह देखकर उनके सरल हृदय को बड़ा दुःख हुआ। उनकी आँखें

डवडवा गईं और वे बोल उठे—"माता! तू मुझे यहाँ क्यों लाई, इसकी अपेक्षा मेरा दक्षिणेश्वर में ही रहना क्या बुरा था?"

श्रीरामकृष्ण बारम्बार कहा करते थे कि ईश्वरी भाव मन में न रखते हुए तीर्थों की यात्रा करने से या तीर्थों में निवास करने पर भी कोई फलप्राप्ति नहीं होती। किसी की तीर्थयात्रा करने की इच्छा का समाचार जानने पर वे कहते थे, "अरे भाई! जिसमें यहाँ भक्ति है उसे वहाँ भी भक्ति मिलेगी और जिसमें यहाँ भक्ति नहीं है उसे वहाँ भी नहीं मिल सकती।" वे यह भी कहते थे कि "जिसके हृदय में भक्तिभाव है वह यदि तीर्थ जावे तो उसका भक्तिभाव अधिक बढ़ जाता है, पर जिसके हृदय में भक्तिभाव नाम को नहीं है उसे तीर्थयात्रा से कोई लाभ नहीं हो सकता। कई वार सुनते हैं कि अमुक का लड़का भागकर काशी चला गया है; बाद में समाचार मिलता है कि उसने खटपट करके वहाँ नौकरी ढूंढ़ ली है और उसके पास से घर में हर महीने पैसे भी आते हैं! तीर्थों में रहने के लिए लोग जाते हैं और वहाँ जाकर दूकान खोलकर रोज़गार भी करने लग जाते हैं! इस तरह कहीं भक्ति मिला करती है? यह तो हुई आत्मवंचना! मथुरबाबू के साथ काशी गया तो वहाँ क्या देखा? जो यहाँ, वही वहाँ। यहाँ जैसे आमों की अमराई, इमली के पेड़, बाँस के पेड़ों के झुण्ड हैं वैसे ही वहाँ भी। यह सब देखकर मैं हृदय से बोला—"क्यों रे हृदू! हमने यहाँ आकर नई कौन सी बात देखी? हाँ, घाट पर की विष्टा को देखकर इतना तो अवश्य जान गए कि यहाँ के लोगों की पाचनशक्ति हमारी अपेक्षा बड़ी ज़बरदस्त है!"

काशी में रहते तक श्रीरामकृष्ण प्रतिदिन पालकी में बैठकर श्री

विश्वनाथ के दर्शन के लिए जाते थे। हृदय सदा उनके साथ रहते थे। जाते जाते मार्ग में ही श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो जाते थे। देव-दर्शन के समय का तो कहना ही क्या है? सभी देवताओं के दर्शन करते समय उनकी यही दशा हो जाती थी, पर तो भी श्री केदारनाथ के दर्शन के समय उन्हें विशेष भावावेश हो जाता था।

देवताओं के सिवाय साधुसन्तों के दर्शन के लिए भी वे जाया करते थे। उस समय भी हृदय उनके साथ रहते थे। श्री परमहंस त्रैलिङ्ग-स्वामी के दर्शन के लिए वे कई वार गए थे। श्री त्रैलिङ्गस्वामी उन दिनों मणिकर्णिका घाट पर मौनवृत्ति होकर रहते थे। प्रथम दर्शन के दिन स्वामीजी ने अपनी नास की डब्बी श्रीरामकृष्ण के आगे रखकर उनका स्वागत किया। श्रीरामकृष्ण ने उनके शरीर पर के सब लक्षणों को वारीकी के साथ देखकर हृदय से कहा — "हृदू, इनमें यथार्थ परमहंस के सभी लक्षण दिखाई देते हैं; ये साक्षात् विश्वेश्वर हैं!" मणिकर्णिका घाट के समीप एक घाट बनाने का संकल्प स्वामीजी ने उस समय किया था। श्रीरामकृष्ण के कहने से हृदय ने कई टोकनी मिट्टी वहाँ डालकर उस कार्य में सहायता पहुँचाई। श्रीरामकृष्ण ने एक दिन स्वामीजी को अपने घर बुलाकर अपने हाथ से भोजन कराया।

त्रैलङ्गस्वामी के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण हमें कई वार कुछ कुछ बातें बताया करते थे। वे कहते थे — "ऐसा दिखता था कि साक्षात् विश्वेश्वर उनके शरीर का आश्रय लेकर निवास कर रहे हैं। उनके कारण समस्त काशी उज्ज्वल हो गई है। ज्ञान की अत्यन्त उच्च अवस्था उन्हें प्राप्त थी। शरीर की ओर उनका ध्यान विलकुल नहीं था। प्रखर धूप के कारण नदी के किनारे की वालू इतनी तप्त हो जाती थी कि

उस पर नंगे पैर चार कदम भी चलना कठिन था, पर वे वहाँ उस पर आनन्द से लेटते थे। उस समय वे बोलते नहीं थे। मैंने उनसे इशारे से पूछा, "ईश्वर एक है या अनेक?" उन्होंने इशारे से ही उत्तर दिया—"समाधिस्थ होकर देखो तो एक है; अन्यथा जब तक मैं, तू, जीव, जगत् इत्यादि नाना प्रकार के ज्ञान शेष हैं, तब तक अनेक है!" अस्तु—

अन्य स्थानों के ही समान काशी में भी संसारासक्त लोग हैं यह देखकर श्रीरामकृष्ण को क्लेश होता था। तथापि वहाँ उन्हें अनेक अद्भुत दर्शन हुए और शिव-महिमा और काशी-माहात्म्य के सम्बन्ध में उनकी धारणा दृढ़ हो गई। नौका में बैठकर वाराणसी में प्रवेश करने के समय से ही भावावेश में श्रीरामकृष्ण को दिखने लगा था कि काशी सचमुच सोने की है; वहाँ पत्थर मिट्टी आदि सब सोने के ही हैं। प्राचीन काल से साधु संत महात्मा लोगों के हृदय के भीतर की कांचन-तुल्य और अमूल्य भावराशियों की काशी में तह पर तह जमकर उनकी राशि बन गई है। वह ज्योतिर्मयी भावघन मूर्ति ही काशी का नित्य और सत्य स्वरूप है। बाह्यदृष्टि से दिखने वाला स्वरूप उसकी छाया मात्र है। भावावस्था में काशी को स्वर्णमयी देख चुकने के कारण बाल-स्वभाव वाले सरलहृदय श्रीरामकृष्ण यह सोचते थे कि काशी की सीमा के भीतर शौच आदि करने से स्वर्ण अपवित्र हो जाएगा। इस कारण उन्हें यह विधि काशी में करने में बड़ा संकोच होता था। स्वयं उनके मुँह से हमने सुना है कि इसी कारण उन्हें शौचादि विधि करने के लिए वाराणसी की सीमा के बाहर ले जाने के लिए मथुरबाबू ने पालकी का प्रबन्ध कर रखा था। कुछ दिनों तक श्रीरामकृष्ण वाराणसी की

सीमा के बाहर जाकर यह विधि निपटाते थे; पर बाद में इस भाव की तीव्रता कम हो जाने पर सीमा के बाहर जाना उन्होंने बन्द कर दिया।

श्रीरामकृष्ण के ही मुँह से ऐसा सुना गया है कि काशी में रहते हुए उन्हें एक विशेष प्रकार का दर्शन हुआ था। मणिकर्णिका आदि पंचतीर्थों की यात्रा कोई कोई नौका में बैठकर करते हैं। मथुरबाबू ने भी यह यात्रा श्रीरामकृष्ण को अपने साथ लेकर नौका द्वारा ही की। मणिकर्णिका के पास ही काशी क्षेत्र की मुख्य श्मशान-भूमि है। मथुर-बाबू की नौका मणिकर्णिका घाट के सामने आई। उस समय सारा श्मशान चिताओं से भर गया था और वहाँ अनेक मृतशरीर जल रहे थे। भावमय श्रीरामकृष्ण की दृष्टि सहज ही उस ओर गई और उसी समय वे बाहर की ओर दौड़ते हुए नौका के बिलकुल किनारे पर समाधिमग्न हो गये। अब वे नदी में गिरने ही वाले हैं यह समझकर मथुरबाबू का पण्डा और नौका के मल्लाह उन्हें पकड़कर सम्हालने के लिए दौड़े, पर ऐसा करने की कोई ज़रूरत नहीं पड़ी। श्रीरामकृष्ण वहीं पर स्थिर खड़े रहे। उनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज झलक रहा था और मंद हास्य की छटा भी फैली हुई थी। दौड़कर आए हुए लोग उस अपूर्व तेजःपुञ्ज मुखमण्डल को देखकर अवाक् हो दूर खड़े रह गये और उनका हृदय भक्तिभाव से भर गया। बहुत समय के बाद श्रीराम-कृष्ण की समाधि उतरी। तब नौका को मणिकर्णिका घाट में लगाकर सब लोग स्नान आदि करने में लग गए।

कुछ समय के बाद श्रीरामकृष्ण अपनी हाल की समाधि में देखे हुए दर्शन के सम्बन्ध में मथुरबाबू आदि को बताने लगे। वे बोले — "मुझे ऐसा दिखाई दिया कि एक भूरे रंग की जटाओं वाला श्वेत वर्ण

का ऊँचा और भव्य पुरुष अत्यन्त शान्त और गम्भीर चाल से स्मशान की हर एक चिता के पास जाता है और उस पर के मृतशरीर को कुछ ऊपर उठाकर उसके कान में प्रणव मन्त्र का उच्चारण करता है। स्वयं सर्वशक्तिमयी श्री जगदम्बा भी महाकाली के रूप में चिता पर के उस जीव के पास दूसरी ओर बैठकर उसके स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि सब प्रकार के संस्कार-बन्धनों को तोड़कर, मोक्ष (निर्वाण पद) का द्वार खोलकर, अपने हाथों से अखण्ड के घर में उसका प्रवेश करा रही हैं। इस प्रकार अनेक जन्मों की योग-तपस्या से जो अद्वैतानुभव का भूमानन्द जीव को प्राप्त हुआ करता है, वही काशी में देह त्यागने वाले प्रत्येक जीव को देकर श्री विश्वनाथ उसे कृतार्थ कर रहे हैं।"

मथुरबाबू के साथ जो शास्त्रज्ञ पण्डित थे, वे श्रीरामकृष्ण के इस अद्भुत दर्शन का वृत्तान्त सुनकर कहने लगे—"काशी-खण्ड में केवल इतना ही बताया गया है कि काशी में मृत्यु होने पर श्री विश्वनाथ उस जीव को निर्वाण-पद प्राप्त करा देते हैं, परन्तु वह किस तरह प्राप्त होता है, इसका वर्णन कहीं नहीं है। आपके इस दर्शन से वह समस्या हल हो गई। आपके दर्शन और साक्षात्कार शास्त्रों के भी आगे बढ़ गए हैं।"

हृदय कहता था कि काशी में भैरवी ब्राह्मणी और उनकी पुनः भेंट हुई और जब तक वे काशी में रहे तब तक उसके यहाँ सदा आया जाया करते थे। काशी में 'चौंसठ योगिनी' नामक गली में 'मोक्षदा' नाम की एक स्त्री के यहाँ वह ब्राह्मणी रहती थी। मोक्षदा की ईश्वरभक्ति देखकर श्रीरामकृष्ण को बड़ा आनन्द हुआ। ब्राह्मणी श्रीरामकृष्ण के साथ वृन्दावन-यात्रा के लिए गई और श्रीरामकृष्ण के

कहने से वहीं रहने लगी। वृन्दावन से श्रीरामकृष्ण के लौट आने के थोड़े ही दिनों बाद वृन्दावन में ब्राह्मणी का देहान्त हो गया। अस्तु —

काशी में ५-७ दिन रहकर ये लोग प्रयाग गए और वहाँ तीन दिन रहे। मथुर आदि ने वहाँ यथाविधि क्षौर कराया, पर श्रीरामकृष्ण ने नहीं कराया। वे बोले—"मुझे क्षौर कराने की आवश्यकता नहीं मालूम होती।" प्रयाग से ये लोग पुनः काशी आए और वहाँ १५ दिन रहकर श्री वृन्दावन की यात्रा के लिए रवाना हुए।

वृन्दावन में निधुवन के समीप एक मकान में ये लोग उतरे। यहाँ भी मथुरबाबू काशी के समान ही बड़े ठाटबाट और ऐश्वर्य के साथ रहते थे। यहाँ रहते समय सभी लोगों के साथ उन्होंने सब देवस्थानों का दर्शन किया। हर एक स्थान में मूर्ति के सामने उन्होंने मोहर भेंट की। निधुवन के सिवाय यहाँ पर श्रीरामकृष्ण ने राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड और गोवर्धन पर्वत का दर्शन किया। गोवर्धन पर्वत पर तो वे भावाविष्ट हो चढ़ गये। वृन्दावन में रहते समय भी किसी साधक या भक्त का नाम सुनते ही वे उसके दर्शन के लिए पहुँच जाते थे। श्रीरामकृष्ण के लिए देव-दर्शन या साधु-सन्तों के दर्शन के लिए जाने के लिए मथुरबाबू ने पालकी की व्यवस्था कर दी थी। हृदय सदा साथ रहते ही थे। देवमूर्ति के सामने चढ़ाने के लिए और रास्ते में भिक्षार्थियों को दान देने के लिए पालकी में एक ओर एक कपड़ा बिछाकर उस पर मथुरबाबू रुपये, अठन्नी, चौअन्नी, दोअन्नी की ढेरियाँ रख दिया करते थे। इन सब स्थानों में जाते समय श्रीरामकृष्ण भावावेश में इतने विह्वल हो जाया करते थे कि उन ढेरियों में से एक एक सिक्का उठाकर अलग अलग दान करना उनके लिए असम्भव हो जाता था। परिणाम यह

होता था कि भिखारियों की भीड़ जमा हो जाती थी और वे कपड़े का एक छोर खींचकर सभी सिक्के नीचे गिरा देते थे।

बांके विहारी श्रीकृष्ण के दर्शन करते समय श्रीरामकृष्ण को अद्भुत भावावेश हो आया और वे एकाएक मूर्ति को आलिंगन करने के लिए दौड़ पड़े। वैसे ही एक दिन सन्ध्या समय गोपों के बालक जंगल से गाय चराकर लौट रहे थे। उसी झुण्ड में श्रीरामकृष्ण को गोपालकृष्ण का दर्शन हुआ और वे प्रेम से तन्मय होकर गहरी समाधि में मग्न हो गए। वृन्दावन की अपेक्षा उन्हें व्रज अधिक प्रिय लगा और वहाँ उन्हें श्रीकृष्ण और राधा के अनेक रूपों का दर्शन हुआ।

व्रज में रहते समय उन्होंने अनेक वैराग्यसम्पन्न साधकों को छोटी छोटी कुटियों के दरवाजों पर एकाग्र चित्त होकर जप-ध्यान में निमग्न रहते हुए देखा। व्रज का स्वाभाविक सृष्टि-सौन्दर्य, फलफूलों से सुशोभित छोटासा गोवर्धनगिरि, वन में निःसंकोच स्वैर संचार करने वाले मयूर और मृग, जपध्यानादि में निमग्न रहने वाले साधु-सन्त और सरल स्वभाव के व्रजवासियों को देखकर वे व्रज पर बहुत प्यार करने लगे। इतने पर भी तपस्विनी गंगा माता के दर्शन और उसका सत्संग प्राप्त हो जाने के कारण उनकी यही इच्छा होने लगी कि अब यहाँ से अन्यत्र न जाकर आयु के बचे हुए दिन यहीं बिताने चाहिए।

गंगा माता की आयु उस समय लगभग ६० वर्ष की रही होगी। श्रीराधाकृष्ण के प्रति उसके अपार प्रेम और उसकी अलौकिक भक्ति को देखकर लोगों की यही धारणा होती थी कि यह राधा की प्रधान सखी ललिता ही जीवों को भक्तिप्रेम की शिक्षा देने के लिए गंगा माता का रूप लेकर इस संसार में अवतीर्ण हुई है। श्रीरामकृष्ण कहा करते

थे कि "मुझे देखते ही उसने पहचान लिया कि इसके शरीर में श्रीमती राधा के समान ही महाभाव के लक्षण हैं और इसी कारण उसने मुझे राधा का ही अवतार मानकर 'दुलारी' कहकर पुकारा।" इस तरह दुलारी के सहज ही दर्शन हो जाने के कारण गंगा माता अपने को अत्यन्त धन्य मानने लगी और समझने लगी कि आज उसे इतने दिनों के प्रेम और भक्ति का फल प्राप्त हो गया। श्रीरामकृष्ण भी उसे देखते ही उसके साथ बिल्कुल परिचित मनुष्य का सा व्यवहार करने लगे और अन्य सभी बातों को भूलकर उसी के आश्रम में उसके सत्संग में रहने लगे। दोनों को आपस में इतना आनन्द हुआ कि मथुरबाबू आदि को डर लगने लगा कि कहीं अब श्रीरामकृष्ण शायद यहीं स्थायी रूप से न रह जायँ और अपने साथ दक्षिणेश्वर न लौटें; परन्तु अन्त में श्रीरामकृष्ण की मातृभक्ति की ही जीत हुई और उनका गंगा माता के पास रहने का विचार बदल गया। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "व्रज में रहते समय सभी बातों का पूर्ण विस्मरण हो गया था। इच्छा यही होती थी कि यहाँ से वापस जाना ही नहीं चाहिये। पर कुछ दिनों में माता की याद आई और मन में ऐसा लगने लगा की यदि मैं यहाँ रह जाऊँगा तो माता को बड़ा दुःख होगा, और इस वृद्धावस्था में उसकी सेवा-शुश्रूषा भी कौन करेगा? मन में यह विचार आते ही मुझसे वहाँ नहीं रहा गया।"

सचमुच ही, विचार करके देखने पर इस महापुरुष की सभी बातें बड़ी विलक्षण मालूम पड़ती हैं और परस्परविरोधी सद्गुणों का उनमें एक ही स्थान में संमिश्रण देखकर मन आश्चर्यचकित हो जाता है। यही देखो न! उन्होंने विवाह तो किया पर गृहस्थी नहीं की। अपनी

पत्नी का त्याग भी नहीं किया और उससे कभी शारीरिक सम्बन्ध भी नहीं रखा। ईश्वर-प्राप्ति के लिए सर्वस्व का त्याग किया, पर मातृ-सम्बन्धी और पत्नी-सम्बन्धी कर्तव्य को कभी भी नहीं भुलाया। अद्वैत-ज्ञान के अत्युच्च शिखर पर आरोहण करके सदैव वहाँ वास करते हुए भी ईश्वर के साथ अपने भक्त के (या अपत्य के) प्रेममय सम्बन्ध को कभी भी नहीं छोड़ा। इस प्रकार की कितनी ही बातें बताई जा सकती हैं। अपनी माता के साथ उनका ऐसा ही अलौकिक सम्बन्ध था। उनकी वृद्धा माता अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्हीं के पास दक्षिणेश्वर में रहती थीं और श्रीरामकृष्ण उनकी सब प्रकार की अपने ही हाथों से सेवा करते हुए अपने को धन्य समझते थे। बाद में जब उनकी परम पूज्य माता का स्वर्गवास हो गया तब उन्हें इतना दुःख हुआ और वे रोते रोते इतने व्याकुल हो गये कि ऐसा शोक शायद ही कोई करता हो। इतना दुःख तो उन्हें हुआ पर वे अपना संन्यासी होना कभी नहीं भूले। संन्यासी होने के कारण मैं अपनी माता का और्ध्वदेहिक कृत्य और श्राद्ध आदि करने का अधिकारी नहीं हूँ, यह समझ उन्होंने वह सब कार्य अपने भतीजे रामलाल के द्वारा करवाया और स्वयं एक ओर बैठकर माता के लिए रो रो कर उसके ऋण से थोड़े बहुत मुक्त हुए। इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "संसार में पिता और माता ये ही परमगुरु हैं; जीवन भर उनकी सेवा करनी चाहिए और उनकी मृत्यु के बाद उनका श्राद्ध आदि करना चाहिए। जो निर्धन हो और श्राद्ध भी करने की शक्ति जिसमें न हो वह उनका स्मरण करके कम से कम आँसू तो गिरावे। ऐसा करने से ही मनुष्य उनके ऋण से मुक्त हो जाता है। माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन

कभी नहीं करना चाहिए — केवल ईश्वर-प्राप्ति के लिए ही उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने में कोई हानि नहीं और दोष भी नहीं लगता। उदाहरणार्थ प्रह्लाद ने पिता की आज्ञा होने पर भी श्रीकृष्ण का नामस्मरण करना नहीं छोड़ा अथवा ध्रुव अपनी माता के 'नहीं – नहीं' कहते रहने पर भी तपस्या करने के लिए वन में चले गए। ईश्वर के लिए ही उन्होंने माता-पिता की आज्ञा को नहीं माना, इसी कारण उन्हें आज्ञा भंग करने का दोष नहीं लगा।" अस्तु —

बड़े कष्ट से गंगा माता से विदा लेकर श्रीरामकृष्ण मथुरबाबू के साथ वापस हुए। वृन्दावन में रहते समय श्रीरामकृष्ण को सितार सुनने की बड़ी इच्छा हुई, पर वहाँ कोई प्रसिद्ध सितार बजाने वाला न रहने के कारण उन्हें वहाँ सुनने को नहीं मिला। लौटकर काशी जाने पर पुनः उन्हें वही इच्छा हुई। मदनपुरा मोहल्ले में श्रीयुत महेशचन्द्र सरकार नामक सज्जन सितार बहुत उत्तम बजाते हैं यह सुनकर वे स्वयं ही उनके घर गए और सितार सुनाने के लिए उनसे प्रार्थना की। महेशबाबू बड़ी खुशी से राजी हो गए और उन्हें उस दिन बड़ी देर तक उन्होंने सितार सुनाया। महेशबाबू का मधुर सितार शुरू होते ही श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो गए। कुछ समय के बाद वे अर्धबाह्य दशा प्राप्त होने पर "माता, मुझे होश में ला दे, मुझे सितार अच्छी तरह सुनने दे" इस प्रकार माता की प्रार्थना करते दिखाई दिए। तत्पश्चात् वे अच्छी तरह होश में आ गए और बड़े आनन्द से सितार के मधुर बोल सुनते हुए और बीच बीच में सितार के सुर में अपना सुर मिलाकर गाते हुए वहाँ बहुत समय तक बैठे रहे। सन्ध्या के पाँच बजे से रात्रि के आठ बजे तक इस तरह बड़े आनन्द से सितार सुनकर महेशबाबू के आग्रह

से वहीं कुछ जलपान करके श्रीरामकृष्ण अपने घर वापस आए। उस दिन से महेशबाबू ही श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए रोज आकर उन्हें सितार सुना जाया करते थे। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "सितार बजाते समय महेशबाबू अपनी देह की सुधि भी भूल जाते थे।"

काशी में १५ दिन व्यतीत करने के बाद मथुरबाबू को गया क्षेत्र की यात्रा करने की इच्छा हुई। परन्तु श्रीरामकृष्ण ने वहाँ जाने से इन्कार कर दिया। इसलिए मथुरबाबू ने भी अपना वह विचार बदल दिया। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "गया में ही मेरे पिता से स्वप्न में श्री गदाधर ने कहा था कि मैं तेरा पुत्र होकर जन्म लूंगा। इसी कारण मेरे पिता ने मेरा नाम 'गदाधर' रखा। गया में जाकर श्री गदाधर के दर्शन से मैं शायद इतना बेहोश और प्रेमोन्मत्त हो जाऊँ कि गदाधर के साथ चिरकाल तक एकरूप होकर रहने की मेरी इच्छा हो जाय और मैं चिरसमाधिमग्न हो जाऊँ, ऐसा मन में आने के कारण मैं मथुरबाबू के साथ गया जाने के लिए राजी नहीं हुआ।" यह बात श्रीरामकृष्ण ने अपने किसी शिष्य से कही थी। श्रीरामकृष्ण की यह दृढ़ भावना थी कि "पूर्वकाल में जो श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीगौराङ्ग आदि रूपों से अवतीर्ण हुआ था वही अब इस शरीर का आश्रय लेकर पुनः अवतीर्ण हुआ है।" इसी कारण वे अपने वर्तमान शरीर और मन के उत्पत्तिस्थान श्रीक्षेत्र गया जाने में, और जहाँ जहाँ अन्य अवतारी पुरुषों ने अपनी ऐहिक लीला का संवरण किया है, ऐहिक यात्रा समाप्त की है, उन उन क्षेत्रों के दर्शन करने का विचार करने में एक विचित्र प्रकार का संकोच अनुभव करते थे। श्रीरामकृष्ण कहते थे—"ऐसे स्थानों में जाने से मुझे ऐसी गहरी समाधि लग जाएगी कि वह किसी भी उपाय से नहीं उत-

रेगी और ऐसा होने से शरीर का टिकना भी असम्भव हो जाएगा।" ऐसा विलक्षण संकोच उन्हें स्वयं अपने ही सम्बन्ध में उत्पन्न होता हो सो बात नहीं। अपने भक्तों के सम्बन्ध में भी उन्हें यही शंका हुआ करती थी। अपना भक्त अमुक देवता के अंश से हुआ है यह उन्हें दिव्य दृष्टि द्वारा मालूम हो जाने पर वे उसे उस देवता की लीला-भूमि के दर्शन के लिए जाने से रोकते थे। इस विलक्षण संकोच को क्या कहा जाय? इसे भय भी नहीं कह सकते, क्योंकि ब्रह्मज्ञ सिद्ध अवतारी पुरुष को भय कैसे हो सकता है और किसका हो सकता है? सर्व चराचर में एक ब्रह्म व्याप्त हो रहा है, उसके सिवाय दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं, इस बात का जिसने साक्षात् अनुभव कर लिया है उसे किसका भय हो सकता है? अन्य लोगों के समान जीते रहने की इच्छा भी उस संकोच को नहीं कह सकते क्योंकि लोगों के मन में जो जीने की इच्छा रहती है, वह स्वार्थ के लिए या सुखोपभोग के लिए ही हुआ करती है; परन्तु जिनके अन्तःकरण में स्वार्थ का नामोनिशान तक नहीं है उनके सम्बन्ध में ऐसा नहीं कह सकते। तब इस संकोच को क्या कहा जाय? और इसकी कल्पना भी दूसरों को किस तरह हो? हमारे मन में जो भाव और जो कल्पना-तरंग उत्पन्न होती हैं उन्हीं को व्यक्त करने योग्य शब्द-समूह हमें मिल सकते हैं। श्रीरामकृष्ण के समान महापुरुष के मन के अत्युच्च दिव्य भाव को व्यक्त करने योग्य शब्द भी हमें कहाँ मिलें? इसीलिए इन सब विषयों के सम्बन्ध में जो श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, उसी को श्रद्धा और विश्वास के साथ सुनकर इन सब उच्च भावों को अपनी कल्पना द्वारा समझने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करने के सिवाय हमें दूसरा कोई मार्ग नहीं दिखाई देता।

ऊपर बता चुके हैं कि गया जाने के लिए श्रीरामकृष्ण के इन्कार करने पर मथुरबाबू ने भी वहाँ जाने का विचार त्याग दिया। सब लोग वहाँ से वैद्यनाथ जाकर कलकत्ता लौट आए।

श्रीरामकृष्ण वृन्दावन से राधाकुण्ड और श्यामकुण्ड की मिट्टी अपने साथ लाए थे। उसमें से कुछ पंचवटी के नीचे और शेष अपनी साधन-कुटी के चारों ओर फैलाकर वे बोले, "आज से यह स्थान वृन्दावन के समान ही पवित्र होगा।" तदनन्तर थोड़े ही दिनों में उन्होंने मथुरबाबू से कहकर कई स्थानों के सन्त, महन्त, साधु, भक्त आदि को बुलवाकर पंचवटी के नीचे एक महोत्सव किया। उस अवसर पर मथुरबाबू ने प्रत्येक को १) से लगाकर १६) तक दक्षिणा दी।

श्रीरामकृष्ण कहते थे कि इस सम्पूर्ण यात्रा में मथुरबाबू ने कुल मिलाकर एक लाख रुपये से अधिक खर्च किया।

काशी और वृन्दावन के सिवाय श्रीरामकृष्ण मथुरबाबू के साथ एक बार श्री चैतन्य देव के जन्म-स्थान नवद्वीप को भी गए थे। श्री चैतन्य देव को श्रीरामकृष्ण के कुछ शिष्य लोग अवतार नहीं मानते थे। इतना ही नहीं वे लोग 'वैष्णव' शब्द का अर्थ 'दीन और दुर्बल' समझा करते थे। श्री चैतन्य देव के अवतारी होने के सम्बन्ध में उन्होंने श्रीरामकृष्ण से भी प्रश्न पूछने में कमी नहीं की। श्रीरामकृष्ण ने एक दिन उनके प्रश्न का उत्तर दिया। वे बोले—"क्या कहूँ रे भाई! कुछ दिनों तक बारम्बार मुझे भी यही मालूम पड़ता था कि पुराण में, भागवत में कहीं 'चैतन्य' का नाम भी नहीं आया है और 'चैतन्य' को कहते हैं 'अवतार'! यह कैसी बात है? कुछ अनाप शनाप वर्णन करके शायद 'तिल का ताड़' बना डाला है। किसी तरह भी

चैतन्य का अवतार होना निश्चित नहीं किया जा सका। मथुरबाबू के साथ मैं नवद्वीप गया और वहाँ मेरे मन में आया कि यदि सचमुच चैतन्य अवतार हैं तो यहाँ कुछ न कुछ साक्षात्कार अवश्य होगा और तब तो आप ही आप सब स्पष्ट हो जाएगा। और इस प्रकार का कोई साक्षात्कार हो जाय इस उद्देश से मैं इधर-उधर, बड़े महन्त के यहाँ, छोटे महन्त के घर, इस देवालय में, उस देवालय में मारा मारा फिरता रहा, पर उस समय तक कहीं भी साक्षात्कार का नाम नहीं हुआ। जहाँ देखो वहाँ अपने हाथ ऊपर उठाकर नाचते हुए चैतन्य की काष्ठमूर्ति ही दिखाई देती थी! यह सब देखकर मेरे प्राण व्याकुल हो उठे और मैं सोचने लगा कि यहाँ मैं आया ही क्यों? पर उसके बाद जब मैं वहाँ से रवाना होने की इच्छा से नौका पर बैठकर जाने ही वाला था कि इतने में मुझे एक अद्भुत दर्शन हुआ! दो बालक— उनका रूप इतना सुन्दर कि पहले कभी देखने में नहीं आया था— तप्त स्वर्ण के समान रंग और कान्तिवाले—उम्र में १३-१४ वर्ष के —मुखमण्डल के चारों ओर तेजोवलय—हाथ ऊपर उठाकर मेरी ओर देखकर हँसते हुए आकाशमार्ग से मेरी ओर बड़े वेग से आ रहे हैं! यह दृश्य देखते ही 'देखो मैं आगया, मैं आगया' इस प्रकार मैं एकदम चिल्ला उठा! पर इतने में ही वे दोनों बालक मेरे पास आकर (अपनी ही ओर उँगली दिखाकर) इस शरीर में अंतर्धान हो गए और मैं एकदम समाधिस्थ हो गया। उस समय तो मैं नदी में ही गिर पड़ता पर हृदू साथ में था; उसने पकड़कर खींच लिया। इसी तरह और भी कुछ कुछ दिखलाकर मुझे विश्वास दिलाया कि चैतन्य देव सचमुच अवतार हैं।"

नवद्वीप के समीप की नदी के किनारे की रेतीली जमीन पर श्रीरामकृष्ण को जितना भावावेश हुआ उतना खास नवद्वीप में नहीं हुआ। इसका कारण पूछने पर वे कहने लगे — "श्री चैतन्य देव का पुराना नवद्वीप गंगा में डूब गया है और उसका स्थान उस रेतीली जगह के नीचे ही होना चाहिए; इसीलिए वहीं पर मुझे भावावेश हुआ।"

काशी, वृन्दावन और नवद्वीप के सिवाय श्रीरामकृष्ण एक बार मथुरबाबू के साथ खुलना के प्रख्यात सत्पुरुष भगवानदास बाबा जी से भेंट करने गये थे (सन् १८७१)। श्री चैतन्य देव के चरणों से पवित्र हुए अनेक स्थानों में से खुलना भी एक है। वहाँ के १०८ शिवमन्दिर प्रसिद्ध हैं।

बाबा भगवानदास जी की आयु उस समय ८० वर्ष से अधिक रही होगी और उनके तीव्र वैराग्य और अलौकिक भगवद्भक्ति की ख्याति सारे बंगाल भर में थी। रातदिन एक ही स्थान में बैठकर जप, ध्यान-धारणा आदि करते रहने के कारण वृद्धावस्था में उनके दोनों पैर बिलकुल कमजोर और अपंग हो गये थे। तथापि ८० वर्ष से अधिक आयु हो जाने पर भी और शरीर के इस प्रकार परावलंबी हो जाने के कारण उठने की शक्ति देह में न रहने पर भी, इस वृद्ध साधु पुरुष के हरिनाम-स्मरण में अदम्य उत्साह, ईश्वर-भक्ति और प्रेम को देखकर किसी तरुण युवक को लज्जा आने लगती थी। नामस्मरण करते करते वे अपनी देह तक की सुधि भूल जाते थे और उनकी आँखों से सतत अश्रुधारा बहती रहती थी। निर्जीव वैष्णव समाज में उनके कारण सजीवता आ गई थी और बाबा जी के आदर्श उदाहरण और उपदेश के कारण अनेक लोग सन्मार्ग की ओर प्रवृत्त होने लगे थे। उनके

दर्शन के लिए जाने वालों पर उनके तीव्र वैराग्य, तपस्या, ईश्वर-प्रेम, पवित्रता आदि अनेक सद्‌गुणों का बहुत प्रभाव होता था और उनके जीवन की दिशा बदल जाती थी। महाप्रभु श्री चैतन्य देव के प्रेम-धर्म-सम्बन्धी किसी विषय पर वाद-विवाद उपस्थित होने पर सब लोग बाबा जी भगवानदास के मत को ग्राह्य मानकर उस वाद का निर्णय करते थे। बाबा जी केवल अपने साधन-भजन में ही नहीं लगे रहते थे वरन् वे वैष्णव-समाज में कहाँ क्या हो रहा है इसका पता रखते थे और उस समाज की उन्नति का मार्ग क्या है, श्री चैतन्य देव के प्रेम-धर्म और उनके अलौकिक चरित्र की ओर लोगों का ध्यान कैसे आकर्षित हो——इत्यादि बातों की भी सदा चिन्ता किया करते थे। ढोंगी साधुओं के आचरण के सम्बन्ध की सभी बातें लोग उनके पास जाकर बताया करते थे और इस विषय में उनकी राय के अनुसार लोग निःशंक होकर उपाय किया करते थे। इस कारण बाबा जी का सारे वैष्णव-समाज पर एक प्रकार का दबदबा सा था और ढोंगी, स्वार्थपरायण साधु लोग उनसे बहुत डरते थे।

श्रीरामकृष्ण ने जिस समय अपनी तपस्या आरम्भ की थी लग-भग उसी समय उत्तर हिन्दुस्तान के अनेक स्थानों में धार्मिक आन्दोलन शुरू हो रहा था। कलकत्ता और उसके आसपास हरिसभा और ब्राह्मसमाज की हलचल, संयुक्तप्रान्त और पंजाब की ओर स्वामी दयानन्द सरस्वती के वैदिक धर्म का प्रचार, बंगाल में वेदान्त, कर्ताभजा-सम्प्रदाय, राधास्वामी सम्प्रदाय आदि के धार्मिक आन्दोलन हो रहे थे। उन सब का हमारे वर्तमान विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है। केवल कलकत्ते की कोलू टोला गली में सदा होने वाली एक हरिसभा में जो

घटना हुई उसी का उल्लेख करना उचित है, क्योंकि भगवानदास बाबा जी और श्रीरामकृष्ण की भेंट से उस घटना का सम्बन्ध है।

एक दिन कोल्ह टोला की हरिसभा का निमन्त्रण पाकर श्रीरामकृष्ण वहीं गये थे। हृदय उनके साथ थे। जब श्रीरामकृष्ण वहाँ पहुँचे तब पुराण की कथा में बड़ा आनन्द आ रहा था और श्रोतागण सुनने में तल्लीन थे। उन्हीं के साथ एक ओर श्रीरामकृष्ण बैठ गये और पुराण सुनने लगे।

उस स्थान के लोग अपने को श्री चैतन्य देव के एकनिष्ठ भक्त समझा करते थे। इसी कारण वे लोग उनकी स्मृति सदैव जागृत रखने के लिए वहाँ एक अलग आसन बिछा दिया करते थे। उस आसन पर साक्षात् श्री चैतन्य देव विराजमान हैं इस भावना से सब लोग उसे मान देते थे, उसकी पूजाअर्चा करते थे, उसके सामने साष्टांग प्रणाम करते थे और उस आसन पर किसी को बैठने नहीं देते थे। प्रत्यक्ष श्री चैतन्य देव श्रवण कर रहे हैं ऐसा मानकर पौराणिक महाराज अपना पुराण सुनाया करते थे।

उस दिन पुराण सुनते सुनते श्रीरामकृष्ण एकाएक भावाविष्ट हो गए और उस भाव के उमङ्ग में ही झट उठकर एकदम उस आसन पर जाकर खड़े हो गये और वहाँ उन्हें खड़े खड़े ही गहरी समाधि लग गई। यह सब इतनी शीघ्रता के साथ हुआ उस समय यह बात किसी के ध्यान में भी नहीं आई; परन्तु श्रीरामकृष्ण को उस आसन पर खड़े हुए देखकर सभा में सब ओर खलबली मच गई। सभी एक दूसरे की ओर देखने लगे। उस समाधि-अवस्था में ही श्रीरामकृष्ण के हाथ चैतन्य देव के समान ऊपर उठे हुए थे और उनके मुखमण्डल पर

अपूर्व तेज झलक रहा था। उनकी उस दिव्य तेज:पुञ्ज मूर्ति को देखने से उस सभा में उपस्थित किसी किसी भक्त को तो वे साक्षात् चैतन्य देव ही दिखाई दिए। पौराणिक महाराज का पुराण बंद हो गया। श्रीरामकृष्ण उस आसन पर खड़े हो गये, यह बात अच्छी हुई या बुरी— यह श्रोताओं की समझ में नहीं आती थी। श्रीरामकृष्ण के उस दिव्य तेज से सब लोग चकित हो गये और सभी को एक साथ अचानक स्फूर्ति आ जाने के कारण उन्होंने ज़ोर ज़ोर से जयजयकार करना और भजन करना प्रारम्भ कर दिया। बहुत समय बाद श्रीरामकृष्ण आधे होश में आए और वे भी उन लोगों के साथ नृत्य करते हुए भजन गाने लगे और बीच बीच में समाधिस्थ होने लगे। सभी को जोश आगया और वे लोग देहभान भूलकर उन्मत्त के समान ज़ोर ज़ोर से भजन करने लगे। इसी प्रकार बहुत देर तक भजन चलता रहा। किसी को भी किसी बात की सुधि न थी। बहुत समय के बाद श्री चैतन्य देव के नाम से जयजयकार होकर भजन समाप्त हुआ और थोड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण हृदय के साथ दक्षिणेश्वर को वापस चले आए।

श्रीरामकृष्ण के चले जाने के बाद जैसे कोई सोया हुआ मनुष्य जाग उठे उसी तरह ये लोग जागृत हुए और आज की घटना उचित थी अथवा अनुचित इसके सम्बन्ध में वाद-विवाद होने लगा। श्रीरामकृष्ण की समाधि, उनका वह दिव्य तेज:पुञ्ज रूप और उनके अलौकिक नृत्य तथा भजन को देखकर कुछ लोग तो कहने लगे कि उनका चैतन्य देव का आसन ग्रहण करना अनुचित नहीं हुआ और कुछ लोग यह भी कहने लगे कि यह अनुचित हुआ। दोनों पक्षवालों में ज़ोर शोर से बहस हुई, पर उस दिन इस बात का कोई निर्णय नहीं हो सका।

क्रमशः यह वार्ता सब ओर फैल गई और सारे वैष्णव-समाज में धूम मच गई। यह बात बाबा भगवानदास जी के कान में भी पहुँची और व्यर्थ ही कोई क्षुद्र मनुष्य श्री चैतन्य देव के आसन का अपमान करे और अपने भक्तिभाव का इस प्रकार ढोंग मचावे इस बात पर उन्हें बड़ा क्रोध आया। इतना ही नहीं, क्रोध के वेग में उन्होंने उस ढोंगी मनुष्य के सम्बन्ध में कुवाक्ययुक्त उद्गार भी अपने मुख से निकालने में कमी नहीं की। पर श्रीरामकृष्ण को उस दिन की घटना से वैष्णव-समाज में बड़ी हलचल उत्पन्न हो गई है इसके सिवाय और कुछ भी मालूम नहीं हुआ।

उसके कुछ दिनों बाद श्रीरामकृष्ण मथुरबाबू के साथ खुलना गए। लगभग सूर्योदय के समय उनकी नौका घाट पर लगी। मथुरबाबू सामान आदि संभालने में लगे थे। इधर हृदय को साथ लेकर श्रीरामकृष्ण शहर देखने चले और पता लगाते हुए बाबा भगवानदास जी के आश्रम के समीप आ पहुँचे।

किसी अपरिचित व्यक्ति से भेंट करने का अवसर आ पड़ने पर पहले पहल बालक स्वभाव वाले श्रीरामकृष्ण के मन में सचमुच भय होने लगता था। उनका यह स्वभाव हमने अपनी आँखों से देखा है। बाबा भगवानदास जी की भेंट के समय भी पहले ऐसा ही हुआ। हृदय को सामने करके अपना सब शरीर वस्त्र से ढाँककर उन्होंने बाबाजी के आश्रम में प्रवेश किया। हृदय आगे आकर बाबा जी को प्रणाम करके बोले— "मेरे मामा बड़े भगवद्भक्त हैं; वे आपका दर्शन करने आए हैं।"

हृदय कहते थे कि उनको प्रणाम करके मेरे बोलने के पूर्व ही बाबा जी कहने लगे—"आज आश्रम में किसी महापुरुष का आगमन

हुआ है ऐसा भास हो रहा है।" ऐसा कहते हुए वे इधर उधर देखने लगे। पर वहाँ मेरे सिवाय और कोई नहीं दिखा। इससे वे अपने काम में ही लगे रहे। कुछ लोग एक वैष्णव साधु के दुराचार के सम्बन्ध में बाबा जी से सलाह कर रहे थे। बाबा जी भी उसकी खूब भर्त्सना करके "उसकी माला छीनकर उसे सम्प्रदाय में से निकाल दूँगा" इत्यादि कह रहे थे। इतने में ही श्रीरामकृष्ण वहाँ आ गए और बाबा जी को प्रणाम करके नम्रतापूर्वक एक ओर चुपचाप बैठ गए। सर्वांग वस्त्र से ढके रहने के कारण उनके चेहरे पर किसी की दृष्टि नहीं पड़ी। हृदय ने उनकी ओर उँगली दिखलाते हुए कहा—"यही मेरे मामा हैं।" इतना परिचय पाने पर बाबा जी ने भी अन्य बातें बन्द कर दीं और वे श्रीरामकृष्ण से 'कब आए? कहाँ से आए?' आदि कुशल प्रश्न करने लगे।

अपने साथ बातचीत करते समय भी बाबा जी को माला फिराते देखकर चतुर हृदय ने उनसे पूछा—"बाबा जी, आप अभी तक माला क्यों लिए हुए हैं? आप तो सिद्ध हो चुके हैं, आपको माला की क्या आवश्यकता है?" बाबा जी ने नम्रता से उत्तर दिया—"स्वयं मुझको उसकी ऐसी अधिक आवश्यकता नहीं है, पर लोगों के लिए माला रखनी पड़ती है; नहीं तो दूसरे लोग भी मेरी देखा-देखी वैसा ही करने लगे।"

सभी विषयों में हर समय एक बालक के समान श्री जगदम्बा पर ही अवलम्बित रहने की प्रकृति श्रीरामकृष्ण के अस्थिचर्म में मानो इतनी दृढ़ हो गई थी अर्थात उनका श्री जगदम्बा पर निर्भर रहने का स्वभाव इतना प्रबल हो गया था कि अहंकारवश स्वयं अपनी प्रेरणा

से कोई कार्य करना तो दूर रहा अगर दूसरा कोई वैसा करता हो तो भी उनके अन्तःकरण में पीड़ा होती थी ! अपने अहंकार का उन्होंने इस हद तक नाश कर डाला था कि उनके मुँह से अपने सम्बन्ध में कभी ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं होता था कि "मैंने अमुक काम किया या करूँगा।" कभी 'मैं' शब्द का प्रयोग होता भी हो तो वहाँ 'मैं' शब्द का अर्थ 'जगदम्बा का बालक' अथवा 'मैं दास' ही होता था। अपने सम्बन्ध में वे सदा 'यहाँ का मत', 'यहाँ की अवस्था', 'इस देह की स्थिति' ऐसे ही शब्दों का उपयोग करते थे। उनका यह स्वभाव उनके साथ थोड़ी देर तक रहने वाले मनुष्य के भी ध्यान में आ जाता था। किसी के 'मैं करूँगा' आदि शब्दों को सुनकर श्रीरामकृष्ण को क्रुद्ध होते देख दर्शक को आश्चर्य होता था। वह मन में सोचता था कि "इस मनुष्य ने ऐसा कौन सा अपराध किया है कि श्रीरामकृष्ण इस पर क्रुद्ध हो गए।" यहाँ भी यही हाल हुआ। श्रीरामकृष्ण के पहुँचते ही उन्हें बाबा जी के मुँह से — "उस साधु की माला छीनकर उसको वैष्णव सम्प्रदाय से निकाल दूँगा —" ये शब्द सुनाई दिए। थोड़े ही समय में फिर — "लोगों के लिए मैं माला नहीं छोड़ता" ये शब्द उनके कान में पड़े। 'मैं निकाल दूँगा', 'मैं माला नहीं छोड़ता', 'मैं लोगों को सिखाऊँगा' इत्यादि बाबा जी के मुँह से 'मैं' — अहंकार सूचक शब्द निकलते सुनकर श्रीरामकृष्ण को क्रोध आया और उस क्रोध को वे हमारे समान असभ्यता के डर से छिपा नहीं सके। वे एकदम उठकर खड़े हो गये और बाबा जी की ओर देखकर बोले — "क्यों ? अब तक आपको इतना अहंकार है ? आप लोगों को

सिखाएंगे? आप निकाल देंगे? लोगों को सिखाने वाले आप होते कौन हैं? यह सारा संसार जिसका है उसके सिखाए बिना आप कौन सिखाने वाले होते हैं?" ऐसा कहते कहते उनके शरीर पर का वस्त्र और पहिनी हुई धोती भी गिर पड़ी। मैं किससे क्या कह रहा हूँ इसकी सुधि भी उन्हें नहीं रही। देखते देखते भाव की प्रबलता के कारण उन्हें समाधि लग गई और उनके मुखमण्डल पर दिव्य तेज चमकने लगा। कहीं नीचे न गिर जायँ इस डर से उन्हें बचाने के लिए हृदय उनको पकड़े हुए खड़े रहे।

सिद्ध बाबा जी को आज तक सब लोग मान ही देते आ रहे थे। प्रत्युत्तर देने का या उनके दोष निकालने का साहस आज तक किसी ने नहीं किया था। अतः श्रीरामकृष्ण को इस प्रकार कहते सुन-कर वे चकित हो गये, पर वे भी पहुँचे हुए पुरुष थे; इसलिए क्रोध के वश न होकर वे चुपचाप बैठ गये। थोड़ी देर में उन्हें श्रीरामकृष्ण का अर्थ समझ में आगया और 'मैं ऐसा करूँगा' 'मैं वैसा करूँगा' ऐसा कहना भी अहंकार है, यह बात उनके ध्यान में आगई। श्रीराम-कृष्ण की अहंकारशून्यता देखकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ और उनकी समाधि-अवस्था और शरीर के लक्षण और दिव्य कान्ति को देखकर उन्हें निश्चय हो गया कि ये कोई असामान्य महापुरुष हैं।

समाधि उतरने पर श्रीरामकृष्ण को बाबा जी की नम्रता देखकर बड़ा आनन्द हुआ। तब तो इन दोनों महापुरुषों की ईश्वर सम्बन्धी बातें शुरू हो गईं और उनका आनन्द-सागर किस प्रकार उमड़ पड़ा यह वर्णन करना असम्भव है। ईश्वर सम्बन्धी बातें करते समय श्रीराम-कृष्ण की तन्मयता और बारम्बार आने वाले भावावेश और भजन के

समय के उनके असीम आनन्द को प्रत्यक्ष देखकर बाबा जी श्रीरामकृष्ण को धन्य मानने लगे। "इतने दिनों तक महाभाव के शास्त्रीय विवेचन में ही मैं मग्न हो जाता था, पर आज तो महाभाव के सर्व लक्षण जिनमें हैं ऐसे महापुरुष का दर्शन कर रहा हूँ।"—यह सोचकर उन्हें अत्यन्त आनन्द हुआ और श्रीरामकृष्ण के प्रति उनके मन में आदर और भक्ति उत्पन्न हुई। आगे चलकर बातें निकलते निकलते जब उन्हें यह पता लगा कि कोलू टोला के चैतन्य-आसन को भावावेश में ग्रहण करने वाले दक्षिणेश्वर के परमहंस ये ही हैं तब तो 'ऐसे महापुरुष के प्रति मैंने कैसे अनुचित शब्दों का प्रयोग कर डाला' यह सोचकर उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने बड़ी नम्रता से उसके बारे में श्रीरामकृष्ण से क्षमा माँगी।

इस प्रकार इन दोनों महापुरुषों की भेंट हुई। थोड़े ही समय के बाद बाबा जी से विदा लेकर श्रीरामकृष्ण हृदय के साथ वापस लौटे और मथुरबाबू के पास उन्होंने बाबा जी की उच्च आध्यात्मिक अवस्था की प्रशंसा की। उसे सुनकर मथुरबाबू भी बाबा जी के दर्शन के लिए गए और उनके आश्रम के देवताओं की नित्य पूजाअर्चा और वार्षिक महोत्सव के लिए उन्होंने कुछ वार्षिक वृत्ति भी बाँध दी।

---

४ — हृदयराम का वृत्तान्त



"तू मेरी सेवा ठीक तरह से करता जा; यही तेरे लिए पर्याप्त है। तुझे दूसरी तपश्चर्या की आवश्यकता नहीं है।"

— श्रीरामकृष्ण

तीर्थयात्रा समाप्त करके मथुर आदि सब लोगों के लौटने के थोड़े ही दिनों बाद हृदयराम की पत्नी का स्वर्गवास हो गया (सन् १८६९)। उसके कारण कुछ समय तक उनका मन संसार से उचट सा गया था। पहले बता चुके हैं कि हृदयराम भावुक नहीं थे। इतने दिनों तक श्रीरामकृष्ण की सेवा करने और उनकी दिव्य संगति में रहने के कारण उनके मन में कभी कभी पारमार्थिक विचार आ जाया करते थे, पर वे स्थायी रूप से टिकते नहीं थे। गृहस्थी ठीक चलाते हुए, हो सके तो परमार्थ-साधन करना उनके जीवन का ध्येय था; इसीलिए अपनी आँखों के सामने श्रीरामकृष्ण की आध्यात्मिक उन्नति शीघ्रतापूर्वक होते देखकर भी, वे मानो समुद्र में गिर पड़ने पर भी, सूखे के सूखे ही रह गए। अपने मामा के अपूर्व शक्तिविकास को देखकर वे सोचते थे कि — "परमार्थ है क्या चीज़? मैं अपने मामा के पास अगर धरना देकर बैठूँगा तो वे मुझे सभी देवी-देवताओं के दर्शन सहज ही में करा देंगे। अतः उसके विषय में अभी से मुझे व्यर्थ चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? पहले संसार-सुख भोग लूँ तब फिर समय आने पर परमार्थ की ओर दृष्टि डालूँगा।" अब पत्नी का देहान्त हो जाने से

उन्हें मालूम पड़ने लगा कि वह समय आ गया है। वे अब पहले की अपेक्षा अधिक मन लगाकर और निष्ठापूर्वक श्री जगदम्बा की पूजाअर्चा करने लगे, पहनी हुई धोती और जनेऊ आदि को अलग रखकर बीच बीच में ध्यान भी करने लगे और श्रीरामकृष्ण के पास धरना देकर बैठ गए कि "अपने समान सारे आध्यात्मिक अनुभव आप मुझे भी प्राप्त करा दीजिए।" श्रीरामकृष्ण ने इस पर उन्हें बहुत समझाया कि "तुझे ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है, तू मेरी सेवा ठीक तरह से करता जा। इतना ही तेरे लिए बस है, तुझको दूसरी तपश्चर्या की आवश्यकता नहीं है। यदि तू और हम दोनों ही रात दिन इसी प्रकार ध्यानधारणा में मग्न रहने लगेंगे तो फिर हम लोगों की और बातों की चिन्ता कौन करेगा?" पर हृदय किसी भी बात को सुनने के लिए तैयार नहीं थे। तब श्रीरामकृष्ण बोले—"माता की जैसी इच्छा होगी वैसा होगा; मेरी इच्छा से भला कहीं कुछ होता है? माता ने ही तो मेरी बुद्धि को पलट कर मेरी यह अवस्था कर दी है; उसकी इच्छा होगी तो वह तेरी भी वही अवस्था कर देगी।"

इसके कुछ दिनों बाद पूजा और ध्यान करते समय हृदय को कुछ थोड़े बहुत अद्भुत दर्शन और बीच बीच में अर्ध-बाह्यदशा प्राप्त होने लगी। हृदय की ऐसी भावावस्था देखकर एक दिन मथुरबाबू श्रीरामकृष्ण से बोले—"बाबा, हृदय की यह कैसी अवस्था हो गई है?" श्रीरामकृष्ण बोले—"हृदय ढोंग नहीं कर रहा है; उसकी सचमुच वैसी अवस्था हो रही है—'मुझे दर्शन होने दे' ऐसी प्रार्थना उसने माता से की; इसलिए उसे यह सब हो रहा है। ऐसा ही कुछ थोड़ा बहुत दिखाकर माता उसके मन को शीघ्र ही शान्त कर देगी।"

मथुरबाबू बोले — "बाबा! कहाँ की माता और कहाँ और कुछ? यह सब आपका ही खेल है! आप ही ने हृदय की यह अवस्था की है और अब आप ही उसके मन को शान्त करें। हम दोनों शृंगी भृंगी के समान आपके चरणों के पास सदैव रहकर आपकी सेवा करने वाले हैं। हमें इस प्रकार की अवस्था से क्या मतलब है?" — यह सुनकर श्रीरामकृष्ण हँसने लगे।

इसके कुछ दिनों बाद एक दिन रात्रि के समय श्रीरामकृष्ण उठकर पंचवटी की ओर जा रहे थे। उन्हें जाते देखकर हृदय भी उठे और श्रीरामकृष्ण का लोटा और रूमाल लेकर उनके पीछे पीछे चलने लगे। वे थोड़ी ही दूर चलकर गए होंगे कि इतने में उन्हें एक अद्भुत दर्शन हुआ। उन्हें दिखाई दिया कि श्रीरामकृष्ण मनुष्य नहीं हैं, वे कोई दिव्य देहधारी पुरुष हैं, उनके तेज से सम्पूर्ण पंचवटी प्रकाशित हो गई है और चलते समय उनके पैर पृथ्वी को स्पर्श नहीं करते हैं। वे पृथ्वी से अलग ऊपर ही ऊपर बिना किसी आधार के चले जा रहे हैं। शायद यह अपना दृष्टि-भ्रम ही हो ऐसा सोचकर आँखों को मलकर हृदय ने फिर उस ओर देखा तब भी वही दृश्य दिखाई दिया। यह सब देखकर वे चकित हो गए और सोचने लगे — "मुझमें ऐसा कौनसा अन्तर हो गया है जिसके कारण मुझे यह विचित्र दृश्य दिखाई दे रहा है?" — और स्वयं अपनी ओर देखने लगे। तब तो उन्हें बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उन्हें अपना शरीर भी ज्योतिर्मय दिखाई दिया और उन्हें पता लगा कि — "मैं भी दिव्य पुरुष हूँ, साक्षात् ईश्वर की सेवा में मैं अपना समय व्यतीत कर रहा हूँ। उनकी सेवा करने के लिए ही मेरा जन्म हुआ है, यथार्थ में वे और मैं एक ही हैं,

केवल उनकी सेवा के लिए मुझे अलग शरीर धारण करना पड़ा!" — यह सब जानकर और अपने जीवन का यह रहस्य समझ में आने पर उनके आनन्द का पारावार नहीं रहा। वे संसार को भूल गए, अपने आप को भूल गए और अतिशय आनन्द के आवेश में वेहोश होकर एकाएक चिल्लाने लगे — "ओ रामकृष्ण! ओ रामकृष्ण! हम लोग तो मनुष्य नहीं हैं, तब हम यहाँ आए क्यों हैं? चलो हम लोग देशदेशान्तर में पर्यटन करें और जीवों का उद्धार करें। तुम और हम एक ही हैं!" श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "इस प्रकार उसको चिल्लाते देखकर मैंने उससे कहा — 'हृदू! अरे कितनी ज़ोर से चिल्ला रहा है? तुझे हो क्या गया है? तेरा चिल्लाना सुनकर लोग दौड़ पड़ेंगे न?' — पर कौन सुनता है? उन्होंने अपना चिल्लाना जारी ही रखा। तब तो मैं उसके पास दौड़ते दौड़ते गया और उसके वक्षःस्थल पर हाथ रखकर बोला, 'माता! माता! इस मूर्ख को जड़ बना दे।"

हृदय कहते थे — "उनके मेरी छाती को स्पर्श करते हुए तथा ऐसा कहते ही मेरी वह दिव्य दृष्टि और वह सारा आनन्द लुप्त हो गया और मैं पुनः ज्यों का त्यों बन गया। मुझको बड़ा दुःख हुआ, मैं रोते हुए बोला — 'मामा! आपने यह क्या किया? मुझे इस प्रकार जड़ क्यों बना दिया? अब मुझे वह दिव्य आनन्द पुनः कहाँ मिलेगा?' यह सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले — 'मैंने तुझको सब दिन के लिए जड़ होने को थोड़े ही कहा है? मैंने तुझको अभी चुप बैठालने के लिए ही ऐसा किया है। ज़रा कहीं थोड़ा सा दर्शन पाया कि लगा तू ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने; इसीलिए मुझे वैसा करना पड़ा! मुझको तो देख। चौबीसों घण्टे में कितनी अद्भुत बातें देखता रहता हूँ; पर क्या मैंने कभी

इस तरह हल्ला मचाया है? तेरे लिए ऐसे दर्शन करने का समय अभी नहीं आया है। अभी शान्त हो, समय आने पर तू बहुत से दर्शन प्राप्त कर सकेगा।'

श्रीरामकृष्ण के ये वाक्य सुनकर हृदय चुप बैठ गए, पर इस बात से उनके मन में बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने सोचा कि चाहे जो हो, पर परसों के समान साक्षात्कार एक बार और करना चाहिए। अब इसके बारे में श्रीरामकृष्ण से बोलने के लिए कोई गुंजाइश नहीं थी, इसलिए उनको बिना बताए ही वे पुनः प्रतिदिन खूब जप और ध्यान करने लगे। वे रात को उठते थे और पंचवटी के नीचे श्रीरामकृष्ण के जप-ध्यान करने की जगह में जाकर जप-ध्यान करते थे। एक दिन वे इसी तरह वहाँ बैठकर ध्यान कर रहे थे। रात का समय था। घोर अंधकार फैला हुआ था। श्रीरामकृष्ण को पंचवटी की ओर जाने की इच्छा हुई और वे वहाँ जाने के लिए निकले। वे पंचवटी तक पहुँचे भी नहीं थे कि "मामा जी! दौड़िये, दौड़िये! मैं जलकर मर रहा हूँ" ये शब्द उनके कानों में पड़े। हृदय की आवाज़ को पहचानकर वे जल्दी से वहाँ पहुँचे और बोले—"डरो मत, मैं आगया हूँ। क्यों, तुझे क्या हो गया?" पीड़ा के कारण चिल्लाते हुए हृदय बोले—"मामा! मैं यहाँ ध्यान करने बैठा था कि एकाएक शरीर में इतनी जलन होने लगी, मानो किसी ने उस पर आग बिछा दी हो! यह वेदना मुझसे नहीं सही जाती।" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण उनके शरीर पर हाथ फेरते हुए बोले, "रोओ मत, अभी वेदना दूर हो जाएगी! तू क्यों ऐसा करता था भला? मैं तुझको एक बार बता चुका न, कि तुझको इन सब बातों की जरूरत नहीं है, तू केवल मेरी सेवा करता

जा,—उतना ही तेरे लिए बहुत है।" हृदय कहते थे कि श्रीरामकृष्ण के हस्तस्पर्श से उनकी सारी पीड़ा सचमुच दूर हो गई। श्रीरामकृष्ण के कहने के अनुसार ही चलने में अपनी भलाई है, यह जानकर वे इसके बाद कभी भी पंचवटी के नीचे ध्यान आदि करने के लिए नहीं गए।

उसी साल के आश्विन मास में हृदय को श्री दुर्गापूजा-उत्सव करने की बड़ी इच्छा हुई। मथुरबाबू ने द्रव्य से उनकी सहायता की, परन्तु श्रीरामकृष्ण को अपने ही घर रखूँगा ऐसा उन्होंने हृदय से कह दिया। हृदय की ऐसी इच्छा थी कि उत्सव वे अपने गाँव में करें और वहाँ अपने साथ अपने मामा को भी ले चलें। जब उन्होंने यह देखा कि मथुरबाबू उन्हें नहीं छोड़ते तो वे बड़े हतोत्साहित हो गए। हृदय कहते थे—"मुझको ऐसे उदास चित्त से गाँव के लिए रवाना होते देखकर श्रीरामकृष्ण मुझे समझाते हुए कहने लगे—'हृदू! तू इस तरह बुरा मत मान, मैं रोज तेरे यहाँ तेरी पूजा देखने के लिए आया करूँगा तब तो ठीक होगा न? तू अपने मन के अनुसार पूजा करते जाना; व्यर्थ सारे दिन भर उपवास मत करना; बीच में दोपहर के समय थोड़ा फलाहार कर लेना'—ऐसा कहकर उन्होंने पूजा के लिए जो प्रबन्ध करना था वह सब बता दिया, तब मैं बड़े हर्ष के साथ अपने गाँव गया।"

गाँव में जाने के बाद हृदय ने श्रीरामकृष्ण के कहने के अनुसार सभी तैयारी कर ली और आश्विन शुक्ल षष्ठी के दिन पूजा शुरू कर दी। सप्तमी के दिन रात्रि को पूजा आदि करके आरती करते समय उन्हें दिखाई दिया कि ज्योतिर्मय शरीर धारण करके श्रीरामकृष्ण देवी के पीछे भावावेश में खड़े हैं! श्रीरामकृष्ण को देखकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ और अपनी पूजा को आज सार्थक जानकर वे अपने को धन्य मानने लगे।

पूजा के दिन बीतने के बाद दक्षिणेश्वर आकर उन्होंने सब समाचार श्रीरामकृष्ण से बताया। तब श्रीरामकृष्ण बोले — "उस दिन रात को आरती के समय तेरी पूजा देखने की मुझे सचमुच ही उत्कण्ठा हुई और मैं भावाविष्ट हो गया। उस समय मुझे ऐसा दिखा कि ज्योतिर्मय शरीर धारण करके मैं ज्योतिर्मय मार्ग से तेरे घर गया हूँ और तेरी पूजा देख रहा हूँ!"

श्रीरामकृष्ण एक बार भावावेश में हृदय से कहने लगे — "तू तीन वर्ष तक दुर्गापूजा-उत्सव करेगा" — और यथार्थ में बात वैसी ही हुई। श्रीरामकृष्ण के कहने की ओर ध्यान न देकर चौथे वर्ष जब वे पूजा की तैयारी करने लगे तब उसमें इतने विघ्न आए कि अन्त में उन्हें वह कार्य छोड़ देना पड़ा। प्रथम वर्ष के उत्सव की समाप्ति के बाद उन्होंने अपना दूसरा विवाह किया (१८६९–७०), और दक्षिणेश्वर में आकर अपना काम और श्रीरामकृष्ण की सेवा उन्होंने पुनः पूर्ववत् प्रारम्भ कर दी।

हृदय के इसके बाद के जीवन में मनुष्य के अधःपतन का एक बड़ा विचित्र उदाहरण पाया जाता है। महामाया का प्रभाव बड़ा अद्भुत है। श्रीरामकृष्ण की सभी साधनाएँ उनकी आँखों के सामने हुईं। उनका अद्भुत शक्तिविकास भी हृदय के देखते देखते हुआ, उनके और अपने जीवन के रहस्य को भी वे जान गए थे, पर वेही हृदय समुद्र में रहकर भी सूखे बने रहे। हृदय की भावुकता नहीं बढ़ी; इतना ही नहीं श्रीरामकृष्ण के दिव्य सहवास के कारण जो थोड़ा बहुत भक्तिभाव उनमें उत्पन्न हो गया था वह भी उत्तरोत्तर कम होता गया और उनमें बहुत अधिक स्वार्थबुद्धि आगई! श्रीरामकृष्ण के

दर्शन के लिए बहुत से लोगों को आते देख हृदय को द्रव्य का लोभ उत्पन्न हो गया। हृदय को खुश किए बिना कोई भी मनुष्य, जब चाहे तब और जितनी देर तक चाहे उतनी देर तक, दिल खोलकर श्रीरामकृष्ण से बातें भी नहीं कर सकता था। अतः शिवदर्शन करने के पूर्व प्रत्येक को पहले इस नंदी की यथाशक्ति पादपूजा करने के सिवाय दूसरा मार्ग ही नहीं रहा! धीरे धीरे हृदय का लोभ बढ़ने लगा। इस प्रकार की बातों की भनक श्रीरामकृष्ण के कान में पड़ते ही उन्होंने उनको अनेक प्रकार से समझाया और उपदेश दिया, कई बार उन पर वे गुस्सा भी हुए पर सब व्यर्थ हुआ। आगे चलकर तो हृदय श्रीरामकृष्ण पर ही गुस्सा होने लगे और बीच बीच में उन्हें प्रत्युत्तर भी देने लगे। श्रीरामकृष्ण के प्रति उनका भक्तिभाव भी कम हो गया। उनके व्यवहार से श्रीरामकृष्ण को बड़ा कष्ट होने लगा और उनकी इस प्रकार की अधोगति को देखकर उन्हें बड़ा दुःख हुआ। किसी किसी दिन तो वे इतना तंग करते थे कि बालक स्वभाव वाले श्रीरामकृष्ण के लिए वह असह्य हो जाता था और वे बच्चे के समान रोने लगते थे और हाथ जोड़कर उनसे विनती करने लगते थे।

धीरे धीरे हृदय श्रीरामकृष्ण की नक़ल करने लगे। वे श्रीरामकृष्ण के समान ही गाने गाया करते, नाचते और भावावेश दिखाते थे। उनका दुर्व्यवहार इस हद तक पहुँच गया था कि प्रत्यक्ष श्रीरामकृष्ण और उनके भक्तों के सामने वे श्रीरामकृष्ण के विरुद्ध बोलने लगे और समय समय पर उनकी दिल्लगी उड़ाने लगे! इस कारण सभी को बुरा लगता था और मन में क्रोध भी आता था, पर उसका क्या

उपयोग था? एक दिन योंही किसी कारण से उन्होंने श्रीरामकृष्ण को इतना डांटा कि वे वेचारे रोने लगे और वोले, "माता! तूने मेरे सारे संसार-वन्धन तोड़ दिये, पिता मर गये, माता मर गईं, भाई भी चले गये, सभी अपने अपने मार्ग में चले गये और अव अन्त में क्या हृदय के हाथ से मेरी इस प्रकार की दुर्दशा होनी शेष थी?"— ऐसा कहते कहते उन्हें समाधि लग गई! समाधि के वाद कुछ देहस्मृति होने पर वे हँसते हँसते फिर कहने लगे—"माता! वह मुझ पर सचमुच ही प्रेम करता है। अतः वह चाहे जो वकता है; वेचारा अनजान मनुष्य है वह क्या जाने? उस पर इस प्रकार गुस्सा क्यों होना चाहिए?"—ऐसा कहते हुए वे पुनः समाधिमग्न हो गये! इतना सव हो गया तो भी हृदय की वकवक जारी ही रही।

वाद में एक दिन हृदय की वात निकलने पर पिछली सव वातों की याद करके श्रीरामकृष्ण वोले—"उसने पहले मेरी जैसी सेवा की अन्त में कष्ट भी वैसा ही दिया। उदरशूल से मैं वीमार था। कुछ भी खा नहीं सकता था। पीठ और पेट एक होकर शरीर में केवल हड्डियाँ रह गई थीं, तव एक दिन वह मुझसे क्या कहता है—'इधर देखो, मैं कैसा अच्छा खाता पीता हूँ, तुम्हारे तो नसीव में है ही नहीं, उसे तुम क्या करोगे?' और एक दिन वोला— 'वावा जी, मैं न रहता तो देखता तुम्हारा साधुपन कैसे चलता?' एक दिन तो उसने मुझे ऐसा सताया कि मैं उदास होकर प्राण देने के इरादे से गंगाजी के घाट पर पहुँच गया। (कुछ देर ठहरकर) पर पहले उसने सेवा भी वैसी ही की। माता जैसे अपने छोटे वच्चे को पालती है, वैसी ही सावधानी के साथ उसने मेरी रक्षा की। मुझे तो

देह की भी सुधि नहीं रहती थी। पर वही मेरी सब व्यवस्था ठीक ठीक रखता था। उसके 'उठो' कहने से मैं उठता और 'बैठो' कहने पर बैठता था। माता की इच्छा से यदि वह यहाँ न होता तो मेरा शरीर ही नहीं टिकता!"

बाद में तो काली-मन्दिर के नौकर-चाकरों को भी हृदय तंग करने लगे। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें कई बार ताकीद की कि "इसका फल अच्छा नहीं होगा, तू अपना आचरण सुधार।" परन्तु उन्होंने इसकी कोई परवाह नहीं की। उलटा वे ही श्रीरामकृष्ण को कभी कभी कह दें— "रासमणि के अन्न के सिवाय तुम्हारे लिए कोई मार्ग है ही नहीं इसलिए तुम चाहे सब से डरकर चलो, मैं क्यों किसी की परवाह करूँ? बहुत होगा तो मुझको यहाँ से चले जाने को कह देंगे न? चला जाऊँगा मैं!"

हृदय की उद्दण्डता बढ़ती ही गई और उससे सभी को— और विशेषतः श्रीरामकृष्ण को— अत्यन्त कष्ट होने लगा। हरएक को ऐसा लगने लगा कि "यह बला यहाँ से कब टले, कब वह अपना मुँह काला करे।" हृदय के पाप का घड़ा भरता आ रहा था। काली-मन्दिर की स्थापना के दिन दक्षिणेश्वर में प्रति वर्ष उत्सव हुआ करता था। सन् १८८१ के उत्सव के दिन त्रैलोक्य बाबू (मथुरबाबू के पुत्र) अपने सब कुटुम्बियों समेत वहाँ आये हुए थे। उस दिन सवेरे देवी की पूजा करने के लिए हृदय काली-मन्दिर में गये। वहाँ त्रैलोक्य बाबू की १०-११ वर्ष की छोटी लड़की खड़ी थी। हृदय ने उसके पैरों पर चन्दन पुष्प आदि चढ़ाकर उसकी पूजा की। साधनाकाल में श्रीरामकृष्ण इसी तरह छोटी लड़कियों की जगम्दबा-भावना से पूजा

किया करते थे। हृदय भी वैसा ही करने गये। थोड़ी देर में यह बात त्रैलोक्य बाबू के कानों तक पहुँची। उन्हें हृदय के आचरण से बड़ा दुःख हुआ और उन्होंने अपने नौकर के द्वारा हृदय को धक्के मारकर काली-मन्दिर से निकलवा दिया और काली-मन्दिर में उनके पुनः घुसने की मनाई कर दी।

इस प्रकार श्रीरामकृष्ण और हृदय के सम्बन्ध की इति हुई। इसके बाद हृदय काली-मन्दिर के पास के यदुनाथ मल्लिक के बगीचे में रहने लगे। श्रीरामकृष्ण के पास काली माता के प्रसाद की दो थालियाँ आया करती थीं। उनमें से एक थाली वे रोज दोनों समय हृदय के पास भेज दिया करते थे और बीच बीच में स्वयं भी उनके पास जाकर उनकी हालत देख आया करते थे। इतना सब हो गया पर तो भी हृदय के लोभ की मात्रा कम नहीं हुई। एक दिन तो वे श्रीरामकृष्ण से कहने लगे—"मामा! आप इस मन्दिर में रहकर क्या करते हैं? चलिए हम लोग किसी दूसरी जगह जाकर काली-मन्दिर बनाएं और दोनों वहाँ सुख से रहें!" इसे सुनकर श्रीरामकृष्ण दुःखित होकर बोले—"क्योंरे! अब तू मुझको लेकर लोगों के दरवाज़े दरवाज़े प्रदर्शन कराता घुमायेगा—ऐसा दिखता है।"

अन्त में उनको अपने दुर्व्यवहार पर पश्चात्ताप हुआ। श्रीरामकृष्ण के समाधिस्थ हो जाने पर वे उदर-पोषण के लिए कपड़ा बेचने का रोज़गार करने लगे। उन्हें इस बात का अत्यन्त दुःख होता था कि श्रीरामकृष्ण जैसे महापुरुष के आश्रय में रहते हुए भी उन्होंने उनसे अपना कोई लाभ स्वयं नहीं उठाया और वे श्रीरामकृष्ण के शिष्यवृन्द के साथ मिल जुलकर अपने इस दुःख को कम करने का प्रयत्न करते

थे। इस शिष्य-समुदाय के सामने वे अपना दिल खोलकर श्रीरामकृष्ण की बातें बतलाया करते थे। श्रीरामकृष्ण के साधनाकाल के आरम्भ से वे उनके अत्यन्त निकट सहवास में थे, इस कारण श्रीरामकृष्ण के चरित्र की कई बातों की जानकारी लोगों को उन्हीं के द्वारा प्राप्त हुई है। श्रीरामकृष्ण के शिष्यगण उनसे सदा परामर्श किया करते थे और उन्होंने श्रीरामकृष्ण की जो मनःपूर्वक सेवा की थी उसे स्मरण करते हुए वे लोग उनका उचित सम्मान करते थे। श्रीरामकृष्ण के समाधिस्थ होने के १३ वर्ष बाद अपनी आयु के ६२-६३ वें वर्ष में हृदय अपने ग्राम में मृत्यु को प्राप्त हुए। यह सन् १८९९ की बात है।

---

५ — मथुर की मृत्यु (१८७१)
और
षोड़शी पूजा (१८७३—७४)



"(मथुर ने) कहीं किसी राजकुल में जन्म लिया होगा। उसकी भोगवासना नष्ट नहीं हुई थी।"

"वही (स्वयं उनकी पत्नी) यदि इतनी शुद्ध और पवित्र न होती, तो हमारे संयम का बांध फूटकर मन में क्षुद्र देहबुद्धि का उदय हुआ होता या नहीं — यह कौन कह सकता है?"

—श्रीरामकृष्ण

तीर्थयात्रा से लौटने के बाद २।—२॥ वर्ष तक कोई विशेष घटना नहीं हुई। सन् १८७० में श्रीरामकृष्ण के भतीजे (रामकुमार के लड़के) अक्षय की दक्षिणेश्वर में मृत्यु हो गई। वह १८६६ से १८७० तक श्री राधाकान्त के पुजारी-पद पर था। उसका स्वभाव बहुत ही सरल और प्रेमयुक्त था। वह अत्यन्त भक्त था और अपना बहुतसा समय पूजा, जप, ध्यान में ही बिताता था। उसके इस गुण के कारण श्रीरामकृष्ण का उस पर बड़ा प्रेम था। उसकी मृत्यु से उन्हें बहुत दुःख हुआ और जिस कमरे में वह मरा उस कमरे में उन्होंने फिर कभी भी

पैर नहीं रखा। अक्षय की मृत्यु के बाद उसकी जगह पर श्रीरामकृष्ण के मझले भाई रामेश्वर * की नियुक्ति हुई।

श्रीरामकृष्ण अक्षय की मृत्यु का दुःख भूल जाएं इस उद्देश से मथुरबाबू उन्हें अपनी जमींदारी के गाँव में और अपने कुलगुरु के गाँव में ले गये और वहाँ कुछ दिन व्यतीत करके उन्हें अपने साथ लेकर दक्षिणेश्वर वापस आये।

मथुरबाबू अपनी जमींदारी के गाँव से लौटे। उसके कुछ ही दिनों बाद उनकी प्रकृति बिगड़ने लगी और वे बहुत बीमार हो गये। उनके अवतार-कार्य की समाप्ति का समय आ गया। श्रीरामकृष्ण के पुजारी-पद स्वीकार करने के समय से अब तक पूरे १४ वर्ष मथुरबाबू ने उनकी एकनिष्ठ होकर सेवा की। श्री जगदम्बा की अचिन्त्य लीला से वर्तमान युगावतार श्रीरामकृष्ण के अद्भुत शक्ति-विकास में सहायता करने का उच्च सम्मान उन्हें मिला था। उन्होंने अपना काम कितना सुन्दर किया यह तो उनके अब तक के वृत्तान्त से हम देख ही चुके हैं। अपने जीवन की अन्तिम अवस्था में तो उन्हें श्रीरामकृष्ण

---

* रामेश्वर सन् १८७४ तक पुजारी-पद पर रहे। उस साल वे अपने गाँव वापस गये और वहीं उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर मेरी माता को बड़ा दुःख होगा ऐसा समझकर श्रीरामकृष्ण ने जगदम्बा से प्रार्थना की कि—"मेरी माता को इस दुःख के सहने की शक्ति दे" और अपनी माता के पास जाकर रोते रोते यह दुःखद समाचार उनको सुनाया। श्रीरामकृष्ण बताते थे कि "मुझे मालूम पड़ता था कि इस समाचार को सुनकर माता के हृदय को बड़ा धक्का लगेगा, पर आश्चर्य है कि 'सभी को एक दिन जाना है इसलिए वृथा शोक नहीं करना चाहिए' इस प्रकार वह उल्टा मुझे ही समझाने लगीं। यह हाल देखकर मैं चकित हो गया और श्री जगदम्बा को बारम्बार प्रणाम करने लगा।"

की सेवा के सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं था। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम (रामकृष्ण)।

इस प्रकार उनका मन रामकृष्णमय हो गया था।

श्रीरामकृष्ण जैसे महापुरुष की सेवा अनन्य भाव से करने से उनका मन सहज ही अति उन्नत और निष्काम बन गया था। श्रीरामकृष्ण के प्रति उनकी इतनी भक्तिनिष्ठा और दृढ़ विश्वास था कि वही उनके सर्वस्व परात्पर हो गये थे। पारलौकिक सद्गति के लिए श्रीरामकृष्ण की सेवा के सिवाय और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है, इस बात का उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया था। उनके नित्य के व्यवहार में भी इस अपूर्व भक्ति-विश्वास के उदाहरण देखने में आते थे।

एक बार मथुरबाबू को एक बड़ा फोड़ा हो गया। उसके कारण वे रुग्ण-शय्या में पड़ गये। ५-६ दिन तक श्रीरामकृष्ण के दर्शन न पाने के कारण उन्होंने हृदय के द्वारा उनको बुलवा भेजा। श्रीरामकृष्ण बोले, "मैं वहाँ जाकर क्या करूँगा? मैं क्या कोई वैद्य हूँ कि मैं उसका फोड़ा अच्छा कर दूँगा?" श्रीरामकृष्ण को न आते देख मथुर ने उनके पास बुलौवा पर बुलौवा भेजा। उनका बहुत आग्रह देखकर श्रीरामकृष्ण से भी वहाँ उनके पास गये बिना नहीं रहा गया। वे हृदय को साथ लेकर उनके पास गये। श्रीरामकृष्ण को आये देखकर मथुर के आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। आनन्द की स्फूर्ति में वे एकदम उठकर बैठ गये और बोले — "बाबा, मुझको आप अपने पैर की धूल ले लेने

दीजिये।" श्रीरामकृष्ण हँसते हुए बोले — "वाहरे पागल! मेरे पैर की धूल लेकर तेरा क्या लाभ होगा? उससे क्या तेरा फोड़ा आराम हो जाएगा?" यह सुनकर मथुरबाबू बोले — "बाबा! मैं क्या इतना पागल हूँ कि इस फोड़े को आराम करने के लिए आप के पैर की धूल माँगूँगा, उसके लिए तो ये डाक्टर लोग हैं। मैं तो इस भवसागर को पार करने के लिए आपके पैर की धूल माँग रहा हूँ।" मथुरबाबू के ये अलौकिक भक्ति-विश्वास के शब्द सुनकर श्रीरामकृष्ण का हृदय करुणा से भर गया और वे एकदम समाधिमग्न हो गए। मथुर उनके चरणों को अपने मस्तक पर धारण करके अतिशय आनन्द अनुभव करते हुए अश्रु बहाने लगे। मथुरबाबू का फोड़ा थोड़े ही दिनों में अच्छा हो गया।

एक दिन भावाविष्ट होकर श्रीरामकृष्ण मथुरबाबू से बोले – "मथुर, तेरे (जीवित) रहते तक मैं यहाँ (दक्षिणेश्वर में) रहूँगा।" — इसे सुनकर मथुरबाबू भयभीत हो गए। इसका कारण यह था कि उन्हें अच्छी तरह मालूम हो गया था कि साक्षात् जगदम्बा बाबा का रूप धारण करके मेरी और मेरे परिवार की सदा रक्षा कर रही है। वे बड़ी नम्रता से श्रीरामकृष्ण से बोले – "भला आप ऐसा क्यों कहते हैं बाबा? मेरी पत्नी और द्वारकानाथ (पुत्र) की भी आप पर बड़ी भक्ति है। उनको मैं किसके पास सौंप जाऊँगा? ऐसा नहीं हो सकता, बाबा! उनके लिए आप को यहाँ रहना ही चाहिए।" मथुर की यह बात सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले — "अच्छा, मैं तेरी पत्नी और द्वारका के रहते तक यहाँ रहूँगा, तब तो ठीक होगा न?" और सचमुच हुआ भी यही! जगदम्बा दासी और द्वारकानाथ की मृत्यु के

थोड़े ही दिनों बाद श्रीरामकृष्ण गले के रोग से बीमार पड़े और दक्षिणेश्वर का निवास सदा के लिए छोड़कर अन्यत्र रहने के लिए चले गए। अस्तु—

इस प्रकार १४ वर्ष तक श्रीरामकृष्ण की अश्रुतपूर्व सेवा करके मथुरबाबू सन् १८७१ के जुलाई मास में बीमार पड़े। सात आठ दिनों में उनकी अवस्था खराब हो गई। बोलने में भी उन्हें अत्यन्त कष्ट होता था। श्रीरामकृष्ण पहले ही समझ चुके थे कि मथुर के अलौकिक सेवाव्रत के उद्यापन का समय बिलकुल निकट आ गया है। इस बीमारी में उन्हें देखने के लिए वे स्वयं नहीं गए। हृदय को ही वे प्रति दिन उनके पास भेजा करते थे। आखिर के दिन तो उन्होंने हृदय को भी नहीं भेजा। मथुर का अन्त-समय समीप आया हुआ देखकर उन्हें गंगा जी के तट पर पहुँचा दिया गया। उस दिन दोपहर को (१६ जुलाई) श्रीरामकृष्ण समाधिमग्न होकर बैठे थे। उनका स्थूल शरीर दक्षिणेश्वर में उनके कमरे में था, परन्तु वे अपने दिव्य शरीर से वहाँ अपने परम भक्त के पीछे खड़े होकर उसे ज्योतिर्मय मार्ग से — अत्याधिक पुण्य से प्राप्त होने वाले — स्वर्ग लोक में स्वयं चढ़ा रहे थे।

श्रीरामकृष्ण की समाधि उतरी — उस समय पाँच बज गए थे। श्रीरामकृष्ण हृदय को पुकारकर बोले — "मथुर दिव्य रथ में बैठकर गया। श्री जगदम्बा की सखियों ने उसे बड़े आदर से रथ में बिठाया। मथुर देवीलोक को चला गया।"

बाद में रात को ९–१० बजे मन्दिर के नौकर-चाकर, पुजारी आदि वापस आए और उन्होंने सन्ध्या के पाँच बजे मथुरबाबू का

देहान्त हो जाने की वार्ता बतलाई। मथुरबाबू * की मृत्यु के बाद छः महीने बीत गए। दक्षिणेश्वर की सभी व्यवस्था उनकी मृत्यु के बाद भी ठीक तरह से चल रही थी। लगभग इसी समय श्रीरामकृष्ण की साधना के इतिहास में एक विशेष घटना हुई जिसका यहाँ विस्तार-पूर्वक उल्लेख करना आवश्यक है।

हम कह आए हैं कि वेदान्त-साधना हो जाने के बाद कुछ दिनों तक श्रीरामकृष्ण अपने गाँव में जाकर रहे और वहाँ उनकी पत्नी भी मायके से आगई थीं। श्रीरामकृष्ण जब तक वहाँ रहे, तब तक वे उन्हें अनेक प्रकार की शिक्षा देते रहे और छोटी होने पर भी तीक्ष्ण बुद्धि होने के कारण उस शिक्षा का उनके मन पर बहुत असर हुआ। उनका पवित्र और शुद्ध मन श्रीरामकृष्ण की दिव्य संगति में आनन्दपूर्ण हो गया था। श्रीरामकृष्ण के दक्षिणेश्वर लौट आने पर जब वे अपने मायके वापस गईं तब उनके पूर्व के स्वभाव को बदले हुए देखकर उनके घर के लोगों को आश्चर्य हुआ, पर इसका कारण उनके ध्यान में नहीं आया।

---

* रानी रासमणि मृत्युशय्या पर पड़ी हुई जिस भय से व्याकुल थीं—(भाग १ प्रकरण २०, भैरवी ब्राह्मणी का आगमन) वह भय अन्त में सच्चा निकला। मथुरबाबू के जीते जी पद्ममणि और जगदम्बा दासी के बीच मंदिर की संपत्ति के विषय में झगड़ा शुरू हो गया। मथुर की मृत्यु के बाद तो इस कलह ने बड़ा रूप धारण कर लिया और वह हाईकोर्ट तक पहुँचा। हाईकोर्ट में उसका निपटारा हुआ और उस कोर्ट का निर्णय दोनों पक्षों को स्वीकृत हुआ। पर बाद में पद्ममणि और जगदम्बा दासी की मृत्यु के बाद सन् १८८८ में पुनः उनके लड़कों में (रानी रासमणि के नातियों में) झगड़ा शुरू हुआ। इन सब झगड़ों में मंदिर की सम्पत्ति रहन हो गई और वह अब तक ऋणमुक्त नहीं हुई है।

इस बात को अब चार वर्ष होने को आये थे और उन्हें १८ वाँ वर्ष लग गया था। अपने ऊपर अपने पति का पूर्ण प्रेम जानकर वे आनन्द में मग्न रहती थीं तथापि गाँव के लोग उनके सम्बन्ध में जो तरह तरह की बातें कहते थे उनसे उनके मन पर कुछ न कुछ परिणाम हो ही जाता था। उनके मन में आता था कि "क्या उनका स्वभाव सचमुच बदल गया है? क्या वे सचमुच पागल हो गये हैं?" उनकी सखी-सहेलियाँ उन्हें 'पगले की औरत' कहकर चिढ़ाती थीं तब उन्हें बड़ा दुःख होता था और कभी कभी सोचने लगती थीं कि "स्वयं दक्षिणेश्वर जाकर सच बात क्या है सो अपनी आँखों से देख लूँ। भला यदि यथार्थ में वे पागल हो गये हों, तो मुझे भी यहाँ रहकर क्या करना है? वहीं उनके पास रहकर उनकी सेवा करनी चाहिए।" यही सोचकर उन्होंने जितनी जल्दी हो सके दक्षिणेश्वर जाने का निश्चय किया।

फाल्गुन की पूर्णिमा को गंगास्नान के लिए कई जगह से लोग कलकत्ता आया करते हैं। जयरामबाटी से भी उस वर्ष पूर्णिमा के स्नान के लिए बहुत से लोग कलकत्ता जाने वाले थे। उनमें उनके सम्बन्धियों के यहाँ की स्त्रियाँ भी थीं। उनके साथ जाने के लिए अच्छा अवसर देखकर उन्होंने अपने पिता से जाने की अनुमति माँगी। रामचन्द्र मुखोपाध्याय ने उनके मन के उद्देश को ताड़ लिया और उन्होंने भी उनके साथ कलकत्ता चलने का निश्चय किया।

प्रस्थान के दिन प्रातःकाल सूर्योदय होते ही लोग चल पड़े। उन दिनों रेल न होने के कारण साधारण स्थिति के लोग पैदल ही जाया करते थे। दिन को चलते थे और रात को किसी गाँव या

धर्मशाला में ठहर जाते थे। इसी क्रम से वे लोग जाते थे। परस्पर एक दूसरे की संगति में सभी यात्री बड़े आनन्द से जा रहे थे कि रास्ते में एक विघ्न आ पड़ा। चलने का अभ्यास न होने के कारण श्रीरामकृष्ण की पत्नी रास्ते में ही बीमार हो गई और रामचन्द्रबाबू को रास्ते में एक धर्मशाला में ही ठहर जाना पड़ा।

इस तरह रास्ते में ही बीमार पड़ जाने से श्रीरामकृष्ण की पत्नी को तथा उनके साथ वालों को बहुत कष्ट हुआ। तथापि उस धर्मशाला में रहते समय उन्हें एक अद्भुत दर्शन प्राप्त हुआ जिससे उन्हें बहुत धैर्य मिला। इस सम्बन्ध में वे एक बार श्रीरामकृष्ण के स्त्री-भक्तों से कहती थीं कि "मेरा शरीर ज्वर के दाह से जल रहा था और मैं बेसुध पड़ी हुई थी; ऐसी अवस्था में मुझे ऐसा दिखाई दिया कि एक स्त्री मेरे सिरहाने के पास आकर बैठी है, उसका वर्ण काला है, तथापि रूप बहुत सुन्दर है। पास में बैठकर वह मेरे सिर पर हाथ फेरने लगी। उसके शीतल और कोमल हस्तस्पर्श से मेरा दाह कम पड़ने लगा। मैं उससे पूछने लगी—'देवी, आप कहाँ से आई हैं?' वह बोली—'दक्षिणेश्वर से।' मैं चकित होकर बोली—'क्या? आप दक्षिणेश्वर से आई हैं? मैं भी वहीं जाने के लिए रवाना हुई हूँ। मेरी इच्छा है कि वहाँ जाकर उनके (श्रीरामकृष्ण के) दर्शन करूँ और उनकी सेवा में कुछ समय बिताऊँ। पर यह सब विचार एक ओर रहा और मैं यहाँ बीमार पड़ गई हूँ। हे देवि! क्या मेरे भाग्य में उनके दर्शन हैं?' वह स्त्री बोली—'हैं नहीं तो?. हाँ अवश्य हैं। तू अब अच्छी हो जाएगी, वहाँ जाएगी, उनका दर्शन करेगी, सब कुछ अच्छा ही अच्छा होगा। तेरे लिए ही तो मैंने वहाँ उन्हें रोक रखा है।' मैं

बोली — 'सच? पर हे देवि! आप मेरी कौन हैं?' वह बोली — 'मैं तेरी बहन हूँ।' यह सुनकर मैं बोली — 'सच? इसीलिए क्या आप आई हैं?' इतना संवाद होने के बाद मैं होश में आ गई।"

दूसरे दिन उनका ज्वर उतर गया और उसके बाद एक दो दिन वहीं बिताकर फिर सब लोग धीरे धीरे कलकत्ते की ओर रवाना हुए। रास्ते में एक सवारी भी मिल गई। इस तरह रास्ते में जगह जगह पर विश्राम करते सब लोग दक्षिणेश्वर पहुँच गए। रात को लगभग नौ बजे माता जी काली-मन्दिर में पहुँचीं। अपनी पत्नी को बीमारी की अवस्था में ही वहाँ आई हुई देखकर श्रीरामकृष्ण को दुःख हुआ। सर्दी आदि लगकर ज्वर पुनः न आ जाय इस डर से उन्होंने उनके लिए अपने ही कमरे में एक ओर अलग बिस्तर बिछा दिया और वे दुःख के साथ बारम्बार कहने लगे — "अरे, तू इतने दिनों के बाद क्यों आई? अब क्या मेरा मथुर जीवित है जो तेरा ठीक ठीक प्रबन्ध करेगा?" दूसरे दिन सवेरे ही उन्होंने वैद्य को बुलवाकर औषधि दिलाना शुरू किया। तीन चार दिन दवा-पानी का ठीक प्रबन्ध करके ज्वर दूर हो जाने पर नौबतखाने में अपनी माता के पास उनके रहने का प्रबन्ध श्रीरामकृष्ण ने कर दिया।

उनकी पत्नी का संशय दूर हो गया और उन्हें निश्चय हो गया कि हमारे पति जैसे पहिले थे, वैसे ही अभी भी हैं। और यह देखकर उनके आनन्द की सीमा नहीं रही तथा वे नौबतखाने में रहकर अपने पति और सास की मन लगाकर सेवा-शुश्रूषा करने में अपना समय बिताने लगीं। अपनी पुत्री को आनन्दित देख उनके पिता कुछ दिन वहाँ रहकर अपने गांव को लौट गये।

हम पहले बता चुके हैं कि कामारपुकूर में रहते समय श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी को शिक्षा देना प्रारम्भ कर दिया था; परन्तु कुछ दिनों में वे दक्षिणेश्वर लौट आए, इसलिए उनकी शिक्षा का कार्य और अपनी तपश्चर्या को कसौटी पर कसने का उनका उद्देश अधूरा ही रह गया। स्वयं अपने आप वे किसी भी कार्य में अग्रसर नहीं होते थे; श्री जगदम्बा की इच्छा से जो कार्य सामने आ जाता था उसी को मन लगाकर वे पूरा करते थे। उनका यह स्वभाव उनकी प्रकृति में दृढ़ हो गया था। अतः उन्होंने अपनी तपश्चर्या को कसौटी पर कसने का विचार, अपनी पत्नी के स्वयं वहाँ आने तक, कभी नहीं किया। पत्नी को शिक्षा देने के लिए या अपनी तपस्या की परीक्षा करने के लिए स्वयं उन्होंने अपनी पत्नी को नहीं बुलवाया। पर अब पत्नी के दक्षिणेश्वर में ही आ जाने के कारण उन्होंने यह कार्य पूरा करने का निश्चय किया, और सब तरह के सांसारिक विषयों से लगाकर गहन आध्यात्मिक विषय तक के सम्बन्ध की शिक्षा देना उन्होंने आरम्भ किया। उन्होंने उनसे कहा — "चांद जैसे सभी लड़कों का मामा है वैसे ही ईश्वर भी हम सब का है; उसकी भक्ति करने का अधिकार सभी को है; जो उसकी भक्ति करेगा उसे वह दर्शन देकर कृतार्थ करेगा। तू उसकी भक्ति करेगी, तो तुझको भी वह दर्शन देगा।" श्रीरामकृष्ण की शिक्षापद्धति ऐसी थी कि वे शिष्य पर बहुत प्रेम करके प्रथम उसे बिलकुल अपना लेते थे और तत्पश्चात् वे उसे केवल उपदेश देकर ही सन्तुष्ट नहीं होते थे, वरन् अपने उपदेश के अनुसार शिष्य चल रहा है या नहीं इस ओर भी बड़ी बारीकी से ध्यान रखते थे और कहीं उसकी गलती होती थी

तो उसे समझा बुझाकर पुनः उचित मार्ग में लगाते थे। अपनी पत्नी के सम्बन्ध में भी उन्होंने इसी पद्धति का अवलम्बन किया। दक्षिणेश्वर में आते ही उन्होंने अपनी पत्नी को बीमार देखकर उन्हें अपने ही कमरे में ठहराया और उनके आराम होने पर जब वे नौबतखाने में अपनी सास के पास रहने लगीं तब भी रात को उन्हें अपनी शय्या पर भी सोने की अनुमति दे दी! इससे पत्नी को उनके प्रति कितनी ममता उत्पन्न हुई होगी और उनके सभी उपदेशों को वे कितनी तत्परता से मानती होंगी इसकी कल्पना पाठक ही करें। श्रीरामकृष्ण के इस समय के दिव्य आचरण का वृत्तान्त हम पहले ही (विवाह प्रकरण में) पाठकों को बतला चुके हैं। अब यहाँ केवल एक दो नई बातें ही बताना शेष है।

इस समय एक दिन उनके पैर दबाते दबाते माता जी ने उनसे एकाएक पूछा, "मुझको आप कौन समझते हैं?" श्रीरामकृष्ण बोले — "जो माता उस काली-मन्दिर में है, वही इस शरीर को जन्म देकर अभी नौबतखाने में निवास करती है, और वही यहाँ पर इस समय मेरे पैर दबा रही है। तू मुझे सचमुच ही सदा साक्षात् आनन्दमयी के स्वरूप में ही दिखाई देती है।"

और भी एक दिन अपनी पत्नी को अपने समीप ही सोती हुई देखकर अपने मन को संबोधन करते हुए श्रीरामकृष्ण विचार करने लगे, "अरे मन, इसी को स्त्री-शरीर कहते हैं, सारा संसार इसी को परमभोग्य वस्तु मानकर उसकी प्राप्ति के लिए सदा लालायित रहकर अनेक प्रयत्न करता रहता है, परन्तु इसके ग्रहण करने से देहासक्ति में सदा के लिए फँस जाने से सच्चिदानन्द ईश्वर को प्राप्त करना असम्भव

हो जाता है। हे मन, सच सच बोल, भीतर एक और बाहर दूसरा ऐसा मत रख — तुझे यह शरीर चाहिए या ईश्वर चाहिए? यह शरीर चाहिए तो यह देख यहाँ तेरे पास ही पड़ा है, इसे ग्रहण कर" — ऐसा विचार करके श्रीरामकृष्ण ज्योंही अपनी पत्नी के शरीर को स्पर्श करने ही वाले थे कि उनका मन कुंठित होकर उन्हें इतनी गहरी समाधि लग गई कि उन्हें रात भर देह की सुधि भी न रही। प्रातःकाल हो जाने के बाद कितने ही बार उनके कान में ईश्वर का नामस्मरण करने पर उनकी वह समाधि उतरी।

पूर्ण यौवनयुक्त श्रीरामकृष्ण और उनकी नवयौवनसम्पन्न पत्नी के दिव्यलीला-विलास के ऐसे अपूर्व चरित्रों की बातें — जो हमने स्वयं श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख से सुनी हैं — सारे जगत् के आध्यात्मिक इतिहास में अद्वितीय हैं। किसी भी अवतारी महापुरुष के सम्बन्ध में ऐसे अलौकिक आचरण की बातें सुनने में नहीं आईं। इन सब बातों को सुनकर मन बिलकुल आश्चर्य में डूब जाता है। उन दिनों श्रीरामकृष्ण कई रातें समाधि में ही बिता देते थे और समाधि उतरने के बाद भी उनका मन इतनी उच्च अवस्था में रहता था कि उनमें एक क्षण के लिए भी साधारण देहबुद्धि का उदय नहीं होता था।

इस प्रकार दिन के बाद दिन, मास के बाद मास बीत चले और एक वर्ष से भी अधिक समय चला गया; तथापि उन अद्भुत श्रीरामकृष्ण और उनकी उस अद्भुत धर्मपत्नी के मनःसंयम का बाँध किंचित् भी नहीं टूटा। एक क्षण के लिए भी उनके मन में तुच्छ कामवासना का उदय नहीं हुआ। इस समय की याद करके श्रीरामकृष्ण कभी कभी हम से कहा करते थे — "वही (पत्नी) यदि इतनी शुद्ध

और पवित्र न होती और कामासक्ति से विवेकहीन बन जाती, तो हमारे संयम का बाँध टूटकर मन में देहबुद्धि का उदय हो जाता या नहीं, यह कौन कह सकता है? उसके साथ एकान्त में रहते हुए मुझे निश्चय हो गया कि विवाह के बाद मैंने जो श्री जगदम्बा से अत्यन्त व्याकुलता से प्रार्थना की थी कि, हे माता! इसके मन से सब काम-वासना नष्ट कर दे —— उस प्रार्थना को माता ने अवश्य सुन लिया।"

एक वर्ष से अधिक समय तक इस प्रकार पत्नी के साथ रहने पर भी जब श्रीरामकृष्ण के मन में काम-कल्पना का किंचित् भी उदय नहीं हुआ, तब उन्हें निश्चय हो गया कि मैं श्री जगदम्बा की कृपा से इस कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया और मेरे मन में अब आगे भी काम-विकार का उदय होना असम्भव है! इस निश्चय के कारण उनके मन में एक अद्‌भुत इच्छा उत्पन्न हुई और उसके अनुसार उन्होंने तुरन्त ही अनुष्ठान करने का निश्चय भी कर लिया। इसके सम्बन्ध में हमने श्रीरामकृष्ण और श्री माता जी दोनों के मुँह से जो सुना है वह यहाँ पर पाठकों के लिए लिखा जा रहा है।

आज ज्येष्ठ की अमावस्या है, फलहारिणी कालिका की पूजा का पुण्य दिवस है। दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में भी आज इसका महोत्सव है। आज श्री जगदम्बा की पूजा स्वयं करने की इच्छा से श्रीरामकृष्ण ने पूजा की सामग्री एकत्रित करना आरम्भ कर दिया था, परन्तु आज की पूजा की तैयारी मन्दिर में न होकर उनके ही कमरे में उनकी ही इच्छा के अनुसार गुप्त रूप से हो रही थी। देवी के बैठने के लिए एक सुन्दर चौरंग तैयार करके रखा गया! धीरे धीरे दिन डूब गया और रात हुई। अमावस्या की कालिमा सर्वत्र फैली हुई थी। आज

मन्दिर में देवी की विशेष पूजा रहने के कारण, श्रीरामकृष्ण के लिए पूजा की सभी तैयारी ठीक ठीक करके, हृदय श्री जगदम्बा के मन्दिर में चला गया। राधाकान्त के मन्दिर में रात्रि की पूजा निपटाकर वहाँ का पुजारी श्रीरामकृष्ण की सहायता के लिए आया। पूजा की सब तैयारी होते होते नौ बज गये। पूजा के समय अपने कमरे में उपस्थित रहने के लिए श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी को सन्देशा भेजा जिससे वह भी वहाँ आई। सब तैयारी हो चुकी है, यह देखकर श्रीरामकृष्ण पूजा करने बैठ गये।

सर्व पूजा-सामग्री का प्रोक्षण करके श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी से श्री जगदम्बा के लिए रखे हुए चौरंग पर बैठ जाने के लिए इशारा किया। श्रीरामकृष्ण के इस कृत्य का थोड़ा बहुत अर्थ पहले ही उनके ध्यान में आ जाने से उन्हें अर्धबाह्य अवस्था प्राप्त हो गई थी। अतः मैं क्या कर रही हूँ यह उनके ध्यान में ठीक ठीक न आते हुए मोहिनी से वशीभूत की तरह वह चौरंग पर उत्तराभिमुख होकर बैठ गईं; पास ही रखे हुए कलश में से पानी लेकर श्रीरामकृष्ण ने अपनी स्त्री पर यथाविधि सिंचन किया। तदनन्तर मंत्रोच्चारण समाप्त करके वे प्रार्थना-मंत्र कहने लगे:—

"हे बाले! हे सर्वशक्ति-अधीश्वरी माते! त्रिपुरसुन्दरी! सिद्धि का द्वार खोल दे और इसका (पत्नी का) मन और शरीर पवित्र करके, इसमें प्रकट हो और सब का कल्याण कर!"

इसके बाद श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी का साक्षात् श्री जगदम्बा-ज्ञान से षोडशोपचार पूजन किया और नैवेद्य दिखलाकर उसमें के पदार्थों का थोड़ा थोड़ा अंश अपने हाथ से उनके मुख में डाला। यह

सर्व विधि पूर्ण होते होते उनकी पत्नी को समाधि लग गई ! अर्धवाह्य दशा में मंत्रोच्चार करते करते श्रीरामकृष्ण भी समाधिमग्न हो गये ! देवी और उसके पुजारी दोनों ही एक रूप हो गए !

कितना ही समय बीत गया। रात्रि का द्वितीय प्रहर भी बीतकर बहुत समय हो गया तब कहीं श्रीरामकृष्ण की समाधि उतरी। पूर्ववत् अर्धवाह्य दशा प्राप्त होने पर उन्होंने देवी से आत्मनिवेदन किया। तदनन्तर अपने जप की माला, अपनी साधनाओं के फल और स्वयं अपने आपको देवी के पादपद्मों में स्थायी रूप से चढ़ाकर पुनः मंत्रोच्चारण करते हुए वे उसे प्रणाम करने लगे:—

"हे सर्वमंगलमांगल्ये ! हे सर्वकर्मनिष्पन्नकारिणि ! हे शरण-दायिनि ! त्रिनयने ! शिवगेहिनि ! गौरी ! हे नारायणि ! तुझे शतशः प्रणाम है !"

पूजा समाप्त हुई। मनुष्य-देहधारिणी श्री जगदम्बा की पूजा करके श्रीरामकृष्ण ने अपनी अलौकिक साधनाओं की समाप्ति की !

इस षोड़शी पूजा के बाद लगभग पाँच मास तक माताजी श्रीरामकृष्ण के समीप रहीं। पहले के समान ही वे दिन को नौबत-खाने में अपनी सास की सेवा में समय बिताती थीं और रात को श्रीरामकृष्ण के पास ही शयन करती थीं। श्रीरामकृष्ण रात दिन समाधिमग्न रहते थे और कभी कभी उन्हें ऐसी गहरी समाधि लग जाती थी कि उनके शरीर पर मृतक के लक्षण दिखाई देते थे ! श्रीरामकृष्ण को किस समय कैसी समाधि लग जायगी, इसका कोई ठिकाना नहीं था। इसी डर से माताजी को सारी रात नींद नहीं आती थी। एक दिन तो बहुत समय बीत गया, परन्तु फिर भी समाधि नहीं उतरी,

इस डर से वे हृदय को नींद से जगाकर लाईं। आने पर हृदय ने उनके कान में बहुत देर तक नामोच्चारण किया तब उनकी समाधि उतरी। इस बात को जानकर कि अपनी पत्नी को अपने कारण रोज नींद नहीं आती श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपनी माता के पास नौबतखाने में रात को सोने के लिए कह दिया। इस प्रकार एक वर्ष और चार मास दक्षिणेश्वर में बिताकर श्री माताजी कार्तिक मास में कामारपुकूर लौट गईं।

---

६ — साधकभाव सम्बन्धी कुछ और बातें

"वही पुरुष — डुबकी लगाकर इधर बाहर निकला तो कृष्ण हो गया और उधर बाहर निकला तो ईसा हो गया।"

"सिक्खों के दस गुरु राजा जनक के अवतार हैं।"

"साधना करने से सभी को ऐसी अवस्था प्राप्त हो जाती हो, सो बात नहीं है।

(अपनी ओर उँगली दिखाकर) "इसमें कुछ विशेषता है।"

—श्रीरामकृष्ण

षोड़शी पूजा समाप्त होने से श्रीरामकृष्ण का अलौकिक साधना-यज्ञ पूर्ण हो गया। ईश्वरानुराग की जो पवित्र अग्नि उनके हृदय में लगातार बारह वर्षों से धधक रही थी और जिसकी कठोर दाहक शक्ति ने उनके मन में इतने दिनों तक प्रचण्ड खलबली मचाकर उन्हें लगातार अशान्त रखकर उनके मन द्वारा अनेक प्रकार की साधनाएँ कराईं, और उसके बाद भी कुछ दिनों तक जिसने उन्हें पूर्ण शान्ति-लाभ नहीं होने दिया, वही पवित्र अग्नि षोड़शी पूजा की पूर्णाहुति पाकर इतने दिनों बाद कुछ शान्त हुई। और वह शान्त न हो तो करे क्या? श्रीरामकृष्ण के पास तो अब कुछ भी शेष नहीं बचा था जिसे उन्होंने पहले ही आहुति न कर दिया हो। धन, मान, नाम, यश आदि सभी ऐहिक भोगेच्छाओं का तो उन्होंने कब का अग्नि में होम कर दिया था। मन, बुद्धि, अहंकार आदि सभी की उन्होंने उस अग्नि के विकराल मुख में एक के बाद एक आहुति दे दी थी। हाँ,

एक बात बच गई थी — वह थी नानाप्रकार की साधना करके भिन्न भिन्न रूप में जगदम्बा के दर्शन करने की इच्छा। वही उनके मन में इतने दिनों तक अवशिष्ट रह गई थी। उसे भी उन्होंने उसी को समर्पण कर दिया। तब फिर वह अग्नि शान्त न हो तो क्या हो?

परन्तु षोडशी पूजा के बाद ज्योंही किसी प्रकार एक वर्ष बीता कि उनके मन में एक और मत की साधनाएँ करने की इच्छा उत्पन्न हुई (सन् १८७५)। लगभग उसी समय उनका श्रीशंभुचन्द्र मल्लिक से परिचय हुआ था, और उनके मुँह से बाइबिल के श्री ईसामसीह के पवित्र जीवन और सम्प्रदाय की थोड़ी बहुत जानकारी उन्हें प्राप्त हो गई थी। ईसाई मत का अवलम्बन करके उस मार्ग का अत्युच्च ध्येय प्राप्त करने की उत्कण्ठा उन्हें होने लगी और श्री जगदम्बा ने भी अपने बालक की यह इच्छा अपनी अचिन्त्य लीला से अद्भुत उपाय द्वारा पूर्ण कर दी।

बात ऐसी हुई:— काली-मन्दिर के अहाते के दक्षिण की ओर यदुनाथ मल्लिक का बगीचा और बँगला था। श्रीरामकृष्ण कभी कभी घूमते-फिरते वहाँ पहुँच जाते थे। श्रीयुत यदुनाथ और उनकी माता दोनों की श्रीरामकृष्ण के प्रति बड़ी भक्ति थी और ये दोनों सदा श्रीरामकृष्ण के साथ ईश्वरी बातें करके आनन्द प्राप्त करते थे। किसी समय उनमें से यदि कोई घर में नहीं होता था और उस समय यदि श्रीरामकृष्ण वहाँ पहुँच जाते थे तो नौकर लोग उन्हें बैठक-खाने में ले जाकर बैठा देते थे। बैठक की दीवालों पर अनेक सुन्दर तैल-चित्र लगे हुए थे। उन चित्रों में अपनी माता की गोद में बैठे हुए श्री ईसामसीह का भी एक सुन्दर चित्र था। श्रीरामकृष्ण कहते थे, एक दिन वे उस बैठक में बैठे हुए उस चित्र की ओर अत्यन्त

तन्मय होकर देखते देखते मन में ईसामसीह के चरित्र का विचार कर रहे थे। इतने ही में उन्हें ऐसा दिखाई दिया कि वह चित्र जीवित, ज्योतिर्मय हो गया और 'मेरी' और 'ईसा' के शरीर से तेज की किरणें बाहर निकलकर उनके शरीर में प्रविष्ट होकर उनके सर्व मानसिक भावों का समूल परिवर्तन कर रही हैं। अपने अन्तःकरण से समस्त हिन्दू संस्कारों को न जाने कहाँ लुप्त होते और उनके स्थान में दूसरे ही संस्कार उत्पन्न होते देखकर श्रीरामकृष्ण ने अपने को सँभालने का बहुत उपाय किया और वे अधीर होकर श्री जगदम्बा से कहने लगे — "माता! माता! तू आज मुझे यह क्या कर रही है?" पर किसी का कुछ उपयोग नहीं हुआ। ये नवीन संस्कार बड़े प्रबल वेग से उत्पन्न हुए और उन्होंने उनके मन के सारे हिन्दू संस्कारों को डुबा दिया, जिससे उनका देवी-देवताओं का भक्तिप्रेम न जाने कहाँ भाग गया, और उसके स्थान में उनके मन में ईसाई सम्प्रदाय के प्रति भक्ति और विश्वास उत्पन्न हो गया और उन्हें ऐसा दिखाई देने लगा कि मैं एक गिर्जाघर (चर्च) में ईसा की मूर्ति के सामने खड़ा होकर उसे धूप-दीप दिखाकर उसके दर्शन के लिए अत्यन्त व्याकुलता से प्रार्थना कर रहा हूँ। दक्षिणेश्वर में लौट आने पर भी उसी ध्यान में वे निमग्न थे और श्री जगदम्बा के दर्शन आदि लेने की उन्हें पूरी विस्मृति हो गई! तीसरे दिन संध्या समय पंचवटी के नीचे सहज ही टहलते हुए उन्होंने एक अपूर्व तेजसम्पन्न गौर वर्ण के भव्य पुरुष को स्थिर दृष्टि से देखते हुए अपनी ओर आते हुए देखा। उसे देखते ही उन्होंने पहिचान लिया कि यह कोई विदेशी पुरुष है। उसके नेत्र विशाल थे, नाक कुछ चपटी होने पर भी उसके

मुखमण्डल की अपूर्व शोभा में कुछ कमी नहीं हुई थी। उस पुरुष को देखकर श्रीरामकृष्ण सोचने लगे — "यह देवतुल्य पुरुष कौन होगा?" इतने में ही वह पुरुष अत्यन्त समीप आ पहुँचा और एकाएक श्रीरामकृष्ण के अन्तःकरण से यह ध्वनि निकल पड़ी — "अरे यह पुरुष तो ईसा ही है!" इतने में ही श्रीरामकृष्ण को आलिंगन करके वह पुरुष उन्हीं के शरीर में अन्तर्धान हो गया और तत्क्षण श्रीरामकृष्ण को गहरी समाधि लग गई! इस तरह श्रीरामकृष्ण को ईसाई धर्म का अन्तिम ध्येय प्राप्त हुआ।

फिर एक दिन सहज ही बोलते बोलते श्रीरामकृष्ण हम लोगों से कहने लगे — "क्यों रे, तुम लोग तो बाइबिल पढ़े हो — तब बताओ भला, उसमें ईसा के शरीर का वर्णन किस तरह किया गया है।" हमने उत्तर दिया — "महाराज, उनके शरीर का वर्णन तो हमने बाइबिल में कहीं नहीं पाया, तथापि ईसा यहूदि जाति के होने के कारण गौरवर्ण के रहे होंगे, उनकी आँखें बड़ी और नाक अच्छी लम्बी रही होगी इसमें कोई संशय नहीं है।" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले — "पर मुझे तो उनकी नाक चपटी दिखाई दी। मालूम नहीं मुझे ऐसा क्यों दिखा।" इस पर हमने कोई उत्तर नहीं दिया, तथापि हमें इतना अवश्य मालूम पड़ा कि श्रीरामकृष्ण को उनके भावावेश में दिखी हुई मूर्ति सचमुच ईसा की आकृति के समान कैसे हो सकती है। अस्तु —

श्रीरामकृष्ण के समाविस्थ हो जाने के बाद हमें यह पता लगा की ईसामसीह के शारीरिक आकार के सम्बन्ध में तीन प्रकार के मत प्रचलित हैं, उनमें से एक मत यह भी है कि उनकी नाक चपटी थी!

बुद्धदेव के विषय में अन्य हिन्दुओं के समान ही उनका भी यही विश्वास था कि बुद्धदेव प्रत्यक्ष ईश्वर के अवतार थे। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि पुरीक्षेत्र के श्री जगन्नाथजी की मूर्ति में श्री बुद्ध देव का प्रकाश अभी भी है। श्री जगन्नाथ क्षेत्र में जाने से जाति-भेद की भावना दूर हो जाती है। इस तरह उस क्षेत्र की महिमा सुनकर उन्हें वहाँ जाने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई पर वहाँ जाने से मेरा यह शरीर नहीं रहेगा यह सोचकर उन्होंने वहाँ जाने का विचार त्याग दिया। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि श्रीजगन्नाथजी का प्रसाद ग्रहण करने से मनुष्य का मन तत्काल पवित्र हो जाता है। विषयी लोगों की संगति में कुछ समय व्यतीत हो जाने पर वे स्वयं कुछ गंगाजल और श्रीजगन्नाथ देव का प्रसाद ग्रहण करते थे और अपने शिष्यों से भी उसी तरह करने के लिए कहते थे! अपने परम-भक्त श्रीयुत गिरीशचन्द्र घोष लिखित बुद्धचरित्र नाटक को देखकर श्रीरामकृष्ण बोले — "श्री बुद्धदेव ईश्वर के अवतार थे इसमें कोई संशय नहीं है, उनके बताये हुए मत में और वैदिक ज्ञानमार्ग में कुछ भी अन्तर नहीं है।"

जैन धर्म और सिक्ख धर्म पर भी श्रीरामकृष्ण की भक्ति थी। उनके कमरे में अन्य देवी-देवताओं के चित्रों के साथ साथ श्री महा-वीरजी तीर्थंकर की एक पाषाणमूर्ति और ईसामसीह की तसवीर थी। प्रतिदिन प्रातः सायं अन्य देवताओं के चित्रों के साथ इन चित्रों को भी वे धूपदीप दिखाया करते थे। जैन और सिक्ख धर्म के प्रति उनके मन में श्रद्धा तो थी ही, पर हमने कभी नहीं सुना कि उन्होंने तीर्थंकरों में से या सिक्खों के दस गुरुओं में से किसी को ईश्वरावतार कहा है।

सिक्ख लोगों के दस गुरुओं के सम्बन्ध में वे कहते थे कि "ये सब जनक ऋषि के अवतार हैं; सिक्ख लोगों के मुँह से मैंने सुना है कि देहत्याग के समय राजा जनक के मन में लोक-कल्याण करने की वासना उत्पन्न हो गई थी, और इसी कारण उन्होंने नानक से लगाकर गुरु गोविन्द तक दस गुरुओं के रूप में अवतार लेकर सिक्ख धर्म की स्थापना की।"

इस प्रकार संसार के सभी मुख्य मुख्य धर्मों से श्रीरामकृष्ण ने परिचय प्राप्त कर लिया था और वे उनमें से बहुतों का अनुष्ठान करके उन उन धर्मों में बताये हुए ध्येय तक भी पहुँच चुके थे। इस प्रकार स्वयं भिन्न भिन्न धर्मों के अनुष्ठान करने और प्रत्येक धर्म के अन्तिम ध्येय के एक ही होने का अनुभव कर लेने के कारण उनकी यह दृढ़ धारणा हो गई थी कि "जितने मत हैं उतने ही मार्ग हैं।" किसी भी मार्ग से जाने से ईश्वर की निःसंदेह प्राप्ति होती है। अन्तःकरण में प्रबल श्रद्धा, विश्वास और भक्ति चाहिए। श्रीरामकृष्ण के इस सिद्धान्त का आध्यात्मिक राज्य में अपूर्व मूल्य है; क्योंकि यद्यपि यह सिद्धान्त पूर्व काल में भी बताया गया था तथापि श्रीरामकृष्ण के समय तक किसी भी एक ही व्यक्ति ने भिन्न भिन्न धर्मों का स्वयं अनुष्ठान करके उस अनुभव के आधार पर इस सिद्धान्त का प्रतिपादन नहीं किया था। श्रीरामकृष्ण ने स्वयं भिन्न भिन्न धर्मों का अनुष्ठान करने के बाद ही अपनी अधिकारयुक्त वाणी से "जितने मत उतने मार्ग हैं" इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया — कहना न होगा कि इसी कारण आध्यात्मिक जगत् में उसका इतना बड़ा मूल्य है।

द्वैत, विशिष्टाद्वैत और अद्वैत तीन भिन्न भिन्न मत न होकर मनुष्य

की आध्यात्मिक उन्नति की ये केवल तीन भिन्न भिन्न सीढ़ियाँ हैं और हरएक को इन तीन सीढ़ियों पर से जाना पड़ता है — इस सिद्धान्त को श्रीरामकृष्ण ने अपने निज के प्रत्यक्ष अनुभव से लोगों के सामने रखा। इन तीनों मतों का उपनिषदादि शास्त्रों में ऋषियों द्वारा प्रतिपादन होने के कारण शास्त्रोक्त धर्म में कितनी गड़बड़ी मच गई है ! प्रत्येक सम्प्रदाय का आचार्य दूसरे सम्प्रदाय के मत को खण्डन करके अपने मत को सिद्ध करने का प्रयत्न करता है, शब्दों का उलट-पुलटकर अर्थ करता है, इस तरह धर्ममार्ग में बड़ी उलझन हो गई है और इसी कारण साधारण मनुष्य को 'शास्त्र-विचार' या 'शास्त्रोक्त धर्ममार्ग" का नाम सुनकर घबराहट पैदा हो जाती है — इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों का शास्त्रों पर से विश्वास उठता गया और भारतवर्ष को आध्यात्मिक अवनति की वर्तमान अवस्था प्राप्त हो गई। वर्तमान युगावतार श्रीरामकृष्ण को इसी अविश्वास को दूर करने के लिए ही सर्व प्रकार की अवस्थाओं का स्वयं अनुभव प्राप्त करके उनका पारस्परिक यथोचित सम्बन्ध प्रस्थापित करने की आवश्यकता हुई। इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण की निम्नलिखित उक्तियाँ ध्यान में रखने योग्य हैं —

"विषयासक्त साधारण मनुष्य के लिए द्वैत भाव ही उचित है।"

"मन और बुद्धि की सहायता से जब हम विशिष्टाद्वैत तक बात बोलने और समझने लग जाते हैं तब जैसे ईश्वर सत्य है वैसे ही जीव-जगत भी सत्य हो जाता है।"

"अद्वैत भाव को अन्तिम सीढ़ी जानो। अद्वैत भाव वाक्यमनातीत अनुभव का विषय है।"

अब श्रीरामकृष्ण के एक और अद्भुत दर्शन का वृत्तान्त यहाँ लिखकर उनके साधकभाव की कथा को समाप्त करेंगे। सन् १८७५ में एक बार श्रीरामकृष्ण को यह देखने की इच्छा हुई कि श्री चैतन्य देव का सर्वजनमनोहर नगर-संकीर्तन कैसा रहा होगा और उनकी यह इच्छा श्री जगदम्बा ने पूर्ण भी कर दी। एक दिन श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के बाहर खड़े होकर पंचवटी की ओर सहज ही देख रहे थे। इतने में उन्हें दिखा कि उधर से कमरे की ओर से दक्षिणेश्वर बाग के मुख्य-फाटक की तरफ़ एक बड़ा भारी जनसमुदाय भजन करते हुए जा रहा है! उन्हें यह भी दिखाई दिया कि उस जनसमुदाय के मध्य-भाग में श्री नित्यानंद और अद्वैताचार्य को साथ लेकर श्री गौरांगदेव स्वयं भावावेश में नृत्यभजन कर रहे हैं जिससे आसपास के लोग भी देह की सुधि भूलकर उनके साथ नाच रहे हैं और ज़ोर ज़ोर से हरिनाम की गर्जना कर रहे हैं। उस मेले में इतने लोग शामिल थे कि मेले के आदि और अन्त का पता ही नहीं लगता था। उस मेले के कुछ लोगों का चेहरा तो श्रीरामकृष्ण को पूरा याद रह गया और जब बाद में वे लोग उनके भक्त बनकर आने लगे, तब उन्हें पूर्ण निश्चय हो गया कि ये लोग पूर्व-जन्म में श्री चैतन्य देव के भक्त थे!

इस अद्भुत दर्शन के कुछ समय बाद श्रीरामकृष्ण अपने गाँव कामारपुकुर और हृदय के शिउड़ गाँव में कुछ दिन रहने के लिए गये। शिउड़ गाँव के पास श्यामबाजार गाँव में बहुत से वैष्णव रहते थे। यह सुनकर कि वहाँ नित्य भजन आदि होता है श्रीरामकृष्ण को वहाँ जाने की इच्छा हुई। श्यामबाजार के समीप के बेलटे ग्राम के निवासी श्रीयुत नटवर गोस्वामी ने श्रीरामकृष्ण को इसके पहले भी देखा था।

श्रीरामकृष्ण शिउड़ आये हुए हैं यह सुनकर उन्होंने उन्हें अपने घर आने के लिए निमंत्रण भेजा। हृदय को साथ लेकर श्रीरामकृष्ण वहाँ गये और वहाँ सात दिन रहकर श्यामबाजार की वैष्णव मण्डली का भजन सुना। उनके प्रति श्यामबाजार के ईशान चन्द्र मल्लिक के मन में बड़ी भक्ति उत्पन्न हो गई और उन्होंने श्रीरामकृष्ण को अपने यहाँ भजन के लिए बुलाया। भजन के समय का उनका भावावेश और मनोहर नृत्य देखकर भजन में आये हुए सभी लोग तल्लीन हो गये। शीघ्र ही श्रीरामकृष्ण के अद्भुत भजन की कीर्ति वहाँ और उसके आसपास के गाँवों में फैल गई। क्रमशः उनका भजन सुनने और उनके साथ भजन करने के लिए आसपास के गाँवों से झुण्ड के झुण्ड लोग श्यामबाजार में आने लगे और उस गाँव में रात-दिन भजन होना शुरू हो गया। धीरे धीरे लोगों में यह बात फैल गई कि एक बड़ा अच्छा भजन गाने वाला भगवद्भक्त आया है जो भजन करते समय कुछ देर तक मर जाता है और फिर कुछ समय के बाद जी जाता है! फिर क्या पूछना था? श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने के लिए लोगों की इतनी भीड़ होने लगी कि कुछ कहा नहीं जा सकता था। पेड़ों पर चढ़कर, घरों पर बैठकर, जहाँ जगह मिल जाय वहीं से लोग उनके दर्शन करने लगे। उनके चरणों पर मस्तक रखने के लिए तो इससे भी अधिक भीड़ होने लगी। लोग उनके दर्शन करने और पैर पड़ने के लिए मानो पागल से हो गए थे! लगातार तीन दिन तक यही क्रम रहा। श्रीरामकृष्ण को खाने-पीने और विश्राम के लिए भी समय नहीं मिलता था। यह देखकर हृदय ने चालाकी से उन्हें छिपाकर घर के पीछे के दरवाज़े से शिउड़ के लिए रवाना करा दिया, तब कहीं श्याम-

बाजार की भीड़ बन्द हुई और श्रीरामकृष्ण को विश्राम मिला। शिउड़ में कुछ दिनों तक रहकर हृदय के साथ श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर वापस आए।

गुरुभाव

गुरुभाव और गुरु

(प्रास्ताविक)

"साँचा तैयार हो गया है—अपना अपना जीवन उसमें ढालकर गढ़ लो!"

"धर्म की प्राप्ति कैसे हो, ईश्वर की प्राप्ति कैसे हो, इन विचारों से व्याकुल होकर जो यहाँ आएंगे, उनके मनोरथ पूर्ण होंगे।"

"साधक जन्म भर परिश्रम करके बड़े कष्ट से एक-दो भावों में सिद्ध हो सकता है, पर यहाँ तो एक ही साथ एक ही पात्र के आधार में वैसे उन्नीस भाव रहते हैं।"

"हम सरकारी नौकर हैं। श्री जगदम्बा के साम्राज्य में जहाँ कहीं बलवा मचा होता है वहाँ हमें दौड़कर जाना पड़ता है।"

"प्रातःकाल मेरा मन सारे जगत् भर में व्याप्त रहता है, इसलिए उस समय मेरा स्मरण किया करो।"

"माता कहती हैं कि गाँव गाँव में, घर घर में तेरा आसन रहेगा।"

"जो राम और कृष्ण (हुआ था) वही अब रामकृष्ण होकर आया है।"

"और दो सौ वर्ष के बाद वायव्य दिशा की ओर जाना पड़ेगा।"

—श्रीरामकृष्ण

श्रीरामकृष्ण में गुरुभाव का प्रकाश बिलकुल बचपन से ही दिखाई देता है; तथापि यह निश्चित है कि यौवन में निर्विकल्प समाधि प्राप्त होने के बाद उसका पूर्ण विकास हुआ। बड़े बड़े अवतारी पुरुषों के चरित्र की ओर दृष्टि डालने से मालूम पड़ता है कि

उनमें ज्ञान का प्रकाश वाल्यकाल से ही था। ज्ञान-प्राप्ति के बाद जैसा आचरण होना चाहिए, वैसा आचरण उनके बचपन में ही था। जो यथार्थ गुरु होता है उसमें गुरुत्व के लक्षण वाल्यकाल में भी पाए जाते हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते थे कि "मनुष्य किसी को अपना गुरु या नेता नहीं चुनते, जो गुरु या नेता होता है, वह तो गुरुत्व का अधिकार साथ लेकर ही जन्म ग्रहण करता है।"

श्रीरामकृष्ण के साधनायज्ञ की समाप्ति के बाद वे गुरु-पद पर अधिष्ठित हुए, और उस समय उनके हाथ से लोक-कल्याण के महान् कार्य किस तरह सहज लीला से होते गए यह लिखने के पूर्व उनके अलौकिक गुरुभाव के रहस्य को ठीक ठीक समझने के लिए कुछ बातों पर विचार करना आवश्यक है। यहाँ ये प्रश्न उठ सकते हैं कि गुरु-भाव क्या है? किसी महापुरुष में उसका पूर्ण विकास होना कब सम्भव होता है? निर्विकल्प समाधि किसे कहते हैं? और उसकी प्राप्ति के बाद मनुष्य की अवस्था कैसी हो जाती है?—इन प्रश्नों की यहाँ मीमांसा करना आवश्यक है।

जिन्होंने श्रीरामकृष्ण को एक दो बार थोड़ा ही देखा हो और जिनका उनसे विशेष परिचय न हुआ हो, वे उनके अलौकिक चरित्र की बातें उनके शिष्यों से सुनकर चकित हो जाते थे और उनको वे बातें सत्य भी नहीं मालूम पड़ती थीं। वे सोचते थे कि "हमने भी उन्हें देखा है पर हमें तो उनमें कोई अलौकिकता नहीं दिखाई दी। वे तो बड़े सीधेसाधे और नम्र मालूम पड़े; जो दिखाई दे उसे पहिले से ही प्रणाम करते हैं, कोई उनको गुरु कहे तो उन्हें वह सहन नहीं होता था, वे तुरन्त कह बैठते थे—'कौन किसका गुरु और कौन

किसका शिष्य है? ईश्वर ही एकमात्र गुरु है, वही कर्ता है और करानेवाला है, मैं तो नीच से भी नीच हूँ, तुम्हारे दासों का दास हूँ, तुम्हारे शरीर के एक छोटे से केश के समान मैं हूँ!'—ऐसा कहकर तुरन्त उसके पैरों पर गिरने में भी कमी नहीं करते थे। ऐसे दीन और सीधेसाधे मनुष्य को यदि तुम सर्वशक्तिमान् कहते हो, तो इसे क्या कहा जाय और इस पर विश्वास भी कैसे किया जाय?"

और सचमुच ही जब श्रीरामकृष्ण को साधारण रूप से देहभान रहता था उस समय, सभी प्राणीमात्र में ईश्वर पूर्ण रूप से भरा हुआ है, यह निश्चय उनमें इतना दृढ़ था कि वे अपने को केवल मनुष्य का ही नहीं वरन् सभी प्राणीमात्र का दास समझते थे और वे सचमुच इसी भावना से सबके पैरों की धूलि ग्रहण करने में भी नहीं हिचकते थे। उस समय वे गुरु कहलाना बिलकुल पसन्द नहीं करते थे, परन्तु भावावस्था में या समाधि-अवस्था में उनके तेजोमय मुखमण्डल को देखकर कौन कह सकता था कि—"अपने को दीनातिदीन, दासानुदास कहने वाले श्रीरामकृष्ण यही हैं?" उस अद्भुत भावावेश में श्री जगदम्बा के हाथ के यंत्ररूप बनकर जब वे स्पर्श करके या केवल इच्छा-मात्र से किसी का देहभान नष्ट करके उसे समाधि लगा देते थे, या उसके हृदय में भगवत्प्रेम का प्रचण्ड प्रवाह उत्पन्न कर देते थे, या अपनी अलौकिक शक्ति के द्वारा उसके मन की मलीनता और संसार की आसक्ति नष्ट करके उसके मन को—जैसा पहले कभी न हुआ हो इस तरह—ईश्वर चिन्तन में तल्लीन कर देते थे, तब तो उनकी अपूर्व शक्ति को देखकर निःसंदेह यह निश्चय हो जाता था कि ये वही श्रीरामकृष्ण नहीं हैं। ये तो यथार्थ में अज्ञान से अन्ध हुए, त्रिविध तापों

से तप्त, भवरोग से ग्रसित, असहाय, दीन, अनाथ मनुष्यों के गुरु और त्राता हैं; और उनकी इसी दिव्य शक्ति को जानकर उनके भक्त उन्हें गुरु, कृपासागर, भगवान् आदि विशेषणों से सम्बोधित करते थे। दिखने में दो परस्पर विरोधी गुण-दीनता और सर्वशक्तिमत्ता-श्रीरामकृष्ण के सिवाय और किसी दूसरे में कहीं दिखाई नहीं देते थे। इस प्रकार की दो परस्पर-विरोधी बातें एक ही जगह कैसे रह सकती हैं यह समझने के लिए निर्विकल्प समाधि और सर्वात्मभाव पर यहाँ पर थोड़ा सा विचार करना आवश्यक है।

प्र०—निर्विकल्प समाधि किसे कहते हैं?

उ०—मन को संकल्प-विकल्प-रहित अवस्था में पहुँचा देना ही 'निर्विकल्प समाधि-अवस्था' कहलाती है।

प्र०—संकल्प-विकल्प का क्या अर्थ है?

उ०—बाह्य जगत् के रूप रसादि विषयों का ज्ञान और उनका अनुभव, सुख-दुःखादि की लहर, कल्पना, विचार, अनुमान इत्यादि मानसिक व्यापार और इच्छा, और 'मैं ऐसा करूँगा', 'ऐसा समझूँगा' 'इसका भोग करूँगा', 'इसका त्याग करूँगा' इत्यादि विविध, मनोवृत्तियाँ,—इन सब को संकल्प-विकल्प कहते हैं।

प्र०—ये वृत्तियाँ किस कारण उत्पन्न होती हैं?

उ०—'मैं' 'मैं' का ज्ञान या बोध रहने के कारण ये वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। जब 'मैं'-पन का ज्ञान या 'अहं'-कार स्थायी रूप से नष्ट हो जाता है या कुछ समय के लिए ही नष्ट हो जाता है, तब उस समय मन में कोई भी वृत्ति उत्पन्न नहीं होती।

प्र० —मूर्च्छा या गाढ़ निद्रा में भी 'मैं'-पन का बोध नहीं रहता। तो क्या ऐसी ही किसी अवस्था को निर्विकल्प समाधि कहते हैं?

उ० —नहीं। मूर्च्छा या गाढ़ निद्रा की अवस्था में 'मैं'-पन का बोध न रहता हो ऐसी बात नहीं है, यह बोध तो उस अवस्था में भी रहता ही है। इतना ही होता है कि जिस मस्तिष्करूपी यंत्र की सहायता से मन 'मैं' 'मैं' करता है उस यंत्र की क्रिया कुछ समय तक थोड़ी बहुत बन्द हो जाती है; परन्तु सब वृत्तियाँ भीतर समाई हुई ही खलबली मचाती रहती हैं। श्रीरामकृष्ण इसका एक सुन्दर दृष्टान्त देते थे। समूचे मटर के दाने मुँह में भर लेने के बाद जैसे कबूतर गले को फुलाकर 'गर्टर-घुम्' आवाज़ करता है; उसे देखकर तो कोई यह समझ बैठेगा कि उसके मुँह में कुछ नहीं है; पर गले को हाथ से दबाने पर पता लगेगा कि इसके मुँह में मटर के दाने एकदम ठूँस-ठूँसकर भरे हुए हैं।

प्र० —मूर्च्छा या सुषुप्ति में इस प्रकार 'मैं'-पन का बोध रहता है यह कैसे समझा जाय?

उ० —प्रत्यक्ष फल को देखकर। मूर्च्छा या सुषुप्ति में हृदय का स्फुरण, हाथ पैर की नाड़ियाँ, रुधिर का बहाव आदि सभी शारीरिक क्रियाएँ जारी रहती हैं, बन्द नहीं होतीं, क्योंकि ये क्रियाएँ भी तो 'मैं'-पन के बोध के आश्रय से ही हुआ करती हैं। दूसरी बात यह है कि मूर्च्छा वा सुषुप्ति के बाह्य लक्षण कुछ कुछ अंशों में यद्यपि समाधि के समान ही दिखाई देते हैं, तथापि उनमें से निकलकर मनुष्य जब सचेत होता है, तब उसका ज्ञान या आनन्द पूर्ववत् ही रहता है, वह कुछ भी बढ़ा या घटा हुआ नहीं रहता; उसकी वृत्तियाँ

भी ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। उदाहरणार्थ, कामी मनुष्य का काम ज्यों का त्यों रहता है, क्रोधी मनुष्य का क्रोध जैसा का तैसा बना रहता है, लोभी मनुष्य का लोभ वैसा ही बना रहता है, इत्यादि। पर निर्विकल्प समाधि-अवस्था का अनुभव प्राप्त हो जाने से ये सब वृत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, अन्तःकरण असीम आनन्द से पूर्ण हो जाता है और जगत्कारण भगवान् के साक्षात् दर्शन से—'ईश्वर है या नहीं' इत्यादि संशय समूल नष्ट हो जाते हैं।

प्र०—भला, मान लीजिए कि निर्विकल्प अवस्था प्राप्त होकर कुछ समय तक श्रीरामकृष्ण के 'मैं'–पन का लोप हो गया था, पर उसके बाद क्या हुआ?

उ०—इस तरह 'मैं'–पन (या अहंभाव) के ज्ञान का लोप हो जाने पर श्रीरामकृष्ण को कारणस्वरूपिणी श्री जगदम्बा का साक्षात् दर्शन हुआ। पर उतने से ही उनकी तृप्ति नहीं हुई, वे सदा सर्वकाल वैसा ही दर्शन करने के उद्देश से उसी अवस्था में रहने का प्रयत्न करने लगे। इस प्रयत्न को जारी रखने में कभी कभी उनके 'मैं'–पन या अहंभाव का पूर्ण लोप होकर शरीर पर मृतक-चिन्ह दिखने लगते थे, पर भीतर में श्री जगदम्बा का पूर्ण दर्शन होता रहता था। कभी कभी 'मैं'–पन का केवल अल्पांश शेष रहकर शरीर पर जीवितावस्था के कुछ लक्षण दीख पड़ते थे और भीतर उनके मन के शुद्ध सत्त्वगुणमय परदे में से श्री जगदम्बा का कुछ बाधायुक्त दर्शन होता रहता था। इस प्रकार कभी 'मैं'–पन का पूर्ण लोप और मन की सभी वृत्तियों का पूर्ण लय होकर श्री जगदम्बा का पूर्ण दर्शन होता था और कभी 'अहं' भाव ('मैं'–पन)

का कुछ अंश शेष रहकर कुछ कुछ चित्तवृत्तियाँ भी शेष रहती थीं और श्री जगदम्बा का झाँकीदर्शन होता था — इस तरह का क्रम लगातार छः महीने जारी रहा ! तदनन्तर श्री जगदम्बा ने या कहिये श्री भगवान् ने अथवा कहिये कि जो विराट्-चैतन्य या विराट्-शक्ति जगत्-रूप से प्रकाशित होकर सर्व चराचर में ओत-प्रोत भरकर भी बाकी बचकर भिन्न भिन्न नाम-रूप से नाट्यलीला कर रही है, उसने आज्ञा दी कि 'अरे ! तू भावमुखी होकर रह !' 'भावमुखी हो' अर्थात् "अहंकार का पूर्ण लोप करके निर्गुणभाव में स्थित मत हो वरन् 'जिससे इन अनन्त भावों की उत्पत्ति होती है वह विराट् अहंकार ही मैं हूँ, उसकी इच्छा ही मेरी इच्छा है, उसका कार्य ही मेरा कार्य है,'— यही भावना, सदा सर्वकाल मन में धारण करते हुए अपना जीवन बिता और लोक-कल्याण कर"— ऐसा आदेश दिया। इस अवस्था में पहुँच जाने पर मैं अमुक का पिता हूँ, अमुक का पुत्र हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, — इत्यादि सब बातें मन से बिलकुल साफ दूर हो जाती हैं और "मैं वही विश्वव्यापी 'मैं' हूँ"— इसी बात का अनुभव सदा सर्वकाल जागृत रहता है। श्रीरामकृष्ण बारम्बार कहते थे — "भाइयो ! मैं इसका पुत्र हूँ, उसका पिता हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ, या शूद्र हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं धनवान हूँ, यह सब 'कच्चा' अहंकार है — इसी से मनुष्य बन्धन में पड़ता है; ऐसे अहंकार का त्याग करना चाहिए; और मैं भगवान का दास हूँ, मैं उसका भक्त हूँ, मैं उसका अपत्य हूँ, मैं उसका अंश हूँ, यह 'पक्का' अहंकार है; इसी को सदैव मन में रखना चाहिए।"

कहना न होगा कि इस तरह निरन्तर भावमय रहकर विराट्

अहंकार के साथ अपनी एकता का जब वे अनुभव करते रहते थे तभी वे श्री जगदम्बा के निर्गुणभाव से कुछ नीचे उतरे हुए रहते थे। परन्तु इस अवस्था में भी उनका एकत्व का अनुभव इतना दृढ़ रहा करता था कि उन्हें यह प्रत्यक्ष मालूम पड़ता था कि इस ब्रह्माण्ड का सभी व्यवहार मैं ही कर रहा हूँ! इस अवस्था का अत्यल्प अनुभव भी या उसकी केवल कल्पना भी अत्यन्त अद्भुत रहा करती है। उनके सर्वात्म-भाव के सम्बन्ध में एक उदाहरण यहाँ दे देने से पाठकों को इस बात की कुछ कल्पना हो सकेगी।

एक बार वर्षा ऋतु में काली-मन्दिर के अहाते में एक ओर सुन्दर हरी घास उगी हुई थी। एक दिन उस सुन्दर दृश्य को देखते देखते श्रीरामकृष्ण इतने तन्मय हो गए कि वे उस स्थान से एकरूप होकर उसे अपने शरीर का ही एक भाग समझने लगे। इतने में ही एक मनुष्य उस जगह की घास पर से चलकर दूसरी ओर गया। श्रीरामकृष्ण कहते थे — "छाती पर से किसी के चलने से जैसी पीड़ा होती है, वैसी ही पीड़ा मुझे उस समय हुई और मेरी छाती कुछ समय तक लाल हो गई!"

उसी तरह और एक दिन काली-मन्दिर के घाट पर खड़े हुए श्रीरापकृष्ण भावावेश में गंगा जी की ओर देख रहे थे। उसी समय दो नौकाएँ घाट पर आ लगीं और उनमें से एक नौका पर दो केवटों में बड़ा झगड़ा शुरू हो गया। बढ़ते बढ़ते मारपीट भी होने लगी। इस दृश्य को भावावेश में तन्मय होकर देखते देखते श्रीरामकृष्ण जोर जोर से चिल्लाने लगे। उनकी आवाज़ काली-मन्दिर में हृदय के कान में पड़ी और वह वहाँ पर दौड़ता हुआ आया और देखता क्या है कि श्रीराम-

कृष्ण की पीठ लाल होकर उसमें लकड़ी की मार के निशान हो गए हैं! यह देखकर क्रोध से लाल होकर थर थर काँपते, दाँत-ओंठ चबाते हुए हृदय जोर से बोला—"मामा, मामा, आपको किसने मारा सो मुझे बताइए। मैं इसी क्षण जाकर उसका प्राण ले लूँगा।" तब थोड़ी देर बाद कुछ शान्त होने पर श्रीरामकृष्ण ने अपनी पीठ पर के निशान का कारण हृदय को बताया। उसे सुनकर उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ!

इस सर्वात्मभाव के नीचे माया के राज्य में जब श्रीरामकृष्ण का मन उतरता था तब उनके मन में 'मैं जगदम्बा का दास, मैं उसका भक्त अथवा मैं उसका अपत्य, या मैं उसका अंश हूँ' यह भाव सदैव जागृत रहता था। इस अवस्था के बहुत ही नीचे अविद्या-माया का काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि के बल पर चलने वाला राज्य रहता है।

निरन्तर अभ्यास और ईश्वर-चिन्तन के द्वारा इस राज्य का पूर्ण त्याग कर देने के कारण श्रीरामकृष्ण का मन इस राज्य की सीमा में कभी नहीं उतरता था; अथवा यों कहिये कि श्री जगदम्बा ही उनको उसमें उतरने नहीं देती थीं; क्योंकि वे सदा कहा करते थे—"जिसने अपना सब भार माता पर डाल दिया हो उसका एक भी कदम माता कभी भी इधर-उधर पड़ने नहीं देती।"

इस वर्णन से स्पष्ट है कि निर्विकल्प समाधि प्राप्त होने के बाद श्रीरामकृष्ण का कच्चा अहंकार बिलकुल नष्ट हो गया था और अहंकार का जो कुछ भी थोड़ा सा अंश उनमें शेष रह गया था वह विराट् अर्थात् पक्के अहंकार से चिरसंयुक्त हो गया। इसी कारण वे सभी प्रकार के लोगों के सभी प्रकार के भावों को सहज ही जान सकते थे;

क्योंकि मनुष्य के मन की सब भावतरंगें भी तो इसी विराट् अहंकार के आश्रय से ही उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार की उच्च अवस्था में 'भगवान का अंश – या अपत्य — मैं हूँ' यह भाव भी उनके मन से समूल लुप्त होकर उसके स्थान में विराट् अहंकार अथवा श्री जगदम्बा का अहंकार स्फुरण होकर उनका निग्रहानुग्रह सामर्थ्य गुरु-रूप से प्रकट हो जाता था ! ऐसे समय में वे 'दीनातिदीन', 'दासानुदास' नहीं रहते थे। उस समय उनकी बोल-चाल, दूसरों के साथ बर्ताव-व्यवहार बिलकुल भिन्न प्रकार के हो जातें थे। उस समय वे प्रत्यक्ष कल्पतरु ही बनकर — 'तुझे क्या चाहिए ?' — ऐसा अपने भक्त से पूछते थे। मानो अपने भक्त की सब इच्छा अपनी अमानुषी शक्ति द्वारा पूर्ण करने के लिए ही बैठे हों ! दक्षिणेश्वर में प्रत्येक शनिवार और मंगलवार को और विशेष विशेष पर्व के दिन उन्होंने इस प्रकार भावाविष्ट होकर अनेक भक्तों पर कृपा की है। सन् १८८६ की जनवरी में काशीपुर में उनकी अमानुषिक शक्ति के सम्बन्ध की एक बड़ी अद्भुत घटना हुई जिसका वर्णन नीचे विस्तारपूर्वक दिया जाता है।

श्रीरामकृष्ण के गले में कुछ रोग हो जाने के कारण डॉक्टर महेन्द्रलाल सरकार की सलाह से इलाज की सुविधा और बगीचे की शुद्ध हवा का लाभ उठाने के लिए उनके भक्तों ने उन्हें कलकत्ता के पास काशीपुर में गोपाल बाबू के बगीचे में किराये के बँगले में रखा था। वहाँ डाक्टरों का इलाज जारी था। उससे कुछ लाभ भी होता दिखाई देता था; तथापि यहाँ आने के बाद एक दिन भी श्रीरामकृष्ण ऊपर की मंजिल से नीचे बगीचे में घूमने आदि के लिए नहीं उतरे थे। आज उन्हें और दिनों की अपेक्षा अच्छा मालूम होता था।

इसलिए उन्होंने बगीचे में घूमने की इच्छा प्रकट की। आज श्रीरामकृष्ण नीचे आने वाले हैं यह जानकर उनकी भक्तमण्डली को बड़ा आनन्द हुआ।

श्रीरामकृष्ण की सेवा में उनके संन्यासी भक्तगण सदा उपस्थित रहते थे। गृहस्थ भक्तों के पीछे संसार के उपद्रव लगे रहने के कारण वे लोग हर समय वहाँ नहीं रहते थे। वे समय समय पर आते-जाते रहते थे और श्रीरामकृष्ण की सेवा में रहनेवाले लोगों के खाने-पीने का सब प्रबन्ध किया करते थे।

पहली जनवरी (सन् १८८६) की छुट्टी के कारण काशीपुर में बहुत से भक्तगण जमा थे। दोपहर के तीन बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण रेशमी किनारीदार धोती और कुरता पहने, शरीर पर लाल किनारे की चादर डाले, सिर पर कनटोप और पैरों में जूते पहिन-कर स्वामी अद्भुतानन्दजी के साथ धीरे धीरे ऊपर से नीचे उतरकर आए और पश्चिमी द्वार से बगीचे में घूमने के लिए गए। कुछ गृहस्थ भक्त लोग बड़े आनन्द से उनके पीछे पीछे चलने लगे। नरेन्द्र आदि तरुण भक्त लोग रात भर भजन, जप, ध्यान आदि करते हुए जागते रहे थे, इसलिए वे लोग एक कोठरी में सो रहे थे। श्रीरामकृष्ण के साथ बहुत से लोग हो जाने से उन्हें और किसी साथी की आवश्य-कता न रहने के कारण स्वामी अद्भुतानन्दजी कुछ समय के बाद लौट आए और श्रीरामकृष्ण का बिछौना, कोठरी आदि को झाड़कर साफ़ करने के कार्य में लग गये।

गृहस्थ भक्तों में से श्रीयुत गिरीशचन्द्र घोष का ईश्वरानुराग उस समय बड़ा प्रबल था। उनके अद्भुत विश्वास की बड़ी प्रशंसा करते

हुए एक बार श्रीरामकृष्ण बोले — "गिरीश का विश्वास पाँच रुपये पाँच आना है। उसकी अवस्था को देखकर लोग आगे चकित हो जाएँगे।"

विश्वास और भक्ति की प्रबलता के कारण गिरीशबाबू श्रीरामकृष्ण को साक्षात् ईश्वर मानते थे। वे कहते थे – "जीवों का उद्धार करने के लिए भगवान् ने बड़ी कृपा करके यह अवतार धारण किया है" और वे अपने इस दृढ़ विश्वास को दिल खोलकर हर एक के पास प्रकट रूप से बता दिया करते थे। श्रीरामकृष्ण ने उन्हें ऐसा करने से रोका भी, पर वे उस पर ध्यान नहीं देते थे।

उस दिन और लोगों के साथ गिरीश भी वहाँ आए हुए थे और बाग में ही एक आम के पेड़ के नीचे लोगों के साथ बैठे हुए बातें कर रहे थे। टहलते हुए श्रीरामकृष्ण भी उसी स्थान पर पहुँचे और वहाँ लोगों के साथ गिरीश को देखकर बोले — "गिरीश! तूने मुझमें ऐसा क्या देखा है कि जिसके कारण हर किसी से तू कहता फिरता है कि ये अवतार हैं? ...."

अचानक उनके ऐसे प्रश्न को सुनकर भी गिरीशचन्द्र नहीं घबराए। वे झट उठकर रास्ते पर आए और हाथ जोड़कर श्रीरामकृष्ण के पैरों के पास घुटने टेककर बैठ गए और उनके मुख की ओर देखते हुए गद्‌गद कण्ठ से बोले — "व्यास, वाल्मीकि जैसे महर्षि भी जिनकी महिमा का वर्णन करते करते थक गये, उनके सम्बन्ध में मैं पामर और अधिक क्या कह सकता हूँ?"

गिरीशचन्द्र के ऐसे अद्‌भुत विश्वासयुक्त उद्‌गार को सुनकर श्रीरामकृष्ण का सर्वांग रोमाञ्चित हो गया, हृदय भर आया और मन

एकाएक उच्च भूमि पर आरूढ़ हो जाने से उन्हें गहरी समाधि लग गई! उनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज झलकने लगा। उनके उस तेजोमय मुखमण्डल को देखकर गिरीशचन्द्र की भी भक्ति की बाढ़ आ गई, और 'जय रामकृष्ण' 'जय रामकृष्ण' करते हुए जोर जोर से जयघोष करते हुए वे उनकी पदधूलि अपने मस्तक पर चढ़ाने लगे!

यह क्रम जारी था कि श्रीरामकृष्ण को अर्धबाह्य दशा प्राप्त हो गई और उनके तेजःपुंज मुखमण्डल पर हास्य झलकने लगा। उन्होंने पास में खड़े हुए भक्तों की ओर देखकर कहा—"तुम लोगों से और क्या कहूँ? तुम सब को चैतन्य प्राप्त हो"—इस वरदान की वाणी को सुनकर भक्तगण भी अतिशय आनन्द में 'जय रामकृष्ण! जय रामकृष्ण!' का जयघोष करते हुए कोई उन्हें प्रणाम करने लगा, कोई उन पर फूल चढ़ाने लगा और कोई उनकी पदधूलि ग्रहण करने लगा। एक भक्त ने उनके पैरों पर सिर रख दिया और खड़ा हो गया, उस समय उसी अर्धबाह्य अवस्था में उसके वक्षःस्थल पर नीचे से ऊपर तक हाथ फेरते हुए श्रीरामकृष्ण बोले—"तुझे चैतन्य प्राप्त हो।" दूसरे भक्त के उनके पैरों पर सिर रखकर प्रणाम करके खड़े होते ही पुनः श्रीरामकृष्ण ने वैसा ही किया। तीसरे के साथ वैसा ही, चौथे को वैसा ही। इस तरह पैरों पर मस्तक रखनेवाले प्रत्येक भक्त को उसी प्रकार स्पर्श करके वे आशीर्वाद देने लगे और उनके अद्भुत स्पर्श से प्रत्येक के अंतःकरण में कुछ अपूर्व भावान्तर उत्पन्न होकर कोई हँसने लगा, कोई ध्यान में मग्न हो गया और किसी का हृदय आनन्द से पूर्ण होकर वह उन अहैतुक-कृपासिन्धु श्रीरामकृष्ण की कृपा प्राप्त करके धन्य होने के लिए अन्य सब भक्तों को ज़ोर ज़ोर से पुकारने लगा। इस

प्रकार चिल्लाने और जयघोष की आवाज़ को सुनकर सोए हुए भक्त लोग जागकर, और काम में लगे हुए लोग हाथ का काम छोड़-छाड़कर वहाँ पर दौड़ते हुए आ पहुँचे और वे वहाँ जाकर क्या देखते हैं कि रास्ते में ही श्रीरामकृष्ण को घेरकर पागलों का सा एक झुण्ड खड़ा है। यह दृश्य देखते ही वे लोग ताड़ गए कि दक्षिणेश्वर में किसी व्यक्तिविशेष पर कृपा करने के लिए श्रीरामकृष्ण की दिव्यभावावेश में जो लीला होती थी, आज वही लीला यहाँ सभी पर एक साथ कृपा करने के लिए हो रही है। उन लोगों के आते ही श्रीरामकृष्ण का वह दिव्य भावावेश कम हो गया और उन्हें साधारण भाव प्राप्त हो गया। बाद में श्रीरामकृष्ण के उस हस्तस्पर्श और आशीर्वाद से किसको कौनसा अनुभव हुआ था यह पूछने पर पता लगा किसी के हृदय में आनन्द का प्रबल स्रोत एकाएक उमड़ पड़ने से वह बेहोश हो गया। किसी किसी को अपने इष्ट देव का दर्शन प्राप्त हुआ, किसी को अपने हृदय में एक अपूर्व शक्ति का संचार होता हुआ मालूम पड़ा। किसी के मन की चंचलता नष्ट होकर वह बिलकुल एकाग्र-चित्त हो गया, और किसी को आँखें बंद कर लेने पर एक अद्भुत ज्योति का दर्शन मिला। इन भिन्न भिन्न दर्शनों के सिवाय प्रत्येक को अपने मन में अत्यन्त शान्ति और अपूर्व आनन्द का अनुभव प्राप्त हुआ। इस सारी मण्डली में केवल दो * व्यक्तियों को ही उस समय 'अभी से नहीं' कहते हुए श्रीरामकृष्ण ने स्पर्श नहीं किया और केवल वे दोनों ही इस महत्पर्व के दिन कोरे रह गए। अस्तु—

इस प्रकार के अनेक उदाहरण बताए जा सकते हैं। इन सब

---

* बाद में श्रीरामकृष्ण ने उन दोनों पर भी कृपा की।

बातों से यही दिखता है कि कच्चे अहंकार का पूर्ण त्याग करने से ही श्रीरामकृष्ण में यह असली दिव्य शक्ति पूर्ण रूप से प्रकट हो गई थी और कच्चे अहंकार के पूर्ण त्याग के कारण ही उनमें 'लोकगुरु', 'जगद्गुरु' के भाव का इतना अपूर्व और पूर्ण विकास हो गया था। मायाबद्ध मनुष्य के मन में से सब प्रकार की अज्ञानरूप मलीनता को हटानेवाली दिव्यशक्ति को ही 'गुरुभाव' और यह शक्ति जिस शरीर के आश्रय से प्रकट हो उसे ही शास्त्रों में 'गुरु' कहा गया है।

ऊपर बताई हुई मनुष्य की अज्ञान-मलीनता को दूर करने की शक्ति साक्षात् परमेश्वर की ही होने के कारण वह जिस शरीर के आश्रय से प्रकट होती है उस शरीर को अर्थात् गुरु को साक्षात् परमेश्वर ही मानने का उपदेश शास्त्रों ने दिया है। अग्नि और उसकी दाहक शक्ति जैसे एक हैं और वे अलग अलग नहीं की जा सकतीं, उसी तरह यह ईश्वरी शक्ति और जिसके आश्रय से वह शक्ति प्रकट होती है वह शरीर भी एक ही हैं। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुस्साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ —

आदि गुरु और परमेश्वर का ऐक्य बतानेवाले वचनों के द्वारा शास्त्रों ने गुरुभक्ति की इतनी महिमा बतलाई है।

परन्तु भक्तिमार्ग के नये साधक को गुरु के प्रति आरम्भ से ही साक्षात् परमेश्वर के समान आदरभाव नहीं रहता। वह सोचता है कि "गुरुभाव पर श्रद्धा रखने से गुरुभाव की भक्ति सीखी जा सकेगी, पर जिस देह के आश्रय से वह भाव प्रकट होता है उसके प्रति हमारे मन में परमेश्वर के समान श्रद्धा कैसे उत्पन्न हो?" ऐसे लोगों से इतना ही

कहना है कि तुमसे न बने तो मत करो, पर अपने आप को ही धोखा मत दो। शक्ति या भाव और जिसके आश्रय से ये दोनों प्रकाशित होते हैं वह आधार इन दोनों वस्तुओं को आपने कभी अलग अलग देखा है? यदि नहीं देखा है तो फिर अग्नि और उसकी दाहक शक्ति को अलग अलग करके एक का ग्रहण और दूसरे का त्याग आप कैसे कर सकते हैं? हम व्यवहार में भी प्रत्यक्ष देखते हैं कि हम जिस पर प्रेम करते हैं उसकी किसी सामान्य वस्तु पर भी हमारा प्रेम हुआ करता है और उसे हम सिर पर रख लेते हैं! वह जिस स्थान से चलकर गया हो वहाँ की मिट्टी भी हमें पवित्र मालूम पड़ती है। तब फिर जिस शरीर का आश्रय लेकर साक्षात् परमेश्वर हमारी पूजा ग्रहण करके हम पर कृपा करता है और हमारे सारे अज्ञानमल को दूर करके हमें चिरशान्तिसुख का अधिकारी बनाता है, उस शरीर के प्रति साक्षात् परमेश्वर के समान श्रद्धा-भक्ति रखने का उपदेश शास्त्रों ने दिया है, तो इसमें आश्चर्यजनक कौनसी बात है?

श्रीरामकृष्ण कहते थे — "अत्यन्त एकनिष्ठ भक्त को अपने गुरु के प्रति प्रेम तो होगा ही, पर गुरु का कोई नातेदार या गुरु के गाँव का भी कोई मनुष्य मिल जाने से तो उसे एकदम गुरु का स्मरण होकर वह उसीको गुरु कहकर प्रणाम करेगा। भक्त की गुरुभक्ति इतनी उच्च अवस्था में पहुँच जाने पर उसको अपने गुरु में एक भी दोष नहीं दिखाई देता। गुरु जो कहें वही उसके लिए प्रमाण होता है, उसकी दृष्टि ही उस तरह की हो जाती है। पांडुरोगवाले मनुष्य को जैसे सब कुछ पीला ही पीला दिखाई देता है, वैसे ही उसको हो जाता है। उसको सब तरफ 'ईश्वर ही सब कुछ हो गया है' ऐसा दिखने लगता है।"

दक्षिणेश्वर में एक दिन श्रीरामकृष्ण अपने एक सरल परन्तु वादप्रिय स्वभाव वाले शिष्य को कोई बात समझा रहे थे, पर वह बात उसकी विचार-शक्ति में नहीं उतरती थी अर्थात् उसकी बुद्धि में वह बात जँचती नहीं थी। श्रीरामकृष्ण के तीन-चार बार समझाने पर भी जब उसका तर्क और वाद बन्द नहीं हुआ, तब कुछ क्रुद्ध से होकर परन्तु मीठे शब्दों में वे उससे बोले—"तू कैसा मनुष्य है रे? मैं स्वयं कहता जा रहा हूँ तो भी तुझे निश्चय नहीं होता?" तब तो उस शिष्य का गुरु-प्रेम जागृत हो गया और वह कुछ लज्जित होकर बोला—"महाराज! भूल हुई, प्रत्यक्ष आप ही कह रहे हैं और मैं न मानूँ यह कैसे हो सकता है? इतनी देर तक मैं अपनी विचार-शक्ति के बल पर व्यर्थ वाद कर रहा था।" इसे सुनकर प्रसन्न होकर हँसते हँसते श्रीरामकृष्ण बोले—"गुरु-भक्ति कैसी चाहिए—बताऊँ? गुरु जैसा कहे वैसा ही उसे तुरन्त दिखने लग जाना चाहिये। ऐसी ही भक्ति अर्जुन की थी! एक दिन रथ में बैठकर अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण योंही सहज घूम रहे थे कि एकदम आकाश की ओर देखकर वे बोले—'अहाहा! अर्जुन, यह देखो कैसा सुन्दर कपोत उड़ता जा रहा है!' आकाश की ओर देखकर अर्जुन तुरन्त बोला, 'हाँ महाराज, यह कैसा सुन्दर कपोत है!' परन्तु पुनः श्रीकृष्ण ऊपर की ओर देखकर बोले—'नहीं, नहीं, अर्जुन! यह तो कपोत नहीं है!' अर्जुन भी पुनः उधर देखकर बोला—'हाँ सचमुच, प्रभो! यह तो कपोत नहीं मालूम पड़ता!' अब तू इतना ध्यान में रख कि अर्जुन बड़ा सत्यनिष्ठ था, व्यर्थ श्रीकृष्ण की चापलूसी करने के लिए उसने ऐसा नहीं कहा; परन्तु श्रीकृष्ण के वाक्य

पर उसकी इतनी भक्ति और श्रद्धा थी कि श्रीकृष्ण ने जैसा कहा बिलकुल वैसा ही अर्जुन को दिखने लगा।" अस्तु—

यह ईश्वरी शक्ति सभी मनुष्यों के मन में कम या अधिक प्रमाण में रहा करती है। इसलिए गुरुभक्तिपरायण साधक अन्त में ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है कि उस समय यह शक्ति स्वयं उसमें ही प्रकट होकर उसके मन की सभी शंकाओं का समाधान कर देती है और अत्यन्त गूढ़ आध्यात्मिक तत्त्वों को उसे समझा देती है। तब तो उसे अपने संशयों को दूर कराने के लिए किसी दूसरी जगह जाना नहीं पड़ता। इस अवस्था के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"अन्त में मन ही गुरु बन जाता है।" पर उस मन में और अपने सदा के मन में बहुत अन्तर रहता है। अपना सदा का मन अशुद्ध और अपवित्र रहते हुए भोगसुख, कामकांचनासक्ति के पीछे पड़ा रहता है और वह मन शुद्ध और पवित्र होकर ईश्वरी शक्ति प्रकट करने का यन्त्रस्वरूप बन जाता है। और भी वे कहते थे—"गुरु अर्थात् जैसी सखी; जब तक राधा की श्रीकृष्ण से भेंट नहीं हुई थी, तब तक सखी का काम समाप्त नहीं हुआ था। श्री गुरु अपने शिष्य का हाथ पकड़कर उसे उच्च और उच्चतर भावप्रदेश में ले जाते ले जाते उसके इष्ट देव के सामने लाकर कहते हैं, 'शिष्य, देख यह तेरा इष्ट देव!' और इतना कहकर श्री गुरु स्वयं अन्तर्धान हो जाते हैं।"

एक दिन श्रीरामकृष्ण के मुख से गुरुभाव के इस प्रकार के रहस्य को सुनकर उनका एक अत्यन्त प्रेमी भक्त बोल उठा—"तब फिर अन्त में एक दिन श्री गुरु का और अपना विच्छेद ही होना है न?" इस भावना से उसके हृदय में बड़ी व्यथा होने लगी और वह पूछने

लगा — "महाराज ! उस समय गुरु जी कहाँ चले जाते हैं ?" श्रीरामकृष्ण बोले — "गुरु तो उस इष्ट देव के साथ ही एकरूप हो जाते हैं। गुरु, कृष्ण और वैष्णव * ये तीनों ही एक हैं — एक के ही ये तीन रूप हैं।"

---

* गुरु, भगवान् और भक्त।
"भक्ति, भक्त, भगवंत, गुरु, चतुर्नाम वपु एक।"

८ — श्रीरामकृष्ण का गुरुभाव

—∞∞—

गौरी कहता था — " आपके अनुभव वेद-वेदान्त को छोड़कर बहुत आगे बढ़ गये हैं ! "

—श्रीरामकृष्ण

मुदमंगलमय सन्त-समाजू ।
जो जग जंगम तीरथ-राजू ॥
बिधि हरिहर कवि कोविद वाणी ।
कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मो सन कहि जात न कैसे ।
शाकवणिक मणिगुणगण जैसे ॥
वन्दौं गुरुपदकंज कृपासिंधु नररूप हरि ।
महामोह-तमपुंज, जासु वचन रविकर निकर ॥

— तुलसीदास

शास्त्रों में कहा है कि क्षुद्र अहंकार का सम्पूर्ण त्याग करके ईश्वरी भाव में ही सदा सर्वकाल रहने से जगद्गुरु और ब्रह्मज्ञ पद में पहुँचा हुआ पुरुष सर्वज्ञ होता है। " उनके मन में साधारण मनुष्य के समान मिथ्या संकल्प कभी उदय नहीं होता। उनके मन में जिस समय जो विषय जानने की इच्छा होती है वह विषय उसी समय उनकी अन्तर्दृष्टि के सामने प्रकाशित हो जाता है और उस विषय के तत्व को वे सहज रीति से जान सकते हैं। " इसे सुनकर शास्त्रों के इस कथन का भाव न समझते हुए हमारे मन में कितने ही तर्क-वितर्क उत्पन्न होने लगते हैं — " हम कहने लगते हैं, यदि यह बात सत्य है तो

पूर्वकालीन ऋषि जड़-विज्ञान के सम्बन्ध में इतने अज्ञ क्यों थे? हाइड्रोजन और ऑक्सिजन इन दोनों वायुरूपी पदार्थों को किसी विशेष प्रमाण में एकत्र करने से पानी बन जाता है यह बात कितने ब्रह्मज्ञ ऋषियों को मालूम थी? चार पाँच महीनों का मार्ग विद्युत् की सहायता से केवल ४-५ सेकंडों में तय किया जा सकता है इस बात के सम्भव होने का ध्यान कितने ऋषियों को था? अथवा और भी दूसरे शास्त्रीय आविष्कार कितने ऋषियों ने किये थे या कितनों ने ऐसे आविष्कार करने का प्रयत्न किया था?"

श्रीरामकृष्ण के चरणों का आश्रय मिल जाने पर हम यह समझने लगे कि शास्त्रों में बताई हुई इस बात को इस दृष्टि से देखने में उसका कोई अर्थ नहीं निकल सकता; परन्तु शास्त्रों ने जिस भाव से यह बात बताई है उसी दृष्टि से उस पर विचार करने से उसका ठीक ठीक अर्थ लग सकता है। श्रीरामकृष्ण इसके सम्बन्ध में कहते थे — "चूल्हे पर चावल पक रहा है, वह ठीक पका या नहीं यह जानने के लिए आप क्या करते हैं? करछुल की डंडी पर उसमें से ४-५ चावल के दाने निकालकर दबाकर देखते हैं न? सारा भात पक गया या नहीं यह निश्चय कैसे हो जाता है? उसी तरह सारा संसार नित्य है या अनित्य, सत् है या असत् यह भी, उसमें से चार पाँच बातों की परीक्षा करके निश्चय किया जा सकता है। देखो न, मनुष्य जन्म लेता है, कुछ दिन जीता है, बाद में मर जाता है। पशुओं की भी यही दशा होती है। पेड़ों का भी यही हाल है — बस, इसी तरह देखते देखते समझ में आ जाता है कि जिन जिन वस्तुओं का नाम और रूप है, उन सब की यही गति हुआ करती है। इस तरह यह जान पड़ा कि

सारे जगत् का यही स्वभाव है। पृथ्वी, सूर्यलोक, चन्द्रलोक सभी के नाम हैं। अतः इनकी भी यही गति है। तब तुम जगत् की सभी वस्तुओं का स्वभाव जान गये न? इस प्रकार संसार अनित्य है, असत् है, यह बात निःसंशय समझ लेने पर तुम्हारा मन संसार से उचट कर (विरक्त होकर) तुम्हारी सारी सांसारिक वासनाएँ नष्ट हो जाएँगी और संसार की अनित्यता को समझकर तुमने उसका त्याग कर दिया कि तुम्हें जगत्कारण ईश्वर का साक्षात्कार हो जायगा। अब इस तरह जिसे ईश्वर का दर्शन प्राप्त हो गया, वह सर्वज्ञ हुआ या नहीं सो तुम्हीं बताओ।"

श्रीरामकृष्ण के इस कथन से हमारी समझ में आ गया कि सचमुच ही एक दृष्टि से वह व्यक्ति सर्वज्ञ हो गया। लोग ज्ञान ज्ञान कहते हैं? 'ज्ञान' का क्या अर्थ है? किसी पदार्थ के आदि, मध्य और अन्त को देख सकना या उसकी जानकारी प्राप्त कर लेना और उस पदार्थ की उत्पत्ति जिससे हुई है उसे भी देख सकना या जान सकना — इसे ही हम उस पदार्थ का ज्ञान कहा करते हैं। तब फिर पूर्वोक्त रीति से संसार को जानने या समझ लेने को ज्ञान क्यों न कहा जाये? इसके सिवाय यह ज्ञान जगत् के अन्तर्गत सभी पदार्थों के सम्बन्ध में समान रूप से सत्य है। अतः यही कहना होगा कि उसे जगत् के अन्तर्गत सभी पदार्थों का ज्ञान हो गया। और इस प्रकार का ज्ञान जिसको हो गया उसे सचमुच सर्वज्ञ कहना चाहिए। इन बातों को देखते हुए शास्त्रों का कहना कुछ झूठ नहीं है।

शास्त्रों के कथन का भावार्थ इस प्रकार है। किसी भी विषय पर मन को एकाग्र करने से उस विषय का ज्ञान हमें प्राप्त होता है;

यह तो हमारे नित्य के अनुभव की बात है। तब फिर जिसने अपने मन को पूर्ण रीति से वश में कर लिया है, ऐसे ब्रह्मज्ञ पुरुष को किसी विषय के जानने की इच्छा होते ही उस विषय के प्रति अपने मन की सारी शक्तियों को लगा देने से यदि वह विषय उन्हें सहज ही मालूम हो जाये तो इसमें क्या आश्चर्य है? प्रश्न इतना ही है कि सारा जगत् अनित्य है—ऐसी जिनकी दृढ़ धारणा हो चुकी है और जिन्होंने अपनी भक्ति, प्रेम और तपस्या के बल से सर्वशक्तिमान् जगत्कारण ईश्वर का साक्षात्कार प्राप्त कर लिया है, उनके मन में रेलगाड़ी चलाने, कारखाने खोलने या वैज्ञानिक आविष्कार करने का संकल्प या प्रवृत्ति ही कैसे उत्पन्न हो सकती है? आविष्कार करने की बात तो दूर रही, उन्हें अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहता। जब उनके मन में इस प्रकार के संकल्प या प्रवृत्ति का उदय होना ही असम्भव हो जाता है तब उनके द्वारा ये कार्य न हों यह ठीक ही है। श्रीरामकृष्ण के दिव्य सत्संग से हमने यह प्रत्यक्ष देख लिया कि सचमुच ही ब्रह्मज्ञ पुरुष के मन में इस प्रकार का संकल्प उदय नहीं होता। इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण के चरित्र में की एक दो घटनाओं का उल्लेख करना ठीक होगा।

श्रीरामकृष्ण अपने जीवन के अन्तिम वर्ष में काशीपुर के बगीचे में गले के रोग से पीड़ित थे। उनका रोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा था। उनकी बीमारी का हाल सुनकर श्रीयुत शशधर तर्कचूड़ामणि और कुछ दूसरे लोग एक दिन उन्हें देखने आये। बातचीत के सिलसिले में पण्डित जी श्रीरामकृष्ण से कहने लगे—"महाराज, शास्त्रों में लिखा है कि आपके समान पुरुष इच्छा-मात्र से शारीरिक रोग को आराम कर सकते हैं। मन का कुछ समय तक रोग की जगह में एकाग्र

करके 'आराम हो जाय' ऐसी इच्छा करते ही रोग अच्छा हो जाता है। तब फिर आप यदि एक बार ऐसा करके देखें तो क्या यह ठीक नहीं होगा?" श्रीरामकृष्ण बोले—"आप पण्डित होकर यह क्या कह रहे हैं? जो मन एक बार सच्चिदानन्द को समर्पण कर दिया गया है, उसे वहाँ से हटाकर क्या इस टूटे फूटे हाड़मास की ठरी पर लगाने की प्रवृत्ति हो सकती है?"

इसको सुनकर पण्डित जी तो निरुत्तर हो गये, परन्तु स्वामी विवेकानन्द आदि शिष्यमण्डली से शान्त नहीं रहा गया। पण्डित जी के चले जाने पर वे लोग उनके कथन के अनुसार करने के लिए श्रीरामकृष्ण से बहुत आग्रह करने लगे। वे बोले—"महाराज! आपको अपना रोग दूर करना ही चाहिए। कम से कम हमारी ओर देखकर तो आपको अपना रोग अवश्य अच्छा करना चाहिए।"

श्रीरामकृष्ण—"मेरी क्या यह इच्छा है कि मैं रोग भोगता रहूँ? मैं तो बहुत कहता हूँ कि रोग आराम हो जाय, पर वैसा होता कहाँ है। आराम होना न होना ये सब माता के हाथ की बातें हैं?"

स्वामी विवेकानन्द—"तो आप माता से ही कहिए कि रोग को मिटा दे। माता आपकी बात निश्चय ही मानेगी?"

श्रीरामकृष्ण—"अरे! तुम लोग तो बहुत कहते हो, पर यह बात मेरे मुँह से तो बाहर ही नहीं निकलती। इसको मैं क्या करूँ?"

स्वामी विवेकानन्द—"ऐसा न कहिए, महाराज! आपको यह बात माता के सामने कहनी ही चाहिए।"

श्रीरामकृष्ण—"अच्छा भाई! देखूँगा—हो सकेगा तो बात निकालूँगा।"

कुछ घण्टों के बाद स्वामीजी (विवेकानन्द) पुनः श्रीरामकृष्ण के पास जाकर बोले —— "महाराज ! क्या आपने माता के पास बात निकाली थी ? माता क्या बोली ?"

श्रीरामकृष्ण —— "माता से मैंने कहा —— 'माता ! (गले की ओर उंगली दिखाकर) इसके कारण मुझे कुछ खाते नहीं बनता। इसलिए दो कौर खा सकूँ ऐसा कोई उपाय तू कर।' इस पर तुम सब की ओर उंगली दिखाते हुए माता बोलीं —— 'क्यों भला ? इन सब के मुँह से क्या तू नहीं खाता ?' यह सुनकर मुझे लज्जा आई, मेरी छाती धड़कने लगी और फिर मैं कुछ बोल नहीं सका।"

देहबुद्धि का यह कैसा अद्‌भुत अभाव ! और अद्वैत ज्ञान की कितनी पराकाष्ठा ! उस समय छः महीने तक श्रीरामकृष्ण का रोज का आहार पाव, डेढ़ पाव साबुदाना ही था और ऐसी अवस्था में — "क्यों भला ! क्या इन सब के मुँह से तू नहीं खाता ?" इस प्रकार जगदम्बा के कहते ही "इस क्षुद्र शरीर को, मैंने 'मैं' कह दिया यह कितना बड़ा पाप किया," यह सोचकर श्रीरामकृष्ण लज्जा से मुँह नीचा करके निरुत्तर हो गए और रोग को आराम करने की कल्पना तक मन में नहीं ला सके।

वैसे ही और एक दिन की बात है। उस दिन श्रीरामकृष्ण बागबाजार में बलराम बसु के घर गए थे। दस बजे का समय होगा। श्रीरामकृष्ण वहाँ दिन को ही आएँगे यह पहले ही निश्चित हो चुका था और इसी कारण नरेन्द्र आदि अनेक भक्तगण वहाँ एकत्रित होकर श्रीरामकृष्ण से तथा आपस में वार्तालाप कर रहे थे। बोलते बोलते माइक्रास्कोप (सूक्ष्मदर्शक यंत्र) की बात निकल पड़ी। आँख से

बिलकुल न दिखने वाली कई चीजें उसमें दिख सकती हैं, शरीर पर का बारीक रोम भी छड़ी के समान मोटा दिखाई देता है, बिलकुल छोटी चीज के भी भिन्न भिन्न भाग दिखाई देते हैं,—इत्यादि बातें सुनकर श्रीरामकृष्ण को एक छोटे बालक के समान कौतुक मालूम हुआ और उस यंत्र को देखने की इच्छा उन्होंने प्रकट की। अतः उसी दिन दोपहर को वह यंत्र कहीं से लाकर श्रीरामकृष्ण को दिखाने का उन भक्त लोगों ने निश्चय किया।

पता लगाने पर मालूम हुआ कि स्वामी प्रेमानन्द के भाई डॉक्टर बिपिन बिहारी घोष के यहाँ एक माइक्रास्कोप है। उन लोगों ने तुरन्त ही उसे वहाँ से मँगवा लिया और श्रीरामकृष्ण के पास उसे दिखाने ले गए। श्रीरामकृष्ण उठे और देखने के लिए आगे बढ़े, परन्तु बिना कुछ देखे ही पीछे हट गए! सभी को इससे बड़ा आश्चर्य हुआ। इसका कारण पूछने पर श्रीरामकृष्ण बोले—"इस समय मन इतनी उच्च अवस्था में आरूढ़ हो गया है कि किसी भी उपाय से उसको वहाँ से उतार नहीं सकते!" हम लोगों ने उनके मन के उतरने की राह बहुत समय तक देखी, पर फल कुछ नहीं हुआ। उनका मन उस दिन साधारण अवस्था में आया ही नहीं और तब तो उन्होंने उस यंत्र को बाद में देखा भी नहीं!

ऊपर लिखी दोनों बातों से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि श्रीरामकृष्ण सदृश ब्रह्मानन्द में मग्न पुरुषों का जब अपने शरीर की ओर भी ध्यान नहीं रहता, तब अन्य विषयों की ओर उनका ध्यान न जाने में तथा उन विषयों पर मन एकाग्र करके उनका ज्ञान प्राप्त न करने में आश्चर्य ही क्या है? अस्तु—

देहादि साधारण भाव को छोड़कर श्रीरामकृष्ण का मन जब उच्च उच्चतर भावभूमि पर आरूढ़ होता था, तब उस अवस्था में प्राप्त होने वाले सब असाधारण दर्शन उन्हें प्राप्त होते थे और देहबुद्धि का सर्वथा त्याग करके जब उनका मन अद्वैत-भाव में एक हो जाता था, तब तो उनकी इन्द्रियों का सर्व व्यापार बिलकुल बंद हो जाता था — हृदय का स्पंदन तक बंद हो जाता था और कुछ समय तक उनका भौतिक शरीर मृतवत् पड़ा रहता था। उस समय यदि उनकी आँख की पुतली को भी स्पर्श किया जाता था तो भी पलकें नहीं हिलती थीं! इस प्रकार की अत्यन्त उच्च अवस्था में उन्हें पृथ्वी पर की सभी चीज़ों और सभी विषयों का पूर्ण विस्मरण हो जाता था। सो भी यहाँ तक कि इस अवस्था से निकलकर साधारण अवस्था में मन के आ जाने पर भी कुछ समय तक वे नित्य परिचय की वस्तुओं और व्यक्तियों तक को पहचान नहीं सकते थे; और मैं कोई नई सृष्टि देख रहा हूँ, ऐसा भास उन्हें होकर, क्या मैंने इस वस्तु या व्यक्ति को इसके पहले कभी देखा है ऐसा वे स्मरण करने लगते थे। फिर भी मैं गलती तो नहीं कर रहा हूँ यह निश्चय करने के लिए पास के किसी व्यक्ति की ओर उंगली दिखाकर 'नरेन्द्र?' (यह नरेन्द्र ही है न?) 'राखाल?' और किसी दूसरी वस्तु की ओर उंगली दिखाकर — 'लोटा?' 'धोती?' — ऐसा पूछा करते थे और पास में बैठे हुए लोग — 'हाँ महाराज! नरेन्द्र' 'हाँ महाराज! लोटा' इत्यादि उत्तर देते थे। तब उन्हें विश्वास जो जाता था कि हाँ वे ठीक ठीक पहचान रहे हैं और तदुपरान्त वे दूसरी बातें कहना आरम्भ करते थे!

उपरोक्त विवेचन से यह विदित हो गया कि इस संसार की भिन्न भिन्न वस्तुओं और व्यक्तियों की ओर श्रीरामकृष्ण दो दृष्टियों से देखते थे। एक तो विराट अहंकार में उनका मन एकरस हो जाने पर उस उच्च अवस्था से, और दूसरी साधारण भावभूमि से; इसीलिए किसी वस्तु या व्यक्ति के सम्बन्ध में उनका एकदेशीय मत कभी नहीं होता था और इसी कारण वे दूसरों के मन के सभी भावों को जान सकते थे। हम लोग तो मनुष्य को मनुष्य, पशु को पशु, पेड़ को पेड़ — इसी दृष्टि से देखते हैं; परन्तु श्रीरामकृष्ण को मनुष्य, पशु, वृक्ष क्रमशः मनुष्य, पशु वृक्ष तो दिखते ही थे, पर इसके सिवाय उन्हें यह भी दिखाई देता था कि इन सब में वह जगत्कारण सच्चिदानन्द भरा हुआ है। किसी में उसका प्रकाश अधिक और किसी में कम — इतना ही अन्तर है। वे कहते थे —"ऐसा देखता हूँ कि मनुष्य, पशु, वृक्ष, प्राणी ये सब भिन्न भिन्न आवरण हैं। तकियों के जैसे गिलाफ होते हैं — कोई छींट का, कोई खादी का और कोई दूसरे कपड़े का, कोई चौकोर, कोई गोल — इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार के कपड़े के और आकार के होते हैं; पर इन सभी में एक ही पदार्थ – कपास – भरा रहता है। उसी तरह मनुष्य पशु आदि सभी में वही एक अखण्ड सच्चिदानन्द भरा है। सचमुच मुझे ऐसा दिखता है कि माता इन भिन्न भिन्न प्रकार की ओढ़नियों को ओढ़कर भीतर से झाँककर देख रही है। एक समय ऐसी अवस्था हो गई थी कि जब सदा ऐसा ही दिखाई देता था। मेरी ऐसी अवस्था देखकर उसे ठीक ठीक न समझने के कारण, सब लोग मुझे सान्त्वना देने के लिए, शान्त करने के लिए आए। रामलाल की माँ ने मुझे कितना समझाया और अन्त में वह खुद ही रोने लगी। उन सब की ओर मैंने देखा तो

ऐसा दिखाई दिया कि (काली-मन्दिर की ओर इशारा करके) यह माता ही भाँति भाँति के वेश धारण करके मुझसे ये सब बातें कह रही है। उसके ये ढंग देखकर हँसते हँसते मेरे पेट में दर्द होने लगा और मैं कहने लगा — 'वाह! कैसी सजकर आई है!' एक दूसरे दिन की बात है, मैं मन्दिर में आसन पर बैठकर माता का ध्यान करने लगा, पर किसी भी उपाय से माता की मूर्ति ध्यान में आती ही नहीं थी। ऐसा क्यों हो रहा है — सोचकर देखता हूँ, तो कालीघाट पर एक रमणी नाम की वेश्या नित्य स्नान करने आती थी, उसी के समान सजकर माता सिंहासन के पास ही खड़ी हो झाँककर देख रही है। यह देखकर मुझे हँसी आई और मैं बोला — 'वाह! वाह! माता! आज तुझे रमणी बनने की इच्छा हो गई? अच्छा ठीक है, अब इसी रूप से आज अपनी पूजा ग्रहण कर!' रमणी के समान साज सजाकर माता ने दिखा दिया कि वेश्या भी मैं ही हूँ, मेरे सिवाय और दूसरा कोई नहीं है। और एक दिन मैं मच्छीबाजार से गाड़ी में बैठकर जा रहा था, वहाँ देखा कि बड़ी सजधज के साथ, माँग निकालकर, सुन्दर साड़ी पहिनकर बरामदे में खड़ी हुक्का पीते हुए एक वेश्या लोगों का मन लुभा रही है। इसे देख-कर मैं चकित होकर बोला —'वाह! वाह! माता! आज तुझे यह रूप धारण करने की इच्छा हुई!' और उसे प्रणाम किया — उच्चभावभूमि पर आरूढ़ होकर जगत् की वस्तुमात्र की ओर इस दृष्टि से देखना हम बिलकुल भूल गये हैं; इसी कारण हमें श्रीरामकृष्ण के इस अद्भुत उपलब्धि का रहस्य कैसे मालूम हो?

यह तो हुई उच्चभावभूमि पर से देखने की प्रणाली। अब जिस समय श्रीरामकृष्ण साधारण भावभूमि में रहते थे तब उनके मन में

स्वार्थसुख या भोगसुख की लेश मात्र इच्छा न रहने के कारण उनकी शुद्ध बुद्धि और शुद्ध दृष्टि में हमारी अपेक्षा कितनी अधिक बातें समझ में आ जाती थीं और वे सूक्ष्म से सूक्ष्म और गहन से गहन विषय को भी सहज ही में समझ सकते थे। अद्वैत भाव का पूर्ण रूप से अभ्यास रहने के कारण उन्हें जगत में ईश्वर के स्वरूप के सिवाय और कुछ नहीं दिखता था, और उनका यह अद्वैत ज्ञान इतना गम्भीर था कि बिलकुल थोड़े ही उद्दीपन से भी उन्हें एकदम समाधि लग जाती थी ; इस प्रकार की घटनाएँ नित्य हुआ करती थीं।

एक दिन वे अपने कमरे के बरामदे में बैठे थे कि एक बड़ा सा कीड़ा उड़ता हुआ आया। उसके शरीर में एक कांटा घुस गया था जिसे वह निकालने का बहुत प्रयत्न कर रहा था। उसकी उस दशा को देखकर श्रीरामकृष्ण का शरीर थर थर कांपने लगा, और वे "हे राम! यह तेरी कैसी शोचनीय दशा हो गई है" कहते कहते समाधिमग्न हो गए।

एक दिन गाड़ी में बैठकर कलकत्ते से दक्षिणेश्वर आते समय किसी बड़ी सड़क पर एक पान की दूकान दिखाई दी। दूसरी एक बड़ी दूकान की सीढ़ी के पास नाली के किनारे एक कमानी के नीचे मुश्किल से एक मनुष्य के बैठने लायक जगह थी। वहीं नाली पर एक चौरंग (तख्त) रखकर उस कमानी के नीचे की तंग जगह में उस पानवाले ने अपनी दूकान सजाई थी। उस बेचारे से वहाँ ठीक ठीक उठते बैठते भी नहीं बनता था। उसके इस प्रकार के संसार को देखकर श्रीरामकृष्ण की आँखें डबडबा गईं और "माता! माता! तेरी माया का प्रभाव बड़ा विचित्र है" ऐसा कहते कहते वे समाधिमग्न हो गए।

और एक दिन कलकत्ते से दक्षिणेश्वर लौटते समय उनकी बग्घी एक शराब की दूकान के पास से गई। वहाँ ग्राहकों की बहुत भीड़ थी और सुरापान के आनन्द में मस्त होकर कुछ लोग जोर जोर से बात-चीत कर रहे थे, कोई गाते थे, कोई नाचते थे — इस तरह वहाँ बड़ी गड़बड़ी मची हुई थी। उन लोगों के इस आनन्द को देखकर श्रीराम-कृष्ण को ब्रह्मानन्द का उद्दीपन हो आया और वे एकाएक गाड़ी के भीतर ही खड़े होकर उन लोगों की ओर देखते हुए "वाह! वाह! बहुत अच्छा जलसा है" कहते कहते समाधिमग्न हो गए!

कई बार तो 'कारण' (मद्य) शब्द का उच्चारण होते ही उन्हें जगत्कारण ईश्वर का उद्दीपन होकर उसी नशे में उन्हें समाधिमग्न होते हुए हम लोगों ने देखा है! स्त्री-पुरुषों के जिस अवयव का केवल नाम लेना ही असभ्य और अश्लील माना जाता है, उनका उच्चारण करते हुए भी वे कई बार समाधिमग्न हो जाते थे और अर्धबाह्य दशा प्राप्त होने पर वे कहते थे — "माता! पचास वर्ण तेरे ही स्वरूप हैं न? तब जिन वर्णों को जोड़ने से वेद-वेदान्त की रचना हुई है वे भी सब अश्लील ही हुए! तेरे वेद-वेदान्त का 'क' 'ख' और अश्लील भाषा का 'क' 'ख' उससे भिन्न तो नहीं है न? वेद-वेदान्त भी तू ही है और गाली-गलौज भी तू ही है" और ऐसा कहते हुए वे पुनः समाधिस्थ हो जाते थे। संसार के सभी भले बुरे पदार्थ उनकी पवित्र दृष्टि में केवल जगन्माता के स्वरूप ही दिखाई देते थे। मन की कैसी उच्च पवित्रता है!

वैसे ही श्यामपुकूर के बगीचे में रहते समय एक दिन किसी ने श्रीरामकृष्ण से पूछा कि साकार और निराकार ध्यान के उपयोगी कौन कौन से आसन हैं? तब वे उसे समझाने लगे। पद्मासन लगाकर बाईं

हथेली पर दाहिनी हथेली का पृष्ठभाग रखकर उन दोनों हाथों को अपने वक्षःस्थल पर धारण करके आँखें मूँदकर वे बोले — "सब तरह के साकार ध्यान के लिए यह आसन उपयुक्त है।" इसके बाद उसी आसन पर बैठकर बायें घुटने पर बायाँ और दाहिने घुटने पर दाहिना पंजा चित रखकर अंगूठा और तर्जनी के सिरे मिलाकर बाकी अंगुलियाँ सीधी रखकर दृष्टि भ्रूमध्य भाग में स्थिर करके वे बोले — "निराकार ध्यान के लिए यही आसन ठीक है।" ऐसा कहते कहते उन्हें समाधि लग गई। समाधि उतरने के बाद वे बोले — "अब और कुछ नहीं बताता; क्योंकि इस तरह इस आसन पर बैठते क्षण ही उद्दीपन होता है और मन तन्मय होकर समाधि में लीन हो जाता है।"

सदैव ईश्वर का चिन्तन करने तथा भाव और समाधि में मग्न रहने के कारण वे अद्वैत भाव की पराकाष्ठा में पहुँच गए थे और वे यथार्थ में दिव्यभावारूढ़ हो गये थे। ईश्वर से पृथक् अपना अस्तित्व भूल जाने और 'अहं' का लेश मात्र भी उनके मन मे न रहने के कारण वे ऐसी उच्च अवस्था में पहुँच गए थे कि जो उनकी इच्छा होती थी वही ईश्वर की इच्छा रहती थी। उनके सब व्यवहार में, बोलचाल में मानवी दुर्बलता या असम्पूर्णता का कुछ भी अंश शेष नहीं था। उनका शरीर चैतन्यमय हो गया था और अमानुषी ईश्वरी शक्ति के प्रकट होने के लिए वे एक प्रबल यंत्र बन गए थे। उनके अमानुषी दिव्य भाव को प्रकट करने वाले उदाहरण उनके जीवन में प्रतिदिन पाए जाते थे और उनकी अमानुषी शक्ति का परिचय हर एक को हो जाता था।

अवतारी महापुरुषों में, दूसरों को स्पर्श करके या उनकी ओर देखकर या केवल इच्छा-मात्र से उनके मन की मलीनता को दूर करके

उनकी वृत्ति को ईश्वराभिमुख बना देने की शक्ति रहा करती है। यह शक्ति श्रीरामकृष्ण में पूर्ण रूप से निवास करती थी। कई बार ऐसा देखा गया है कि कोई उनके विरुद्ध मत का अवलम्बन करके उनके साथ बहुत वाद-विवाद करता हो, मानो, उसने निश्चय कर लिया हो कि 'श्रीरामकृष्ण का कहना मानना ही नहीं है,' तो ऐसे समय उससे बोलते-बोलते बड़ी चतुराई से वे उसके शरीर को स्पर्श कर देते थे। ऐसा करते ही परिणाम यह होता था कि उसी समय से उसकी विचार-धारा की गति बदल जाती थी और वह मनुष्य श्रीरामकृष्ण के सिद्धान्त को पूर्ण रीति से मान्य कर लेता था। श्रीरामकृष्ण स्वयं ही कभी कभी कहते थे—"लोगों से बोलते बोलते बीच में ही मैं किसी को स्पर्श क्यों कर देता हूँ इसका कारण जानते हो? जिस अविद्या शक्ति का आवरण उसके मन पर पड़ जाता है, उस शक्ति का ज़ोर कम होकर उसको यथार्थ सत्य समझाने के लिए ही ऐसा करता हूँ!" अपने भक्तों में से बहुतों को वे ध्यानस्थ होने के लिए कहकर उनके वक्षःस्थल को, जिह्वा को स्पर्श कर देते थे। उस शक्तिशाली स्पर्श के प्रभाव से उनके मन का बाह्य-विषय-चिन्तन नष्ट होकर उनकी वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती थी और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न प्रकार के दर्शन और अनुभव प्राप्त होते थे! नरेन्द्र, छोटे नरेन्द्र, तारक, तेजचन्द्र आदि प्रायः सभी भक्तों के जीवन में उनके इस दिव्यशक्तिपूर्ण स्पर्श ने क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी! नरेन्द्रनाथ के जीवन में इससे कितनी उथलपुथल मच गई, उसका वर्णन आगे करेंगे। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे—"मन के बाहर रहने वाली शक्तियों को किसी उपाय से वश में करके उनके बल पर कोई चमत्कार कर दिखाना

कोई बड़ी बात नहीं है, पर यह दक्षिणेश्वर के मन्दिर का अशिक्षित पुजारी जैसे मिट्टी के लोंदे को चाहे जैसा आकार दे सकते हैं उसी तरह, लोगों के मन को चाहे जैसा बना देता था, उनके मन में चाहे जैसा परिवर्तन कर सकता था, स्पर्श द्वारा या केवल इच्छा-मात्र से उनके मन के विचार के प्रवाह को बदल डालता था — इससे अधिक आश्चर्यमय चमत्कार मुझे और कहीं नहीं दिखाई दिया!"

उनकी दिव्य शक्ति के बहुत से उदाहरण इसके पहले लिखे जा चुके हैं। काशीपुर के बगीचे में अपने अन्तिम दिनों में गले के रोग से अत्यन्त पीड़ित रहते हुए, श्रीरामकृष्ण एक दिन हमसे बोले — "माता मुझसे ऐसा कह रही है कि (अपनी ओर उंगली दिखाकर) इस शरीर में अब एक ऐसी शक्ति प्रगट हो गई है कि अब इसे स्वयं किसी को स्पर्श करने की आवश्यकता नहीं है। मैं किसी से कहूँगा कि 'तू उसे स्पर्श कर' और उसका स्पर्श करना ही बस होगा और केवल उसीसे उसको चैतन्य-प्राप्ति हो जाएगी। यदि इस समय माता ने यह रोग मिटा दिया, तो लोगों की यहाँ इतनी भीड़ होगी कि रोकते रोकते तुम्हारे नाकों दम हो जाएगा, और मुझे भी इतना श्रम उठाना पड़ेगा कि औषधि लेकर शरीर को स्वस्थ रखना पड़ेगा।"

विशेष विशेष पर्व के समय श्रीरामकृष्ण के शरीर और मन में विशेष विशेष प्रकार के देवभाव उत्पन्न होते थे। वैष्णवों के पर्व के दिन वैष्णव भाव, तथा शाक्तों के पर्व के दिन शक्ति भाव उनमें विशेष मात्रा में दिखाई देता था। उदाहरणार्थ — दुर्गापूजा या कालीपूजा के दिन वे श्रीजगदम्बा के भाव में इतने तन्मय हो जाते थे कि उनके शरीर का हिलना डुलना भी श्री जगदम्बा की वराभयमूर्ति के समान हो जाता था।

जन्माष्टमी और अन्य वैष्णव पर्व के दिन वे श्रीकृष्ण और राधा के भाव में तन्मय हो जाते थे जिससे उनके अंगों में कम्प, पुलक आदि अष्ट सात्विक भावों के लक्षण दिखाई देते थे और ये भिन्न भिन्न भावावेश उनमें इतनी स्वाभाविक रीति से उत्पन्न होते थे कि ऐसा मालूम पड़ता था कि इन भावों के उत्पन्न होने में उन्हें कुछ भी श्रम नहीं होता है। इतना ही नहीं, वरन् यह भी देखने में आया कि किसी पर्व के दिन ईश्वरी कथा-प्रसंग में अत्यन्त तन्मय हो जाने के कारण वे यह भी भूल जाते थे कि आज अमुक पर्व है और इतने ही में जब बाहरी कथा-वार्ता बन्द हो जाती थी तब उस दिन के पर्व के उपयुक्त भाव उनमें उत्पन्न हो जाते थे और ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई जबरदस्ती उनके मन के भावप्रवाह को बदल रहा हो। कलकत्ते में श्यामपुकुर में रहते समय डॉ. सरकार आदि लोग दुर्गापूजा के दिन कह रहे थे कि श्रीरामकृष्ण को अकस्मात् भावावेश उत्पन्न हो गया। उस समय की उनकी तेजःपुंज और हास्ययुक्त मुखाकृति को देखकर कौन कह सकता था कि उन्हें रोग हुआ है?

जिस समय जो भाव उनके मन में प्रबल रहता उसी में वे इतने तन्मय होकर रहते थे कि उनके मन में दूसरा कोई भी विचार नहीं आता था। उनके स्वभाव की यह विशेषता उनके अब तक के चरित्र से पाठकों के ध्यान में आ ही गई होगी। भावावेश में यदि वे चलते थे, तो उनका ध्यान इधर उधर या आसपास बिलकुल नहीं रहता था और वे किसी मत-वाले मनुष्य के समान कदम रखा करते थे। लगातार बारह वर्ष की कठोर तपस्या के कारण उनके मन को एकाग्रता का इतना अभ्यास हो गया था कि हाथ में लिए हुए काम के सिवाय, अथवा मन में उस समय जो

विचार रहता था उसके सिवाय, दूसरा काम या विचार करना उनके लिए असम्भव हो जाता था। उदाहरणार्थ, दक्षिणेश्वर में अपने कमरे से वे श्री जगदम्बा के दर्शन के लिए मन्दिर की ओर जा रहे हैं। उनके कमरे से श्री जगदम्बा के मन्दिर में जाते समय रास्ते में श्रीराधा-गोविन्द जी का मन्दिर पड़ता है। तब मामूली तौर से यही ठीक दिखता है कि जाते हुए श्रीराधा-गोविन्द जी का दर्शन करके फिर वे श्री जगदम्बा के मन्दिर को जाते। पर उनसे ऐसा कभी नहीं बनता था। वे अपने कमरे से निकले कि सीधे जल्दी जल्दी प्रथम श्री जगदम्बा के मन्दिर में पहुँचते और माता को प्रणाम करके लौटते समय श्रीराधा-गोविन्द जी के दर्शन के लिए जाते थे। पहले पहल हमें ऐसा मालूम पड़ता था कि इन्हें श्री जगदम्बा के प्रति विशेष भक्ति है इसी कारण ये ऐसा करते हैं; पर एक दिन श्रीरामकृष्ण स्वयं बोले — "ऐसा क्यों होता होगा भला? माता के दर्शन के लिए जाने का मन हुआ कि सीधे माता के ही मन्दिर की ओर जाना पड़ता है। यदि चाहें कि श्रीराधा-गोविन्द जी का दर्शन करते हुए जाएँ या इधर उधर होते हुए जाएँ, तो वैसा करते नहीं बनता था। पैर ही इधर उधर नहीं चलते थे। माता का दर्शन कर लेने के बाद चाहे जहाँ जाते बनता है। ऐसा क्यों होना चाहिये?' इसका कारण वे स्वयं ही कई बार बताते थे। वे कहते थे कि मन में ऐसा आ जाने पर कि अमुक कार्य करना है उस कार्य को उसी समय कर डालना चाहिये। उसमें थोड़ा भी विलम्ब असह्य हो जाता है। निर्विकल्प अवस्था प्राप्त हो जाने पर तो वहाँ कुछ 'मैं', 'तू', बोलना-चालना आदि शेष नहीं रह जाता। वहाँ से दो-तीन सीढ़ियाँ उतरने के बाद भी मन की यह

स्थिति रहती है कि उस समय भी कई वस्तुओं या व्यक्तियों से व्यवहार करते नहीं बनता। मान लो, उस समय मैं भोजन करने बैठा और थाली में पचास तरह की तरकारियाँ परोसी गई हैं, तो भी हाथ उनकी ओर नहीं जाता। जो कुछ खाना हो उन सब को एक में मिलाकर एक ही जगह से कौर उठाकर खाना पड़ता है।"

भावावेश में शरीरज्ञान का पूर्ण लोप हो जाने के कारण उनके हाथ, पैर, सिर आदि अंग टेढ़ेमेढ़े हो जाते थे। कभी कभी तो उनका सारा शरीर हिलने लगता था और मालूम होता था कि वे अब गिर रहे हैं। इस कारण ऐसे समय पास में रहने वाले भक्तगण उनके टेढ़ेमेढ़े अंग को धीरे धीरे ठीक कर देते थे और वे गिरने न पावें इस उद्देश से उन्हें ठीक तरह से सम्हाल लिया करते थे; और उनकी समाधि को उतारने के लिए जिस देवता या भाव के चिन्तन के कारण उन्हें समाधि लगी होती थी, उसी देवता का नाम— 'काली काली', 'कृष्ण कृष्ण', 'ॐ ॐ' उनके कान में लगातार कुछ समय तक उच्चारण करते थे। ऐसा करने से उनकी समाधि उतरती थी! जिस भाव के चिन्तन के कारण वे तन्मय होकर समाधिमग्न हुआ करते थे, उसके सिवाय दूसरे भावों का नाम उनके कान में उच्चारण करने से उन्हें भयानक पीड़ा होती थी। श्रीरामकृष्ण कहते थे— "एक ऐसी अवस्था हुआ करती है कि उस समय किसी का भी स्पर्श सहन नहीं होता। यदि भूल से भी किसी का स्पर्श हो जाए तो भी वेदना होती है। और ऐसी भी एक अवस्था होती है कि उस समय केवल (बाबूराम की ओर उंगली दिखाकर) इसी का स्पर्श सहन होता है और इसी के हाथ का भोजन ग्रहण किया जा सकता है।"

श्रीरामकृष्ण श्री जगदम्बा के दर्शन के लिए प्रतिदिन जाया करते थे और वे जब जब जाते थे, तब तब उन्हें भावावेश उत्पन्न हो जाता था और कभी कभी तो उन्हें गहरी समाधि भी लग जाती थी। तब तो समाधि उतरकर बाह्य दशा प्राप्त होते तक वहीं पर उन्हें कोई पकड़कर खड़ा रहता था। बहुत समय तक उनके कानों में नामोच्चारण करने पर धीरे धीरे उनकी समाधि उतरती थी और वे अपने कमरे की ओर जाते थे। ऐसे समय में उनका हाथ पकड़कर चलना आवश्यक हो जाता था और चलते समय छोटे बालक के समान उनकी खबरदारी रखनी पड़ती थी। नहीं तो भावावस्था के नशे में उनके गिरने का भय रहता था। इसीलिए उनको पकड़कर चलने वाले मनुष्य को — 'यहाँ सीढ़ी है, जरा नीचे पैर रखिए', 'यहाँ सीढ़ी चढ़ना है, जरा पैर उठाकर रखिए' इस प्रकार उन्हें सावधान करते हुए उनके कमरे तक ले जाना पड़ता था।

एक दिन कलकत्ते से लौटने पर, श्रीरामकृष्ण सीधे काली-मन्दिर में चले गए और देवी का दर्शन करके बाहर जगमोहन (सभा-मण्डप) में खड़े होकर एक स्तुति का पद्य कहते कहते समाधिमग्न हो गए। पास में बहुत से भक्त लोग भी थे। श्रीरामकृष्ण को खड़े खड़े समाधिमग्न होते देखकर, शायद वे गिर न पड़ें इस डर से छोटे नरेंद्र उनको सम्हाले रखने के लिए आगे बढ़े, परन्तु उनके हाथ का स्पर्श होते ही श्रीरामकृष्ण एकदम चिल्ला उठे! ऐसे समय में मेरा स्पर्श श्रीरामकृष्ण को पसन्द नहीं है यह देखकर बेचारा नरेन्द्र उदास होकर दूर हट गया। वहीं कुछ दूर पर श्रीरामकृष्ण का भतीजा रामलाल था। श्रीरामकृष्ण का चिल्लाना सुनकर वह दौड़ता हुआ पहुँचा और

श्रीरामकृष्ण को पकड़कर खड़ा रहा। बहुत समय तक श्रीरामकृष्ण के कान में नामोच्चारण करने पर उनकी समाधि उतरी, तो भी उनके पैर इतने लड़खड़ाते थे कि उनसे ठीक खड़े रहते नहीं बनता था।

कुछ समय के बाद जगमोहन की सीढ़ियों पर से वे आंगन में उतरने लगे और उतरते उतरते छोटे बालक के समान कहने लगे, "माँ! मुझे ज़रा अच्छी तरह तो पकड़ो, नहीं तो मैं गिर पड़ूँगा!" और सचमुच उनकी ओर देखने से ऐसा मालूम होने लगा कि श्रीरामकृष्ण एक छोटे बच्चे हैं और वे अपनी माता के मुँह की ओर देखते हुए ही इस तरह बोल रहे हैं और खुद माता के ही हाथ पकड़े रहने के कारण धीरज धरकर उन सीढ़ियों पर से उतर रहे हैं। छोटी छोटी बातों में भी यह कैसी विचित्र निर्भरता थी। वे अपने कमरे में पहुँच गए तो भी उनका भावावेश ज्यों का त्यों बना हुआ था। कुछ समय तक ज़रा कम पड़ जाता था, फिर कुछ समय तक बढ़ जाता था; यही क्रम लगातार जारी था। थोड़ी देर के बाद उनकी समाधि पूर्ण रीति से उतर गई। तब कहीं पता लगा कि छोटा नरेन्द्र जब उन्हें पकड़ने लगा, उस समय उसके पकड़ने से वे क्यों चिल्लाए। नरेन्द्र के सिर में बाईं ओर एक फोड़ा हुआ था और डॉक्टर ने उस समय उसकी चीर-फाड़ की थी। हमने सुना तो ज़रूर था कि "क्षत शरीर से देवमूर्ति को स्पर्श नहीं करना चाहिए।' परन्तु हमें यह कल्पना भी नहीं थी कि इस कहावत की सत्यता इस विचित्र रीति से हमारी आँखों के सामने प्रमाणित होगी! देवी-भाव में तन्मयता प्राप्त होकर बाह्य ज्ञान के पूर्ण लोप होने पर भी कौन जाने किस प्रकार अंतर्ज्ञान से श्रीरामकृष्ण को यह बात मालूम हो गई, पर यह निःसन्देह सत्य है कि नरेन्द्र

के स्पर्श करते ही उन्हें पीड़ा हुई और वे चिल्लाए। सभी जानते थे कि वे छोटे नरेन्द्र को कितने शुद्ध स्वभाव का समझते थे और उसके शरीर में घाव रहने पर भी साधारण अवस्था में अन्य दूसरों के समान उसे भी अपने को छूने देते थे, और उसके साथ एक जगह उठते बैठते भी थे। अतः वह भी कैसे जाने कि भावावस्था में श्रीरामकृष्ण को हमारे स्पर्श से कष्ट होगा। तब से घाव आराम होते तक उसने पुनः श्रीरामकृष्ण के शरीर को स्पर्श नहीं किया। उपरोक्त घटना से स्पष्ट है कि श्रीरामकृष्ण में दिव्य भावों का कितना अद्भुत विकास हो चुका था।

केवल स्पर्श या इच्छा से दूसरे के विचारों को बदल देने का जैसा अद्भुत सामर्थ्य उनमें था, वैसे ही दूसरे के रोग को भी अपने शरीर में खींच लेने का विचित्र सामर्थ्य उनमें था; तथापि वे अपनी शक्ति का बहुत कम उपयोग करते थे। मथुरबाबू की पत्नी (जगदम्बा दासी) का संग्रहणी रोग उन्होंने अपने ऊपर खींच लिया था, यह हम पीछे लिख ही चुके हैं। और एक समय एक कोढ़ी मनुष्य उनके पास आया और "यदि आप एक बार मेरे शरीर पर केवल हाथ फिरा देंगे तो मेरा रोग दूर हो जाएगा" कहते हुए वह हाथ फेरने के लिए अत्यन्त करुणापूर्ण प्रार्थना करने लगा। श्रीरामकृष्ण को उस मनुष्य पर बड़ी दया आई और वे बोले, "भाई! मुझे तो कुछ मालूम नहीं है, पर तू कहता ही है इसलिए फेर देता हूँ तेरे शरीर पर हाथ। माता की इच्छा होगी तो रोग आराम हो जाएगा।" ऐसा कहकर उन्होंने उसके शरीर पर हाथ फिरा दिया। उस दिन सारे दिन भर श्रीरामकृष्ण के हाथ में ऐसी पीड़ा होती रही कि वे उसे सह नहीं

सकते थे। और अन्त में वे कहने लगे, "माता! पुनः ऐसा काम मैं कभी नहीं करूँगा, मुझे क्षमा कर।" श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "उसका रोग तो अच्छा हो गया, पर उसका भोग मुझे भुगतना पड़ा।"

श्रीयुत विजयकृष्ण गोस्वामी ढाका में रहते समय एक दिन अपने कमरे का द्वार बन्द करके ध्यान कर रहे थे। कुछ समय में उन्हें ऐसा भास हुआ कि श्रीरामकृष्ण उनके सामने बैठे हुए हैं। यह सोचकर कि शायद यह भी मस्तिष्क का भ्रम हो, उन्होंने अपने सामने की मूर्ति की ओर बढ़कर उस मूर्ति को स्पर्श किया और हाथ पैर को टटोलकर भी देखा। तब उन्हें यह निश्चय हो गया कि ये प्रत्यक्ष श्रीरामकृष्ण देव ही हैं।

कलकत्ता आने पर एक दिन वे दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए आए थे। तब उन्होंने उक्त घटना की सभी के सामने श्रीरामकृष्ण से चर्चा की। वे बोले, "मैंने देश, विदेश, पहाड़-पर्वत सभी जगह खूब घूम घूम कर अनेक साधु-महात्माओं को देखा, पर (श्रीरामकृष्ण की ओर इशारा करके) इनके समान एक भी पुरुष मेरे देखने में नहीं आया। यहाँ जिन भावों का पूर्ण प्रकाश दिखाई देता है, उसमें से कहीं पाई, कहीं पैसा, तो कहीं आना या अधिक से अधिक दो आने प्रकाश पाया। चार आने भी कहीं नहीं दिखाई पड़ा।" हमारी ओर देखकर कुछ हँसते हुए श्रीरामकृष्ण कहने लगे— "अरे! यह क्या कह रहा है?" विजयकृष्ण बोले, "मैंने उस दिन ढाका में जो दृश्य देखा उसे आप अस्वीकार कर ही नहीं सकते और आप यदि ऐसा करें भी तो मैं आपकी एक भी नहीं मानूँगा। आप दिखने को बड़े भोले-भाले दिखते हैं, इसी कारण हम बड़े असमंजस

में पड़ जाते हैं; और आप हमें बिलकुल पता नहीं लगने देते। आपके दर्शन करने में भी कोई बड़ा कष्ट नहीं उठाना पड़ता है। दक्षिणेश्वर आने को सिर्फ घण्टे, डेढ़ घण्टे का रास्ता है। सवारियों की भी कमी नहीं रहती। नौका है, बग्घी है, गाड़ी है—जब चाहे तब आसानी से आ सकते हैं। आप इस तरह बिलकुल हमारे घर के पास आकर बैठे हैं, इसीलिए हम लोगों ने आपको नहीं पहचाना! और यदि आप किसी पहाड़ पर अथवा किसी दुर्गम गुफा में जाकर बैठे होते और आपके दर्शन के लिए हमें भूख-उपवास का दुःख सहते हुए कई दिनों तक जंगल जंगल भटकना पड़ता, तब हम आपका उचित मूल्य समझते! अब तो ऐसा लगता है कि जब हमारे घर के पास इतना है, तो दूर जंगल, पहाड़ और कंदरा में तो इससे और कितना ही अधिक मिलेगा। ऐसा सोचकर आपको छोड़कर बस व्यर्थ ही इधर उधर दौड़धूप करते हुए मारे मारे फिरते हैं।"

इस प्रकार यथार्थ गुरु-पदवी पर आरूढ़ हो जाने पर भी श्रीरामकृष्ण के मन में अपनी असाधारण शक्ति के कारण किंचित् भी अहंकार का उदय नहीं हुआ, अथवा यों कहना अधिक उचित होगा कि उनमें अहंकार लेश-मात्र भी न रहने के कारण ही उन्हें श्री जगदम्बा ने गुरु-पदवी पर आरूढ़ किया था। अद्वैत भाव की अत्युच्च अवस्था का सदा प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए भी उन्होंने परमेश्वर से माता और बालक का अत्यन्त प्रेममय सम्बन्ध सदा कायम रखा। "मैं अनजान बालक हूँ, मेरी माता सब कुछ जानती है—वह सर्वशक्तिशाली है। मुझको सदा उसकी प्रार्थना करते रहना चाहिए। सदा उसी से चिपके रहना चाहिए—उसे जो करना होगा सो करेगी।" इस प्रकार

की उनकी विलक्षण निर्भरता थी। वे नित्य सायं प्रातः परमेश्वर का नामस्मरण करते थे। वे अपने इस नित्य नियम में कभी नहीं चुकते थे। उनका सदा यही उपदेश रहता था कि — "कलियुग में नामस्मरण के समान दूसरा सरल साधन नहीं है", "नामस्मरण से मनुष्य के मन और शरीर दोनों शुद्ध हो जाते हैं।" उनके कमरे में श्री चैतन्य, श्री बुद्धदेव, ईसामसीह आदि की तसवीरें रहती थीं। सबेरे उठकर भावावेश में वे प्रत्येक तसवीर के सामने जाते और अत्यन्त तन्मयता से नाचते और ताली बजाते हुए वे अपने गंधर्व के समान मधुर स्वर से नामस्मरण करते थे। संध्यासमय भी यही होता। उस समय वे चाहे कलकत्ते में किसी भक्त के घर में हों या दक्षिणेश्वर में अपने कमरे में हों — सायंकाल होते ही वे एकदम सब बातें बन्द करके नामस्मरण करने लगते थे। सच्ची व्याकुलता के साथ अन्तःकरण से ईश्वर की प्रार्थना किस तरह करनी चाहिए, यही बात मानो उस समय वे लोगों को सिखाते थे।

उनके इस नामस्मरण और प्रार्थना का कोई एक निश्चित स्वरूप नहीं था। जिस समय जो भाव उत्कट हो उसी भाव से वे प्रार्थना करते थे और वह किसी भी देवता की हो, उनके बिल्कुल अन्तःकरण से होते रहने के कारण उनके शब्दों का प्रभाव सुनने वालों के मन पर स्थायी रूप से पड़ता था।

उदाहरणार्थ, नीचे लिखी घटना देखिए—

प्रातःकाल हो गया है। अभी तक भक्तमंडली पहुँची नहीं है। श्रीरामकृष्ण हाथ मुँह धोकर अपने कमरे के पश्चिमद्वार के समीप खड़े होकर मधुर स्वर से ईश्वर का नामस्मरण कर रहे हैं। पास ही

'एम्'* खडे हैं। इतने में ही 'गोपाल की माँ' और एक दो अन्य स्त्रियाँ भी श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए आकर एक ओर खड़ी हो गईं।

श्रीरामचन्द्र का नामस्मरण करके, श्रीरामकृष्ण श्रीकृष्णभगवान का नामस्मरण कर रहे हैं—" कृष्ण, कृष्ण; गोपीकृष्ण; गोपी, गोपी ! राखाल-जीवन कृष्ण ! नन्दनन्दन कृष्ण ! गोविन्द, गोविन्द !"

कुछ समय में श्रीगौरांग का नामस्मरण कर रहे हैं—"श्रीकृष्ण चैतन्यप्रभु नित्यानन्द ! हरे कृष्ण, हरे राम, राधे गोविन्द !"

फिर थोड़ी देर में कह रहे हैं—'अलख निरञ्जन!', 'निरञ्जन!' और कहते कहते वे रो रहे हैं। उनके रोने की आवाज सुनकर पास में खडे हुए लोगों की भी आँखें डबडबा आई हैं। श्रीरामकृष्ण आँसू बहाते हुए गद्गद स्वर से कह रहे हैं—"निरञ्जन, आओ मेरे लाल! तुझको अपने गले लगाकर मैं कब अपना जन्म सफल करूँगा? तू मेरे लिए देह धारण करके नररूप होकर आया है !"

पुनः जगन्नाथ के पास जाकर कहने लगे—"जगन्नाथ! जगद्वन्धो! हे दीनबन्धो! मैं तो जगत् के बाहर का नहीं हूँ! नाथ! मुझ पर दया करो !"

वे थोड़ी देर में प्रेमोन्मत्त होकर कहने लगे:—

"उडिष्या जगन्नाथ भज विराज जी!"

अब नाचते नाचते पुनः नामस्मरण करने लगे—"श्रीमन्नारायण! नारायण! नारायण! नारायण!" नाचते नाचते गाने भी लगे—

---

* महेन्द्रनाथ गुप्त। श्रीरामकृष्णकथामृत (श्रीरामकृष्णवचनामृत) नामक अलौकिक ग्रंथ के लेखक और श्रीरामकृष्ण के परम भक्त। वे श्रीरामकृष्ण के सहवास में रहते थे और उन दोनों का घनिष्ट सम्बन्ध था।

"हलाम[1] यार[2] जन्य[2] पागल तारे कई[3] पेलाम[3] सई[4] ॥
ब्रह्मा पागल, विष्णु पागल आर पागल शिव।
तिन पागले युक्ति करे भांगले[5] नवद्वीप ॥
आर एक पागल देखे[6] एलाम[6] वृंदावनेर[7] माझे[7]।
राइके राजा साजाये[8] आपनी कोटाल[9] साजे ॥

धोती छुटकर गिर पड़ी, उसकी भी सुधि नहीं है। कुछ समय के बाद वे आकर अपने पलंग पर बैठ गए।

× × × ×

प्रातःकाल हो गया। भक्त लोग उठकर देखते हैं तो श्रीरामकृष्ण परमेश्वर का नामस्मरण करते हुए अपने कमरे में नाच रहे हैं! कमर में धोती नहीं है! कभी वे गंगा जी को प्रणाम कर रहे हैं, कभी कभी देवादिकों की तसवीरों के पास जाकर प्रणाम करते हैं, कभी एक आध पद भी अत्यन्त तन्मयता से गाते हैं और फिर 'जय जय दुर्गे! जय जय दुर्गे' कहते हुए ताली बजाते और नाचते हैं; कुछ समय के बाद कहते हैं—'सहजानन्द सहजानन्द' 'प्राण हे गोविन्द मम जीवन!' अन्त में कहते हैं—'वेद, पुराण, तंत्र, गीता, गायत्री, भागवत, भक्त, भगवान्;' (गीता के सम्बन्ध में कहते हैं) 'त्यागी, त्यागी, त्यागी, त्यागी', 'तू ही ब्रह्म, तू ही शक्ति, तू ही पुरुष, तू ही प्रकृति, तू ही नित्य, तू ही लीलामयी, तू ही चतुर्विंशति तत्त्व।'

× × × ×

---

१ हो गये, २ जिसके लिए, ३ कहाँ पाया? ४ सखि, ५ तोड़ डाला, ६ देखकर आए, ७ वृन्दावन में, ८ सजाकर, ९ नौकर।

संध्या हो आई है। श्रीरामकृष्ण अपने पास बैठे हुए लोगों के साथ बातचीत कर रहे हैं। उसे बन्द करके एकदम नामस्मरण करने लगे। ताली बजाते हुए अत्यन्त मधुर स्वर से वे कहते हैं—"हरि बोल, हरि बोल, हरिमय हरि बोल, हरि हरि हरि बोल!" कुछ समय में श्रीरामचन्द्र का नामस्मरण करने लगे—"राम, राम, राम, राम, राम, राम, राम, राम!" नामस्मरण के बाद श्रीराम से प्रार्थना कर रहे हैं—

"हे राम! हे राम! मैं तेरी शरण में आया हूँ! हे राम! मैं भजनहीन हूँ, साधनहीन हूँ। हे राम! मुझ पर कृपा कर। मुझे देहसुख नहीं चाहिए, लोकमान्यता नहीं चाहिए, अष्टसिद्धि नहीं चाहिए। केवल तेरे पादपद्मों की शुद्ध भक्ति ही मैं माँगता हूँ, अपनी भुवनमोहिनी माया में मुझे मत फँसा। हे राम! मैं तेरी शरण में आया हूँ, कृपा कर।"

प्रार्थना इतने करुण स्वर से कर रहे हैं कि कैसा भी पाषाण-हृदय मनुष्य क्यों न हो, पसीजे बिना नहीं रह सकता।

बातें करते करते शाम हो गई। श्रीरामकृष्ण मधुर स्वर से नामस्मरण करने लगे। उनके उस मधुर स्वर की उपमा नहीं दी जा सकती। सब मण्डली चित्रवत् तटस्थ होकर श्रीरामकृष्ण के उस नामस्मरण को सुनने लगी। किसी किसी को तो ऐसा मालूम होने लगा कि मानो साक्षात् परमेश्वर ही प्रेममय शरीर धारण करके प्रार्थना करने का ढंग जीवों को सिखा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण कह रहे हैं—'माता! मैं तेरी शरण में आया हूँ! माता! मुझे देहसुख नहीं चाहिए, लोकमान्यता नहीं चाहिए, अष्टसिद्धि नहीं चाहिए, तू मुझे केवल अपने पादपद्मों में

विशुद्ध भक्ति दे —— निष्काम, विमला, अहैतुकी भक्ति दे —— बस, हो गया। मुझे ऐसा बना दे कि मैं तेरी भुवनमोहिनी माया में कभी न फँसूँ, और मुझको तेरे मायामय संसार पर, काम-कांचन पर कभी भी प्रेम न हो। माता! तेरे सिवाय मेरा और कोई भी नहीं है। मैं भजनहीन, साधनहीन हूँ, ज्ञान-भक्ति-वैराग्यहीन मुझ पर तू दया कर और अपने पादपद्मों में शुद्ध भक्ति दे।"

उनका आत्मसमर्पण सर्व काल बड़ा विलक्षण था। मैं कौन हूँ? मैं तो केवल माता के हाथ की कठपुतली, उसके हाथ का एक यंत्र मात्र हूँ, वह जैसे चलाएगी वैसे चलूँगा, जैसा कहेगी उसी तरह करूँगा, —— इसी भावना को लेकर वे सदा ईश्वर पर निर्भर रहा करते थे। आगे चलकर जब उनके पास बहुत से धर्मपिपासु व्यक्ति आने लगे तो उस समय उनसे बोलने में उनकी शंकाओं का समाधान करके उन्हें ईश्वर-प्राप्ति का योग्य मार्ग दिखाने में उनका सारा समय व्यतीत होकर एक क्षण भर भी फुरसत नहीं मिलती थी। तब उन्हें बड़ा कष्ट होने लगा। निरभिमानी और निरहंकार वृत्ति वाले श्रीरामकृष्ण —— 'माता का कार्य करना माता ही जाने, उसने मेरे पीछे व्यर्थ ही यह झंझट क्यों लगा दी? ——' कहते हुए कभी कभी छोटे बच्चे के समान हठ करके अपनी माता से लड़ने लगते थे। एक दिन अपने भक्त लोगों से बोलते समय उन्हें भावावेश हो आया और उसी के आवेग में वे अपनी माता से झगड़ने लगे। वे बोले —— "माता! न जाने तेरे मन में क्या है? क्या इतनी भीड़ जमा होने देना ठीक है? (करुण स्वर से) खाने के लिए या थोड़ा बैठने के लिए भी फुरसत नहीं मिलती! (अपनी ओर उंगली दिखाकर) यह है क्या? एक फ़टा ढोल। और उसे

तू यदि इस प्रकार लगातार ठोकती रहेगी, तो न मालूम वह किस समय फूट जाय? और तब भला माँ! तू क्या करेगी?"

और एक दिन वे दक्षिणेश्वर में भावाविष्ट हो माता से कहने लगे — "माता! तू यहाँ इतनी भीड़ क्यों जमा करती है? (कुछ समय चुप बैठकर) मुझसे यह सब नहीं सहा जाता। सेर भर दूध में आध पाव पानी चाहे मिला ले; पर ऐसा तो नहीं कि दूध तो है एक सेर और पानी मिलाती हो पाँच सेर! बकते बकते मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं! तू जाने और तेरा काम जाने। मुझसे यह नहीं बनता। इतने आदमी यहाँ न लाया करो!"

वैसे ही और एक दिन भावावेश में कहने लगे — "माता! तू राम, केदार, मास्टर (एम्.), इन सब को थोड़ी-थोड़ी शक्ति दे; तब लोग पहले उनके पास जाकर धर्म के तत्त्व को समझ लेंगे और फिर यहाँ आने पर एक दो बातों से उनका समाधान हो जाएगा।"

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि श्रीरामकृष्ण को किंचित मात्र भी अहंकार नहीं था और वे श्री जगदम्बा का कार्य उसी की प्रेरणा से यंत्रवत् किया करते थे।

अहंकार का नाम भी उनमें न रहने के कारण उन्हें लोकमान्यता, कीर्ति आदि की कोई परवाह नहीं थी। स्वामी प्रेमानन्द कहते थे — "एक दिन रात को लगभग बारह या एक बजे जागकर देखता हूँ तो श्रीरामकृष्ण घबड़ाहट की मुद्रा बनाकर कह रहे हैं — 'माता! मुझे कीर्ति मत दे', 'माता! मुझे कीर्ति मत दे' और ऐसा कहते हुए थू थू करते हुए गड़बड़ी में सारे कमरे में दौड़धूप मचा रहे हैं। कमर में धोती भी नहीं है। थोड़ी देर में उन्हें अपनी देह की सुधि हुई, तब पूछने से कहने

लगे —" आज उस समय अचानक मेरी नींद खुल गई, और देखता हूँ तो एक टोकनी में कीर्ति की गठरी लेकर माता मेरे बिछौने के पास खड़ी होकर मुझे उसे स्वीकार करने के लिए कह रही है, पर उस गठरी की ओर मेरी दृष्टि जाते ही मुझे बड़ी घृणा माळूम हुई, और मैंने माता के अत्यन्त आग्रह करते रहने पर भी उसे लेने से साफ़ इन्कार कर दिया। तब कुछ हँसकर माता चली गईं।"

पीछे लिख चुके हैं कि गुरुपदवी पर आरूढ़ होकर वे प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति की ओर सदैव साधारण भावभूमि से और उच्च भावभूमि पर से देखा करते थे। इसी कारण उनकी दृष्टि हमारे समान एकदेशीय नहीं होती थी और इसीलिए जब किसी बात के सम्बन्ध में अथवा किसी व्यक्ति के बारे में वे अपनी राय कायम करते थे, तो उसमें कभी गलती नहीं होती थी। आगे चलकर अपने भक्तगणों के साथ उनका जो अलौकिक प्रेम-सम्बन्ध हुआ और अपने भक्तों के सम्बन्ध में उनका जो मत रहता था, उस सब के यथार्थ रहस्य को समझने के लिए श्रीरामकृष्ण के स्वभाव की उपरोक्त विशेषता ध्यान में रखना आवश्यक है, यह बात पाठकों को सूचित कर अब हम श्रीरामकृष्ण के गुरुभाव की अन्य बातों का विनयपूर्वक उल्लेख करते हैं।

---

९ — असाधारण गुणोत्कर्ष

कहँ रघुपति के चरित उदारा । कहँ मति मोरि निरत संसारा ॥
जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं । कहहु तूल केहि लेखे माँहीं ॥
समुझत अमित राम प्रभुताई । करत कथा मन अति कदराई ॥
मति अति नीच ऊँच रुचि आछी ।
चहिय अमिय जग जुरै न छाँछी ॥
छमि हहिं सज्जन मोर ढिठाई ।
सुनिहहिं बाल वचन मन लाई ॥
जौं बालक कह तोतरि बाता ।
सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता ॥

—तुलसीदास

श्रीरामकृष्ण के अब तक के चरित्र को पढ़कर पाठकों को उनकी असाधारण भगवद्भक्ति, पवित्रता, त्याग, वैराग्य, सरलता, सत्यनिष्ठा आदि गुणों की कल्पना हो ही गई होगी। तो भी उनके गुणों का वर्णन करने के लिए यहाँ एक और प्रकरण रखने का यही उद्देश है कि उनके गुणों का उज्ज्वल चित्र पाठकों के सामने और भी स्पष्ट रूप से रखा जाय जिससे वे यह प्रत्यक्ष देख सकें कि किसी सद्गुण के उत्कर्ष की सीमा कहाँ तक पहुँच सकती है। श्रीरामकृष्ण की अन्य बातों के समान उनकी सरलता, सत्यनिष्ठा, त्याग, वैराग्य आदि गुणों की भी अद्भुत तथा आश्चर्यजनक वृद्धि हुई थी। उनके आश्रय में आने वाले हर एक का ध्यान उनके अलौकिक गुणों में से किसी एक

की ओर अवश्य ही आकर्षित होता था और उसका उसके मन पर यथायोग्य परिणाम हुए बिना नहीं रहता था। कोई उनके सरल स्वभाव को देखकर मुग्ध होता था, तो कोई उनकी ईश्वरनिर्भरता पर आश्चर्य करता था। कोई उनके विलक्षण कामकांचन-त्याग को देखकर विस्मित होता था और किसी के मन पर उनकी सत्यनिष्टा का ही प्रभाव पड़ता था —— इस प्रकार भिन्न भिन्न स्वभाव के लोग उनकी ओर आकृष्ट होते थे। उन सब के मन में श्रीरामकृष्ण के प्रति बड़ा आदरभाव उत्पन्न होता था और सचमुच ही इतने विभिन्न गुणों का ऐसा अपूर्व उत्कर्ष बहुत ही थोड़े मनुष्यों में पाया जाता है। नीचे लिखे वर्णन को पढ़कर पाठकों को इस कथन की सत्यता प्रतीत होने लगेगी।

निरभिमानता।

श्रीरामकृष्ण में गर्व और अभिमान नाम को भी नहीं था। मैं कोई एक अमुक व्यक्ति हूँ, यह अहंकार उनके मन को कभी स्पर्श तक नहीं कर सका। उनके 'अवतार' होने की ख्याति सर्वत्र होते हुए और बड़े बड़े विद्वानों तथा पण्डितों के उनके चरणों में लीन होने पर भी वे स्वयं बालक ही बने रहे! ज़रा भी अहंकार उनमें नहीं आया! कोई भी उनके दर्शन के लिए आया तो उसके प्रणाम करने के पूर्व ही उसे श्रीरामकृष्ण स्वयं ही प्रणाम कर लेते थे! उनके रोम रोम में यह भावना भरी थी कि 'मेरी ओर से जो कुछ होता है वह सब माता ही कराती है, वही चालक है, मैं तो केवल उसके हाथ की पुतली हूँ!' 'मैं' नाम की जब कोई वस्तु ही नहीं है तो अभिमान करे कौन? उनके पास आने वाले लोग उनके इस गुण को देखकर चकित हो जाते थे।

दक्षिणेश्वर में एक बार डॉक्टर सरकार किसी काम के लिए आए

थे। काम हो जाने के बाद वे श्री काली माई के दर्शन के लिए मन्दिर में गए। अहाते के भीतर बगीचे में से जाते समय वहाँ के अनेक प्रकार के फूलों की सुगन्ध से उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। श्रीरामकृष्ण वहाँ उस समय सहज ही टहल रहे थे। उन्हें बगीचे का माली समझकर डॉक्टर साहब ने उनसे दो चार फूल तोड़कर देने के लिए कहा। श्रीरामकृष्ण ने तत्काल कुछ सुन्दर फूल तोड़कर बड़ी नम्रता से उनके हाथ में दे दिए! कुछ दिनों के बाद जब डॉक्टर साहब को अपनी भूल मालूम पड़ी तब वे बड़े लज्जित हुए और उन्होंने श्रीरामकृष्ण से बहुत माफी माँगी।

एक दिन एक भक्त के यहाँ श्रीरामकृष्ण को भक्तमण्डली सहित भजन करने के लिए निमन्त्रण दिया गया था। भजन के बाद फलाहार के समय वह भक्त, कुछ बड़े लोग जो वहाँ आए थे, उनके आतिथ्य में लग गया और श्रीरामकृष्ण वैसे ही बैठे रह गए! देवता को त्यागकर देवालय की पूजा होने लगी! श्रीरामकृष्ण में तो मान-अपमान का भाव ही नहीं था। कुछ समय तक ठहरकर अपनी ओर किसी को ध्यान न देते देख वे कहने लगे—"अरे, क्यों भाई? क्या हमारी ओर कोई नहीं देखते?" उनके साथ आये हुए भक्तों में से एक व्यक्ति क्रुद्ध होकर कहने लगा—"चलिये महाराज, हम लोग दक्षिणेश्वर चलें!" श्रीरामकृष्ण बोले—"अरे बाबा! ऐसा क्रोधित होने से कैसे चलेगा? पास में तो फूटी कौड़ी भी नहीं है और गुस्सा देखो तो इतना! और इतनी रात को जाएँगे भी कहाँ? गाड़ी का भाड़ा कौन देगा? जरा ठहरो, उन लोगों की व्यवस्था हो जाने के बाद अपनी भी तजवीज हो जाएगी!" इतने में ही उस

गृहस्वामी को श्रीरामकृष्ण का स्मरण हो आया और उसने उनकी सब प्रकार से उचित व्यवस्था कर दी।

दक्षिणेश्वर में एक बार एक साधु आया। वह अत्यन्त तामसी वृत्ति का था। एक दिन उसे चिलम पीने के लिए आग की आवश्यकता हुई। इसलिए वह श्रीरामकृष्ण के कमरे की ओर आया। श्रीरामकृष्ण अपने भक्तों से बातचीत कर रहे थे। उस साधु को देखते ही वे एकदम उठ बैठे और हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्रतापूर्वक एक ओर खड़े हो गए। पास ही बैठे हुए लोगों में से एक ने बता दिया कि यहाँ आग नहीं है। तब वह साधु अपने आप ही कुछ बड़बड़ाता हुआ वहाँ से चला गया। उसके चले जाने के बाद श्रीरामकृष्ण अपने पलंग पर बैठे। श्रीरामकृष्ण का यह अद्भुत बर्ताव देखकर राखाल हँसते हँसते कहने लगा — "महाराज! साधुसन्तों के प्रति आपकी कितनी भक्ति और आदर है! अहाहा!" श्रीरामकृष्ण यह सुनकर हँसते-हँसते बोले — "अरे बाबा! तमोमुख नारायण हैं। उनका भी मान रखना चाहिए, अन्यथा माता को गुस्सा आ जाता है। समझे नहीं?"

अन्तिम बीमारी में अधिक कष्ट होते देखकर भक्तगणों ने जब डॉ. सरकार को बुलवाने का निश्चय किया तब उस विचार को सुनकर श्रीरामकृष्ण उन लोगों से बोले — "उनके बुलवाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, पर तुम लोग उनसे यह कहो कि 'एक गरीब आदमी बीमार है, उसको पैसा खर्च करने की शक्ति नहीं है, आप कृपा करके उसे देखने के लिए चलिए।' इस पर यदि वे आवें तो आने दीजिए।" श्रीरामकृष्ण के भक्तगण यद्यपि बड़े धनी नहीं थे तथापि वे अपने गुरुदेव के लिए अपना सर्वस्व भी खर्च कर देने के लिए तैयार थे। श्रीरामकृष्ण

को भी यह विदित था, पर तो भी वे यह सोचते थे कि हम फकीर लोग हैं, हमें इतना मान क्यों चाहिए? भक्त लोगों को यह बात सुनकर बड़ा दुःख हुआ और डॉक्टर से इस प्रकार कहने की आज्ञा न देने के लिए वे लोग श्रीरामकृष्ण से बारम्बार विनय करने लगे। अन्त में इतना तय हुआ कि डॉक्टर को बिना कुछ कहे ही बुला लिया जाय। श्रीरामकृष्ण ने सोच रखा था कि मैं ही डॉक्टर साहब से उनके यहाँ आने पर यह बात कह दूँगा। बाद में डॉक्टर साहब आए और उन्होंने स्वयं ही उनके भक्तों से कह दिया कि 'मैं इनकी औषधि के लिए पैसे नहीं लूँगा।' यह वृत्तान्त आगे यथास्थान लिखा जाएगा।

एक दिन एक प्रसिद्ध नैय्यायिक पण्डित श्रीरामकृष्ण से भेंट करने गए। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के नमस्कार का उत्तर नमस्कार से न देकर पूछा कि 'क्या आप हमारे प्रणाम करने योग्य हैं?' श्रीरामकृष्ण बोले—'मैं सब का दास हूँ। मेरे लिए सभी मनुष्य प्रणाम के योग्य हैं।' पण्डित जी बोले—'मेरे पूछे हुए प्रश्न का उत्तर आपने नहीं दिया—मेरा प्रश्न है कि आप हमारे प्रणाम करने योग्य हैं क्या?' श्रीरामकृष्ण बोले—'इस विश्वसृष्टि में सभी चीजों से मैं कम योग्यता का हूँ, मैं सभी का दासानुदास हूँ, मेरे लिए सभी प्रणम्य हैं।' पण्डित जी पुनः बोले—'मैं समझता हूँ मेरा प्रश्न आपके ध्यान में नहीं आया। आपके गले में यज्ञोपवीत नहीं दिखाई देता, अतः आप ब्राह्मणों के लिए प्रणम्य नहीं हैं; तथापि यदि आप संन्यासी हैं तो आप हमारे प्रणाम करने योग्य हैं; इसीलिए पूछता हूँ कि क्या आप संन्यासी हैं?' परन्तु श्रीरामकृष्ण ने पुनः वही उत्तर दिया। 'मैं संन्यासी हूँ' यह बात भी उनके मुख से नहीं निकली।

श्रीरामकृष्ण के मन में अभिमान या अहंकार नाम को भी न रहने के कारण उनमें दम्भ बिलकुल नहीं था। दाम्भिक बनकर अपने बड़प्पन का ही तो प्रदर्शन करना होता है। पर वे तो बड़प्पन, कीर्ति आदि के सम्बन्ध में बिलकुल उदासीन थे। उन्होंने अपना दोष कभी भी छिपाकर नहीं रखा और न उन्होंने कभी अपने में न होने वाले गुणों का अपने में होना दिखाकर ही किसी को भ्रम में डाला। उनमें किसी बात को छिपाने की आदत या छलछिद्र नहीं था। मन में उत्पन्न हुए भाव को उन्होंने कभी भी छिपाकर नहीं रखा और न उन्होंने किसी भी भाव का स्वांग करने का जान बूझकर प्रयत्न ही किया। उनका बोलना स्पष्टता तथा आचरण सरलता से परिपूर्ण रहता था!

दम्भशून्यता।

एक दिन श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए कलकत्ते से कुछ धनी मारवाड़ी लोग आए हुए थे। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में नहीं थे; हृदय वहाँ था। वे लोग हृदय से श्रीरामकृष्ण के बारे में पूछताछ कर रहे थे, और हृदय भी उन लोगों के पास अपने मामा की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा कर रहा था। इतने में ही श्रीरामकृष्ण वहाँ आ गए। हृदय के कुछ शब्द उनके कान में भी पहुँच गए। सुनते ही वे हृदय की ओर रुख करके उसको डाँटते हुए बोले—"गधे! तुझको यह पञ्चायत करने के लिए किसने कहा? इन लोगों को धनी देखकर इनसे झूठमूठ गप्पें लगाकर कुछ लूटने का तेरा इरादा मालूम पड़ता है; न जानें माता ऐसे लोभी मनुष्यों को यहाँ क्यों रहने देती है?" और वे गला फाड़कर रोने लगे। थोड़ी देर उन मारवाड़ियों की ओर देखकर कहने लगे—"भाइयो! आप लोग इसका कहना एक न

मानें। यह कहता है वैसा कुछ भी नहीं है। केवल इतना ही सच है, कि मैं जगदम्बा की एकनिष्ठ होकर भक्ति करता हूँ, और यह जैसा कहता है वैसी योग्यता प्राप्त करने का इच्छुक हूँ। बस, इतना ही है।" उनका यह विलक्षण आचरण देखकर वे लोग चकित हो गए।

उनके बाहरी वेष को देखकर लोग उन्हें संन्यासी नहीं समझ सकते थे। किसी विशेष प्रकार का वेष रखना सांप्रदायिकता में शामिल है, और उसके साथ ही थोड़ी बहुत दाम्भिकता आ ही जाती है। इन दोनों बातों के लिए उनके समीप कोई स्थान नहीं था।

यह सुनकर कि दक्षिणेश्वर में एक परमहंस रहते हैं, एक पण्डित जी एक दिन वहाँ आए। श्रीरामकृष्ण के कमरे में जाकर पण्डित जी देखते हैं तो वे एक छोटे से पलंग पर बैठे हुए हैं और उनके आस-पास भक्तगण बैठे हैं। यह सब ठाठबाट देखकर पण्डित जी को आश्चर्य हुआ और वे बोले—"क्या आप ही हैं वे परमहंस? वाह! वाह! बहुत ठीक है!" इधर उधर देखते-देखते उनका ध्यान उनके बिस्तर की ओर गया तब पण्डित जी बोल उठे—"वाह! मच्छरदानी भी है!" इतने में श्रीरामकृष्ण ने अपने जूते और चप्पल की ओर इशारा करके वे भी उन्हें दिखा दिए। पण्डित जी और भी अचम्भित होकर बोले—"वाह! बूट और चप्पल भी हैं!" श्रीरामकृष्ण उनको और भी कई चीजें दिखाने लगे तब तो पण्डित जी और भी चक्कर में पड़कर "वाह! यह भी है! बड़ा अच्छा है बाबा!" इस प्रकार के उद्गार निकालने लगे। कुछ समय बाद श्रीरामकृष्ण के पास ही वे पलंग पर बैठकर बोले—"भाई, आज तो हमको बड़ा सुन्दर परमहंस देखने को मिला!" तत्पश्चात् पास में बैठे हुए लोगों से पण्डित जी

कहने लगे —— "आप लोग सब सीधे-साधे भोले मनुष्य हैं, इसलिए बड़ी भक्ति के साथ इतनी दूर से यहाँ आते हैं; पर भाइयो, आप लोग बिलकुल धोखे में हैं। अरे! ये काहे के परमहंस हैं? परमहंस के लक्षण शास्त्रों में क्या बताए गए हैं, आपको मालूम है?" ऐसा कहकर पण्डित जी शास्त्रोक्त वाक्य कहने लगे! इसके बाद सन्ध्याकाल हो जाने के कारण वे उठ गए और बोले —— "आज का दिन व्यर्थ गया; भला सन्ध्यावंदन तो कर लें।" ऐसा कहकर पण्डित जी घाट पर जाकर सन्ध्या करके इष्टदेव का ध्यान करने लगे। थोड़ा ही समय बीता होगा कि पण्डित जी एकदम उठ बैठे और वहाँ से दौड़ते दौड़ते श्रीरामकृष्ण के कमरे में आए। वहाँ देखते हैं तो श्रीरामकृष्ण समाधि में मग्न थे। पण्डित जी हाथ जोड़कर वहीं खड़े रहे, और परमेश्वर मानकर श्रीरामकृष्ण की अनेक प्रकार से स्तुति करने लगे।

किसी को दुःख नहीं पहुँचाना।

श्रीरामकृष्ण ने कभी भी किसी को अपनी कृति या वाणी द्वारा दुःख नहीं पहुँचाया और किसी का अनिष्ट उन्होंने अपने मन में भी नहीं सोचा। वे सदा यह प्रयत्न किया करते थे कि उनसे किसी को कोई कष्ट न पहुँचे। एक दिन दरवाजे पर कुछ फल बिकने आए। माताजी पूछने लगीं, 'क्या फल खरीद लूँ?' श्रीरामकृष्ण बोले, 'नहीं।' इस पर माताजी कुछ उदास मुँह करके चली गईं। उन्हें इस प्रकार जाते देखकर श्रीरामकृष्ण अपने पास बैठे हुए शिष्य से बोले, 'अरे! जा, उसको कह दे कि तुझको जितने फल लेने हों ले ले। मेरे कारण उसकी आँखों में पानी आया हुआ यदि मुझे दिखाई दिया तो मेरी जगदम्बा के प्रति भक्ति भी नष्ट हो जाएगी! जा जल्दी कह दे।' उनकी जबान पर कई बार 'साले' शब्द आ जाता था,

परन्तु उसका अर्थ 'मूर्ख' या 'गधा' ही हुआ करता था। यह बात सभी लोग जानते थे कि उनके मन में किसी के प्रति कोई बुरी भावना नहीं है। रात दिन परमेश्वर के चिन्तन की तन्मयता के कारण उन्हें अपनी देह की भी सुधि नहीं रहती थी, तथापि वे अपनी सभी चीजों की ओर ध्यान रखते थे क्योंकि उनका उद्देश यह था कि उनके कारण किसी को कष्ट न होने पावे। कलकत्ते में किसी भक्त के घर जाते समय वे अपना सारा आवश्यक सामान — हाथ-अंगोछा, थैली आदि साथ ले जाना कभी नहीं भूलते थे। कई बार कलकत्ते से लौटते समय बहुत रात हो जाती थी और बगीचे का फाटक बन्द हो जाता था। तब वे चौकीदार को पुकारकर उससे चार मीठे शब्द बोल दिया करते थे, और इतनी रात को खासकर उन्हीं के लिए फाटक खोलने के श्रम के बदले उसे वे कुछ न कुछ बख्शीष अवश्य देते थे। किसी से कोई काम करने के लिए कहने में उनको बड़ा संकोच होता था। 'न जाने अपना काम बताने से उसे कोई कष्ट हो।'

एक दिन प्रातःकाल स्नान करने के बाद रामलाल (अपने भतीजे) को पुकारकर बोले, "क्यों रे, क्या तुझको आज दोपहर को शहर (कलकत्ता) जाना है?"

रामलाल—"नहीं तो। क्यों भला?"

श्रीरामकृष्ण—"कुछ खास बात नहीं है। मैंने कहा, तू बहुत दिनों से शहर नहीं गया है, यहाँ लगातार रहते अच्छा नहीं लगता होगा, इसी कारण पूछा। बस इतनी ही बात है।"

रामलाल—"मुझको दोपहर को यहाँ कोई काम नहीं है; आपका कोई काम हो तो कहिये, हो आऊँगा।"

श्रीरामकृष्ण — " नहीं, नहीं, खास उसी के लिए जाने लायक कोई काम नहीं है, पर यदि तू जाने वाला ही हो तो — "

रामलाल — " कोई हर्ज नहीं। मैं हो आऊँगा ! "

श्रीरामकृष्ण — " अच्छा तो — पर इसी के लिए न जाना भला – तो ऐसा करो — जाते समय सन्दूक से पैसे ले जाना और कोई नाव किराये से कर लेना। शाम तक मौज से इधर उधर घूम-कर वापस आ जाना और ऐसा करना — वहाँ पर मिठाई और काजू-किशमिश हैं, उसकी पुड़िया बाँधकर साथ में रख लेना और उसे ले जाकर नरेन्द्र को दे देना, समझे ? "

रामलाल दादा कहते थे — " उसके पहले दिन एक मारवाड़ी ने मिठाई और काजू किशमिश ला दी थी। उसे वे नरेन्द्र के पास भेजना चाहते थे। पर ऐसा कैसे कहें कि ' जा, यह तू नरेन्द्र को दे दे। ' मुझे कष्ट न हो इस उद्देश से उन्हें इतना संकोच हुआ और इतना घुमा फिराकर बोलना पड़ा। " अस्तु — ऐसे कितने ही उदाहरण दिए जा सकते हैं।

अन्तिम बीमारी में उनकी सेवा-शुश्रूषा करने के लिए उनके भक्तगण रात दिन उनके साथ रहने लगे। अपने लिए इतने लोगों को कष्ट होते देखकर उन्हें बड़ा बुरा लगता था और वे बारम्बार यह बात कहते भी थे। अपनी सेवा करने के लिए रहने वालों के खाने-पीने का ठीक ठीक प्रबन्ध हुआ है या नहीं इस बात की जाँच वे बारम्बार किया करते थे। कोई बहुत देर तक उनके पैर दबाता रहे या उनके लिए कोई दूसरा काम बहुत समय तक करता रहे, तो वे उसे अपने कारण कष्ट होते देखकर उसे कुछ देर तक बन्द करने के

लिए या थोड़ी देर घूम आने के लिए, या दूसरे किसी को भेजने के लिए कह दिया करते थे। दूसरे के आराम और सुभीते का वे सदा बहुत ध्यान रखते थे।

दूसरों को उनसे किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे इस बात की वे जैसी चिन्ता करते थे वैसे ही दूसरों से उन्हें कितना भी कष्ट हो, वे उसे बड़े आनन्द के साथ सह लिया करते थे। वे सदा कहते थे कि "सज्जन का क्रोध मानो पानी का दाग।" कपड़े पर पानी के छींटे पड़ गये तो कुछ समय तक दाग के समान दिखते हैं पर उससे यथार्थ में दाग न पड़कर वह शीघ्र ही मिट भी जाता है। उनका खुद का भी यही हाल था। उन्हें कभी भी क्रोध नहीं आता था। और यदि कभी क्रोध आया हुआ सा दिखे भी, तो वह बहुत देर तक नहीं टिकता था। सभी स्थानों में परमेश्वर व्याप्त है और जो कुछ होता है सो सब परमेश्वर की इच्छा से ही होता है, इस प्रकार की दृढ़ धारणा जहाँ हो गई है वहाँ क्रोध कौन करे और किस पर करे? कैसा भी विकट प्रसंग क्यों न हो, उनके मन की समता विचलित नहीं होती थी।

शान्त चित्त की समता।

मथुरानाथ की मृत्यु के बाद मन्दिर का प्रबन्ध त्रैलोक्य बाबू के जिम्मे आ पड़ा। एक दिन किसी कारणवश हृदय पर त्रैलोक्य बाबू गुस्सा हो गये और उन्होंने उसे तुरन्त मन्दिर से निकल जाने की आज्ञा दे दी और क्रोध के आवेश में उनके मुँह से यह भी निकल गया कि श्रीरामकृष्ण का भी यहाँ रहने का कोई काम नहीं है। यह बात श्रीरामकृष्ण के कान तक पहुँचते ही वे जैसे थे वैसे ही उठकर जाने के लिए चल पड़े, और अहाते के फाटक तक पहुँच भी गये।

उनको जाते देखकर और यह सोचकर कि उनका कोई अपराध नहीं है तथा अपने ही अकल्याण होने के डर से, त्रैलोक्य बाबू उनके पीछे दौड़े और उनको वहाँ से न जाने के लिए विनती करने लगे। श्रीरामकृष्ण भी मानो कुछ हुआ ही न हो, इस तरह हँसते हँसते अपने कमरे में आ गये।

उन्हें कोई कुछ कह दे या उनकी निन्दा कर बैठे, तो उसका उन पर कोई असर नहीं होता था। श्रीयुत केशवचन्द्र सेन ने 'सुलभ समाचार' में उनका वृत्तान्त छपा दिया तब से उनके सम्बन्ध में भिन्न भिन्न समाचार-पत्रों में बारम्बार लेख निकला करते थे। कोई कोई उनकी निन्दा भी करते थे, उन्हें बदनाम भी करते थे। अमुक समाचार-पत्र ने आपकी निन्दा की है ऐसा कोई उन्हें बता दे, तो वे कहते थे — "निन्दा की तो की, मैं उधर ध्यान ही क्यों दूँ? जिसे जैसा मालूम होगा वैसा ही तो वह कहेगा।" एक दिन तो वे केशवचन्द्र से बोले — "क्यों रे केशव! क्या मैं मान का भूखा हूँ जो तू समाचार-पत्रों में मेरा वृत्तान्त लिखता है? हुआ सो हुआ, अब आगे कुछ न लिखना।" स्वयं अपनी निन्दा और स्तुति के विषय में वे इतने उदासीन थे, तथापि यदि कोई श्री कालीमाई की निन्दा करे तो वे धैर्य छोड़कर उस पर क्रुद्ध हो जाते थे। स्वामी विवेकानन्द को पहले पहल ईश्वर के साकार स्वरूप पर विश्वास नहीं था और वे उस सम्बन्ध में बारम्बार श्रीरामकृष्ण से बहस किया करते थे। एक दिन बहस के जोश में स्वामीजी काली के प्रति कुछ निन्दा के शब्द कह गये। श्रीरामकृष्ण बोले, "अरे बाबा, तू मुझको चाहे जैसा कह लिया कर, पर मेरी माता की निन्दा क्यों करता है?" इस पर भी विवेकानन्द

ने कहना नहीं छोड़ा, तब तो वे बड़े गुस्से से बोले, "निकल साले यहाँ से, जा भाग, मेरे यहाँ आकर मेरी माता की बदनामी करता है, आज से यहाँ मत आना।" यह सुनकर विवेकानन्द को बड़ा बुरा लगा, परन्तु वे वहाँ से नहीं गये वरन् वहीं एक ओर जाकर बैठ गये। कुछ समय के बाद श्रीरामकृष्ण से रहा नहीं गया और वे उठकर उनके समीप गये और किसी छोटे बच्चे के समान हाथ फेरते हुए उनसे कहने लगे—"भला तू मेरी माता की निन्दा क्यों करता है? इसी से मेरा धीरज छूट गया। मेरी माता को कोई कड़े शब्द कहे तो मैं कदापि नहीं सह सकता, तुझको जो कहना हो सो मुझे कह लिया कर।"

उनके पास सदा प्रातःकाल से रात को ९–१० बजे तक लगातार मनुष्यों का आना जाना जारी रहता था। कभी कभी तो उन्हें चार कौर खाने तक की भी फुरसत नहीं मिलती थी। आने वालों में हर प्रकार के लोग रहा करते थे और प्रत्येक की यही इच्छा रहती थी कि श्रीरामकृष्ण मुझसे अधिक समय तक बातचीत करें। इस कारण श्रीरामकृष्ण को बड़ा कष्ट होता था, पर वे कभी भी क्रुद्ध नहीं होते थे, वे सभी कष्टों को आनन्दपूर्वक सह लेते थे।

बालकपन से ही श्रीरामकृष्ण का स्वभाव अत्यन्त सरल था। लोगों के छक्के-पंजे उनकी समझ में नहीं आते थे। वे कहते थे कि—"अनेक जन्मों के पुण्य से मनुष्य को सरल और उदार स्वभाव प्राप्त होता है।"—"मनुष्य सरल स्वभाव वाला हुए बिना ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता।" हो एक और दिखावे दूसरा—ऐसा छलछिद्र उनके पास बिलकुल नहीं

सरलता।

था। जो करना होता था उसे मनसा, वाचा और कर्मणा करते थे; जिस पर विश्वास करते उस पर पूर्ण विश्वास करते। बचपन से ही उनका यह स्वभाव था और इस सरलता और विश्वास के बल पर उन्होंने ईश्वर की प्राप्ति की। अमुक कार्य करना है यह निश्चय हो जाने पर वे अक्षरशः उस निश्चय के अनुसार चलते थे। 'ऐसा ही क्यों' और 'वैसा ही क्यों'—इस प्रकार के तर्क-वितर्क वे कदापि नहीं करते थे। यही स्वभाव उनका बाल्यकाल से था। प्रस्तुत चरित्र में अब तक उनकी इस विलक्षण सरलता की अनेक बातें आ चुकी हैं—और भी कुछ बातें यहाँ पर दी जाती हैं।

बचपन में एक दिन वे अपने घर के पास की बाड़ी में खेल रहे थे। घास में उनके पैर को किसी कीड़े ने काट दिया। उन्हें ऐसा भास हुआ कि साँप ने उन्हें काट लिया है! उन्होंने सुना था कि यदि साँप फिर से काटे तो विष उतर जाता है। इसी कारण वे बिल में अपने हाथ को डालकर साँप के दुबारा काटने की राह देखने लगे। इतने ही में उधर से एक मनुष्य जा रहा था, वह बोला—"अरे बाबा! ऐसा नहीं हैं। अगर साँप पुनः उसी जगह काटे तो विष उतरता है। किसी अन्य स्थान में काटने से विष नहीं उतरता।" यह सुनकर उन्होंने अपना हाथ बाहर निकाल लिया।

साधक अवस्था में वे दक्षिणेश्वर गाँव में किसी के यहाँ अध्यात्म-रामायण सुनने जाया करते थे। एक दिन पौराणिक महाराज ने कथा कहते हुए यह बताया कि "रामनाम का उच्चारण करने से मनुष्य निर्मल हो जाता है।" बाद में एक दिन श्रीरामकृष्ण ने पौराणिक महाराज को शौच के लिए जाते देखा। उस समय उन्हें उस दिन

की बात याद आ जाने के कारण मन में बड़ी अशान्ति होने लगी और चैन नहीं पड़ती थी। तब तो वे वैसे ही पौराणिक महाराज के पास पहुँचकर बोले — "महाराज! यह कैसी बात है? रामनाम के उच्चारण से आप अब तक भी निर्मल कैसे नहीं हुए?" उनके इस प्रकार बालवत् सरल विश्वास को देखकर पौराणिकजी की आँखें डबडबा आईं और वे बोले — "अरे बाबा! रामनाम से मन का मैल दूर होता है, शरीर का नहीं।" तब कहीं श्रीरामकृष्ण के जी में जी आया।

श्रीरामकृष्ण कहते थे कि "मथुर और उनकी पत्नी जहाँ सोते थे वहीं मैं भी सोता था। मेरी उस समय उन्मादावस्था थी। वे दोनों ही मुझसे छोटे लड़के के समान व्यवहार रखते थे। वे मेरा लाड़ प्यार भी उसी तरह करते थे। उन दोनों की सब बातें मुझे सुनाई देती थीं। एक दो बार मथुर ने पूछा कि "बाबा, क्या आपको हमारी बातें सुनाई देती हैं।" मैंने कहा — "हाँ, सुनाई देती हैं।"

"एक बार मथुर की पत्नी को अपने पति के मनचले स्वभाव, चरित्र आदि के विषय में कुछ शंका होने लगी, और वह बोली कि 'बाहर कहीं भी जाना हो तो बाबा को अपने साथ ले जाया करें।' एक दिन वह मुझे अपने साथ ले गया। एक जगह वह तो ऊपर की मंजिल पर चला गया और मुझे नीचे ही छोड़ दिया। लगभग आधे घण्टे के बाद वह नीचे आया और मुझसे बोला, 'चलो बाबा! चलो गाड़ी में बैठकर चलें।' घर आने पर उसकी पत्नी के पूछने पर मैंने सब बता दिया। मैं बोला, 'यह मुझे गाड़ी में बिठाकर कहीं ले गया और मुझे नीचे छोड़कर आप ऊपर चला गया और आधे घण्टे में लौटकर आया और बोला, 'हाँ बाबा! चलो अब गाड़ी में बैठकर चलें।'"

वयोवृद्धि होने पर बालक युवक होता है और युवक वृद्ध होता है और बाल्यकाल की मधुर स्मृति केवल कल्पना का विषय ही रह जाती है — यह तो प्रकृति का नियम है, परन्तु श्रीरामकृष्ण के अद्भुत चरित्र में यह नियम बदल गया था ! वे तो जन्म भर बालक ही रहे और उनमें बाल्यकाल का सरल स्वभाव और खुला दिल ज्यों का त्यों कायम रहा ! बिल्कुल आखिरी दिन तक भी उनके बाल स्वभाव पर ही बहुतेरे लोग मोहित थे ।

उनके बालस्वभाव से जो परिचित नहीं थे उन्हें कई बार उनका बर्ताव असभ्य और ढोंगी मालूम पड़ता था । परन्तु जिन्हें उनके अद्भुत स्वभाव की जानकारी रहती थी उन्हें उसमें कोई विचित्रता नहीं दिखाई देती थी । बालक के शरीर पर जैसे कपड़ा बहुत समय तक नहीं रह सकता वही हाल श्रीरामकृष्ण का था । उनकी धोती कई बार खुली ही रहती थी और उसके गिर जाने पर भी उनका ध्यान उस ओर नहीं जाता था । सामने बड़े-बड़े विद्वान्, बड़े-बड़े अधिकारी, और राजा-महाराजाओं के बैठे रहने में भी धोती गिर जाने पर उस ओर उनका ध्यान नहीं जाता था । यह बात कई लोगों ने प्रत्यक्ष देखी है ।

बालकों का जैसा स्वभाव रहता है कि भूख लगते ही वे माँगकर खा लेते हैं उसी तरह श्रीरामकृष्ण भी किया करते थे । कई बार और अनेक स्थानों में उन्होंने इसी तरह भूख लगते ही माँगकर खाया है ।

उनके सत्संग में बहुत सा समय बिताने वाले लोगों के ध्यान में आ जाता था कि देह की सुध रहते समय भी श्रीरामकृष्ण को बालकों के समान चार कदम भी ठीक ठीक चलते नहीं बनता था !

नई नई वस्तुओं के देखने की जैसी उत्सुकता बालकों को रहती

है और देख लेने से जैसे उनको बहुत आनन्द होता है, वैसा ही हाल श्रीरामकृष्ण का भी था ! एक बार जहाज़ के एंजिन की भकभक आवाज कैसे होती है यह देखने की उन्हें इच्छा हुई। भक्त लोगों ने उन्हें जहाज पर ले जाकर सभी यंत्र दिखाये तब उनको बड़ा आनन्द हुआ !

कलकत्ते में किसी समय यदि किसी नये रास्ते से उनकी गाड़ी निकल जाती थी, तो वहाँ की नई-नई इमारतों और नये-नये दृश्यों को देखकर वे आनन्द में मग्न हो जाते थे और 'यह क्या है?', 'इसे क्या कहते हैं?', 'उसे क्या कहते हैं?' इत्यादि प्रश्नों की झड़ी लग देते थे, जिससे साथ में बैठा हुआ मनुष्य उत्तर देते देते थक जाता था।

उन्हें कभी कभी नई-नई जानकारी प्राप्त करने और नये विषयों को सीखने की इच्छा होती थी, तथापि उन्होंने अपने मन को एक परमेश्वर के ही चिन्तन करने का इतना आदी बना डाला था कि दूसरा आदमी उन्हें बातें बताता था परन्तु उस ओर तुरन्त ही उनका दुर्लक्ष हो जाता था।

एक दिन वे 'एम्' से बोले — 'क्यों रे ! क्या तुम्हारी अंग्रेजी में न्यायशास्त्र पर कुछ पुस्तकें हैं?'

'एम्' के 'हाँ' कहने पर उन्होंने संक्षेप में उसकी जानकारी देने के लिए कहा। 'एम्' ने बताना शुरू किया परन्तु शीघ्र ही उन्हें दिखाई दिया कि श्रीरामकृष्ण का ध्यान उनके कथन की ओर बिलकुल नहीं है। यह देखकर उन्होंने बोलना बंद कर दिया।

वैसे ही एक दिन ग्रहण था। उस दिन ग्रहण क्यों होता है, यह जानने की उन्हें बड़ी इच्छा हुई, इसलिए एक मनुष्य उनको जमीन पर आकृतियाँ खींचकर वह विषय समझाने लगा। थोड़े ही समय में

वे उसे एकदम बंद करने के लिए बोले और कहा — "बस ! बस ! मेरा सिर घूमने लगा।"

एक बार जिन्दा अजायबघर-चिड़ियाखाना (Zoological Gardens)—जाकर वहाँ के सिंह को देखने की उन्हें बड़ी इच्छा हुई। जब लोग उन्हें गाड़ी में उधर ले जाने लगे तब रास्ते में ही 'अब मुझे अपनी माता का वाहन देखने को मिलेगा' इसी विचार में मग्न हो जाने के कारण उन्हें भावावस्था प्राप्त हो गई। तब वे कहने लगे — "माता! माता! मुझे बेहोश मत कर। मैं तो तेरा वाहन देखने जा रहा हूँ।" वहाँ पहुँचने पर सिंह को देखते ही उन्हें समाधि लग गई।

एक दिन वे अपने भक्तों के साथ प्रख्यात पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर से भेंट करने गये। गाड़ी से उतरकर उनके बाड़े में जाते समय अपने कोट के बटनों को खुले देखकर वे 'एम्' से पूछने लगे — "क्यों रे, कोट के बटनों को ऐसे ही रहने दूँ, या ठीक तरह से लगा लूँ?" 'एम्' बोले — "महाराज, वैसे ही रहने दें तो भी कोई हर्ज नहीं है।" यह सुनते ही मानो उन्हें सन्तोष हो गया। कोई बड़े पण्डित या कोई प्रसिद्ध सज्जन उनसे भेंट करने के लिए आने वाले हों तो प्रथम उन्हें छोटे बालक के समान डर लगता था। उन्हें मालूम पड़ता था कि मैं तो कुछ लिखना पढ़ना जानता नहीं हूँ और ये तो इतने बड़े पण्डित हैं; तो अब कैसे निपटेगा? उनके इस स्वभाव को देखकर पास में बैठने वालों को बड़ा आश्चर्य होता था, पर कई बार उनके वर्ताव को ध्यानपूर्वक देखने से पता लगता था कि इसका कारण उनका बालस्वभाव ही है और कुछ नहीं। अपरिचित मनुष्य को देखकर जैसे छोटा बच्चा पहले झिझकता है या

सकुचाता है, परन्तु वही थोड़ा परिचय हो जाने के बाद उसके कन्धे पर चढ़कर उसके बालों को खींचने लग जाता है वैसा ही हाल श्रीरामकृष्ण का था।

एक बार पण्डित शशधर तर्कचूडामणि श्रीरामकृष्ण से भेंट करने आए थे। उस दिन की बात श्रीरामकृष्ण ने ही अपने एक भक्त से बताई। वे बोले—"तुमको तो मालूम ही है कि मैं लिखने पढ़ने के नाम से शून्य हूँ! इसलिए उस पण्डित के आने की बात सुनकर मुझे बड़ा डर लगने लगा। यहाँ तो धोती की भी सुधि नहीं रहती तब फिर उससे बोलने की बात तो दूर रही! माता से बोला, 'माता, तू तो जानती है कि तेरे सिवाय मेरा दूसरा कोई नहीं है, मुझको सम्हालने वाली तू ही है।' फिर इस व्यक्ति से कहा कि 'तू यहीं रहना', उस व्यक्ति से कहा कि 'तू कहीं न जाना।' तुम सब पास में रहोगे तो धैर्य रहेगा—आदि आदि। बस थोड़ी देर में पण्डित जी आ पहुँचे और वे सामने बैठकर बातचीत करने लगे और मैं तो उनकी ओर देखता ही रहा। इतने में ऐसा दिखाई दिया कि माता मुझे उनका अन्तःकरण ही खोलकर दिखा रही है और कह रही है—'केवल शास्त्रों और पुराणों को पढ़ने का क्या उपयोग है, विवेक और वैराग्य के बिना कुछ भी लाभ नहीं होता।' इसके बाद मेरा डर और काँपना न जाने कहाँ भाग गया और भीतर से ज्ञान की लहरें उठने लगीं और मुँह से मानो बातों का फव्वारा छूटने लगा! ऐसा मालूम हुआ कि जैसे जैसे भीतर की जगह खाली हो रही है वैसे वैसे भीतर ही उस खाली स्थान को कोई पूरा कर रहा है। हमारे गाँव की ओर अनाज नापते समय एक मनुष्य 'राम रे, दो रे, तीन

रे, चार रे,' कहते हुए नापता जाता है और धान्यराशि को कम होते देख दूसरा उसमें और अनाज डालता जाता है। वैसा ही हो गया। पर मैं क्या बोलता था इसकी मुझको बिल्कुल सुध नहीं थी। कुछ देहभान आने पर देखता हूँ तो पण्डितजी की आँखों से लगातार अश्रुधारा बह रही है! बीच बीच में ऐसी अवस्था हो जाती है। और भी एक बार ऐसा ही हुआ था। केशव ने सन्देशा भेजा कि 'यहाँ कुक नामक एक साहब आये हैं, उन्हें मैं लेकर आता हूँ। आप हमारे साथ नौका पर बैठकर घूमने चलिये।' यह सन्देशा सुनते ही मुझे इतना डर लगा कि मैं तो तुरन्त ही लोटा उठाकर चला। पर उन लोगों के आने पर जब मैं नौका पर चढ़कर गया तब कल के समान ही हुआ और उस समय तो मैं कितनी देर तक बोलता रहा। बाद में ये सब लोग कहने लगे कि आपने आज कितना सुन्दर उपदेश दिया। पर मुझसे तुम पूछोगे तो उसमें का कुछ भी याद नहीं है।" अस्तु—

एक बार झाऊतला की ओर शौच के लिए जाते हुए श्रीरामकृष्ण रास्ते में गिर पड़े जिससे उनके बाँए हाथ में चोट आ गई। उससे उन्हें बड़ी तकलीफ हुई। हाथ के आराम होने में बहुत समय भी लग गया। उनकी इस बीमारी के समय एक दिन एक गृहस्थ कलकत्ते से उनके दर्शन के लिए आये। श्रीरामकृष्ण ने उनसे 'आप कौन हैं?' इत्यादि प्रश्न पूछे। यह सुनकर कि वे कलकत्ते से आये हैं श्रीरामकृष्ण ने कहा—'आप इन मन्दिर आदि को देखने आये होंगे?' वे बोले—'नहीं महाराज! आप ही को देखने के लिए मैं आया हूँ।' इतना सुनकर श्रीरामकृष्ण छोटे बालक के समान रोते हुए कहने लगे—'अरे बाबा! मेरा हाथ टूट गया है। ओ माँ! हाथ में बड़ा

दर्द हो रहा है।' यह हाल देखकर उस मनुष्य को यही नहीं सूझा कि इनके साथ अब क्या बोलूँ। कुछ देर के बाद श्रीरामकृष्ण को सांत्वना देने के लिए वे सज्जन बोले—'महाराज! ऐसा नहीं करना चाहिए, हाथ जल्दी ही आराम हो जाएगा।' यह सुनकर बालक के समान बड़ी उत्सुकता से वे कहने लगे—'सच कहते हैं? जल्दी ही मेरा हाथ आराम हो जाएगा?' और पास में बैठे हुए एक मनुष्य से कहने लगे—'अरे सुना क्या? ये बाबू कलकत्ते से आये है। ये कहते हैं कि मेरा हाथ जल्दी ही आराम हो जायगा।'

एक दिन रामचन्द्र दत्त और मनमोहन मित्र श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए गए। श्रीरामकृष्ण को फूलगोभी की तरकारी बहुत पसन्द थी, इसलिए ये लोग अपने साथ उनके लिए फूलगोभी ले गए थे। उस समय शूल-पीड़ा के कारण उनके पेट में बड़ा दर्द हो रहा था और पेट-पीड़ा में उससे नुकसान होता है इसलिए हृदय उनको फूलगोभी की तरकारी खाने नहीं देता था। फूलगोभी को देखते ही वे इन लोगों से उसे ऐसे स्थान में रखने के लिए कह रहे थे जहाँ हृदय उसे न देख सके। इतने ही में हृदय वहाँ पहुँच गया। उसे देखते ही एक अपराधी बालक के समान वे कहने लगे—'नहीं रे हृदू! मैंने उनसे लाने के लिए नहीं कहा था। वे आप ही उसे ले आये हैं। सच, वे खुद ही लाए हैं। चाहो तो पूछ लो उनसे।'

उनके पास बड़े बड़े विद्वान् पण्डित आदि आया करते थे। उन्हें देखकर एक बार उनके मन में आया कि "मैं भी यदि उन्हीं के समान विद्वान् और पण्डित होता तो कैसा आनन्द आता।" उस दिन वे भावावस्था में माता से कहने लगे—"माता! भला तूने

मुझे ऐसा निरक्षर मूर्ख क्यों बनाया? मूर्ख होना बड़ी लज्जा की बात है।" श्रीरामकृष्ण बताते थे कि "इतने में ही मुझे एक पहाड़ के समान कूड़ा करकट का ढेर दिखाई दिया। उनकी ओर उंगली दिखाकर माता बोली — "हूँ, देख यहाँ यह विद्या है, चाहिए तुझको?" त्यों ही मैं बोल उठा — "माता! मुझको नहीं चाहिए तेरी यह विद्या। मुझको अपने पादपद्म में शुद्ध भक्ति दे, वही मेरे लिए बस है।"

पवित्रता।

सदैव ईश्वर-चिन्तन में तन्मय रहने के कारण श्रीरामकृष्ण का मन अत्यन्त पवित्र हो गया था। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि उनके मन में अपवित्र विचारों का आना ही असम्भव था। परन्तु उनकी इस मानसिक पवित्रता का उनके शरीर पर भी कितना परिणाम हुआ था, यह देखकर मन आश्चर्य में डूब जाता है। आए गए किसी भी मनुष्य के हाथ का पानी तक उनसे पिया नहीं जाता था। मनुष्य किस तरह का है यह बात वे तत्काल पहचान लेते थे और वह यदि कुछ लेकर आया हो तो उसे बुरा न लगे इसलिए उसकी चीज़ों को वे सिर्फ छूकर ही एक ओर रख देते थे और उसे वे स्वयं कभी नहीं खाते थे। कई बार ऐसा होता था कि भक्तमण्डली से उनकी बातें होती रहतीं और इसी बीच में प्यास लगने के कारण वे पानी माँगते। पानी कौन लाया इस बात की ओर उनका ध्यान भी नहीं रहता था; परन्तु जब वे उसे पीना चाहते तो उनका हाथ अकड़ने लगता था और वह पानी उनसे पिया ही नहीं जाता था। मानो उनका शरीर ही उस अपवित्र पानी को पीने से इन्कार कर रहा हो; तब वे फिर पानी मँगाते थे और दूसरे किसी के ला देने पर पीते थे। स्वामी विवेकानन्द के सामने

एक बार ऐसी ही घटना हुई और अपने सदा के जिज्ञासु स्वभाव के कारण उन्होंने पानी लाने वाले मनुष्य के आचरण के सम्बन्ध में बारीकी से जाँच की। तब उन्हें पता लगा कि सचमुच ही वह मनुष्य खराब आचरण वाला है।

उनको अर्पण करने के लिए लाये हुए पदार्थ का अग्रभाग यदि पहले किसी दूसरे को दे दिया जाता था तो वह पदार्थ उनसे ग्रहण करते नहीं बनता था।

समाचार-पत्रों को वे कभी स्पर्श नहीं करते थे; क्योंकि उनमें सारे लड़ाई, झगड़े और प्रपंच की बातें रहती हैं। एक बार वे एक भक्त के यहाँ उसके निमंत्रण से भजन करने गए थे। उनके बैठने के लिए जो आसन तैयार किया गया था उसके पास एक अखबार पड़ा था। उसे देखते ही उन्होंने उसे वहाँ से उठा लेने के लिए कहा।

इसी तरह वे दूसरों के घर जाने पर आसन ग्रहण करने के पूर्व ॐकार का उच्चारण करने के बाद उस आसन को स्पर्श करते और तब उस पर बैठते थे।

सदा सर्वकाल परमेश्वर-चिन्तन में तन्मय रहने के कारण उनका मन ही शुद्ध और पवित्र हो गया था। यही नहीं, उनका तो शरीर भी अत्यन्त पवित्र हो गया था। (देखिये पृ. १६१)

उनके दर्शन के लिए नित्य अनेक प्रकार के लोग आते थे और सभी लोग उनकी पदधूलि बड़े भक्तिभाव से ग्रहण करते थे। पर आने वाले लोगों में सभी कैसे पवित्र हो सकते हैं? कितने ही मनुष्य अशुद्ध आचरण और अपवित्र विचार के भी हुआ करते थे। ऐसे लोगों के स्पर्श से श्रीरामकृष्ण का शुद्ध पवित्र देवशरीर दूषित हो

जाता था। श्यामपुकुर में गले के रोग से पीड़ित रहते समय एक दिन उन्हें एक अद्भुत दर्शन हुआ। उन्हें दिखाई दिया कि उनका सूक्ष्म शरीर उनके स्थूल शरीर से बाहर निकल कर सामने घूम रहा है। श्रीरामकृष्ण कहते थे, "ऐसा दिखाई दिया कि मेरे उस शरीर में फोड़ा हो गया है। यह देख मैं अपने मन में विचार करने लगा कि ऐसा क्यों हुआ होगा। इतने ही में माता ने मुझे समझाया कि 'ये बहुत से लोग तेरे पास कितने ही अच्छे बुरे कर्म करके आते हैं और उनकी दुर्दशा देखकर तुझे उन पर दया आ जाती है, तू उन्हें अपने को स्पर्श करने देता है, इसीलिए उनके कर्मों का फल तुझे भोगना पड़ता है—इसी कारण ऐसा हुआ है।' (अपने गले की ओर उंगली दिखाकर) इसीलिए तो यहाँ रोग हो गया है; नहीं तो इस देह के द्वारा कभी किसी को कष्ट नहीं दिया गया और न कभी किसी की बुराई की गई, तब इसके पीछे रोगराई क्यों लगना चाहिए?"

उपरोक्त अद्भुत वृत्तान्त से श्रीरामकृष्ण की अलौकिक पवित्रता की कल्पना पाठकों को हो सकेगी।

श्रीरामकृष्ण के अनेक असाधारण गुणों में से तीव्र वैराग्य भी एक मुख्य गुण था।

वैराग्य

उनकी त्यागशीलता अमर्यादित थी। "जिसको ग्रहण करना है उसको काया-वचन-मनपूर्वक ग्रहण करना चाहिए और जिसका त्याग करना है उसको भी वैसे ही काया-वचन-मन से त्याग देना चाहिए"—इस सिद्धान्त का वे अक्षरशः पालन करते थे। मानसिक त्याग के साथ कायिक त्याग भी

ऐसी विलक्षण रीति से किसी में आ सकता है, यह तो श्रीरामकृष्ण के अतिरिक्त अन्यत्र दिखाई देना असम्भव सा प्रतीत होता है। साधनाकाल में श्रीजगदम्बा के पादपद्म में पुष्पांजलि समर्पण करते समय वे अत्यन्त व्याकुलता से प्रार्थना करते — " माता! यह ले अपना पाप-पुण्य, मुझे शुद्ध भक्ति दे; यह ले अपना धर्म-अधर्म, मुझे शुद्ध भक्ति दे; यह ले अपनी कीर्ति-अपकीर्ति, मुझे शुद्ध भक्ति दे; यह ले अपनी शुचि-अशुचि, मुझे शुद्ध भक्ति दे — " और इसी तरह अन्य अनेक द्वन्द्वों या जोड़ियों का जगदम्बा के पादपद्म में त्याग (या समर्पण) कर देते थे। इस प्रकार उन्होंने सभी भोगवासनाओं का (इहामुत्रफलभोगविराग का) पूर्ण रूप से त्याग कर दिया था।

श्रीरामकृष्ण के अद्भुत चरित्र का मूल मन्त्र 'त्याग' ही है ऐसा कहना बिलकुल अनुचित न होगा। उनकी बुद्धिमत्ता असाधारण थी। इसलिए वे किसी भी कार्य में प्रवीण हो सकते थे और नाम, यश तथा सम्पत्ति सहज ही प्राप्त कर सकते थे। परन्तु ईश्वर-प्राप्ति के उद्देश्य ही को ग्रहण करके उन्होंने इन सब बातों की ओर दुर्लक्ष कर दिया। मथुरबाबू के समान धनी व्यक्ति के साथ रहते हुए मनमानी सम्पत्ति मिलने का अवसर आने पर भी उन्होंने उसे ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में विघ्न जानकर ठुकरा दिया! उसके बाद भी उन्हें लोभ में फँसने योग्य अनेक प्रसंग आए, पर उन्होंने अपने मन को अपने ध्येय से डिगने नहीं दिया। इतना ही नहीं, वरन् वे केवल मानसिक त्याग से ही सन्तुष्ट नहीं हुए और जैसा त्याग मानसिक हो वैसा ही कायिक भी होना सम्भव है, यही पाठ मानो संसार को पढ़ाने के लिए उसका भी आचरण उन्होंने करके दिखा दिया! उनके इन अद्भुत त्याग के कुछ उदाहरण

प्रथम भाग में आ चुके हैं। (देखिए भाग १, पृ. २३६-२३९) यहाँ कुछ थोड़े और दिए जाते हैं।

श्रीरामकृष्ण के पुजारी-पद स्वीकार करने के बाद शीघ्र ही उन्हें उन्मादावस्था प्राप्त हो गई और देवी की पूजा-अर्चा यथाविधि करना उनके लिए असम्भव हो गया। लगभग उसी समय एक मास का वेतन लेने के लिए वे अन्य नौकरों के साथ बुलवाए गए, पर उन्होंने "पैसा ईश्वर-दर्शन के मार्ग में विघ्न करता है" कहकर वेतन लेने से इन्कार कर दिया। और उसी समय से उन्होंने वेतन के कागज़ पर कभी भी हस्ताक्षर नहीं किए!

श्रीरामकृष्ण के पिता को सुखलाल गोस्वामी ने जो डेढ़ बीघे जमीन दी थी, उसके सम्बन्ध में रजिस्टरी दस्तावेज़ लिखाने की कोई ज़रूरत आ पड़ी। इसलिए सन् १८७८ में उनके रिश्तेदारों ने उन्हें कामारपुकूर बुलवाया। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि—"रघुवीर के नाम की जमीन रजिस्टरी कराने के लिए अपने गाँव गया। वहाँ कचहरी में मुझसे रजिस्टरी दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया। पर मेरे हाथ से हस्ताक्षर नहीं हो सके। 'मेरी ज़मीन' कहते नहीं बना। केशव सेन के गुरु समझकर कचहरी में मेरा बड़ा सन्मान हुआ और घर वापस आते समय मुझे कुछ आम भी दिए गए, पर मैं उन्हें अपने साथ नहीं ला सका। संन्यासियों को संचय करना मना है।"

'संन्यासी को द्रव्य ग्रहण नहीं करना चाहिए' यह बात वे अपने भक्तों को समझाते हुए बोले—"कुछ दिन पहले महेन्द्र यहाँ आया था। वापस जाते समय उसने रामलाल (श्रीरामकृष्ण के भतीजे) के पास पाँच रुपये दिए। मैं इस बात को नहीं जानता था। उसके

जाने के बाद रामलाल ने मुझे बताया। मैंने पूछा — 'ये पैसे वह किसके लिए दे गया?' रामलाल बोला — 'आप ही के लिए।' पहले तो मैंने सोचा — 'चलो अच्छा हुआ — दूध का पैसा देना है सो दे डालेंगे।' पर हुआ क्या? रात को कुछ आँख लगते ही मैं नींद से हड़बड़ा कर उठ पड़ा। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो एक बिल्ली मेरी छाती को खुरोंच रही हो! वैसे ही मैं रामलाल के पास गया और उससे पूछा — 'अरे! वे पैसे तेरी चाची (श्रीरामकृष्ण की पत्नी) के लिए तो नहीं दिए?' वह बोला, 'नहीं'; तब मैं बोला — 'तू तुरन्त ही जाकर पैसे वापस कर दे भला!' वे पैसे उसने वापस कर दिए तब कहीं मुझे आराम मिला!"

यह कांचन-त्याग श्रीरामकृष्ण के अस्थि-मांस में इतना दृढ़ हो गया था कि उन्हें पैसे का स्पर्श करते ही नहीं बनता था। स्पर्श करने से उनका दम घुटने लगता और उनके शरीर में बिच्छू के डंक मारने के समान पीड़ा होती थी और हाथ-पैर टेढ़ेमेढ़े हो जाते थे। पैसे की ही बात नहीं थी वरन् जीवन के अन्तिम दिनों में तो कोई बरतन भी वे हाथ में नहीं रख सकते थे। एक दिन भक्तमण्डली से बातें करते हुए वे बोले — "हाल में मुझे ऐसा क्यों हो गया है भला? धातु के बरतन को भी मैं हाथ नहीं लगा सकता। एक बार एक कटोरी में हाथ लग गया तो बिच्छू के डंक मारने के समान पीड़ा हुई। लोटे के बिना भला कैसे काम चलेगा? इसलिए सोचा कि रुमाल से ढाँककर हाथ में रख लूँगा। तो भी क्या हुआ? उसको हाथ लगाते ही हाथ अकड़ गया! अन्त में मैं माता से बोला — 'माता! इस समय क्षमा कर, पुनः कभी ऐसा नहीं करूँगा।' तब वह पीड़ा बन्द हुई।" ऐसी विलक्षण दशा

होने के कारण वे केले पत्ते पर भोजन करते और मिट्टी के बरतन में पानी पीते थे।

जो बात कांचन-त्याग की है वही बात संचय के सम्बन्ध में भी है। 'संन्यासियों को संचय नहीं करना चाहिए' यह बात भी उनके रोम रोम में भिद गई थी। कलकत्ते में भक्त लोगों के यहाँ जाने पर यदि कोई भक्त कोई वस्तु उनके साथ देना चाहे तो उसकी वह इच्छा पूरी नहीं हो सकती थी। कारण कि, कोई भी वस्तु साथ रखने में संचय की कल्पना आ जाती है। भक्त लोग प्रेमपूर्वक बहुत आग्रह करते थे परन्तु उसका कोई उपयोग नहीं होता था, इससे किसी किसी को बड़ा बुरा लगता था। एक दिन वे अपने किसी भक्त के यहाँ गये थे। वहाँ भजन आदि समाप्त होने के बाद वापस आते समय उस भक्त ने उनके साथ थोड़ी सी मिठाई रख देने का विचार किया। श्रीरामकृष्ण किसी भी तरह उसे लेने को राजी नहीं होते थे और वह भक्त तो बहुत ही आग्रह कर रहा था। तब श्रीरामकृष्ण अत्यन्त करुण स्वर से कहने लगे—"भाई, मुझ पर दया कीजिये। आप मेरे साथ यह कुछ भी मत दीजिये; इसको रखने में मुझे दोष लगेगा। मैं अपने साथ कोई वस्तु संचय करके कैसे ले जाऊँ? आप इसमें कुछ भी बुरा न मानिए।"

एक दिन संचय के सम्बन्ध में बातें करते हुए वे बोले—"साधु और पक्षी संचय नहीं करते। यहाँ (मेरी) तो ऐसी अवस्था है कि थैली में पान भी नहीं रख सकता। शौच से आते समय हाथ में लगाने के लिए मिट्टी तक रखकर लाते नहीं बनता।" और बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि उनके शरीर पर के कपड़े में किसी कोने में ज़रा सी गांठ बांधते भी नहीं बनता था, क्योंकि गांठ का नाम लेने से संचय की

कल्पना आ ही जाती है। कहीं पर गांठ बांध देने से उनका दम घुटने लगता था और हाथ पैर टेढ़ेमेढ़े होने लगते थे! यह कैसा विलक्षण त्याग है! त्याग की इस प्रकार की धधकती हुई अग्नि के पास आनेवाले लोगों की आँखें उनके तेज से चकाचौंध हो जाती थीं और उनके मन पर उसका विलक्षण परिणाम हुए बिना नहीं रहता था; और इसमें आश्चर्य ही क्या है?

काम-त्याग।

साधना-काल के प्रारम्भ से ही — अथवा यों कहिये कि जब से वे समझने लायक होश में आये तभी से — उनके मन में ऐसी दृढ़ भावना हो गई थी कि काम और कांचन ईश्वर-दर्शन के मार्ग में दो बड़े जबरदस्त बाधक हैं। इस बात का उनके मन में पूर्ण निश्चय होते ही वे अपने सदा के स्वभाव के अनुसार इन दोनों विघ्नों को अपने मार्ग से हटाने के पीछे पड़ गये। कोई भी काम अधूरा करना उन्हें स्वभाव से ही पसन्द नहीं था। कांचनासक्ति का उन्होंने किस प्रकार पूर्ण विनाश किया था इसका थोड़ा सा वर्णन इसके पूर्व हो चुका है। अब उन्होंने कामाशक्ति को कहाँ तक नष्ट किया था सो देखें।

पुरुष और स्त्री का भेदभाव नष्ट होने पर सहज ही काम को जीता जा सकता है, ऐसा सोचकर साधना-काल में इस भेदभाव को नष्ट करने के लिए श्रीरामकृष्ण प्रत्यक्ष स्त्री-वेष में ही छः महीने रहे। उस समय उनमें किस अद्भुत रीति से स्त्री-भाव आ गया था यह "मधुर-भावसाधना" प्रकरण में वर्णन हो चुका है (देखिये भाग १, प्रकरण २८, श्रीरामकृष्ण की मधुरभावसाधना)। पुरुष और स्त्री के भेदभाव को उन्होंने विचार द्वारा नष्ट कर दिया था, और अपने खुद को 'मैं पुरुष

हूँ' इस प्रकार समझने के भाव का भी उन्होंने पूर्ण रूप से नाश कर दिया था। इतना होते हुए भी वे आजन्म स्त्रियों से दूर ही रहे। वे कहते थे कि "संन्यासी जितेन्द्रिय हो, तो भी लोक-शिक्षणार्थ उसे स्त्रियों से सदा दूर ही रहना चाहिए।"

एक दिन कुछ लोग बैठे हुए थे। "कामिनी कांचन-त्याग के बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती, यह उद्गार श्रीरामकृष्ण के मुख से सुनकर एक मनुष्य बोला — "पर महाराज! कामिनी कांचन के बिना चलेगा कैसे?" इस पर श्रीरामकृष्ण अपने अन्तरंग भक्तों की ओर देखकर बोले — "देखो, ये लोग कहते हैं कि कामिनी-कांचन के बिना कैसे चलेगा! पर यहाँ की (मेरी) अवस्था इनको क्या मालूम है? इन दोनों का केवल स्पर्श होते ही हाथ टेढ़ा होकर बिच्छू के डंक मारने के समान पीड़ा होने लगती है।

"किसी स्त्री को विशेष भक्तिमती देखकर आत्मीयता के साथ उससे ईश्वरी वार्ता करना चाहो, तो मानो बीच में कोई परदा गिरा दिया गया हो — ऐसा मालूम पड़ता है; और उस परदे की दूसरी ओर जाते ही नहीं बनता।

"कभी एक आध बार अपने कमरे में अकेले ही रहने से और उतने ही में किसी स्त्री के वहाँ आ जाने से मेरी अवस्था तुरन्त एक बालक के समान हो जाती है, और वह स्त्री मेरी माता है ऐसी धारणा तुरन्त हो जाती है।

और भी एक दिन कामिनी-त्याग के सम्बन्ध में बातें कहते हुए अपने साधना-काल का स्मरण आ जाने से वे कहने लगे — "उन दिनों तो मुझे स्त्रियों से डर लगता था। ऐसा मालूम होता था मानो

कोई बाघिन खाने को आ रही हो! और उसके अंग-प्रत्यंग खूब बड़े दिखने लगते थे मानो कोई राक्षसी हो! बाद में बड़ा डर लगता था; किसी भी स्त्री को पास आने ही नहीं देता था। अब वह अवस्था नहीं रही। अब मैंने मन को बहुत कुछ सिखा पढ़ाकर समझाकर इतना कर लिया है कि अब स्त्रियों की ओर 'आनन्दमयी माता के भिन्न भिन्न रूप' जानकर देखा करता हूँ। तो भी — यद्यपि स्त्रियाँ जगदम्बा के ही अंश हैं, तथापि साधक साधु के लिए वे त्याज्य ही हैं।

"इसीलिए यदि कोई स्त्री बहुत भक्तिमती हो तो भी, उसे मैं अपने पास बहुत समय तक बैठने नहीं देता। थोड़े ही समय में मैं उससे कह देता हूँ — 'जा, वहाँ देवों का दर्शन कर, जा!' इतना कहने पर भी यदि वह न जाए तो किसी न किसी बहाने से मैं ही उठकर अपने कमरे से बाहर चला जाता हूँ।

"स्त्रियों का सहवास बड़ा बुरा होता है। स्त्री के साथ रहने से मनुष्य अवश्य ही उसके वश में हो जाता है। संसारी मनुष्य स्त्री के 'उठ' कहने से उठते हैं और 'बैठ' कहने से बैठ जाते हैं! और किसी से भी पूछिए 'क्यों रे तेरी स्त्री कैसी है?' वह उत्तर देगा, 'मेरी स्त्री बड़ी अच्छी है!' किसी एक की भी स्त्री ख़राब नहीं है!

"पर संसारी मनुष्यों की ही बात क्या कहें? एक दिन स्वयं मुझको ही कहीं जाना था। रामलाल की चाची (अपनी पत्नी) से पूछने पर वह बोली 'न जाओ।' तब मैं भी नहीं गया! थोड़े समय में मन में विचार आया — 'कैसा चमत्कार है! मैंने कभी गृहस्थी नहीं की, काम-कांचन का त्याग किया है तो भी मेरी यह अवस्था है, तब संसारी मनुष्य बेचारा अपनी स्त्री के कितना वश में हो जाता होगा यह ईश्वर ही जाने!

एक दिन नारायण (एक शिष्य) से श्रीरामकृष्ण ने कहा— "स्त्रियों के शरीर की हवा भी तू अपने को न लगने दे। सदा कोई मोटा कपड़ा ओढ़ लिया कर। और अपनी माता के सिवाय अन्य स्त्रियों से आठ हाथ, नहीं तो दो हाथ, और कम से कम एक हाथ तो ज़रूर ही दूर रहा कर!"

श्रीरामकृष्ण के साधना-काल के समय मथुरानाथ आदि ने उनके पागलपन या उन्माद को अखण्ड ब्रह्मचर्य का परिणाम समझकर उन्हें (श्रीरामकृष्ण को) एक बार वेश्याओं की मण्डली में ले जाकर छोड़ दिया था। यह वृत्तान्त हम पीछे (भाग १ पृ. २४४) लिख ही चुके हैं।

एक बार एक अत्यन्त रूपवती वेश्या कलकत्ते में आई हुई थी। उसने सुना कि दक्षिणेश्वर में एक कामकांचन-त्यागी परमहंस रहते हैं। वह अनेक मठ-मन्दिरों और तीर्थों में घूम चुकी थी, पर उसे सच्चा कामकांचन-त्यागी एक भी साधु नहीं मिला। अतः ये साधु बाबा कैसे हैं यह देखने के लिए वह एक दिन दक्षिणेश्वर गई। श्रीरामकृष्ण उस समय अपनी भक्तमण्डली के साथ बातें कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर वह वेश्या श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके बड़े अदब के साथ वहीं पर एक ओर खड़ी रही। इतने में श्रीरामकृष्ण शौच के लिए झाऊतला की ओर जाने लगे। वह चतुर स्त्री भी, तुरन्त उनका लोटा लेकर, पीछे पीछे चलने लगी। झाऊतला तक चले जाने के बाद श्रीरामकृष्ण एक स्थान में शौच के लिए बैठ गए और वह स्त्री लोटा लिए हुई वहीं एक ओर खड़ी रही। कुछ समय में वह स्त्री देखती है तो श्रीरामकृष्ण दोनों हाथों में दो लकड़ियाँ लेकर छोटे बालक के समान जमीन पर लकीरें खींच रहे हैं और मुँह से कुछ गुनगुनाते हुए अपनी ही धुन में

मस्त हैं! थोड़ी देर में उन्होंने उससे पानी माँग लिया और विधि समाप्त करके वे उससे बातचीत करते हुए अपने कमरे में वापस आ गए! यह सब देखकर वह स्त्री आश्चर्यचकित हो गई और श्रीरामकृष्ण से क्षमा माँगकर वहाँ से चली गई।

वैसे ही और एक बार उनकी परीक्षा लेने के इरादे से कुछ उपद्रवी लोगों ने, हृदय को फुसलाकर, एक रात को एक वेश्या को उनके कमरे में ले जाकर बैठा दिया। श्रीरामकृष्ण की दृष्टि ज्योंही उस पर पड़ी त्योंही वे "माता! माता!" चिल्लाते हुए एकदम कमरे से बाहर निकल पड़े और हलधारी को पुकारकर बोले — "दादा! दादा! ज़रा इधर आकर तो देख। मेरे कमरे में यह कौन आकर बैठ गया है?" हलधारी के साथ उन्होंने और लोगों को भी पुकारा। इस पर बहुत से लोग वहाँ जमा हो गए और उन लोगों ने उस वेश्या को वहाँ से भगा दिया। हृदय भी इस षडयन्त्र में शामिल था, यह जानकर श्रीरामकृष्ण ने उसकी बहुत भर्त्सना की, और कुछ दिनों तक उसको अपनी सेवा भी नहीं करने दी।

कामकांचनासक्ति के साथ ही और भी दूसरी छोटी मोटी भोग-वासनाओं का उन्होंने त्याग कर दिया था। वे कहते थे — "छोटी

वासना-त्याग।

छोटी वासनाओं का उपभोग करके भी त्याग करना ठीक होता है। पर बड़ी बड़ी वासनाओं के सम्बन्ध में यदि ऐसा करने जाओ तो पतन होने की बड़ी सम्भावना रहती है। इसीलिए उनका त्याग विचार द्वारा ही — उनके दोषों की ओर ख्याल करके — कर देना चाहिए।" उन्होंने अपने खुद की छोटी छोटी वासनाओं का त्याग इसी प्रकार उपभोग करने के बाद किया। कोई विशेष वस्तु लेने की, या कोई विशेष पदार्थ खाने की इच्छा

होने पर वे तुरन्त मथुरबाबू से कहकर उसे पूरी करा लेते थे। इस तरह की अनेक विनोदयुक्त बातें वे बताया करते थे।

एकबार उन्हें जरीदार पोशाक पहनकर चांदी का हुक्का पीने की इच्छा हुई! वे बताते थे—"मथुर से मैंने कहा; उसने पोशाक बनवा दी और एक चांदी का सुन्दर हुक्का भी ला दिया। तब मैं उस जरीदार पोशाक को पहनकर हाथ में उस चांदी के हुक्के को रखकर बड़े रुआब के साथ हुक्का पीने बैठा; और एकबार इधर से, एकबार उधर से, एकबार ऊपर से और एकबार नीचे से धुआँ मुँह से बाहर छोड़ा, और अपने मन से कहा—'रे मन! इसी को कहते हैं जरीदार पोशाक पहनकर चांदी के हुक्के में तमाखू पीना—बस! हो गई न तेरी इच्छा पूर्ण?' ऐसा कहकर हुक्का वैसा ही छोड़ दिया, शरीर पर से कपड़े उतार डाले, उन्हें पैरों से रौंद डाला, उन पर थूक दिया और बोला—'रे मन! यह जरी का कपड़ा है भला! इससे रजोगुण बढ़ता है। यह हमें नहीं चाहिए। इससे हमें क्या मतलब? थू:! थू:!"

श्रीरामकृष्ण कहते थे—"बचपन में गंगाजी में स्नान करते समय एक दिन एक लड़के की कमर में सोने की करधन देखी थी। बाद में ऐसी स्थिति हो जाने पर (उन्मादावस्था प्राप्त हो जाने पर) एक दिन उसी तरह की करधन पहनने की इच्छा हुई। मथुर से मैंने कहा। उसने सोने की एक सुन्दर करधन ला दी। उसे मैंने पहना। पहनते ही शरीर के भीतर की वायु ऊपर चढ़ने लगी और पीड़ा होने लगी! सोना शरीर में लगा नहीं कि बस! इतने में ही फौरन उसे दूर फेंक देना पड़ा।"

सरल स्वभाव, पवित्रता, काम-कांचन त्याग आदि के समान ही

श्रीरामकृष्ण में सत्यनिष्ठा की भी हद हो गई थी। उनके मुँह से असत्य भाषण कभी भी नहीं निकलता था। "आज अमुक जगह जाऊँगा —" यह कह दें तो वहाँ जाते ही थे। "अमुक काम करूँगा —" कहने के बाद वे वह काम कर ही डालते थे। दिल्लगी में भी किसी का असत्य भाषण उनसे सहन नहीं होता था। यदि कोई किसी काम को करने के लिए कहकर उसे न करे, तो वे तत्काल उसके कान ऐंठते थे। एक दिन वे ब्राह्मसमाज में गए थे, पर शिवनाथ बाबू को कुछ काम होने के कारण वे वहाँ हाज़िर नहीं हो सके। उनके सम्बन्ध में चर्चा करते हुए श्रीरामकृष्ण बोले — "शिवनाथ को देखकर बड़ा आनन्द होता है। उसकी ईश्वर के प्रति बड़ी भक्ति है। इतने लोग उसे मान देते हैं तब उसमें थोड़ी बहुत ईश्वरी शक्ति तो अवश्य ही होनी चाहिए। पर शिवनाथ में बड़ा भारी दोष है — उसके बोलने का ठिकाना नहीं रहता। उस दिन उसने मुझसे कहा कि दक्षिणेश्वर आऊँगा पर नहीं आया और कुछ सन्देशा भी नहीं भेजा — यह अच्छा नहीं है।" ऐसा कहकर वे पुनः बोले कि "सत्यवचन ही कलियुग की तपस्या है। सत्यनिष्ठा के बल से भगवान् को प्राप्त कर सकते हैं। सत्यनिष्ठा न हो तो मनुष्य का धीरे धीरे सर्वनाश हो जाता है।"

सत्यनिष्ठा।

वे सदा कहा करते थे कि "बारह वर्ष तक यदि काया-वचन-मन से सत्य का पालन किया जाय, तो मनुष्य सत्य-संकल्प हो जाता है। उसके शब्द को माता कभी मिथ्या नहीं होने देती।" बिलकुल बचपन से ही श्रीरामकृष्ण स्वयं अत्यन्त सत्यनिष्ठ थे। उनकी यह सत्यनिष्ठा उत्तरोत्तर बढ़ती गई, और सचमुच अक्षरशः यह उनके

अस्थिमांस में किस प्रकार भिद गई थी इसे देखा जाय तो आश्चर्य कि सीमा नहीं रहती।

एक दिन अपनी भक्तमण्डली से बातें करते हुए वे कहने लगे — "सत्य सत्य करते हुए मेरी यह कैसी अवस्था हो गई सो तो देखो। एक आध बार यदि सहज ही कह दिया कि आज भोजन नहीं करता, तो फिर भूख लगने पर भी खाते नहीं बनता! किसी को कोई काम बताने पर वही उसे करे। यदि कोई दूसरा कहे कि मैं करूँगा तो वह ठीक नहीं होता। यह कैसी अवस्था हो गई है? इसका कोई उपाय नहीं है क्या?"

"एक दिन झाऊतला की ओर लोटा लेकर चलने के लिए मैंने एक व्यक्ति से कहा। उसने 'अच्छा' तो कह दिया पर किसी दूसरे काम से वह वहाँ से चला गया। उसके बदले कोई दूसरा आदमी लोटा लेकर वहाँ आया। शौच से लौटकर देखता हूँ कोई दूसरा आदमी लोटा लेकर खड़ा है। उसके हाथ से मुझे पानी लेते ही नहीं बना! हाथ में सिर्फ मिट्टी लगाकर पहले मनुष्य के आते तक मैं वैसा ही खड़ा रहा! क्या किया जाय? माता के पादपद्म में फूल चढ़ाते समय जब मैं सभी बातों का त्याग करने लगा उस समय बोला — 'माता! यह ले अपनी शुचि-अशुचि, यह ले अपना धर्म-अधर्म, यह ले अपना पाप-पुण्य, यह ले अपना भला-बुरा, मुझे केवल अपनी शुद्ध भक्ति दे!' परन्तु उस समय 'यह ले तेरा सत्य-असत्य' यह मैं नहीं कह सका। सत्य का त्याग कैसे करूँ?"

उनके मुँह से बाहर निकलने वाली बात किसी न किसी तरह सच उतर ही जाती थी। दिखने में असम्भव बात भी किसी अतर्क्य रीति

से सच हो जाती थी। मुँह से बाहर निकलने वाली बातों को तो जाने दीजिए; पर उनके मन में भी असत्य संकल्प का कभी उदय नहीं होता था। उन्हें कोई इच्छा हो तो वह किसी न किसी तरह पूरी हो ही जाती थी।

काशीपुर के बगीचे में गले के रोग से बीमार रहते समय एक दिन वे पास के लोगों की ओर देखकर बोले —"क्या इस समय कहीं एक आध आंवला मिलेगा? मुँह में स्वाद नाम को नहीं है। अगर एक आध आंवला चबाने को मिल जाय तो बड़ा अच्छा हो?" वह ऋतु आंवले की नहीं थी, इसलिए इस समय आंवला कहाँ से मिले यह सोचकर सब लोग निराश होकर चुप बैठ गये। उनमें से दुर्गाचरण नाग (श्री नाग महाशय) से चुपचाप नहीं बैठा गया। आंवला मिले बिना चुपचाप बैठना ठीक नहीं है, यह सोचकर उन्होंने तुरन्त ही वहाँ से उठकर आसपास के बगीचों में ढूँढना शुरू कर दिया। लगातार दो दिन भटकने के बाद तीसरे दिन उन्हें एक बगीचे में एक पेड़ पर दो तीन आंवले दिखाई दिये। उन्हें वे तोड़कर ले आये और उसी समय काशीपुर जाकर श्रीरामकृष्ण को दे दिये! उन्हें निश्चय था कि जब श्रीरामकृष्ण को आंवला खाने की इच्छा हुई है, तो कहीं न कहीं आंवला अवश्य मिलेगा।

एक दिन भक्तगणों से बातचीत करते समय श्रीरामकृष्ण बीच ही में कहने लगे —"मेरी इसी समय अच्छी हींग आदि डाली हुई गरम गरम कचौड़ी खाने की इच्छा हो रही है।" यह सुनकर एक मनुष्य बोला —"तो मैं अभी कलकत्ता जाकर ताज़ी कचौडी बनवाकर ले आता हूँ।" श्रीरामकृष्ण बोले —"नहीं! कचौड़ी के लिए ही खासकर इतनी

दूर जाने की जरूरत नहीं है और इसके अलावा इतनी दूर आते तक वह गरम भी कैसे रहेगी?"—इस तरह बातें हो ही रही थीं कि कलकत्ते से एक मनुष्य बिलकुल वैसी ही गरमागरम कचौड़ी उनको देने के लिए ही लेकर आ पहुँचा।

एक दिन राखाल दक्षिणेश्वर आये हुए थे। श्रीरामकृष्ण उनके साथ बहुत समय तक बातें करते रहे। राखाल ने कुछ खाया नहीं था। इसलिए भूख की व्याकुलता से वे रोने लगे। खाने के लिए देने लायक कोई भी चीज़ पास में नहीं है यह देख श्रीरामकृष्ण जल्दी से उठे और घाट पर जाकर ज़ोर ज़ोर से 'गौरदासी * ! मेरे राखाल को भूख लगी है। कुछ खाने के लिए लेकर जल्दी आ"—ऐसा कहते हुए चिल्लाने लगे। थोड़ी ही देर में कलकत्ते की ओर से एक नौका आकर घाट पर लगी। और उसमें से बलराम बसु और गौरदासी दोनों नीचे उतरे। गौरदासी श्रीरामकृष्ण को देने के लिए एक डब्बे में रसगुल्ले भरकर लाई थी। उसे देखते ही बड़े आनन्दित होकर वहीं से वे राखाल को पुकारते पुकारते कहने लगे—"ए राखाल! अरे ये देख रसगुल्ले—गौरदासी लेकर आई है—भूख लगी है न?" राखाल वहाँ आकर कुछ क्रुद्ध से होकर बोले—"महाराज! मुझको भूख लगी है, पर यह बात आप हर एक को क्यों बता जा रहे हैं?" श्रीरामकृष्ण बोले—"अरे! भूख लगी है तो उसे बताने में क्या हर्ज है? आ ये ले, खा रसगुल्ले!"

ऐसे अनेक उदाहरण बताये जा सकते हैं—मुख से असत्य भाषण न निकलना, मन में भी असत्य संकल्प का उदय न होना,

* श्रीरामकृष्ण देव की एक स्त्री भक्त।

और वाचिक और मानसिक सत्य पालन की तो बात ही जाने दीजिये। पर श्रीरामकृष्ण का शरीर भी सदा सत्य का ही पालन करता था। शास्त्रों का कहना है कि सत्य का पालन शरीर, वाणी और मन से करना चाहिए। परन्तु शरीर द्वारा सत्य पालन करने का क्या अर्थ है इस शंका का समाधान जितनी सुन्दर रीति से श्रीरामकृष्ण के चरित्र द्वारा होता है वैसा अन्यत्र देखने में नहीं आता। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात स्पष्ट दिख जाएगी।

काली-मंदिर के पास बाबू शम्भुचन्द्र मल्लिक का बगीचा था। इसी में उनका एक दवाखाना था। शम्भुचन्द्र और उनकी पत्नी, दोनों ही श्रीरामकृष्ण के बड़े भक्त थे। श्रीरामकृष्ण कभी कभी वहाँ घूमने के लिए जाते थे और शम्भुबाबू के साथ ईश्वरी वार्तालाप करने में कुछ समय व्यतीत करके लौट आते थे। श्रीरामकृष्ण को पेट की पीड़ा की बीमारी थी। एक दिन वे शम्भुचन्द्र के यहाँ गए हुए थे। वहीं उनके पेट में पीड़ा होने लगी। शम्भुचन्द्र उनसे बोले — "आपको मैं अफीम की एक दो गोलियाँ दूँगा, उन्हें आप वापस जाने के बाद खाइए, आपके पेट का दर्द बन्द हो जाएगा।" श्रीरामकृष्ण ने यह बात स्वीकार कर ली। बाद में बड़ी देर तक दोनों में बातचीत होती रही और बोलने की धुन में दोनों इस बात को भूल गए।

श्रीरामकृष्ण वापस जाने के लिए रवाना हुए, पर दस बीस कदम जाते ही उन्हें गोलियों की याद आई। त्योंही वे वापस आए, पर लौटकर देखते हैं तो शम्भुचन्द्र वहाँ से चले गए थे। तब इतने ही के लिए उन्हें क्यों पुकारें, यह सोचकर कम्पाउण्डर के पास से ही अफीम की दो गोलियाँ लेकर वे फिर लौट आए, पर रास्ते में आने पर न जाने

क्या हो गया, उनसे ठीक ठीक चलते ही नहीं बनता था। पैर रास्ते की ओर न जाकर नाली की ओर ही खिचने लगे! "ऐसा क्यों होता है—कहीं रास्ता तो नहीं भूल गया?"—ऐसा संशय होने लगा। तब वे पीछे की ओर देखने लगे तो पिछला रास्ता बिलकुल स्पष्ट दिखता था! शायद सचमुच रास्ता भूल गया होऊँगा ऐसा सोचकर वे फिर शम्भुचन्द्र के फाटक तक आए और वहाँ से अपने रास्ते को पुनः एक बार ठीक ठीक देखकर वापस जाने लगे। पर फिर भी वही हाल हुआ। उनके पैरों को ठीक रास्ता मिलता ही नहीं था! ऐसा क्यों हो रहा है इसका कारण भी उनके ध्यान में नहीं आया। चलना शुरू करते थे, पर उनके पैर सीधे जाने से इन्कार करते थे! इसी प्रकार दो तीन बार हो जाने से वे निराश होकर रास्ते में बैठ गए। तब एकाएक उनके मन में बात आई कि—अरे हाँ! शम्भु ने तो कहा था कि 'मेरे पास से गोलियाँ लेते जाना' पर वैसा न करके उसे बिना बताए ही मैं उसके कम्पाउण्डर के पास से गोलियाँ लेकर जा रहा हूँ! इसी कारण माता मुझे यहाँ से जाने नहीं देती होगी! शम्भु से बिना पूछे गोलियाँ दे देना कम्पाउण्डर के लिए उचित नहीं था और जब उन्होंने कह दिया था कि 'मेरे पास से ले जाना' तो फिर दूसरे के पास से ले जाना मुझे भी उचित नहीं था। इस तरह गोली ले जाने में तो असत्य भाषण और चोरी दोनों ही दोष होते हैं। इसीलिए माता मुझे यहाँ से न जाने देकर यहीं अटकाकर रखती होगी।" यह बात मन में आते ही वे तत्काल दवाखाने में गए। वहाँ वह कम्पाउन्डर नहीं था, इसलिए उन्होंने दरवाज़े में से ही उन गोलियों की पुड़ियों को भीतर डालकर "ये तुम्हारी गोलियाँ भीतर डाल दी हैं!—" इस तरह ज़ोर से चिल्लाकर उन्होंने अपना रास्ता पकड़ा! अब इस

वार पैर ठीक चलते थे और रास्ता भी ठीक दिखाई देता था। शीघ्र ही वे अपने कमरे में आ पहुँचे। वे सदा कहा करते थे कि—"जिसने अपना सारा भार पूर्ण रूप से माता पर डाल दिया है उसके पैर माता ज़रा भी इधर उधर पड़ने नहीं देती।"

इस प्रकार के कितने ही दृष्टान्त उनके चरित्र में दिखाई देते हैं। इस अलौकिक सत्यनिष्ठा और निर्भरता की थोड़ी भी कल्पना क्या कोई कर सकता है? सत्यनिष्ठा तो उनके रोम-रोम, अस्थिमांस में इतनी प्रविष्ट हो गई थी कि असत्य संकल्प का उनके मन में आना और जिह्वा से असत्य भाषण का बाहर निकलना उनके लिए असम्भव हो गया था। उनकी जगदम्बा पर निर्भरता तो बड़ी विलक्षण थी। उनके बालक के समान सरल भाव से माता पर निर्भर एवं अवलम्बित रहने में ही उनका अलौकिक शक्ति-सर्वस्व संचित था। वे बारम्बार अपने शिष्यों को नीचे दिया हुआ उदाहरण बताया करते थे—"हमारे गांव के पास एक पहाड़ी है। उस पर से, आसपास के गांवों को जाने के लिए, एक सकरी सी पगडंडी है। एक बार एक मनुष्य अपने दोनों लड़कों को साथ लेकर उस पहाड़ी की पगडंडी पर से जा रहा था। छोटे लड़के को उसने गोदी में ले लिया था और बड़ा लड़का उसका हाथ पकड़कर चल रहा था। जाते जाते रास्ते में कोई तमाशा देखकर गोदी का बालक आनन्द से ताली बजाने लगा। उस तमाशे को देखकर चलने वाला लड़का भी बाप के हाथ को छोड़कर ताली बजाने ही वाला था कि वैसे ही ठोकर लगकर धड़ाम से नीचे गिरा और रोने लगा! इसी तरह माता ने जिसका हाथ पकड़ लिया है उसे गिरने का कोई भय नहीं है,

पर जिसने माता का हाथ पकड़ा है, उसे तो भय हो ही सकता है। उसने हाथ छोड़ा कि वह गिरा ही समझो।"

ईश्वर-निर्भरता।

श्रीरामकृष्ण की जगदम्बा पर इतनी उत्कट भक्ति थी कि उन्हें जगदम्बा के सिवाय दूसरा कुछ सूझता ही नहीं था — ऐसा कहने में कोई अत्युक्ति न होगी। एक दिन विचार करने के विषय में बातें निकलने पर वे अपने एक मणि नामक शिष्य से बोले — "देखो! विचार बहुत हो गया। सिर्फ़ विचार करने से क्या कहीं ईश्वर को जाना जा सकता है? न्यांगटा कहा करता था कि 'ईश्वर के एक अंश से यह सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है', इतना ही मैंने सुन रखा है — बस, इतना ही बस है। ज्यादा विचार करने की क्या जरूरत है?

"हाजरा की विचार-बुद्धि बड़ी ज़बरदस्त है। उसका सिर्फ़ हिसाब सुनते जाइए — 'हूँ; इतने अंश से जगत् उत्पन्न हुआ और अब इतने अंश बाक़ी बचे हैं!' वह यदि किसी दिन मेरे पास बैठा हो और हिसाब करने लगे, तो मेरा माथा ठनकने लगता है — ऐसे हिसाब को लेकर क्या जलाना है? मैं जानता हूँ कि मुझको कुछ भी मालूम नहीं है और मैं कभी कुछ मालूम करने का प्रयत्न भी नहीं करता हूँ। मैं केवल 'माता' 'माता' करते हुए पुकार मचाया करता हूँ। बस, जैसी उसकी इच्छा होगी वैसा वह करेगी! इच्छा होगी तो वह मालूम करा देगी और नहीं तो नहीं! मेरा स्वभाव तो बिल्ली के बच्चे के समान है। उस बच्चे को केवल 'म्याऊँ' 'म्याऊँ' करना आता है। तब उसकी माँ उसको कहीं भी रखे — कूड़े के ढेर पर रखे या गृहस्वामी के बिछौने पर।

छोटे बच्चे को माँ चाहिए, उनकी माता धनी है या गरीब है इसे वे नहीं जानते। नौकरानी के बच्चे को भी पूरा भरोसा अपनी माता का ही रहता है। मालिक के लड़कों से यदि उसकी लड़ाई हो जाय, तो भी वह यही कहता है—'अच्छा! ठहर जाओ, अभी मैं अपनी माँ से जाकर कहता हूँ!'"

श्रीरामकृष्ण की भी सदैव यही अवस्था रहा करती थी। "मैं कुछ नहीं समझता, मेरी माता सब कुछ समझती है—जो उसकी इच्छा होगी वह करेगी"—यही उनका सदा का भाव रहता था।

अपने साधना-काल की बातें बताते हुए वे एक दिन बोले—"तब जब मैं धरना देकर बैठ जाता था, और कहता—'माता! मैं मूर्ख, अज्ञानी मनुष्य हूँ; तू मुझे समझा दे कि वेद, पुराण, तन्त्र और शास्त्रों में क्या है!'—इस पर माता ने मुझे एक एक करके सब समझा दिया!"

ज्ञान प्राप्त करने के उद्देश से उन्होंने अलग प्रयत्न कभी नहीं किया। माता की इच्छा होगी तो वह देगी मुझको ज्ञान। अपने को जो चाहिए सो माता से माँग ले और उसे जो उचित दिखेगा सो वह करेगी—इस प्रकार की अद्भुत निर्भरता उनके स्वभाव में थी।

जैसा ज्ञान के बारे में था वैसा ही उनका अपनी शरीर-रक्षा के सम्बन्ध में भी रहता था। उस ओर वे बिलकुल ध्यान नहीं देते थे। साधना-काल की बातें तो हम लिख ही चुके हैं। उनसे यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। सदा सर्वकाल मन तो ईश्वर-चिन्तन में तल्लीन रहता था, तब देह की चिन्ता कौन करे?

साधना-काल में एक वार वे बहुत बीमार पड़ गए। वे स्वयं बताते थे —"एक दिन मैं काली-मन्दिर में बैठा था। माता के पास आराम कर देने के लिए प्रार्थना करने की इच्छा हुई, परन्तु स्पष्ट रूप से बोलते ही न बने। इतना ही कहा कि 'माता! हृदू कहता है कि बीमारी की बात एक बार माता के पास निकालो।' पर मैं ऐसा कहता हूँ कि उसी क्षण अजायबघर में की तारों से गुँथी हुई मनुष्य की हड्डियों की ठटरी एकदम मेरी आँखों के सामने आ गई। उसी समय मैं बोल उठा —'माता! तेरी जो इच्छा हो सो कर। इतना ही है कि तेरे गुणों का वर्णन करते हुए मुझे घूमने को मिले और इसी हेतु मेरी हड्डियों की ठटरी को किसी तरह यदि गुँथी रहने दे तो बस होगा।'"

---

१० — श्रीरामकृष्ण की शिष्यपरीक्षा

"अच्छी तरह परीक्षा लिए विना मैं किसी को अपने शिष्य-समुदाय में नहीं लेता।"

"किसको धर्मलाभ होगा, किसको नहीं होगा और किसको कितना हुआ है, इत्यादि सब बातें मुझे माता दिखा देती है!"

—श्रीरामकृष्ण

शास्त्रों में गुरु को 'भवरोगवैद्य' कहा गया है। श्रीरामकृष्ण के सत्संग से पता लग जाता था कि यह नाम व्यर्थ अलंकारिक नहीं है वरन् सचमुच अर्थपूर्ण है। साधक ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में चलते हुए जिन अवस्थाओं में से पार होता है, वे अच्छी हैं या बुरी, साधक की उन्नति के लिए अनुकूल हैं या प्रतिकूल, यह बात उसी के लक्षणों पर से सद्गुरु तुरन्त कैसे पहचान लेते हैं; यदि वे अनुकूल हों तो उन्हें किन उपायों से साधक के स्वभाव में सम्मिलित करके किस प्रकार उसे उत्तरोत्तर उच्च अवस्था प्राप्त कराने में वे सहायक बनाई जा सकती हैं; यदि वे प्रतिकूल हों तो साधक का उनसे अकल्याण न होने देकर उन्हें किस तरह क्रमशः दूर हटाया जा सकता है, इसके सम्बन्ध में सद्गुरु कैसी व्यवस्था करते हैं—इत्यादि बातें श्रीरामकृष्ण के पास सदा देखने को मिलती थीं। नरेन्द्र को प्रथमतः जब निर्विकल्प समाधि प्राप्त हुई तब श्रीरामकृष्ण उससे बोले—"तू अब कुछ दिनों तक दूसरों के हाथ का मत खाया कर; स्वयं रसोई बनाकर खाता जा; इस अवस्था में, बहुत हुआ तो माता के हाथ का खाना

खा सकता है। और किसी दूसरे के हाथ का खाने से वह भाव नष्ट हो जाता है!" एक भक्त का ध्यान बाह्य शौचाचार की ओर बहुत रहता था। उसी कारण उसके मन को ईश्वर-चिन्तन में एकाग्र न होते देख श्रीरामकृष्ण उससे बोले—"लोग जहाँ मलमूत्र त्याग करते हैं वहाँ पर एक दिन तू मुद्रा धारण करके बैठ और ईश्वर का ध्यान कर!" एक के भजन-काल के उद्दाम शारीरिक विकार उसकी उन्नति के प्रतिकूल दिखाई देने के कारण वे उसका तिरस्कार करते हुए बोले, "बड़ा आया है यहाँ मुझको अपना भाव दिखाने; यथार्थ भाव रहने से क्या कहीं इस तरह हुआ करता है? डुबकी लगा, स्थिर हो। यह क्या है? (दूसरों की ओर रुख करके) किसी बड़ी कढ़ाई में आध छटाक दूध डालकर नीचे अच्छी धधकती हुई आग जला दी जाए वैसा ही इसका यह भाव है। थोड़ी ही देर में कढ़ाई को नीचे उतारकर देखो तो वहाँ क्या है? दूध की एक बूँद भी नहीं है। आधी छटाक तो सिर्फ कढ़ाई के भीतरी ओर को चुपड़ने में चला गया!" वैसे ही और एक दूसरे भक्त का मनोभाव पहचानकर उससे बोले—"निकल साले यहाँ से! जरा खा, पी, चैन कर तब फिर यहाँ आ, और कोई भी काम धर्म समझकर मत कर—जा!" काशीपुर के बगीचे में एक दिन कुछ वैष्णव भक्त लोग एक जवान लड़के को लेकर श्रीरामकृष्ण के पास आए। वह लड़का ईश्वर की भक्ति करता था; परन्तु हाल ही में चार-पाँच दिनों से उसका आचरण किसी उन्मादग्रस्त मनुष्य के समान हो गया था। उसके मुँह और छाती का रंग लाल हो गया था; वह अत्यन्त दीनभाव से किसी के भी पैरों की धूलि अपने सिर पर धारण करता था। ईश्वर का

नामोच्चारण करने से उसके शरीर में कम्पन होने लगता और रोमाञ्च हो आता था। दोनों नेत्रों से लगातार अश्रुधारा बहने के कारण आँखें सूजकर लाल हो गई थीं, और शरीर की ओर उसका बिलकुल ध्यान ही नहीं था। एक दिन नाम-संकीर्तन करते करते एकाएक उसकी ऐसी दशा हो गई और तब से उसकी यही अवस्था रहा करती थी। तब से खान, पान, निद्रा प्रायः नहीं सी हो गई थी। रात-दिन ईश्वर-दर्शन की व्याकुलता से वह तड़फता रहता था। उस लड़के को देखते ही श्रीरामकृष्ण बोले — "यह मधुरभाव का आरम्भ दिखाई देता है, परन्तु इसकी यह अवस्था टिकेगी नहीं; — वह इसको नहीं रख सकेगा। इस अवस्था को बनाये रखना बड़ी कठीन बात है। स्त्री के स्पर्श मात्र से (काम-भाव होने पर) यह अवस्था तत्काल नष्ट हो जाती है।" श्रीरामकृष्ण का बोलना सुनकर और "कम से कम यह लड़का पागल तो नहीं हुआ है —" यह जानकर उन लोगों को सन्तोष हुआ। तदनन्तर कुछ दिनों में पता लगा कि श्रीरामकृष्ण ने जो बात बताई थी वह सचमुच ठीक निकली। भाव के क्षणिक उद्दीपन से उसकी जितनी उच्च अवस्था हो गई थी, उतना ही उसका अधःपतन उसके उस भाव के समाप्त होते ही हो गया!

और यथार्थ में, केवल भाव अथवा समाधिलाभ होने से ही सब कुछ कार्य समाप्त नहीं हो जाता; उसके वेग को धारण कर सकना, उस उच्च अवस्था को अपने स्वभाव में सम्मिलित कर सकना, दृढ़मूल कर सकना (पचा सकना) चाहिए — यह भी उतने ही महत्त्व की बात है। यदि ऐसा न हो सका, तो उच्च अवस्था में पहुँचे हुए अनेक साधकों का अधःपतन हो जाता है। मन में वासनाओं का लेशमात्र

अवशेष रहने से वह उच्च अवस्था कायम नहीं रहती; इसीलिए शास्त्रों की आज्ञा है कि "साधकों को वासनाओं का समूल त्याग करना चाहिए।"

औषधियाँ कितनी भी अच्छी हों, पर रोग का ठीक ठीक निदान हुए बिना वे कुछ काम नहीं देतीं। वैसे ही उपदेश-वाक्य कितने ही अच्छे हों, पर शिष्यों की ठीक ठीक परीक्षा किए बिना उनका प्रयोग करना निरर्थक होता है; इसीलिए गुरु को अपने शिष्य की ठीक परीक्षा करना जानना चाहिए। यह गुण श्रीरामकृष्ण में पूर्ण रूप से था।

उनको मनुष्यों की परख बहुत अच्छी आती थी। कौन कैसा है यह जानने में वे कभी गल्ती नहीं करते थे। अपने पास आने वाले प्रत्येक मनुष्य के भाव को ठीक ठीक पहचानकर ही वे उससे व्यवहार करते थे, और प्रत्येक से उसके स्वभाव के अनुरूप ही अपने साथ वर्ताव कराते थे। उदाहरणार्थ — नरेन्द्र के सम्बन्ध में वे कहते थे कि "नरेन्द्र मेरी ससुराल है।" (अपनी ओर उंगली दिखाकर) "इसके भीतर जो कोई है वह मानो मादी है और (नरेन्द्र की ओर उंगली दिखाकर) इसमें जो कोई है वह मानो नर है।" वे नरेन्द्र को अपनी कोई भी सेवा नहीं करने देते थे। वे कहते कि "उसको सेवा करने की जरूरत नहीं है।" राखाल को (स्वामी ब्रह्मानन्द को) वे अपना पुत्र समझते थे और उसका लड़के के समान लाड़ प्यार करते थे। यदि कोई अपने स्वभाव के विरुद्ध आचरण करता था, तो उनसे वह बिल्कुल सहन नहीं होता था। एक दिन देवी के मन्दिर में खड़े खड़े भावावेश में उन्होंने गिरीश को भैरव-रूप में देखा; तब

से वे उसे साक्षात् भैरव समझते थे और वह चाहे जो कुछ कहे सुने उसका हर तरह का कहना वे खुशी के साथ हँसते हँसते सुन लेते थे। एक दिन एक दूसरा मनुष्य ज्योंही उनसे गिरीश के समान बोलने लगा, त्योंही उन्होंने उसे रोककर कहा—"यह भाव तेरे लिए उचित नहीं है; वह गिरीश को ही शोभा देता है।" इसी प्रकार और सभी दूसरों से उनका शान्त अथवा वात्सल्य—कोई एक सम्बन्ध निश्चित रहता था। वे कहते थे—"कांच की अलमारी के भीतर की जैसे सब चीजें दिखाई देती हैं, उसी तरह मनुष्य के भीतर क्या है और क्या नहीं है यह सब मुझको माता दिखा देती है। किसी मनुष्य की छड़ी से और किसी के छाते पर से मुझको उसका स्वभाव पहचान में आ जाता है।"

अपने आश्रय में आने वाले हर एक की वे बहुत बारीकी से परीक्षा करते थे, और यदि वह उस परीक्षा में उतर जाय, तभी उससे वे दिल खोलकर व्यवहार करते थे। उनकी यह परीक्षा कभी गलत नहीं निकली। केशवचन्द्र सेन के अनुयायियों में फूट होने पर एक दिन वे उनसे बोले, "केशव! तू अपने समाज में ऐसे वैसे कोई भी आदमी भर लेता है, इसीलिए तो ऐसी नौबत आती है। बारीकी से परीक्षा किए बिना मैं किसी को भी अपनी मण्डली में शामिल नहीं करता।"

अपने पास आने वाले प्रत्येक मनुष्य की वे कितनी बारीकी से और कितने प्रकार से परीक्षा लिया करते थे, इस बात का विचार कर मन आश्चर्यचकित हो जाता है, और ऐसा मालूम होता है कि उन्होंने लोगों का चरित्र जानने के इतने उपाय कहाँ से और कैसे

जान लिए होंगे यह वे ही जानें! वे इस सम्बन्ध में शायद अपनी योगशक्ति की सहायता लेते होंगे, पर फिर भी उनकी अवलोकन-शक्ति बड़ी अद्भुत थी इसमें कोई शंका नहीं हो सकती। कोई भी मनुष्य उनके पास पहले पहल आवे, तो वे उसकी ओर अच्छी तरह ध्यानपूर्वक देखते थे, और उसकी ओर यदि उनका मन आकर्षित होता था तो वे उससे बोलना शुरू करते थे और उसे अपने पास बार बार आने के लिए कहते थे। इस तरह उसके चार पाँच बार आने से उतने समय में वे उसके बिना जाने, उसके अवयवों की गढ़न देख लेते थे, उसके विचारों को जान लेते, और अपने सम्बन्ध में उसका क्या मत है सो देख लेते और इन सब बातों का निरीक्षण करके उस पर से उसकी आध्यात्मिक उन्नति का अंदाज लगाकर उससे कैसा बर्ताव करना चाहिए यह निश्चित करते, और फिर यदि उसके बारे में और कोई विशेष बात जानने की इच्छा होती थी, तो वह बात वे अपनी योगशक्ति द्वारा जान लेते थे। वे कहते थे— "सवेरे उठकर तुम सब का कल्याण चिन्तन करते समय— 'किसकी कितनी उन्नति हुई है और किसकी क्यों नहीं होती—' ये सब बातें माता मुझे समझा दिया करती है।"

ऊपर कहा गया है कि शारीरिक लक्षणों पर से वे मनुष्य के स्वभाव की परीक्षा किया करते थे। इस सम्बन्ध में वे कभी कभी कहा करते थे— 'पद्मपत्र के समान जिसके नेत्र रहते हैं, उसकी वृत्ति सात्त्विकी होती है, बैल के समान जिसकी आँखें हों उसमें काम प्रबल रहता है। योगियों की आँखें ऊर्ध्वदृष्टिसम्पन्न और आरक्त रहती हैं। देवचक्षु बहुत बड़े नहीं होते, पर उनकी लम्बाई अधिक रहती है।

किसी से बोलते समय उसकी ओर विशेष रूप से निहारकर देखने की जिसकी आदत होती है, वह साधारण मनुष्यों से अधिक बुद्धिमान् होता है। दुष्ट मनुष्य का हाथ भारी रहता है। नाक का चपटा होना अच्छा लक्षण नहीं है। शम्भुचन्द्र * की नाक चपटी थी, अतः ज्ञानी होने पर भी वह उतनी सरल वृत्ति का नहीं था। हाथ कम लम्बा और कोहनी बड़ी रहना भी एक खराब लक्षण है। आँखें बिल्ली के समान कञ्जी होना अच्छा लक्षण नहीं है। वैसे ही टेढ़ी (तिरछी) आँख होना भी खराब है। एक आँख से अन्धा अर्थात् काना चाहे अच्छा हो भी, पर टेढ़ा मनुष्य बड़ा दुष्ट और खराब होता है।'

"एक दिन एक मनुष्य यहाँ आया था। वह हृदय से कहने लगा — 'मैं नास्तिक हूँ और तू आस्तिक है न? चल मुझसे बहस कर! तब मैंने उसकी ओर अच्छी तरह निहारकर देखा तो पता लगा कि उसकी आँखें बिल्ली के समान कञ्जी हैं!'"

वैसे ही पैर और चाल पर से भी बहुत कुछ मालूम हो जाता है। शरीर की बनावट के सम्बन्ध में वे कहते थे कि "भक्तिमान् मनुष्य का शरीर स्वाभाविक ही कोमल रहता है, उसके हाथ पैर की सन्धियाँ ढीली रहती हैं।" कोई मनुष्य बुद्धिमान है ऐसा दिखने के बाद, वह अच्छी बुद्धि वाला है या दुष्ट बुद्धि वाला, यह जानने के लिए उसका हाथ वे अपने हाथ में लेकर उसका वजन देखा करते थे।

---

* शम्भुचन्द्र को श्रीरामकृष्ण अपना 'द्वितीय अंगरक्षक' मानते थे। मथुरबाबू की मृत्यु के बाद उनका इससे परिचय हुआ। श्रीरामकृष्ण के प्रति इनकी और इनकी पत्नी की बड़ी भक्ति थी। इनका स्वभाव उदार और तेजस्वी था और ये बड़े ईश्वरभक्त थे। मथुरबाबू के बाद चार वर्ष तक इन्होंने श्रीरामकृष्ण की मथुरबाबू के समान ही एकनिष्ठ सेवा की। इनकी मृत्यु सन् १८७५ में हुई।

काशीपुर में गले के रोग से बीमार रहते समय एक दिन स्वामी शारदानन्द अपने छोटे भाई को लेकर उनके दर्शन करने गए। छोटे भाई को देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए और उसके साथ बहुत समय तक धार्मिक बातें करने के बाद शारदानन्द से बोले — " यह तेरा छोटा भाई है न रे ? " शारदानन्द के 'जी हाँ' कहने पर वे बोले — " लड़का अच्छा दिखता है, तुझसे अधिक बुद्धिमान है, देखूँ भला सद्बुद्धि है या असद्बुद्धि ? " ऐसा कहकर वे उसका हाथ अपने हाथ में रखकर तौल लेने के बाद बोले — " अरे ! वाह ! सद्बुद्धि भी है ! " तब वे शारदानन्द से कहने लगे — " क्यों रे ! क्या इसको भी खींच लूँ ? इसका मन संसार से हटाकर ईश्वर की ओर लगा दूँ क्या ? तेरा क्या कहना है ? " शारदानन्द बोले — " वाह ! महाराज ! तब तो अच्छा ही हो जाएगा। और क्या चाहिए ! इसे अवश्य खींच लीजिए। " यह सुनकर श्रीरामकृष्ण क्षणभर विचार करने के बाद बोले — " पर ऐसा नहीं करता। पहले ही एक को मैंने ले लिया है और दूसरे को भी ले लूँ तो तेरे माता-पिता को कष्ट होगा — विशेषतः तेरी माता को। आज तक अनेक माताओं को कष्ट दिया उतना ही बस है ! "

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे — " भिन्न भिन्न लोगों की शारीरिक बनावट जैसी भिन्न भिन्न रहती है वैसे ही उनके निद्रा-शौचादि व्यवहार भी भिन्न भिन्न प्रकार के हुआ करते हैं। नींद में सभी का श्वासोच्छ्वास समान नहीं रहता। त्यागी लोगों का एक प्रकार का और भोगी लोगों का दूसरे प्रकार का होता है। शौचादि के समय भोगियों की मूत्रधारा बाईं ओर और त्यागियों की दाहिनी ओर जाया करती है। योगियों के मल को शूकर छूने तक नहीं। "

इस तरह शारीरिक बनावट पर से मनुष्य के स्वभाव को परखने के कितने ही सिद्धान्त (चुटकुले) श्रीरामकृष्ण बताया करते थे और अपने भक्तगणों की परीक्षा करने में उनका उपयोग करते थे। नरेन्द्र की उन्होंने ऐसी ही कसकर परीक्षा की थी। एक दिन वे उससे बोले, "तेरे सब लक्षण तो बहुत अच्छे हैं, पर सिर्फ निद्रा में तेरा निश्वास बड़े ज़ोर से चला करता है; यही एक बात खराब है। योगी कहते हैं कि ऐसा मनुष्य अल्पायु होता है।"

जब कोई मनुष्य उनके पास आने लगता था तो वे उसकी चालचलन पर बारीकी से निगाह रखते थे; और परीक्षा में उतर जाने पर जब उसे अपनी जमात में लेने का निश्चय कर लेते, तब वे उसे तरह तरह के उपदेश देते थे और मीठे शब्दों में उसके दोष उसे दिखा देते थे। वैसे ही उसे गृहस्थ ही रखना है या संन्यासी बनाना है इसका भी निश्चय करके उसी तरह का उपदेश उसे दिया करते थे। इसी कारण प्रत्येक से वे पहले ही पूछ लिया करते थे— "तेरा विवाह हो गया है क्या? तेरे घर में कौन कौन हैं? संसार का त्याग करने पर तेरे कुटुम्ब की देखरेख करने वाला कोई है या नहीं?

अविवाहित से वे पूछते — "तुझे विवाह करने की इच्छा है या नहीं? तुझे नौकरी चाकरी करने की इच्छा होती है या नहीं?" यदि कोई कहे कि "विवाह करने की इच्छा तो नहीं है, पर नौकरी तो करनी ही चाहिए" तो उन्हें यह बात अप्रिय लगती थी। वे कहते थे कि "तुझे जब संसारी होना नहीं है, तो जन्म भर दूसरे का चाकर बनना क्यों पसन्द है? ईश्वर की सेवा में अपनी आयु क्यों

नहीं बिताता?" जिसे यह बात असम्भव मालूम पड़ती उससे वे कहते—"तब फिर विवाह कर और ईश्वर-प्राप्ति का ध्येय सामने रखते हुए, सन्मार्ग से चलते हुए गृहस्थ-धर्म का पालन करता जा।" इसी कारण जो लोग उन्हें आध्यात्मिक मार्ग में उत्तम या मध्यम अधिकारी दिखाई देते थे, उनमें से यदि किसी ने विवाह कर लिया हो अथवा किसी विशेष कारण के बिना केवल पैसा या मान प्राप्त करने के लिए कोई नौकरी करता हुआ अपनी शक्ति का दुरुपयोग करता हो तो उन्हें बड़ा दुःख होता था। उनके बाल-भक्तों में से एक के नौकरी स्वीकार करने का समाचार पाकर वे एक दिन उससे बोले—"तू अपनी माता के लिए नौकरी करता है, इसलिए इसमें कोई हर्ज नहीं है, पर यदि तू व्यर्थ योंही नौकरी करता होता तो मैं तेरा मुँह तक नहीं देख सकता!" वैसे ही वे जब काशीपुर में बीमार थे उस समय उनके एक भक्त का विवाह हुआ। विवाह के बाद एक दिन वह उनके दर्शन के लिए आया, तब उन्हें पुत्रशोक के समान दुःख हुआ और वे उसके गले से लिपटकर दुःख के साथ रोते रोते बार बार कहने लगे—"बेटा! ईश्वर को भूलकर संसार में डूब न जाना, भला?"

एक लड़का बारम्बार दक्षिणेश्वर में आने जाने लगा, तब वे उससे एकाएक पूछ बैठे—"क्यों रे? तू विवाह क्यों नहीं करता?" लड़के ने उत्तर दिया—"महाराज! अभी तक मन काबू में नहीं आया। अभी ही विवाह कर लूँगा तो कदाचित् स्त्रैण बन जाऊँगा। इसलिए कामजित् बन जाने पर ही विवाह करने का मेरा विचार है।" श्रीरामकृष्ण ताड़ गए कि मन में प्रबल आसक्ति रहते हुए भी इसका

मन निवृत्ति-मार्ग की ओर खिंच गया है, तब वे उससे हँसते हुए बोले — "अरे भाई! तेरे कामजित् हो जाने पर तुझे विवाह की बिलकुल आवश्यकता ही नहीं रहेगी!"

वैसे ही और एक दिन वे एक लड़के से बोले — "यह ऐसा क्यों होता है बता भला? चाहे जैसा करूँ पर कमर में धोती टिकती ही नहीं। वह कब गिर जाती है, उस पर मेरा ध्यान ही नहीं रहता। अब इतना वृद्ध हो गया हूँ तो भी नंगे घूमने में शरम नहीं आती। पहले-पहल तो अपनी ओर कोई देखता है या नहीं, इसकी सुधि भी नहीं रहती थी; पर अब तो कोई देखेगा तो उसको लाज लगेगी ऐसा सोचकर बस, कमर में धोती को किसी तरह लपेट रखता हूँ! क्या तू मेरे जैसा लोगों के सामने नंगा घूम सकेगा?" वह लड़का बोला — "महाराज! कुछ ठीक कह नहीं सकता, पर तो भी यदि आप कहेंगे तो वस्त्रत्याग कर दूँगा!" श्रीरामकृष्ण बोले — "सच? अच्छा जा तो भला देखूँ! धोती सिर में लपेटकर मन्दिर के आँगन में एक चक्कर लगाकर आ जा।" वह लड़का बोला — "नहीं महाराज! यह तो मुझसे न बनेगा, तथापि आप कहते हैं तो सिर्फ आपके सामने वैसा कर सकूँगा।" श्रीरामकृष्ण इस पर हँसने लगे और बोले, "ठीक है, और भी अनेक लोग तेरे समान कहते हैं कि तुम्हारे सामने धोती खोल देने में लाज नहीं लगती, पर दूसरों के सामने लगती है।"

अपने पास आने वाले लोगों के मन में अपने प्रति श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है या नहीं — इस बात की ओर वे सदैव ध्यान रखते थे। अपनी आध्यात्मिक अवस्था और अपने आचरण को कोई मनुष्य

कहाँ तक समझ सका है, यह जानने के लिए वे उससे स्वयं अपने सम्बन्ध में कई प्रश्न पूछा करते थे। वे यह भी देखा करते थे कि मेरी बताई हुई सभी बातों पर उसको विश्वास है या नहीं; और अपनी भक्तमण्डली में से जिसके सहवास में रहने से वे समझते थे कि उसे फायदा होगा उससे उसका परिचय करा देते थे।

एक दिन वे अपने एक भक्त से एकदम पूछ बैठे—"क्यों रे? राम (रामचन्द्र दत्त) मुझको अवतार कहा करता है; तुझे कैसा मालूम पड़ता है?"

भक्त—यह बात! तो फिर महाराज, राम आपको बहुत ही कम समझता है।

श्रीरामकृष्ण—वाह रे वाह! वह तो मुझको ईश्वर का अवतार कहता है और तिस पर भी तू कहता है, वह मुझे कम ही समझता है?

भक्त—हाँ, महाराज! अवतार तो ईश्वर का अंश हुआ करता है। मैं तो आपको साक्षात् ईश्वर ही समझता हूँ!

श्रीरामकृष्ण—(हँसकर)—अरे! क्या कहता है?

भक्त—हाँ महाराज! सच बात तो यही है। आपने मुझको शंकर का ध्यान करने के लिए कहा था, पर किसी प्रकार का प्रयत्न करने पर भी मेरे ध्यान में शंकर की मूर्ति आती ही नहीं। ध्यान करने के लिए बैठने पर आँखों के सामने एकदम आपकी ही मूर्ति आ जाती है और तब तो शंकर का ध्यान करने की इच्छा ही नहीं रह जाती। इसी कारण मैं तो आपका ही ध्यान करता करता हूँ!

श्रीरामकृष्ण—(हँसकर)—अरे, यह तू क्या कह रहा है? पर मुझको तो अपने सम्बन्ध में पूर्ण निश्चय है कि मैं तेरे एक छोटेसे

रोम से भी बड़ा नहीं हूँ! बात कुछ भी हो पर तेरे विषय में मुझे बड़ा चिन्ता थी सो आज दूर हो गई!

दूसरे किसी दिन वे अपने एक बालभक्त से बोले—"बच्चा, तेरे शरीर के लक्षणों पर से ऐसा दिखता है कि तुझको पैसा बहुत मिलना चाहिए, और तेरे हाथों से पैसे का सद्व्यय होकर बहुतों का कल्याण होगा, तब फिर बोल भला क्या तुझे धनवान् होने की इच्छा है?" यह सुनकर उस बालभक्त ने उत्तर दिया—"महाराज! धन ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग में विघ्न है न? तब भला मैं उसको लेकर क्या करूँगा? ईश्वर मुझपर कृपा करें और मुझे पैसा न दें!" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण हँसने लगे।

श्रीरामकृष्ण के शिष्य-समुदाय में हरीश अच्छा सशक्त होते हुए भी अत्यन्त शान्त स्वभाव का था। वह घर का सुखी था। उसका विवाह हो चुका था और उसको एक पुत्र भी हो गया था। दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के पास चार पाँच बार आते ही उसके मन में वैराग्य का उदय हो गया, और तब से वह वहीं दक्षिणेश्वर में रहकर श्रीरामकृष्ण की सेवा और जपध्यान में बहुत सा समय बिताने लगा। घर के लोगों ने उसे बहुतेरा समझाया पर उसने अपना यह क्रम बिलकुल नहीं छोड़ा। यह देखकर उसके घर के लोग उस पर बड़े क्रुद्ध हुए और उसकी पत्नी ने तो खाना पीना भी छोड़ दिया। यह बात सुनकर हरीश की परीक्षा लेने के लिए एक दिन श्रीरामकृष्ण ने उसे पुकारकर एक ओर अलग बुलाया और कहा—"तेरी पत्नी इतना दुःख कर रही है, तब तू एक बार घर जाकर उससे भेंट क्यों नहीं कर आता?" हरीश ने इस पर उत्तर दिया—"महाराज! यह

दया दिखाने का स्थान नहीं हैं, यहाँ पर दया दिखाने से मोह में पड़कर अपने ध्येय को ही भूल जाने का डर है। अतः, महाराज! ऐसी आज्ञा आप मुझे न दें।" उसके इस कथन से श्रीरामकृष्ण उस पर बड़े प्रसन्न हुए, और उस समय से हरीश की बात कभी कभी हम लोगों को बताकर वे उसके वैराग्य की प्रशंसा किया करते थे।

नरेन्द्र तो श्रीरामकृष्ण का जीव-प्राण था। पर वह भी परीक्षा के कष्ट से मुक्त नहीं रह सका। उसके दक्षिणेश्वर आते ही मानो श्रीरामकृष्ण का आनन्द उमड़ पड़ता था! तब तो वे और सब बातों को भूलकर उसीसे बातें करते रहते थे! उसको दूर से ही आते देखकर—"आ—ओ—न, आ—ओ—न" इतने ही शब्दों का किसी प्रकार उच्चारण करते हुए उन्हें कई बार समाधिमग्न होते हुए लोगों ने देखा है।

पर एक दिन तो नरेन्द्र आ गया और उनको प्रणाम कर बैठ भी गया, पर उनके (श्रीरामकृष्ण के) मुख से एक शब्द भी नहीं निकला! शायद वे भाववेश में हों ऐसा समझकर वह कुछ देर तक बैठा रहा पर तो भी वे (श्रीरामकृष्ण) कुछ नहीं बोले। यह देखकर नरेन्द्र वहाँ से उठकर बाहर गया और हाजरा महाशय आदि लोगों से बातें करता रहा। कुछ समय के बाद श्रीरामकृष्ण के बोलने की आवाज़ सुनकर वह भीतर गया, पर उसे देखते ही श्रीरामकृष्ण दूसरी ओर अपना मुँह फेरकर बैठ गए! संध्या-समय तक यही बात होती रही, और बहुत देर होती देखकर वह भी श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके अपने घर चला गया। पुनः अगले रविवार के दिन जब वह दक्षिणेश्वर गया और कमरे में जाकर ज्योंही उसने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम

किया त्योंही वे अपने सिर पर से कपड़ा ओढ़कर लेटे ही रहे! उस दिन भी श्रीरामकृष्ण उससे कुछ नहीं बोले। और भी एक दो रविवार को ऐसा ही हुआ। बीच बीच में श्रीरामकृष्ण औरों से उसके बारे में पूछा करते, पर उसके आते ही उससे कुछ भी न बोलकर बिलकुल चुप रहते थे। पर नरेन्द्रनाथ ने अपना आना बन्द नहीं किया। बाद में एक दिन नरेन्द्र के आते ही श्रीरामकृष्ण उससे बोले — "क्यों रे नरेन्! मैं तो तुझसे एक शब्द भी नहीं बोलता, तब भला तू यहाँ क्यों आया करता है?" नरेन्द्र ने तुरन्त उत्तर दिया — "मैं यहाँ कुछ आपका भाषण सुनने थोड़े ही आता हूँ? आपके प्रति प्रेम मालूम पड़ता है, आपको देखते रहने की इच्छा होती है, इसीलिए मैं आया करता हूँ।" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण को करुणा आ गई और वे बोले — "नरेन्! नरेन्! मैंने तेरी परीक्षा ली है। तेरा लाड़ प्यार नहीं किया, तुझसे बोला नहीं, तो तू भागता है या नहीं यही देखना था! तू ही ऐसा था जो यह सह सका; दूसरा कोई होता तो कब का भाग जाता और इधर पुनः लौटकर देखता तक नहीं!"

वैसे ही, नरेन्द्र में वैराग्य कहाँ तक प्रवृद्ध हुआ है, यह देखने के लिए एक दिन उसे एक ओर बुलाकर श्रीरामकृष्ण बोले — "इधर देख; तपस्या के प्रभाव से मुझे अणिमादि अष्टसिद्धियाँ कब की प्राप्त हो गई हैं, पर मेरे समान संन्यासी के लिए उनका क्या उपयोग है? इसके सिवाय उनका उपयोग करने का मुझे कभी काम भी नहीं पड़ा; इसलिए मेरे मन में है कि माता से पूछकर वे सब सिद्धियाँ तुझको दे दूँ; क्योंकि माता ने मुझे दिखाया है कि तेरे द्वारा धर्म-

प्रचार का बहुत सा कार्य होना है, तब तुझे उनका बहुत उपयोग हो सकेगा। उसके सम्बन्ध में तेरा विचार क्या है?" नरेन्द्र ने पूछा —"पर महाराज! ईश्वर-प्राप्ति के कार्य में क्या उनका कुछ उपयोग होगा?" श्रीरामकृष्ण बोले —"नहीं! परन्तु ईश्वर-प्राप्ति के बाद धर्मप्रचार के काम में उनका उपयोग होगा।" नरेन्द्र ने तुरन्त उत्तर दिया —"तब तो महाराज! वे सिद्धियाँ मुझे नहीं चाहिए, उनसे मुझको कोई मतलब नहीं, पहले ईश्वर का दर्शन होने दीजिए, और फिर उनके कार्य में सिद्धियों की आवश्यकता होगी तो वे स्वयं ही दे देंगे। अभी से मैं यदि सिद्धियों को लेकर बैठूँ तो शायद मैं उन्हीं के फेर में पड़कर उन्हीं में फँस जाऊँ और फिर ईश्वर–प्राप्ति की बात एक किनारे ही पड़ी रह जाय?" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण को बड़ा आनन्द हुआ और वे उस पर बहुत ही प्रसन्न हुए।

वे बहुत चाहते थे कि वे जैसे दूसरों की परीक्षा लेते थे, वैसे ही दूसरे लोग भी उनकी परीक्षा लेने के बाद ही उन पर विश्वास करें। वे सदा कहा करते थे —"भाइयो, साधु को दिन में देखो, रात में देखो और तभी उस पर विश्वास करो। साधु जैसा उपदेश दूसरों को देता है वैसा ही स्वयं आचरण करता है या नहीं — इस बात का ध्यान रखो। जिसके कहने में और करने में मेल नहीं है, उस पर कभी भी विश्वास मत करो।" उनके शिष्य लोग भी, अच्छे सुशिक्षित रहने के कारण, अपनी सभी शंकाओं का समाधान हुए बिना कभी चुप नहीं बैठते थे। इतना ही नहीं, वरन् अपने भक्ति-विश्वास को दृढ़ बनाने के लिए, कई बार उन लोगों ने उनको कष्ट पहुँचाने में भी कमी नहीं की! तथापि यह सब सद्धेतु से किया जा रहा है,

ऐसा जानकर वे इस प्रकार के सभी कष्टों को प्रसन्न मन से सह लेते थे।

स्वामी विवेकानन्द ने उनके बिछौने के नीचे रुपया रखकर उनकी परीक्षा ली, यह वृत्तान्त प्रथम भाग, पृष्ठ २५६ में पीछे बताया जा चुका है।

जब से स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण के चरणों का आश्रय ग्रहण किया तभी से वे अपने धर्म-जिज्ञासु संगी-साथियों को भी अपने साथ उनके पास ले आया करते थे। उनकी बहुत इच्छा रहती थी कि अपने समान उन सभी को श्रीरामकृष्ण के दिव्य सत्संग का लाभ मिले, परन्तु स्वामीजी के ही मुँह से हमने सुना है कि इस प्रकार उनके पास लाये हुए सभी लोगों के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण की एक समान उच्च धारणा नहीं होती थी, और इसी कारण सभी पर उनकी एक जैसी कृपा भी नहीं होती थी। वे कहते थे—"अपने चरणों में मुझे आश्रय देने के बाद श्रीरामकृष्ण जैसा उपदेश धर्म आदि के विषय में मुझको देते थे वैसा वे मेरे और संगी-साथियों को नहीं देते थे; इस कारण अपने समान ही कृपा उन पर भी करने के लिए मैं सदा उनसे आग्रह करता रहता था; इतना ही नहीं, वरन् अज्ञान के कारण कई बार इसके सम्बन्ध में उनसे जोर जोर से विवाद भी कर बैठता था। मैं कहता था—'महाराज! ऐसा कैसे हो सकता है? ईश्वर क्या ऐसा पक्षपाती है कि वह एक पर कृपा करेगा और दूसरे पर नहीं? तब भला आप उनको मेरे समान ही अपने चरणों में आश्रय क्यों नहीं देते? यदि किसी की इच्छा हो जाय और वह उसके अनुसार प्रयत्न भी करे तो वह जैसे विद्वान् या पण्डित हो सकता है, उसी तरह वह ईश्वर-भक्त भी हो सकेगा—यह बात तो ठीक है न?' इस पर श्रीरामकृष्ण

कहते — 'क्या करूँ रे? — माता तो मुझको कुछ दूसरा ही दिखाती है कि उसमें सांड के समान पशुभाव भरा हुआ है, और उसको इस जन्म में धर्मलाभ नहीं हो सकता — तव भला मैं ही क्या करूँ? और यह तो तेरा भ्रम है कि मन में आने पर और प्रयत्न करने पर जिसकी जैसी इच्छा हो वैसा वह वन सकता है।' पर उनका यह कहना मैं नहीं मानता था और उनसे पुनःपुनः कहता था — 'महाराज! आप यह क्या कहते हैं? मन में ठान लेने पर और प्रयत्न करने पर क्या मनुष्य की जैसी इच्छा हो वैसा वह नहीं वन सकता? अवश्य वन सकता है। मुझको तो आपके इस कथन पर विलकुल विश्वास नहीं होता।' श्रीरामकृष्ण पुनः अपना ही कहना दुहराते थे — 'तू विश्वास कर या मत कर; मेरी माता तो मुझको दूसरा ही दिखाती है।' मुझको उनका कहना उस समय किसी प्रकार नहीं जँचता था, पर वाद में जैसे-जैसे दिन वीतने लगे वैसे-वैसे मुझे भी दिखने लगा कि उनका ही कहना ठीक था, और मेरी ही समझ की भूल थी।"

स्वामीजी कहते थे — "इस प्रकार प्रत्येक वात में पग पग पर उनसे लड़ने झगड़ने के वाद जव मुझे निश्चय होने लगता तभी मुझे उनकी सभी वातों पर विश्वास होने लगा।"

"साधु की परीक्षा दिन में करो, रात में करो, और तभी उस पर विश्वास करो" — अपने इस कथन के अनुसार ही श्रीरामकृष्ण उनकी प्रत्येक वात और व्यवहार की जाँच किस तरह करते थे, इस के सम्वन्ध में स्वामीजी के ही मुँह से सुनी हुई एक वात हम यहाँ पर लिखते ह। सन् १८८५ की रथ-यात्रा के दिन श्रीरामकृष्ण पण्डित शशधर के यहाँ उनसे भेंट करने गए थे। उस दिन उन्होंने पण्डित

जी को उपदेश दिया कि—"परमेश्वर का साक्षात्कार करके आदेश प्राप्त किए हुए पुरुष ही यथार्थ में धर्म-प्रचार के योग्य होते हैं, दूसरे लोग तो केवल नाम मात्र के प्रचारक होते हैं और उनसे कोई कार्य सिद्ध नहीं हो सकता—आदि।" तत्पश्चात् उन्होंने पीने के लिए एक गिलास पानी माँगा। तब एक तिलकधारी, रुद्राक्षमाला पहने हुए मनुष्य ने बड़े ठाट बाट से एक गिलास पानी भरकर उन्हें लाकर दिया। श्रीरामकृष्ण उस गिलास को मुँह तक ले तो गए, पर वे उस पानी को पी नहीं सके। यह देख दूसरे एक मनुष्य ने वह पानी फेंक दिया और दूसरे बर्तन में पानी लाकर उन्हें पीने के लिए दिया। उसमें से थोड़ा सा पानी पीकर उन्होंने पण्डित जी से उस दिन विदा ली। सभीको मालूम पड़ा कि पहले लाए हुए पानी में कुछ गिर पड़ा होगा, इसी कारण श्रीरामकृष्ण ने वह पानी नहीं पिया।

स्वामीजी कहते थे—"उस दिन मैं श्रीरामकृष्ण के बिलकुल पास बैठा था। असल में उस पानी में कुछ भी नहीं पड़ा था, परन्तु फिर भी उन्होंने वह पानी नहीं पिया। इसका क्या कारण होगा, यह सोचने पर मेरे मन में आया कि वह पानी स्पर्श-दोष से अपवित्र हो गया होगा; क्योंकि एकबार श्रीरामकृष्ण ने कहा था कि 'जिनमें विषय-बुद्धि प्रबल रहती है, जो कपट और धोखेबाजी के द्वारा अपनी जीविका चलाते हैं, जो अपने लाभ के लिए और अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए धर्म का केवल ढोंग रचकर लोगों को फँसाते हैं, ऐसे लोगों के द्वारा लाए हुए किसी खाद्य या पेय वस्तु को लेने के लिए जब मैं अपना हाथ आगे बढ़ाता हूँ, तो मेरा हाथ आगे न बढ़कर पीछे ही हटता है!' यह बात मेरे ध्यान में आते ही इसकी सत्यता

की जाँच करने का इसे योग्य अवसर समझकर मैं तुरन्त उठा और श्रीरामकृष्ण के 'मेरे साथ दक्षिणेश्वर चल' कहने पर 'मुझे कोई ज़रूरी काम है, इसलिए मैं न जा सकूँगा' कहकर मैं वहाँ से बाहर निकल पड़ा। उस तिलक-मालाधारी मनुष्य के छोटे भाई से मेरा परिचय था। इसलिए मैं उसे एक ओर अलग ले जाकर उसके बड़े भाई के चरित्र के विषय में पूछने लगा। कुछ समय तक तो उसने मुझे इस विषय में कुछ भी पता नहीं लगने दिया, पर अन्त में उसने कहा —'अपने बड़े भाई के दोष मैं कैसे बताऊँ भला?—' यह सुनकर मैं समझ गया कि यहाँ है कुछ दाल में काला; कोई गोपनीय बात है ज़रूर। बाद में उसी के घर के किसी दूसरे परिचित मनुष्य से मुझे सभी बातों का पता लग गया और वह मनुष्य सचमुच ही खराब आचरण का था यह मुझे निश्चय हो जाने पर मेरे आश्चर्य की सीमा नहीं रही!"

योगेन्द्र श्रीरामकृष्ण का अत्यन्त प्रिय भक्त था। एक दिन वह श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर गया और वहीं सन्ध्या-समय तक रह गया। सन्ध्या हो जाने पर वहाँ आये हुए सभी लोग अपने अपने घर चले गये। रात को श्रीरामकृष्ण की सेवा करने के लिए कोई नहीं है, यह देखकर उसने रात वहीं बिताने का निश्चय किया। दस बजे रात तक ईश्वरी वार्ता होती रही। तत्पश्चात श्रीरामकृष्ण ने फलाहार किया और योगेन्द्र को अपने ही कमरे में सोने को कहकर वे स्वयं भी अपने बिछौने पर लेट गये। लगभग बारह बजे श्रीरामकृष्ण को शौच की इच्छा हुई और योगेन्द्र को गाढ़ निद्रा में देखकर उन्होंने उसे नहीं उठाया और अकेले ही पंचवटी पर से वे झाऊतला

की ओर निकल गये। उनके जाने के थोड़ी ही देर बाद योगेन्द्र की नींद खुली तो उसने देखा कि कमरे का दरवाजा खुला है और श्रीरामकृष्ण भी बिछौने पर नहीं हैं। शायद वे बरामदे में टहलते हों, यह सोचकर बाहर आकर देखा तो वहाँ भी कोई नहीं था। उसकी लड़कपन की उम्र तो थी ही। एकदम उसके मन में बड़ी प्रबल शंका उत्पन्न हो गई—"तो क्या श्रीरामकृष्ण नौबतखाने में अपनी पत्नी के पास गये हैं? क्या श्रीरामकृष्ण के भी कहने और करने में एकता नहीं है?"

इस भयंकर संशय-पिशाच के चंगुल में पड़कर योगेन्द्र का मन अत्यन्त क्षुब्ध हो गया और उसने अपने संशय को पूर्ण रूप से निवृत्त कर लेने का निश्चय किया। वह बाहर आया और नौबतखाने के दरवाजे की ओर ध्यान से देखते हुए बरामदे में खड़ा हो गया। कुछ समय में पंचवटी की ओर से जूतों की चट चट आवाज़ उसे सुनाई देने लगी और उधर मुँह फिराकर देखता है तो उसे श्रीरामकृष्ण दिखाई दिये! उन्होंने उसे वहाँ खड़े हुए देखकर पूछा—"क्यों रे! तू यहाँ खड़ा क्या कर रहा है?" श्रीरामकृष्ण को पंचवटी की ओर से आते देख और उनके इस प्रश्न को सुनकर योगेन्द्र हड़बड़ा गया और "मैं यह कैसा घृणित संशय अपने मन में लाया और यह कितना घोर अपराध किया" ऐसा सोचते सोचते उसका सारा शरीर पसीने से तर हो गया, पैर लड़खड़ाने लगे और मुँह से एक शब्द भी बाहर नहीं निकला। उसके चेहरे की ओर देखते ही श्रीरामकृष्ण के ध्यान में तुरन्त यह बात आ गई कि इसके मन में क्या उथलपुथल हो रही है। वे उस पर ज़रा भी क्रुद्ध नहीं हुए और उसकी ओर देखकर हँसते हँसते बोले—"ठीक है ठीक। साधु को दिन को

देखना, रात को देखना और तभी उस पर विश्वास करना !—" ऐसा कहकर वे उसे अपने कमरे में आने के लिए इशारा करके भीतर चले गये ! आज मैंने कितना भयंकर अपराध किया, यह सोचते सोचते योगेन्द्र को रात भर नींद नहीं आई ! अस्तु—

उपरोक्त वर्णन से उनकी शिष्य-परीक्षा तथा शिष्यों के चिकित्सक या खोजी स्वभाव की कल्पना पाठकों को हो सकती है। शिष्य गुरु की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया कि उसका काम समाप्त हो चुका। उसके बाद उसके उद्धार की, उसके कल्याण की सारी चिन्ता उसके गुरु को होने लगती है। इस प्रकार परखे हुए भक्तों पर श्रीरामकृष्ण का अपूर्व प्रेम रहा करता था। उसकी यथार्थ कल्पना करा सकना तो असम्भव है, तथापि अगले प्रकरण के पढ़ने से पाठकों को उसकी थोड़ी बहुत कल्पना अवश्य हो सकेगी।

---

११ – श्रीरामकृष्ण का शिष्यप्रेम

"किसी पर निष्काम प्रेम कैसे करना, यह तो वे (श्रीरामकृष्ण) ही जानते थे और करते थे। और दूसरे सब लोग तो स्वार्थ के लिए प्रेम का केवल बारम्बार प्रदर्शन मात्र किया करते हैं!"

—स्वामी विवेकानन्द

बचपन से ही श्रीरामकृष्ण का स्वभाव अत्यन्त प्रेमयुक्त और सहानुभूतिपूर्ण था। बारह वर्ष की अपूर्व तपस्या के बाद जब वे गुरु-पदवी पर आरूढ़ हुए, तब तो उनके इस प्रेममय और सहानुभूतिपूर्ण स्वभाव में बाढ़ ही आ गई। अपने द्वारा दूसरों का कल्याण कैसे हो, अपने प्राप्त किए हुए अनुभव दूसरों को किस प्रकार प्राप्त हो सकें, इसी एक बात की धुन उन्हें सदा बनी रहती थी। उनके अपूर्व शिष्य-प्रेम का बीज इसी धुन में पाया जाता है।

श्रीरामकृष्ण के शिष्य-स्नेह की उपमा केवल माता के अपत्य-प्रेम से दी जा सकती है। उनके उस सर्वग्रासी प्रेम में जो आ पड़ते थे वे उनके पास सदा के लिए बिक जाते थे। श्रीरामकृष्ण के सत्संग और उन्हीं से सम्बन्ध रखनेवाली बातें करने के सिवाय उन्हें कुछ सूझता ही नहीं था। अपने शिष्य के केवल पारमार्थिक कल्याण की ही नहीं, वरन् उनके ऐहिक कल्याण की चिन्ता भी उन्हें रहा करती थी। एक शिष्य की आमदनी कम होकर उसे खर्च की खींचातानी होने लगी। श्रीरामकृष्ण के कान तक यह बात पहुँचने पर वे एक दिन

अपने अन्य शिष्यों से बातचीत करते करते करुणायुक्त होकर कहने लगे —'अरे रे, उसका खर्च उसकी आमदानी से नहीं चल सकता; क्या तुम लोग कोई उसकी मदद करोगे?" किसी की तबीयत ठीक नहीं होती थी, तो उसकी भी चिन्ता श्रीरामकृष्ण को रहती थी। कोई कुछ दिनों तक दक्षिणेश्वर न आवे तो वे तुरन्त उसके विषय में पूछतांछ शुरू कर देते थे। एक बार 'एम्' बहुत दिनों तक उनके पास नहीं आए तब वे एक से कहने लगे —"हाल में वह कई दिनों से नहीं आया है, क्या वह यहाँ की बातों से उकता गया?" अपने दर्शन के लिए आने वाले लोगों में से कौन पैदल आए, कौन नौका में आए, कौन गाड़ी में आए, यह सब वे पूछ लिया करते थे और पैदल आने वाले या किराये में पैसा खर्च न कर सकने वाले भक्त को वापस जाते समय किसी श्रीमान् मनुष्य की गाड़ी में बैठा दिया करते थे। नौका में वापस जाने वालों के लिए कभी-कभी स्वयं ही घाट पर जाकर नौका की राह देखते रहते थे। किसी के वापस जाने की कोई सुविधा न हो सकने पर उसे पैदल ही जाना पड़ेगा, यह सोचकर कभी-कभी वे उसे नौका में जाने के लिए पास से किराया भी देते थे और किस घाट पर उतरना होगा यह भी समझा देते थे! अपने भक्तवृन्द में से किसको कौन सी वस्तु रुचती है, यह वे अच्छी तरह जानते थे। और जो चीजें लोग उनके पास ला दिया करते थे उनमें से वे हर एक की रुचि की चीज़ उसके लिए अलग रख दिया करते थे और उसके आने पर उसे वह चीज़ देते थे या किसी के हाथ उसके यहाँ पहुँचवा देते थे। सभी भक्तों पर यद्यपि उनका अत्यन्त प्रेम था तथापि नरेन्द्र, नारायण, राखाल आदि लड़कों पर उनका प्रेम कुछ विलक्षण ही था। ये लोग यदि कुछ दिनों तक दक्षिणेश्वर नहीं

आते थे तो श्रीरामकृष्ण सचमुच रोने लगते थे और जगदम्बा से प्रार्थना करते थे — "माता ! उनको यहाँ ला दे !" जिस भक्त की भेंट के लिए उन्हें ऐसी व्याकुलता नहीं होती थी, उसे वे अपना अन्तरंग भक्त नहीं समझते थे। एक दिन किसी ने कहा कि — "अमुक आपकी भेंट के लिए आज बहुत दिनों से नहीं आ सका, इसीलिए उसे बड़ा बुरा लगता है। कब यहाँ आऊँ ऐसा उसके मन में हो रहा है।" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले — "पर मुझको मालूम पड़ता है कि वह यहाँ का अन्तरंग भक्त नहीं है; क्योंकि उसकी भेंट के लिए मुझे कभी रोना नहीं आया।" प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर वे अपने भक्तों के कल्याण के निमित्त श्री जगदम्बा से प्रार्थना किया करते थे।

अपने शिष्य का सब प्रकार से कल्याण हो इस उद्देश से वे कभी कभी अपने को प्रिय न लगने वाली बातें भी करने के लिए तैयार हो जाते थे ! श्री समर्थ (रामदास स्वामी) का जैसा भोलानाथ था, उसी तरह इनका भी एक लाटू नामक (जो पीछे अद्भुतानन्द कहलाया) शिष्य था। वह बिलकुल निरक्षर था। सदैव श्रीरामकृष्ण की मन लगाकर सेवा करना ही वह जानता था। उससे श्रीरामकृष्ण कई बार कहते — "अरे ! तू कुछ लिखना-पढ़ना सीख ले।" पर वह उधर कुछ ध्यान ही नहीं देता था। एक दिन श्रीरामकृष्ण वर्णमाला की पुस्तक खास इसी काम के लिए मँगाकर स्वयं ही उसे अक्षर सिखाने बैठे। पर इस सम्बन्ध में तो गुरु से शिष्य बढ़कर ही निकला ! श्रीरामकृष्ण अक्षरों पर उंगली रखकर कहते थे — "हँ, बोलो — 'क' 'ख' 'ग' 'घ' 'ङ'।" शिष्य कहता था — "का, खा, गा, घा, ङा,।" श्रीरामकृष्ण फिर कहते — "अरे ! 'का' नहीं

'क'—पर शिष्य तो फिर वैसे ही 'का' उच्चारण करता था। शिष्य का यह विचित्र उच्चारण सुनकर हँसते हँसते श्रीरामकृष्ण के पेट में दर्द होने लगा। उसका उच्चारण ठीक कराने के लिए श्रीरामकृष्ण ने अनेकों प्रयत्न किए, पर उसका वह 'का' 'खा' किसी तरह नहीं छूटा! अन्त में उकताकर उन्होंने "जा! तेरे भाग्य में विद्या है ही नहीं" कहकर निराशा के साथ उसे पढ़ाने का काम बन्द कर दिया।

उनके शिष्य-प्रेम का जितना भी वर्णन किया जाय वह अधूरा ही रहेगा। नरेन्द्र का वृत्तान्त तो आगे दिया ही जायगा। उससे श्रीरामकृष्ण के शिष्यप्रेम की और भी थोड़ी बहुत कल्पना हो सकेगी। उसके सिवाय और भी निम्नलिखित प्रसंगों की ओर ध्यान दीजिए:—

श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में महिमाचरण, राखाल, 'एम्' और एक-दो दूसरे लोगों के साथ बातें करते हुए बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण—अच्छा तो, केदार के बारे में तुम्हारी क्या राय है? उसने दूध को सिर्फ देखा है या चखा भी है?

महिमाचरण—मैं समझता हूँ उसने चखा भी है; उसने आनन्द का अनुभव किया है।

श्रीराम०—और नृत्यगोपाल?

महिमा०—वाह! वह कितना अच्छा आदमी है!

श्रीराम०—और गिरीश (घोष)?—वह कैसा है?

महिमा०—वह अच्छा है, पर उसका ढंग निराला ही है।

श्रीराम०—और नरेन्?

महिमा०—पन्द्रह वर्ष पूर्व मेरी जो अवस्था थी, वही अवस्था आज उसकी है।

श्रीराम० — और छोटा नरेन्? वह कितने सरल स्वभाव का है!

महिमा० — हाँ, बहुत ही सरल स्वभाव का है।

श्रीराम० — ठीक कहा। (विचार करते हुए) और कौन कौन हैं भला? ये जो सब लड़के यहाँ आते हैं, उनको केवल दो बातें मालूम करा देना बस है। उसके बाद उनको बहुत सी साधनाओं की आवश्यकता नहीं है। पहली बात — 'मैं कौन हूँ।' और दूसरी बात 'वे कौन हैं।' इन लड़कों में से बहुतेरे अन्तरंग भक्त दिखाई देते हैं। अन्तरंग भक्तों के लिए मुक्ति नहीं होती। इन लड़कों को देखकर मेरा अन्तःकरण तृप्त हो जाता है। जिनके बाल-बच्चे हैं, जो हरदम सरकार दरबार करते घूमते हैं, कामिनी-कांचन में ही फँसे रहते हैं, उन्हें देखकर भला कैसे आनन्द हो? शुद्ध अन्तःकरण वाले मनुष्यों को देखे बिना कैसे जीवित रहा जाय?

× × × ×

'एम्' से बातें करते हुए श्रीरामकृष्ण पंचवटी तक चले गये। वहाँ वे अपने हाथ का छाता रखकर जमीन पर बैठ गये। छोटे नारायण को वे साक्षात् नारायण समझते थे। इसी कारण उस पर उनका अत्यन्त प्रेम था। नारायण 'एम्' की पाठशाला में पढ़ता है।

श्रीरामकृष्ण — नारायण का स्वभाव कैसा है देखते हो न! छोटे-बड़े सभी के साथ वह मिल जाता है और सभी को वह प्रिय लगता है। किसी विशेष शक्ति के बिना ऐसा सम्भव नहीं होता और स्वभाव कितना सरल है! है नहीं?

एम् — सच है महाराज! अत्यन्त सरल है।

श्रीराम० — क्या तेरे घर वह कभी आया था?

एम्‌ — हाँ ! एक दो बार आया था।

श्रीराम० — क्या तू उसको एक रुपया देगा? या काली से कहूँ?

एम्‌ — नहीं, महाराज ! मैं ही दे दूँगा।

× × × ×

श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में बैठे हैं और 'एम्‌' से कह रहे हैं–

श्रीरामकृष्ण — क्या हाल में तेरी और नरेन्द्र की भेंट नहीं हुई ?

एम्‌ — नहीं, महाराज ! इधर कई दिनों से नहीं हुई।

श्रीराम० — एक दिन उससे भेंट करो न? और गाड़ी करके उसको अपने साथ यहाँ ले आओ। (हाजरा से) उसका और मेरा क्या सम्बन्ध है बताओ भला?

हाजरा — आपकी सहायता से उसकी उन्नति होगी।

श्रीराम० — और भवनाथ? क्या पूर्व संस्कार के बिना वह यहाँ इतना आ सकता है? वैसे ही हरीश, लाटू सिर्फ ध्यान ही करते हैं, यह कैसी बात है ? हरिपद उस दिन यहाँ आया था; क्या तुझसे भेंट हुई थी ?

एम्‌ — हरिपद कितना सुन्दर भजन गाता है; प्रह्लाद-चरित्र, श्रीकृष्णजन्म आदि भजन कैसी सुन्दर और सुरीली आवाज में गाता है!

श्रीराम० — सत्य है। उस दिन उसकी आँखों को देखा तो मानो चढ़ी हुई सी दिखाई दीं। उससे पूछा — 'क्यों रे? तू आज-कल, मालूम पड़ता है, ध्यान आदि बहुत किया करता है?' उसने सिर हिलाकर कहा — 'हाँ।' तब मैं बोला — 'बहुत हो गया, इतना नहीं करना चाहिए।' ('एम्‌' से) बाबूराम कहता है — 'संसार? अरे बापरे!'

एम् — पर महाराज ! यह तो केवल सुनी हुई बात है। बाबूराम को संसार का क्या अनुभव है ?

श्रीराम० — हाँ ! सच तो यही है। निरञ्जन को देखा है न ? कितने सरल स्वभाव का लड़का है !

एम् — हाँ ! उसका तो चेहरा ही बड़ा आकर्षक है । आँखें भी कितनी सुन्दर हैं !

श्रीराम० — सिर्फ़ आँखें ही नहीं, सब कुछ सुन्दर है ! उसके विवाह की चर्चा चली तब वह अपने घर के लोगों से बोला–'मुझको व्यर्थ क्यों (संसार में) डुबाते हो ?' ('एम्' की ओर देखकर हँसते हँसते) पर क्यों रे ? लोग तो कहते हैं कि खूब कामधाम करके घर लौटने के बाद स्त्री के पास बैठकर इधर उधर की दो चार बातें करने में बड़ा आनन्द है। है न ठीक ?

एम् — जिसके मन में स्त्री के ही विचार चला करते हैं, उसको आनन्द आता होगा ! (राखाल की ओर देखकर) यह तो मानो बहुत कुछ मेरा Cross Examination (जिरह) ही हो रहा है !

× × × ×

श्रीरामकृष्ण 'एम्' से बातचीत कर रहे हैं। पास में तेजचन्द्र, बलराम, नारायण आदि बैठे हैं। पूर्णचन्द्र की बात निकल पड़ी। वह कुछ दिनों से दक्षिणेश्वर नहीं आया था। श्रीरामकृष्ण के मन में आ रहा था कि उससे कब भेंट हो।

श्रीरामकृष्ण — ('एम्' से) — वह अब मुझसे कब भेंट करेगा ? उसका और द्विज का तू मेल करा दे। एक ही उम्र के और एक

ही विचार वाले लोगों का मैं मेल करा दिया करता हूँ। इससे दोनों की उन्नति होती है। पूर्ण कितने प्रेमी स्वभाव का है तुमने देखा है न?

एम्—हाँ! मैं ट्रामगाड़ी में बैठकर आ रहा था। मुझको देखकर वह घर से सड़क पर दौड़ता ही आया और मुझको नमस्कार किया!

इसे सुनकर श्रीरामकृष्ण की आँखें डबडबा गईं। वे बोले—"ईश्वर-दर्शन की व्याकुलता के बिना ऐसा होना सम्भव नहीं है!"

पूर्ण की आयु १५-१६ वर्ष की होगी। 'एम्' की पाठशाला में वह पढ़ता था। कोई सद्गुणी या भाविक लड़का दिखा कि 'एम्' उसे श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए ले जाते थे। उनके साथ पूर्ण जब पहले पहल गया तभी से वह श्रीरामकृष्ण का प्यारा बन गया। पूर्ण को भी श्रीरामकृष्ण के दर्शन की लालसा सतत बनी रहती थी, परन्तु घर के लोग उसे बारम्बार दक्षिणेश्वर जाने नहीं देते थे। उससे भेंट करने के लिए शुरू शुरू में श्रीरामकृष्ण इतने व्याकुल हो जाते थे कि एक दिन रात्रि के समय ही वे दक्षिणेश्वर से 'एम्' के घर जा पहुँचे! उतनी रात को ही 'एम्' पूर्ण के घर गए और उसे अपने साथ लेकर आए! उसको देखकर श्रीरामकृष्ण को अत्यन्त आनन्द हुआ और वहीं पर वे उसे ईश्वर की प्रार्थना करने की रीति आदि का उपदेश देकर दक्षिणेश्वर को वापस चले गए!

और एक दिन की बात है। वे अपनी भक्तमण्डली के बारे में 'एम्' से बातें करते करते बोले—"पूर्ण से और एक दो बार भेंट हो जाने पर मेरी व्याकुलता कम हो जायगी। वह कितना चतुर है! और मेरे प्रति उसकी भक्ति भी कितनी अधिक है! वह उस

दिन कहता था — 'आप से भेंट करने के लिए मेरा मन कितना व्याकुल हो उठता है आपको कैसे बताऊँ?' ('एम्' को) उसके घर के लोगों ने उसको तेरी पाठशाला से हटा लिया है, इससे तेरी तो कोई बदनामी नहीं होगी न?"

एम् — यदि (विद्यासागर) मुझसे कहेंगे कि तुम्हारे कारण उसको पाठशाला छोड़ना पड़ा तो मेरे पास उसका जवाब है।

श्रीरामकृष्ण — तू क्या कहेगा?

एम् — मैं कहूँगा — 'साधु की संगति में ईश्वर का ही चिन्तन होता है, यह कुछ खराब बात नहीं है। आपने भी अपनी पुस्तक में लिखा है कि अन्तःकरण से ईश्वर की भक्ति करनी चाहिए!' (श्रीरामकृष्ण हँसते हैं।)

श्रीराम० — कप्तान के घर में छोटे नरेन्द्र को बुलवा लिया था और उससे पूछा — 'तेरा घर कहाँ है? चल दिखा भला।' वह बोला — 'चलिये, आइये, इधर से आइये।' पर वह डरते डरते ही चलने लगा, कारण यही कि कहीं बाप को मालूम हो जाय तो? (सभी हँसते हैं।) (एक भक्त से) क्यों रे? तू इस बार बहुत दिनों के बाद आया? सात आठ महीने हो गये होंगे।

भक्त — हाँ, महाराज! एक वर्ष हो गया।

श्रीराम० — तेरे साथ और एक आता था न? क्या नाम है उसका?

भक्त — नीलमणि।

श्रीराम० — हाँ नीलमणि। वह भी कुछ दिनों से नहीं आया। उसको एक बार यहाँ आने के लिए कह देना भला।

× × × ×

श्रीरामकृष्ण आज बलराम के घर आये हुए थे। तीसरे पहर का समय था। बड़ी गरमी हो रही थी।

श्रीरामकृष्ण——('एम्' से)——उस दिन कह गया था कि तीन बजे आऊँगा, इसलिए आ गया; पर कैसी सख्त गरमी पड़ रही है।

एम्——सचमुच आपको बड़ा कष्ट हुआ होगा।

श्रीराम०——छोटे नरेन् और बाबूराम के लिए आता हूँ। पूर्ण को क्यों नहीं लेते आए?

एम्——उसको चार लोगों के सामने आने में बड़ा डर लगता है——उसको मालूम पड़ता है कि योंही आप दूसरे लोगों के सामने उसकी प्रशंसा करेंगे और सारी बात घर के लोगों के कान तक पहुँच जायगी।

श्रीराम०——हाँ! यह तो सच है। तू पूर्ण को धर्म सम्बन्धी बातें बताया करता है सो ठीक है। उसके लक्षण बड़े अच्छे हैं।

एम्——हाँ, आँखें कितनी उज्ज्वल हैं?

श्रीराम०——केवल उज्ज्वल रहना बस नहीं है, देवचक्षु कुछ भिन्न ही रहते हैं। तूने उससे पूछा न? तब फिर वह क्या बोला?

एम्——आज चार पाँच दिन से वह कह रहा है कि ईश्वर का चिन्तन और नामस्मरण करने से उसके शरीर में रोमांच हो आता है!

श्रीराम०——क्या कहते हो? और क्या चाहिए बाबा? (पल्टू से) सुना है कि तूने अपने बाप को जबाव दे दिया। ('एम्' से) यहाँ आने की बात पर से इसने अपने बाप को कुछ जबाब दे दिया। क्या कह दिया रे तूने?

पल्टू——मैं बोला-'हाँ, हाँ, मैं उनके पास जाया करता हूँ; तब

इसमें मेरा अपराध कौन सा हो गया ?' (श्रीरामकृष्ण और 'एम्' हँसते हैं।) और भी मौका आएगा तो इससे भी अधिक कहूँगा !

श्रीराम० —(हँसते हुए)—छि: छि:, ऐसा नहीं करना चाहिए। तू तो बहुत आगे बढ चला। (विनोद से) तेरा क्या हाल है भाई!

छोटा नरेन्द्र आया। श्रीरामकृष्ण हाथ पैर धोने के लिए जा रहे हैं। छोटा नरेन्द्र तौलिया लेकर उन्हें पानी देने के लिए साथ जा रहा है। साथ में 'एम्' भी है। छोटा नरेन्द्र बरामदे के एक किनारे श्रीरामकृष्ण के पैर धो रहा है।

श्रीराम० —('एम्' से)—कितनी गरमी हो रही है! तू उस इतने से घर में कैसे रहता होगा कौन जाने! ऊपर तप जाता होगा न?

एम्—हाँ, महाराज! बहुत ही तप जाता है।

श्रीराम० —इसीलिए तेरी स्त्री को सिर-दर्द का रोग हो गया है। उससे नीचे बैठने के लिए क्यों नहीं कहता ?

एम्—उससे कह दिया है नीचे बैठने के लिए।

श्रीराम०—तू पिछले रविवार को क्यों नहीं आया ?

एम्—घर में दूसरा कोई नहीं था। इसके सिवाय उसके सिर में दर्द था और देखने वाला कोई नहीं था।

श्रीरामकृष्ण को पुन: पूर्ण की याद आ गई।

श्रीराम० —तू आज उसको क्यों नहीं ले आया ? वह सचमुच भक्त है। नहीं तो उसके लिए मेरा प्राण व्याकुल न होता और उसके लिए बीजमंत्र का जप भी न बनता।

श्रीरामकृष्ण ने पूर्ण के लिए बीजमंत्र का जप किया यह सुनकर 'एम्' चकित हो गया। कैसा है यह शिष्य-प्रेम !

श्रीराम० —(देवेन्द्र से) एक दिन तेरे घर आने की इच्छा होती है।

देवेन्द्र —आप से यही विनती करने के लिए यहाँ आया था।

श्रीराम० —ठीक है। पर बहुत से लोगों को न बुलाना भला। तेरी आमदनी कम है। इसके सिवाय गाड़ी का किराया भी बहुत है।

देवेन्द्र —(हँसकर) आमदनी कम है तो रहे।

"ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।"

यह सुनकर श्रीरामकृष्ण जोर से हँसने लगे। उनकी हँसी रुकती ही न थी?

× × × ×

ऐसे अनेक प्रसंगों का वर्णन किया जा सकता है। मण्डली जमा हुई कि हरएक के बारे में पूछतांछ शुरू हो जाती थी। कौन क्या करता है, ध्यान, भजन, जप, किसका किस तरह हो रहा है, कोई आया न हो, तो उसका क्या कारण है—आदि सब बातें पूछा करते थे। और अमुक दिन अमुक भक्त के घर जायेंगे यह पहले से ही निश्चित रहता था। इस कारण भक्तगण भी वहाँ अवश्य जमा हो जाते थे। यदि कोई न आया हो तो श्रीरामकृष्ण उसे बुला लाने के लिए कहते थे। सब भक्तवृन्द एकत्र हो जाने पर भजन आदि होता था; तत्पश्चात् फलाहार होकर बैठक समाप्त की जाती थी।

भक्तमण्डली को यह पूर्ण विश्वास था कि यदि कोई विशेष अवस्था या दर्शन प्राप्त करना हो, तो श्रीरामकृष्ण के पास हठ करना चाहिए, फिर वह इच्छा पूरी हो जाती है। श्रीरामकृष्ण भी उसके लिए उसकी कितनी आतुरता है यह पहले ही पूरी तरह जाँच लेते

थे, और जब उन्हें दिखता था कि उसको सचमुच उस बात के लिए व्याकुलता है तो फिर जो करना होता था सो करते थे और तब तो उन्हें उसको वह अवस्था प्राप्त होते तक चैन नहीं पड़ती थी।

एक बार बाबूराम (स्वामी प्रेमानन्द) को भावसमाधि प्राप्त करने की बड़ी प्रबल इच्छा हुई। श्रीरामकृष्ण के पास जाकर उन्होंने बहुत आग्रह किया कि "महाराज! मुझे भावसमाधि प्राप्त होना ही चाहिए।" श्रीरामकृष्ण ने उसकी व्याकुलता की परीक्षा करने के लिए सदा के समान टालमटोल का उत्तर देते देते जब देख लिया कि यह मानने वाला नहीं है, तब वे बोले—"अच्छी बात है भाई! माता के पास बात कहता हूँ, मेरी इच्छा से क्या कुछ होता है?" इसके कुछ दिन बाद बाबूराम किसी काम के लिए अपने गांव को चला गया। इधर श्रीरामकृष्ण को चिन्ता होने लगी कि बाबूराम को भावसमाधि कैसे प्राप्त हो! हर एक से वे कहने लगे—"भाव-समाधि के लिए उसने मुझसे कितना वादविवाद किया, कितना रोना-गाना मचाया और कितना हठ किया, और यदि उसे यह अवस्था प्राप्त नहीं होगी, तो वह फिर मुझे नहीं मानेगा। क्या किया जाए?" एक दिन तो माता से वे प्रार्थना करने लगे—"माता! बाबूराम को थोड़ा बहुत भाव हो जाय ऐसा कुछ तू कर दे।" श्री जगदम्बा ने उनसे कह दिया कि "उसको भाव नहीं होगा; उसको ज्ञान मिलेगा।" श्री जगदम्बा की वाणी सुनकर उन्हें पुनः चिन्ता होने लगी। उन्होंने अपने भक्तों में से किसी-किसी के पास प्रकट भी किया कि—"बाबूराम के बारे में माता से मैंने कहा, पर वह कहती है—'उसे भाव प्राप्त नहीं होगा, ज्ञान मिलेगा'—पर

वह चाहे कुछ भी क्यों न हो, उसको कुछ भी एक चीज़ मिल जाए जिससे उसके मन में शान्ति आ जाय बस यही मैं चाहता हूँ। उसके लिए मेरे मन में बड़ी बेचैनी है—बेचारा उस दिन कितना रोया!" बाबूराम को साक्षात् धर्मोपलब्धि कराने के लिए श्रीरामकृष्ण कितने चिन्तित थे! और उनका कहना क्या था? "अगर ऐसा नहीं होगा तो वह फिर मुझे नहीं मानेगा।" मानो जैसे बाबूराम के मानने न मानने पर ही उनका सब कुछ अवलम्बित हो!

एक दिन एक भक्त के साथ बातें करते हुए वे बोले—"पर तू बता भला, (बालभक्तों की ओर उंगली दिखाकर) इन सब के सम्बन्ध में मुझे इतनी चिन्ता क्यों होती रहती है? देखो तो ये सब शाला में पढ़ने वाले लड़के हैं, स्वयं कुछ करना चाहे तो इनमें से एक में भी कुछ करने की शक्ति नहीं है, मेरे लिए एक पैसा भी खर्च करने की इनकी ताकत नहीं हैं। तब इनकी इतनी चिन्ता मुझे क्यों होती है? यदि इनमें से कोई एक दो दिन न आवे, तो उसके लिए मेरा प्राण व्याकुल हो उठता है और उससे कब भेंट हो ऐसा होने लगता है! भला ऐसा क्यों होता होगा?"

भक्त—ऐसा क्यों होता है, महाराज! मैं कैसे बताऊँ? उनके कल्याण की चिन्ता के कारण ही ऐसा होता होगा!

श्रीराम०—उसका कारण यह है कि ये सब बालक शुद्ध सत्वगुणी हैं। आज तक इन्हें कामकांचन का स्पर्श-दोष नहीं लगा है। इनका ध्यान यदि ईश्वर की ओर लग जाय तो इन्हें उसकी प्राप्ति शीघ्र ही हो सकती है। यही कारण है। पिछले दिनों में नरेन्द्र के सम्बन्ध में जो व्याकुलता मालूम पड़ती थी, वह विलक्षण ही थी।

वैसा और किसी के बारे में नहीं हुआ। उसको यहाँ आने में कहीं दो दिन की देरी हो जाती थी, तो प्राण व्याकुल हो जाता था! लोग क्या कहेंगे इस डर से उधर झाऊतला की ओर जाकर मन माना रोने लगता था! हाजरा एक दिन बोला — 'आपका यह कैसा स्वभाव है? आप परमहंस हैं, आपको सदाकाल समाधि लगाकर ईश्वर के साथ एक होकर रहना चाहिए, सो तो नहीं करते, 'नरेन्द्र ही क्यों नहीं आया? भवनाथ का कैसा होगा?'— इन सब झगड़ों से आपको क्या मतलब?"

यह सुनकर मैं सोचने लगा — "सच तो है। हाजरा कुछ गलत नहीं कह रहा है। अब मैं उसी के कहने के अनुसार चलूँगा।" इसके बाद झाऊतला से लौटते समय माता ने दिखाया कि कलकत्ता सामने है और वहाँ लोग रातदिन कामकांचन की गर्त में धक्के खाते हुए दुःख भोग रहे हैं! उनकी वह दशा देखकर मुझे दया आने लगी, और मालूम होने लगा कि चाहे जितने कष्ट भोगकर भी यदि उनका कल्याण किया जा सकता है या उनका दुःख कुछ भी कम किया जा सकता है, तो मैं वह अवश्य करूँगा।" लौटने के बाद मैं हाजरा से बोला — "मैं करता हूँ वही ठीक है। इन लड़कों की चिन्ता करता हूँ, तो उसमें तेरा क्या जाता है?"

अपने शिष्य-समुदाय पर वे जैसे अपार प्रेम करते थे वैसी ही और दूसरों के बारे में उनके मन में सदा दया बनी रहती थी। सभी अवस्थाओं में से वे स्वयं गुजर चुके थे, इस कारण दूसरों के सुख-दुःख की उन्हें पूरी जानकारी थी। मनुष्य का मन कितना दुर्बल है और माया के फन्दे में से छूटना कितना दुष्कर है, यह बात वे स्वयं

जानते थे। दूसरों के प्रति उनके हृदय में सदा सहानुभूति रहा करती थी। इसीलिए किसी मनुष्य में कितने ही दुर्गुण हों, कितने ही दोष हों, तो भी वे उसका कभी तिरस्कार नहीं करते थे। उनके शब्द-कोष में 'पाप' शब्द था ही नहीं यह कहना अत्युक्ति नहीं है। मनुष्य के द्वारा होने वाली सभी गलतियाँ उसकी मानसिक दुर्बलता के कारण ही होती हैं। इस दुर्बलता को हटा देने का प्रयत्न उसे करना चाहिए। तभी उस पर ईश्वर की कृपा होगी। यही उनका उपदेश रहता था। कोई भी मनुष्य अपने दुःख की कहानी उनसे कहे तो वे उससे घृणा नहीं करते थे; वरन् अपने स्वयं के जीवन की किसी वैसी ही घटना का उल्लेख करके कहते थे—"मेरी भी उस समय तेरी ही जैसी स्थिति थी; परन्तु माता ने मुझे उस स्थिति में से निभा लिया। तू ईश्वर पर पूर्ण भरोसा रख; वह तेरा भी निर्वाह अवश्य करेगा!" इस प्रकार उसे धीरज देते थे! ऐसी सान्त्वना से और प्रेमयुक्त व्यवहार से उस मनुष्य को कितना धैर्य होता होगा और श्रीरामकृष्ण के प्रति उसकी भक्ति और प्रेम में कितनी वृद्धि होती होगी इसकी कल्पना पाठक ही करें।

उनके पास आने जाने वाले लोगों में से मणिमोहन मल्लिक नामक एक गृहस्थ के एक अच्छे प्रौढ़ अवस्था वाले बुद्धिमान् लड़के की अचानक मृत्यु हो गई। बेचारा मणिमोहन दुःख से पागल बन गया और पुत्र की अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त होने पर वह वैसे ही दक्षिणेश्वर चला गया। श्रीरामकृष्ण के पास बहुत से लोग जमा थे और कुछ ईश्वरचर्चा हो रही थी। मणिमोहन ने उन्हें प्रणाम किया और अत्यन्त दुःखित अन्तःकरण से एक कोने में सिर निचा करके बैठ गया। थोड़ी ही देर में श्रीरामकृष्ण

की दृष्टि उस ओर गई और वे बोले—"क्यों रे मणिमोहन! आज ऐसा सूखा हुआ क्यों दिखाई देता है?" मणिमोहन ने आर्त स्वर में उत्तर दिया—"महाराज! आज मेरा लड़का मर गया।" वृद्ध मणिमोहन के मुँह से यह वृत्तान्त सुनकर सभी को बड़ा दु:ख हुआ और हर एक अपने अपने ढंग से उनकी सान्त्वना करने लगा। पर श्रीरामकृष्ण केवल शान्त चित्त से सब सान्त्वना की बातें सुन रहे थे। उनके इस उदासीन भाव को देखकर किसी को ऐसा भी लगा होगा कि इनका हृदय कितना कठोर है।

सान्त्वना की ये बातें सुनते सुनते श्रीरामकृष्ण को अर्धबाह्य अवस्था प्राप्त हो गई और वे एकदम खड़े होकर मणिमोहन की ओर देखते हुए अत्यन्त वीररस-युक्त स्वर में गाने लगे—

जीव साज समरे।
ओई देख् रणवेशे काल प्रवेशे तोर घरे।
आरोहण करि महापुण्य रथे,
भजन साधन दूटो अश्व जुडे ताते
दिए ज्ञानधनु के टान भक्ति ब्रह्मबाण संयोग करेरे।
आर एक युक्ति आछे शुन सुसंगति,
सब शत्रु नाशेर चाइने रथ रथी
रणभूमि यदि करेन दाशरथि भागीरथीर तीरे॥ *

गाने का वीरत्वव्यंजक स्वर, श्रीरामकृष्ण का तदनुरूप अभिनय, उनके नेत्रों में से मानो बाहर प्रवाहित होने वाला वैराग्य का तेज, इन सब के संयोग से सभी के अन्त:करण में एक प्रकार का अपूर्व उत्साह

* यही भाव तुलसीदास जी की निम्न पंक्तियों में है:—(अगले पृष्ठ पर देखिए)

उत्पन्न हो गया, और शोक मोहादि के राज्य से निकलकर सभी का मन एक अपूर्व इन्द्रियातीत, संसारातीत शुद्ध ईश्वरी आनन्द में निमग्न हो गया ! मणिमोहन की भी यही अवस्था हो गई, और उसको भी अपने दुःख का क्षण भर के लिए विस्मरण हो गया।

गाना तो समाप्त हो गया, पर गायन के रूप में श्रीरामकृष्ण ने जो दिव्य भावतरंग उत्पन्न कर दिए थे उनसे उस कमरे का वातावरण परिपूर्ण हो गया। सब लोग चित्रवत् होकर अब श्रीरामकृष्ण क्या कहते हैं, इसी उत्कण्ठा से उनकी ओर देखने लगे। थोड़ी देर के बाद श्रीरामकृष्ण की समाधि उतरी और मणिमोहन के पास बैठकर वे कहने लगे —

"बाबा मणिमोहन। पुत्र-शोक के समान दूसरी कोई ज्वाला नहीं है। इस देह से ही उसका जन्म हुआ है; अतः देह के रहते तक उसकी स्मृति नष्ट नहीं हो सकती।" इस प्रकार प्रस्तावना करके श्रीरामकृष्ण अपने भतीजे अक्षय की मृत्यु की बात इतनी करुणा से कहने लगे कि मानो वह घटना अभी ही हुई हो, ऐसा सभी को मालूम होने लगा। वे बोले — "अक्षय मरा। उस समय तो कुछ इतना खराब नहीं लगा। मनुष्य कैसे मरता है, सो खड़े खड़े बारीकी के साथ देखा।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईसभजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म सन्तोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचण्डा। बर बिज्ञान कठिन कोदण्डा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। यहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥

तलवार म्यान में हो और वह एकदम बाहर हो जाय वैसा ही हुआ। तलवार को तो कुछ नहीं हुआ, वह ज्यों की त्यों रही। म्यान ज़रूर एक ओर गिर पड़ी ! यह देखकर बड़ा आनन्द हुआ। खूब हँसा, गाया, नाचा। उसकी अन्त्य विधि हुई। दूसरे दिन (बरामदे की ओर उंगली दिखाकर) वहाँ उस जगह सहज ही खड़ा था कि, मैं क्या कहूँ, अक्षय की मृत्यु का मुझे एकाएक इतना दुःख होने लगा कि जैसे कोई निचोड़-कर रस निकालता हो उस प्रकार मानो मेरे कलेजे को कोई निचोड़ता हो —ऐसी पीड़ा होने लगी। प्राण व्याकुल हो गया और दुःख असह्य होने के कारण मैं माता से कहने लगा — "माता ! यहाँ अपनी कमर की धोती की भी याद नहीं रहती; और ऐसी अवस्था में भी मेरी जब यह दशा है, तो फिर संसारी मनुष्यों का क्या हाल होता होगा?"

कुछ देर रुककर वे फिर कहने लगे – "तो भी तू यह निश्चय जान कि जिसने अपना सब भार ईश्वर को सौंप दिया है, वह ऐसे दारुण प्रसंग में भी अपना धैर्य नहीं खोता; थोड़े ही समय में वह पूर्ववत् हो जाता है। गंगा जी में किसी बड़े जहाज़ के जाते समय छोटी छोटी डोंगियों में कैसी हलचल मच जाती है; ऐसा मालूम होता है कि ये सब डूबी जा रही हैं। किसी किसी में तो पानी तक भर जाता है। पर वहीं पर बड़े बड़े हजारों मन माल लादे हुए जहाज़ों को देखिये। दो चार बार हिलने के सिवाय उन पर कोई असर नहीं होता। वे जैसे के तैसे रहते हैं। तथापि उनको भी दो चार बार हिलना तो पड़ता ही है।"

पुनः कुछ समय ठहरकर वे फिर गम्भीरता से कहने लगे — "बाबा मणिमोहन ! संसार में स्त्री-पुत्रादिकों से सम्बन्ध कितने दिनों के लिए है? मनुष्य बेचारा बड़ी आशा से गृहस्थी शुरू करता है। विवाह हुआ,

दो चार बच्चे हुए, वे बड़े हुए उनका विवाह आदि कार्य हुआ,— कुछ दिनों तक सब ठीक चला, फिर यह बीमार हो गया, वह मर गया, इसका रोजगार नहीं चलता, उसकी नौकरी छूट गई— ये झगड़े शुरू हुए और तब फिर संसार किसे कहते हैं, यह मालूम होने लगता है; पर उस समय उसका क्या उपयोग हो सकता है? बेचारा फँसा हुआ रहता है; उसमें से निकलते तो बनता ही नहीं!"

इस प्रकार संसार की अनित्यता और सब प्रकार से ईश्वर से शरणागत होने की आवश्यकता के विषय में उन्होंने मणिमोहन को उस दिन अनेक प्रकार का उपदेश दिया। उनके ऐसे प्रेमयुक्त व्यवहार से मणिमोहन का दुःख कुछ कम हुआ, और वह गद्गद स्वर में बोला— "इसीलिए तो महाराज! मैं यहाँ दौड़कर आया हूँ। मुझे मालूम था कि यह ज्वाला यहाँ आये बिना शान्त नहीं होगी!" उस बूढ़े को समझाने के लिए श्रीरामकृष्ण भी उसी के समान समदुःखी हुए! उनके इस बर्ताव का मणिमोहन के मन पर कितना गहरा परिणाम हुआ होगा! श्रीरामकृष्ण जैसे महापुरुष भी मेरे प्रति इतनी आत्मीयता रखते हैं और मेरे सुख-दुःख की चिन्ता करते हैं, यह जानकर उस वृद्ध ने अपने आपको कितना धन्य माना होगा!

और एक दिन की बात है। एक नवयुवक श्रीरामकृष्ण के पास आया और उनके पैर पड़कर अत्यन्त उदास होकर बोला—"महाराज! काम कैसे नष्ट होगा? इतना प्रयत्न करता हूँ, तो भी बीच बीच में कुविचारों से मन चंचल होकर अत्यन्त अस्वस्थ हो जाता है। क्या करूँ?"

श्रीरामकृष्ण— अरे भाई! ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन हुए बिना काम सम्पूर्ण रीति से नष्ट नहीं होता। इसके बाद भी थोड़ा बहुत

रहता ही है, पर इतना अवश्य है कि तब वह अपना सिर ऊपर नहीं उठा सकता। तू क्या समझता है कि मैंने उस चाण्डाल को एकदम जीत लिया? एक दिन मन में यह विचार आया कि मैंने इसे स्थायी रूप से जीत लिया। उसके बाद योंही सहज ही पंचवटी के नीचे मैं बैठा था कि क्या बताऊँ? एकाएक काम ने मन में ऐसी खलबली मचा दी कि मेरा सारा धीरज छूट गया और मन बेकाबू सा होने लगा। तब मैं ज़मीन पर सिर पटकते हुए और मिट्टी में मुँह घिसते हुए इधर-उधर लोटने लगा और ज़ोर ज़ोर से रोकर कहने लगा—'माता! मैं बड़ा अपराधी हूँ। अब मैं पुनः कभी भी नहीं कहूँगा कि इस चाण्डाल को जीत लिया। एक बार मुझे क्षमा कर!' ऐसी अवस्था तो मेरी हुई! वर्तमान समय में तेरी भरी जवानी की अवस्था है, इसलिए तू उसके बाढ़ को बांध द्वारा रोक नहीं सकता। ज़ोर से बढ़िया आने पर बांध की क्या दशा होती है? सभी बांध आदि को तोड़ फोड़कर बहाकर इधर उधर चारों ओर पानी ही पानी भर जाता है। खेतों में भी आदमी भर पानी फैल जाता है! इसीलिए कहा करते हैं कि—'कलियुग में मानसिक पाप पाप नहीं है।' और मान लें कि एक आध बार मन में कोई कुविचार आ ही गया, तो 'यह क्यों आया? कैसे आया?' इस प्रकार के सोच-विचार में ही क्यों पड़ना चाहिए? कभी कभी तो ऐसे कुविचार शरीर-धर्म के कारण ही आ जाते हैं। मल-मूत्र के वेग के समान ही ये भी होते हैं ऐसा समझ लेना चाहिए। शौच या पेशाब लगने पर सिर खुजाते हुए—'यह क्यों लगा? कैसे लगा?' क्या कोई ऐसा विचार करता है? उसी प्रकार इन सभी कुविचारों को, तुच्छ जानकर उनके सम्बन्ध में बिलकुल विचार ही नहीं करना

चाहिये और ऐसे तुच्छ विचारों को मन में न आने देने के लिए ईश्वर की खूब प्रार्थना करनी चाहिए। उसका खूब नाम-स्मरण करना चाहिए, सदा ईश्वरी बातों का ही मन में विचार करते रहना चाहिए। ऐसा करते रहने से क्रमशः इन कुविचारों का मन में आना बन्द हो जाता है। यह अच्छी तरह समझ लो।"

उस लड़के को धीरज देने के लिए श्रीरामकृष्ण उसी के समान बन गये! गरीबों का दुःख देखकर उनका हृदय पसीज जाता था। मथुर के साथ तीर्थ-यात्रा करते समय एक दो गांवों में वहाँ के लोगों की दीन अवस्था को देखकर उनके अन्तःकरण में कैसी व्याकुलता उत्पन्न हो गई और मथुर से उन्होंने उन लोगों को एक बार पेट भर भोजन और पहनने के लिए कपड़ा दिलवाया था, यह वृत्तान्त पीछे आ चुका है (देखो भाग १, पृ. १९०)। भूखे को कोई अन्नदान करता दिखाई दे, तो उनको बड़ी खुशी होती थी। कोई भिखारी आ जाय तो किसी न किसी से उसे कुछ दिला ही देते थे। एक बार दक्षिणेश्वर में भोजन हुआ। बचा खुचा अन्न भिखारियों को मिला। परन्तु भीड़ अधिक हो जाने के कारण एक बेचारी बुढ़िया को उस भीड़ में कुछ नहीं मिल सका। सभी भिखारी चले गये। तो भी वह बुढ़िया वहीं पुकारती हुई बैठी रही। यह देखकर एक पहरेदार ने उसे धक्के देकर वहाँ से हटा दिया। यह सारा हाल देखकर श्रीरामकृष्ण ज़ोर ज़ोर से यह कहते हुए रोने लगे कि "माता! तेरे घर की यह कैसी दुर्व्यवस्था है। दो कौर अन्न के लिए बेचारी को धक्के खाने पड़े!" त्रैलोक्य बाबू के कान तक यह बात पहुँची। तब उन्होंने उस बुढ़िया को बुलवाकर भोजन कराया और उसे एक रुपया दिया। यह सुनकर श्रीरामकृष्ण

को बहुत आनन्द हुआ और उस आनन्द के आवेश में श्री जगदम्बा की स्तुति करते हुए वे नाचने लगे।

उनकी सहानुभूति और शिष्यस्नेह की सीमा ही नहीं थी। अपने प्राप्त किये हुए सारे अनुभवों और बारम्बार होने वाले सभी दर्शनों का हाल वे सभी को बताया करते थे। सभी को वे अपने ही समान आनन्दपूर्ण बनाने के लिए अनेक प्रयत्न किया करते थे और इसी हड़बड़ी के कारण उन्होंने कई बार असम्भव बातों को भी सम्भव बनाने की कोशिश की। कण्ठस्थान के ऊपर कुण्डलिनी शक्ति के पहुँच जाने पर कैसे कैसे दर्शन हुआ करते हैं, यह बात अपने शिष्य-समुदाय को बताने के लिए उन्होंने कई बार प्रयत्न किया, पर उसे असम्भव जानकर उन्हें स्वयं ही दुःखी होना पड़ा।

एक दिन उन्होंने यह सब बता देने का बिलकुल निश्चय ही कर लिया और मन को समाधिमग्न न होने देने का प्रयत्न करके बोलना प्रारम्भ किया। वे बोले — "आज ये सब बातें तुम लोगों को बतला ही डालता हूँ बिल्कुल, ज़रा सा भी छिपाकर नहीं रखूँगा।" हृदय, कण्ठ इन भूमिकाओं तक के सभी चक्रों की बातें बारीकी के साथ बताकर अपने भ्रूमध्यभाग की ओर उंगली से इशारा करके वे बड़ी सावधानी से बोलने लगे — "इस स्थान में मन के स्थिर हो जाने पर परमात्मा का दर्शन होता है और समाधि लग जाती है। जीवात्मा और परमात्मा के बीच में उस समय केवल एक स्वच्छ पतला सा परदा मात्र बच जाता है। तब ऐसा दिखाई देता है कि ... ." इतना कहकर वे और आगे बोलने ही वाले थे कि इसी समय उन्हें एकदम समाधि लग गई! बहुत समय के बाद समाधि उतरने पर वे पुनः बोलने लगे — "तब ऐसा

दिखाई देता है कि........" इतने शब्दों का उच्चारण करते ही उन्हें पुनः समाधि लग गई! इसी तरह एक दो बार और भी हुआ। इस प्रकार बारम्बार प्रयत्न करने पर भी उसका कोई उपयोग न होते देख-कर उनकी आँखों में पानी भर आया और वे रोते हुए कहने लगे —

"क्या करूँ रे? मेरी तो बड़ी इच्छा है कि तुम लोगों को सारा का सारा हाल बता दूँ और तिलमात्र भी न छिपाऊँ, पर वैसा होता कहाँ है? कितना भी उपाय करने पर भी माता बोलने ही नहीं देती, मुँह को ही दबा देती है। इसके लिए मैं क्या करूँ?" स्वामी शारदानन्दजी कहते हैं —"यह सारा हाल देखकर हमें तो बड़ा अचम्भा मालूम हुआ कि 'क्या चमत्कार है देखो तो सही! ये तो सब कुछ बता देने को तैयार बैठे हैं, पर माता ही उन्हें क्यों बोलने नहीं देती?' पर उस समय यह कहाँ मालूम था कि बोलना बताना आदि कार्य जिसकी सहायता से हुआ करते हैं, उस मन-बुद्धि की दौड़ कहाँ तक रहती है? परमात्मा का दर्शन तो उनकी सीमा के परे की बात है न? हम लोगों के प्रति अपार प्रेम से प्रेरित होकर अशक्य बात को भी शक्य बनाने का प्रयत्न श्रीरामकृष्ण कर रहे हैं, यह बात उस समय हम कैसे समझते?"

एक दिन श्रीरामकृष्ण अपनी भक्त-मण्डली से धर्मविषयक बातें कर रहे थे, कि वैष्णव धर्म की बात निकल पड़ी। तब वे उस मत का सार संक्षेप में बताने लगे —"नाम में प्रेम, जीवों पर दया और वैष्णवों की पूजा — ये तीन कार्य सदा करते रहना चाहिए, यही इस वैष्णव मत का उपदेश है। ईश्वर और उसके नाम में कुछ भी भेद नहीं है यह जानकर, सदा सर्व काल बड़े प्रेम से ईश्वर का नामस्मरण करते रहना चाहिए; भक्त और भगवान्, वैष्णव और कृष्ण में कोई

भेद न जानकर सदा साधु, भक्त आदि की सेवा करनी चाहिए, और उन पर श्रद्धा रखनी चाहिए। और यह सारा जगत्संसार श्रीकृष्ण का ही है, इस बात को सदा मन में रखते हुए सभी जीवों पर दया........" —'सभी जीवों पर दया' ये शब्द उच्चारण करते ही उन्हें एकाएक समाधि लग गई! कुछ समय बाद उन्हें अर्ध-बाह्य दशा प्राप्त हुई और वे पुन: बोलने लगे——"जीवों पर दया? अरे तू कीटानुकीट! तू क्या जीवों पर दया करेगा? दया करने वाला तू होता है कौन? छि:! छि:! जीवों पर 'दया' नहीं——शिवज्ञान से जीवों की सेवा!"

'शिवज्ञान से जीवों की सेवा'—उनके इस उद्गार में उनके अपार प्रेम और सहानुभूति तथा उनके मन की उदारता का रहस्य भरा हुआ है। ब्रह्मज्ञ पदवी प्राप्त कर लेने पर सभी की आध्यात्मिक उन्नति के लिए उन्होंने जो प्रबल प्रयत्न किया तथा बड़ी बड़ी खटपट की उसका बीज इसी उद्गार में है। सभी भूतमात्र पर उनका अहैतुक प्रेम था। गुरु और शिष्य के सम्बन्ध में प्रेम की आर्द्रता के अभाव में गुरु का उपदेश वैसा फलदायक नहीं होता जैसा होना चाहिए। गुरु का शिष्य पर अहैतुक प्रेम हो तो अपने सर्व अनुभव शिष्य को प्राप्त करा देने की व्याकुलता गुरु को ही रहती है; शिष्य की सारी दुर्बलताओं और अड़चनों की उन्हें आप ही आप कल्पना होती जाती है और शिष्य का सब प्रकार से कल्याण करने की ओर ही उनका सारा लक्ष खिंच जाता है। श्रीरामकृष्ण अपने शिष्यों का कल्याण करने के लिए किस तरह व्याकुल रहते थे, यह बात अगले प्रकरण में दी हुई उनकी शिक्षण-पद्धति से पाठकों को स्पष्ट हो जाएगी।

१२—श्रीरामकृष्ण की शिक्षण-पद्धति

राम कृपा नासहिं सब रोगा। जो एहि भाँति बनै संजोगा॥
सद्‌गुरु वैद्य वचन विश्वासा। संयम यह न विषय कै आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा अति रूरी॥
एहि विधि भलेहि सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहि जाहीं॥
—तुलसीदास

श्रीरामकृष्ण के सहवास में रहना ही एक प्रकार की उच्च शिक्षा थी। उनकी प्रत्येक उक्ति और प्रत्येक कृति अर्थपूर्ण रहती थी। उनका कोई भी काम निरर्थक नहीं होता था। अपने आश्रय में रहने वाले प्रत्येक के मन के भाव उन्हें पूर्ण रूप से विदित रहते थे और तदनुसार ही वे उसे उपदेश देते थे। अपने पास आने वाले को वे अपने स्नेह से पहले ही अपना लेते थे और तब उसे जो बताना होता था वह सहज ही एक दो सिद्धान्त-वाक्यों द्वारा बता देते थे। किसके स्वभाव में कौनसी खूबी है यह अच्छी तरह पहचानकर, कभी मीठे शब्दों द्वारा, तो कभी किंचित् क्रुद्ध से होकर, वे उसका अवगुण उसे दिखा देते थे।

उनके भक्तगणों में सभी धर्मों के सभी मतानुयायी लोग रहते थे। अतः जब सभी लोगों को एक साथ ही कुछ बताना होता था तो वह सभी को लागू हो इस तरह बताते थे। गृहस्थ से वे कहते थे—"अरे! जिसने ईश्वर के लिए सर्वस्व त्याग दिया है वह तो सदा उसका नाम-स्मरण करेगा ही। उसमें कौन बड़ी बहादुरी है! पर संसार में रहकर जो

ईश्वर का नाम-स्मरण करे वही सचमुच प्रशंसा का पात्र होगा! संसार में कौन सी बुराई है? संसार में रहकर ईश्वर की ओर मन लगाना तो किले में रहकर शत्रुओं से लड़ाई करने के समान है। किले में रहने पर बाहर चाहे जितनी भी सेना हो, उसका कुछ भी नहीं चल पाता। उसी प्रकार केवल एक ईश्वर का नाम-स्मरण करते रहने से ही संसारी पुरुष पर कितने ही संकट आवें, पर वे उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते।" संन्यासी भक्तों को जब वैराग्य का उपदेश देते थे, तब वे कितनी सावधानी से देते थे! स्वामी विवेकानन्द कहते थे, "हम बालभक्तों को त्याग-वैराग्य की महिमा बताते समय वे हमें एक ओर अलग बुला लेते थे, आस पास में कोई गृही भक्त तो नहीं है इस बात का निश्चय कर लेते थे और फिर अपनी ओजस्विनी वाणी द्वारा त्याग-वैराग्य आदि की आवश्यकता हमें समझाकर बतलाते थे—" वे कहते थे—"भाइयो! ईश्वर के लिए सर्वस्व का त्याग करना चाहिए, प्रखर वैराग्य धारण करना चाहिए, तभी उस ईश्वर का दर्शन होगा। अन्तःकरण की सभी वासनाओं का समूल त्याग करना चाहिए, वासनाओं का लेश मात्र भी शेष रहना ठीक नहीं है; तभी ईश्वर का दर्शन होगा।" भोग-वासना नष्ट हुए बिना संसार का त्याग निरर्थक है और यदि संसारी मनुष्य निष्काम बुद्धि से और ईश्वर के चरणों में मन को लगाए हुए अपने-अपने काम करते रहें, तो उनकी भोग-वासना धीरे-धीरे नष्ट हो जाएगी, उनके मन में आप ही आप वैराग्य का उदय होगा और तत्पश्चात् मन को पूरी तरह ईश्वर की ओर ही लगाना उनके लिए सरल हो जाएगा — यही उनका उपदेश रहता था; और इसीलिए किसी भी संसारी मनुष्य से एकदम संसार का त्याग करने के लिए वे कभी भी नहीं कहते थे।

धर्म-मार्ग में लग जाने पर कई लोगों का प्राकृतिक दयालु और कोमल स्वभाव बहुत बढ़ जाता है और वह यहाँ तक कि वह स्वभाव ही कई बार उनके बन्धन का कारण बन जाता है; इसीलिए वे ऐसे कोमल स्वभाव के मनुष्य को कठोर होने के लिए कहते थे। वैसे ही इसके विपरीत, किसी का स्वभाव यदि बहुत कठोर होता था तो वे उसे अन्तः-करण में कोमलता लाने का उपदेश देते थे। योगेन्द्र का नाम पाठकों को इसके पूर्व मालूम हो ही गया है। उसका स्वभाव अत्यन्त कोमल था। कारण उपस्थित होने पर भी उसे कभी क्रोध नहीं आता था और वह कभी किसी को तिरस्कार करके या चुभने लायक कोई बात नहीं कहता था। उसके मन में विवाह करने का विचार बिलकुल नहीं था, तथापि एक दिन अपनी माता की आँखों में आँसू आए हुए देखकर उसने विवाह करने की स्वीकृति तुरन्त ही दे दी और शीघ्र ही उसका विवाह भी हो गया। मैंने यह बात जल्दी में अविचार से कर डाली, यह सोचकर उसका मन उदास हो गया। श्रीरामकृष्ण के पास जब वह आने जाने लगा, तब कुछ दिनों तक उनके उपदेश देने और धैर्य बंधाने से उसका मन धीरे-धीरे शान्त हुआ। मन की कोमलता के कारण उसके हाथ से इस तरह का कोई अविचारयुक्त कार्य पुनः न हो और सब काम वह सावधानी के साथ विचारपूर्वक करते जाय इस उद्देश से श्रीरामकृष्ण उसे भविष्य के लिए किस तरह उपदेश दिया करते थे सो इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा। श्रीरामकृष्ण को एक दिन अपने कपड़े आदि रखने के सन्दूक में एक झींगुर दिखाई दिया। योगेन्द्र पास ही था। उसकी ओर देखकर वे बोले—"इस झींगुर को बाहर ले जाकर मार डाल।" योगेन्द्र उसे बाहर तो ले गया परन्तु उसे मारा

नहीं, योंही छोड़ दिया। कमरे में वापस आते ही श्रीरामकृष्ण ने उससे पूछा — "क्यों रे? झींगुर को मार डाला न?" योगेन्द्र बोला — "नहीं महाराज! उसे छोड़ दिया!" यह सुनकर क्रुद्ध से होते हुए श्रीरामकृष्ण उससे बोले — "कैसा विचित्र मनुष्य है रे तू? झींगुर को मार डालने के लिए मैंने तुझसे कहा और तूने उसे अपनी खुशी से जीवित छोड़ दिया! भला तुझे क्या कहा जाय! अच्छा! अब से ध्यान में रख और तुझको मैं जैसा कहूँ बिल्कुल ठीक वैसा ही किया कर। नहीं तो दूसरे अधिक महत्त्व की बातों में भी तू इसी तरह अपना मत चलाने लगेगा और फिर तुझको व्यर्थ ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा।"

और एक दिन योगेन्द्र नौका में बैठकर दक्षिणेश्वर जा रहा था कि किसी ने उससे पूछा — "कहो कहाँ जा रहे हो?" उसने उत्तर दिया — "श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर जा रहा हूँ।" इतना सुनकर वह मनुष्य श्रीरामकृष्ण की बहुत ही निन्दा करने लगा। वह बोला — "वे एक ढोंगी साधु हैं, अच्छी तरह खाते पीते हैं, मजे से गद्दी-तकिये पर सोते हैं और धर्म के नाम से छोटे छोटे लड़कों के दिमाग ख़राब करते हैं।" — इत्यादि इत्यादि वह बकने लगा। अपने सद्गुरु की ऐसी निन्दा सुनकर योगेन्द्र को अत्यन्त दुःख हुआ और उस मनुष्य को अच्छी तरह कसकर जवाब देने का विचार भी उसके मन में आया, परन्तु वह था स्वभाव से बड़ा शान्त, इसलिए वह सोचने लगा कि "श्रीरामकृष्ण को अच्छी तरह न जानने के कारण कई लोग भूल से उन्हें बदनाम करते होंगे। उन सब का मुँह मैं कैसे बन्द कर सकता हूँ।" ऐसा सोचकर उस मनुष्य को कोई उत्तर न देते हुए योगेन्द्र खिन्न मन से दक्षिणेश्वर आया। आते ही "तेरा मुँह आज इस तरह सूखा

हुआ क्यों दिखाई देता है?"—यह प्रश्न श्रीरामकृष्ण के मुँह से सुनकर उसने नौका का सब वृत्तान्त उनसे कह दिया। वह समझा कि श्रीरामकृष्ण अत्यन्त निरभिमानी पुरुष हैं, वे तो निन्दा-स्तुति से परे हैं; उन्हें इससे सुख-दुःख होते किसी ने कभी नहीं देखा है—यह सारा हाल सुनकर बस वे हँसते हुए चुप बैठ जाएंगे, पर बात हो गई कुछ दूसरी ही। वे बड़े क्रुद्ध से होकर योगेन्द्र से बोले—"उस मनुष्य ने मेरी बिना कारण निन्दा की और तूने वह निन्दा चुपचाप सुन ली? क्या बहूँ रे तुझे? शास्त्रों में क्या कहा है, जानता है तू?—'गुरु की निन्दा करने वाले का बेधड़क प्राण ले लेना चाहिए, या नहीं तो उस जगह क्षण भर भी नहीं ठहरना चाहिए!' और तू तो इनमें से कुछ भी न करते हुए मेरी अनुचित निन्दा खामोश होकर सुनता ही रहा! धिःकार है तुझको!"

और भी एक बार ऐसे ही प्रसंग में, श्रीरामकृष्ण ने अपने एक दूसरे भक्त से क्या कहा, यह जानकर पाठकगण देख सकेंगे कि वे किस तरह अपने शिष्यों के स्वभाव के अनुसार ही उन्हें उपदेश दिया करते थे। निरंजन स्वभावतः उग्र प्रकृति का मनुष्य था। वह एक दिन उसी तरह नौका में बैठकर दक्षिणेश्वर आ रहा था। नौका में एक दो आदमियों ने श्रीरामकृष्ण की निन्दा शुरू की। उसे सुनते ही वह गुस्से से लाल हो गया और उन्हें जवाब देने लगा। तब भी वे लोग चुप न हुए। तब तो उसने उनको नौका सहित नदी में डुबा देने का डर बताया! उसके कसे हुए शरीर और गठीले स्नायुओं और उसके रुद्र स्वरूप को देखकर वे लोग बड़े घबराए और उससे माफी माँगकर किसी तरह उन्होंने अपना पिण्ड छुड़ाया। बाद में जब यह बात श्रीरामकृष्ण के कान तक पहुँची तब वे उसकी भर्त्सना करते हुए बोले

—"क्रोध राक्षस है, क्या मनुष्य को कभी उसके वशीभूत होना चाहिए? सज्जनों का क्रोध क्षणिक रहता है, आया और गया। दुर्जन लोग किसी की भी मनमानी निन्दा करते हैं—उनके मुँह लगने से तो सारा जन्म उसी में व्यतीत हो जाएगा। ऐसे अवसर पर समझ लिया करो कि 'लोग हैं पोक*।' इन (कीड़ों) की ओर क्या ध्यान देना! अरे! तू गुस्से के वेग में आकर कैसा अनर्थ करने चला था, सोच तो भला! उस वेचारे केवट ने तेरा क्या बिगाड़ा था कि तू उसकी नाव तक डुबाने के लिए तैयार हो गया था?"

पुरुष भक्तों के समान स्त्री भक्तों को भी वे ऐसी ही उपयुक्त शिक्षा दिया करते थे। एक स्त्री का स्वभाव बड़ा कोमल था। उससे वे एक दिन बोले—"इतना कोमल स्वभाव ठीक नहीं होता—यह तो है मन की कमजोरी या मानसिक दुर्बलता। मान लो कोई आदमी बहुत परिश्रम करके तुम्हें हर बात में मदद देता है, पर सौन्दर्य के मोह में पड़कर वह अपने दुर्बल मन को काबू में नहीं रख सकता, तब ऐसे अवसर में क्या उस मनुष्य पर दया दिखाओगी? या दिल को पत्थर के समान कड़ा करके सदा के लिए उससे दूर रहोगी? इसलिए यह ध्यान में रखो कि चाहे जहाँ, चाहे जब और चाहे जिस पर दया करने से काम नहीं चलता। दया की भी कोई मर्यादा है। देश, काल और पात्र का विचार करके दया करनी चाहिए।"

श्रीरामकृष्ण बारम्बार कहते थे कि "विश्वास के बिना धर्म-मार्ग में उन्नति नहीं होती।" इस वाक्य का गलत अर्थ समझकर उनके

---

* यह बंगला शब्द है, इसका अर्थ है 'कीड़ा'। "कहा कीट बपुरे नर नारी"—तुलसीदास।

कुछ शिष्य लोग पहले पहल हर बात पर और हर मनुष्य पर विश्वास करते थे। श्रीरामकृष्ण की तीक्ष्ण दृष्टि में यह बात आते ही उन्होंने उन लोगों को तुरन्त सावधान किया, और यद्यपि वे यथार्थ विश्वास की महिमा सदा बतलाते थे, तथापि उन्होंने कभी भी किसी को सत्-असत्-विचार-बुद्धि को अलग रख देने के लिए नहीं कहा। वे यही कहते थे कि सदा सत् और असत् का विचार करना चाहिए और कोई भी कार्य करने के पूर्व उसके इष्ट या अनिष्ट होने का निर्णय पूर्ण रूप से कर लेना चाहिए।

उनके एक शिष्य ने एक बार किसी दूकानदार को धर्म का भय बताकर और यह कहकर कि 'भाई, हमें खराब चीज़ न देना,' एक लोहे का घमेला खरीदा, परन्तु घर जाकर देखता है तो वह फूटा निकला। श्रीरामकृष्ण को यह बात मालूम होने पर वे उसका तिरस्कार करते हुए बोले—"भक्त होना तो ठीक है, पर क्या इसके कारण विचारशून्य बन जाना चाहिए? दूकानदार ने दूकान क्या धर्म करने के लिए रखी है?—और इसीलिए तूने उसके कहने पर विश्वास करके घमेले को एक बार भी अच्छी तरह बिना देखे ख़रीद लिया! पुनः ऐसा कभी न करना। कोई वस्तु ख़रीदना हो तो चार दूकान घूमकर, भाव देखकर जो अच्छी दिखे उसे चुनकर लेना चाहिए। वैसे ही किसी चीज़ पर दस्तूरी मिलती है उसे भी बिना लिए नहीं रहना चाहिए।"

साधक को लज्जा, घृणा, भय का त्याग करना चाहिए। अर्थात् —"मैं ईश्वर की भक्ति कर रहा हूँ, इससे लोग मुझे बदनाम करेंगे या मेरी दिल्लगी उड़ाएंगे"—इस प्रकार की लोकलज्जा या भय का त्याग करना चाहिए। वे बारम्बार कहते थे कि इस विषय में लोगों के

कहने की ओर विलकुल दुर्लक्ष करना चाहिए। आध्यात्मिक विषय के सम्बन्ध में वे स्वयं भी अपने व्यवहार में इस नियम का पालन करते थे।

एक दिन रात को १०–११ वजे के करीव समुद्र में ज्वार * आने के कारण गंगाजी में पानी की एक वड़ी दीवाल के समान जलराशि नदी के प्रवाह से उलटी दिशा में वड़े वेग से ऊपर चढने लगी। उस रात को निर्मल चांदनी छिटकी हुई थी। श्रीरामकृष्ण जाग रहे थे। उस जलराशि की आवाज़ को सुनकर वे तुरत ही विस्तर पर से उठे और "आओ रे आओ, ज्वार का मज़ा देखने के लिए चलो!—" कहते हुए आप घाट पर पहुँचे और पानी की उस विपरीत लीला को देखते हुए आनन्द में विभोर होकर एक छोटे वालक के समान नाचने लगे। जव उन्होंने पुकारा उस समय भक्त लोगों की आँखों में नींद भरी थी, अतः उठकर धोती आदि संभालकर घाट पर जाने में उन लोगों को कुछ विलम्व हो गया। उतनी देर में वह तरंग निकल गई! इतने समय तक श्रीरामकृष्ण अपने ही आनन्द में मस्त थे। तरंग निकल जाने पर उन लोगों की ओर देखकर उन्हें पूछा—"क्यों रे? तरंग का कैसा मज़ा दिखाई दिया?" पर यह जानकर कि धोती संभालने की गड़वड़ में देर हो जाने के कारण कोई भी तरंग को नहीं देख पाया, वे वोले—"अरे मूर्खो! तरंग क्या तुम्हारे धोती पहनने की

* वंगाल की खाड़ी में ज़ोर से ज्वारभाटा आने पर वढ़ा हुआ पानी गंगा नदी में आ जाता है और वह नदी की धारा पर से उलटी दिशा में वड़े ज़ोर से आवाज करता हुआ ऊपर की ओर वढ़ने लगता है। यदि यह वड़े ज़ोर से हो, तो कभी कभी समुद्र के पानी की वाढ़ १५-२० फुट ऊँची दीवाल के समान नदी पर से ऊपर की ओर सरकते दिखती है।

राह देखकर रुकने वाली चीज़ है? अरे! मेरे ही समान धोती फेंक-कर तुम लोग भी यहाँ क्यों नहीं आ गए?"

कई बार श्रीरामकृष्ण अपनी भक्त-मण्डली में से किसी किसी के बीच वाद-विवाद खडा करके आप तमाशा देखने लगते थे, और ऐसे वाद-विवाद में जहाँ जिसका कथन गलत होता था, वहीं पर उसको रोककर उसकी ग़लती उसे दिखा देते थे। किसी विषय के सम्बन्ध में उसे जितना भी मालूम है वह दूसरे को यथोचित समझाने की शक्ति उसमें है या नहीं, यह बात प्रत्येक व्यक्ति अजमाकर देख ले—यह भी एक उद्देश उनके वाद-विवाद खड़ा कर देने में रहा करता था। वे स्वयं भी किसी किसी समय ऐसे वाद-विवाद में भाग लेते थे और इस तरह किसके विचार कैसे हैं, यह बात उसके बिना जाने समझ जाते थे।

उनके शिष्य-समुदाय में नरेन्द्रनाथ के समान वाद-विवाद में कुशल और कोई नहीं था। जब उसने श्रीरामकृष्ण के पास आना जाना शुरू किया, उस समय वह ब्राह्मसमाज का अनुयायी रहने के कारण साकारवादी लोगों पर बड़ा कटाक्ष किया करता था। अतः श्रीरामकृष्ण समय समय पर उसके साथ किसी साकारवादी भक्त का विवाद शुरू कराके स्वयं मजा देखते थे! नरेन्द्र की तीक्ष्ण बुद्धि और शुद्ध अचूक तर्क-शैली के सामने कोई नहीं टिक सकता था; इस कारण हर एक को उससे बहस करने में डर लगता था। पर श्रीराम-कृष्ण बारम्बार जिस तिस के पास बड़े हर्ष से उसकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते और कहते "अमुक अमुक की बहस को उस दिन नरेन्द्र ने कैसे तड़ाके से काट दिया!" एक दिन श्रीरामकृष्ण ने

साकारवादी गिरीशचन्द्र के साथ उसको वहस करने के लिए लगा दिया, और गिरीश का साकार पर विश्वास अधिक दृढ़ करने के लिए स्वयं उन्होंने उसके पक्ष का समर्थन किया। विवाद पूरे रंग में था- कि नरेन्द्र ने साकारवादी भक्तों के परमेश्वर के प्रति विश्वास को 'अन्ध विश्वास' कह दिया। उस पर श्रीरामकृष्ण बोले—"क्यों रे नरेन्द्र, तू अन्ध विश्वास किसे कहता है—मुझको समझा सकेगा? विश्वास तो यहाँ से वहाँ तक सारा अन्ध ही होता है। क्या विश्वास के कहीं आँखें होती हैं? तब फिर 'अन्ध विश्वास' और 'आँख वाला विश्वास' ये विभाग कहाँ से आए? या तो कहो 'विश्वास' और नहीं तो कहो 'ज्ञान'।" नरेन्द्र कहते थे—"सचमुच ही उस दिन 'अन्ध विश्वास' शब्द का कोई अर्थ मैं नहीं वता सका और बहुत विचार करने पर भी मुझे उस शब्द में कोई अर्थ दिखाई नहीं दिया। उस दिन से मैंने 'अन्ध विश्वास' शब्द का प्रयोग करना ही छोड़ दिया।"

इस प्रकार की शिक्षा के अतिरिक्त, उनकी संगति में रहने वालों को बहुत सी व्यावहारिक शिक्षा भी प्राप्त हो जाती थी। साधारण साधारण सी बातों की ओर भी लक्ष्य देकर वे अपने भक्तों के गुण-दोष उन्हें दिखा देते थे। निरञ्जन बहुत घी खाता है, ऐसा मालूम होने पर वे उससे बोले—"अरे, खाने के लिए क्या इतना घी चाहिए? क्यों कहीं पर शूर वीरता तो नहीं दिखानी है?" एक आदमी बहुत ऊँघने वाला था। उन्होंने एक दिन उसके भी इसी प्रकार कान ऐंठे। एक भक्त वैद्यक का अभ्यास कर रहा था। उन्होंने उससे वह शिक्षा छोड़ने के लिए कहा, पर उसने उस पर दुर्लक्ष्य किया। यह देखकर श्रीरामकृष्ण बोले—"मन में से एक एक वासना दूर

करना तो एक तरफ़ रहा और उल्टे वासनाओं के जाल में अपने को अधिकाअधिक फँसाते जा रहा है। अरे, तुझको क्या कहा जाय? ऐसा करने से तेरी क्या दशा होगी!"

वे अपने संसारी भक्तों से सदा यही कहते थे कि—"संसार में पैसा जरूर चाहिए। उसके बिना काम चल नहीं सकता, इसलिए सदा किफ़ायत के साथ ख़र्च किया करो। कभी किसी के ऋणी या कर्ज़दार मत बनो।" एक ने हुक्का पीने के लिए दियासलाई की सींक जलाई तब वे उससे गुस्सा होकर बोले—"उठ, वहाँ रसोई घर में आग जल रही होगी वहाँ जाकर आग ले आ। अरे, दियासलाई क्या मुफ़्त में मिलती है? क्या तू ऐसे ही गृहस्थी चलाएगा?"

साधारणत: ऐसा देखा जाता है कि अधिक विचार करने वाले पुरुषों का, जैसे कवि, गणितज्ञ आदि का—लक्ष्य अपने विषय को छोड़कर अन्य बातों की ओर नहीं रहता। उनका मन अपने ही विषय के विचार में इतना मग्न रहा करता है कि उन्हें उस विषय के सिवाय और कुछ सूझता ही नहीं। कई बार तो उनके व्यवहार पागलों के समान होते हैं। पर श्रीरामकृष्ण में तो दूसरी ही बात दिखाई देती थी! सदा सर्वकाल ईश्वर-चिन्तन में निमग्न रहने पर भी उन्हें हर तरह की छोटी मोटी बातों का भी स्मरण रहता था। अपनी सभी वस्तुओं की व्यवस्था वे स्वयं करते थे। उनके कमरे की सभी चीज़ें बिल्कुल यथा-स्थान रखी जाती थीं। प्रत्येक वस्तु का स्थान निश्चित था और उस वस्तु को उसी स्थान में रखने का उनका नियम था और उसी तरह वे दूसरों से भी कराते थे। उन्हें गन्दापन, अव्यवस्था आदि बिल्कुल पसन्द नहीं थी। अमुक समय पर अमुक कार्य करने का निश्चय हो

जाने पर वे उसमें कभी कोई ढिलाई या दीर्घसूत्रता नहीं होने देते थे। इन सब गुणों के कारण उनके सहवास में रहने वालों को भी नियम-पूर्वक रहने की आदत आप ही आप हो जाती थी।

एक दिन सवेरे श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर से बलराम बसु के घर जाने के लिए चले। साथ में उनका भतीजा रामलाल और योगेन्द्र भी थे। सभी गाड़ी में बैठकर रवाना हुए। गाड़ी बाग के फाटक तक आई होगी कि श्रीरामकृष्ण ने योगेन्द्र से पूछा — "क्यों रे, तौलिया और अंगौछा साथ में रख लिया है न?"

योगेन्द्र — नहीं महाराज! तौलिया तो रखा है, पर अंगौछा भूल गया। उँह, उसमें क्या है? बलराम बाबू एक दूसरा दे देंगे।

श्रीरामकृष्ण — वाह! वह क्या कहेगा — 'कहाँ के भिखारी आ गये हैं? —' उसको क्या व्यर्थ ही कष्ट नहीं होगा? नहीं; ऐसा ठीक नहीं, जाओ, अंगौछा लेकर आओ —।

अतः योगेन्द्र को वापस जाकर अंगौछा लाना ही पड़ा।

श्रीरामकृष्ण कहते थे — "बड़े लोग, श्रीमान् लोग, किसी के घर जाते हैं तो अपनी सारी व्यवस्था ठीक ठीक पहले से ही करके जाते हैं। जिसके यहाँ जाते हैं उसे कुछ भी कष्ट नहीं होने देते। और वही कोई भिखारी किसी के यहाँ जाता है, तो यहाँ से वहाँ तक सभी को कष्ट देता है! और उस पर भी मजा तो यह है कि जिस दिन घर में कुछ न हो उसी दिन ये जरूर पहुँचेंगे!"

श्रीरामकृष्ण के समय में, दक्षिणेश्वर में श्रीयुत प्रतापचन्द्र हाजरा नामक एक महाशय रहा करते थे। उन्हें लोग हाजरा महाशय कहते थे। वे अपना बहुत सा समय जप, ध्यान आदि में बिताते थे।

श्रीरामकृष्ण अपने भक्तों के घर जाते थे, तब कभी कभी हाजरा महाशय भी उनके साथ रहते थे। एक दिन वे श्रीरामकृष्ण के साथ एक भक्त के यहाँ गए थे। वहाँ वे अपना रूमाल भूल गए। वापस लौटने पर यह बात श्रीरामकृष्ण को मालूम हो गई, तब वे उससे बोले — "ईश्वर-चिन्तन में मुझे पहनी हुई धोती तक की याद नहीं रहती, पर मैं एक दिन भी अपना तौलिया या थैली कहीं भूलकर नहीं आया! और इतना थोड़ा सा जप, ध्यान करने से ही तुझसे इतनी भूल होने लगी?"

उपरोक्त भिन्न भिन्न उदाहरणों से उनकी शिक्षा-पद्धति का अनुमान किया जा सकता है। शिष्य की बारीकी के साथ परीक्षा करके, उसको योग्य दिशा में शिक्षा देते हुए, वे उसको भिन्न भिन्न विषय किस प्रकार समझा दिया करते थे, इसका विवरण थोड़ा बहुत अगले प्रकरण में किया जाएगा।

१३—श्रीरामकृष्ण की विषय-प्रतिपादन शैली

मैं कृतकृत्य भयेउँ तव बानी। सुनि रघुवीर-भगति-रस सानी ॥
रामचरन नूतन रति भई। माया-जनित बिपति सब गई ॥
मोह जलधि बोहित तुम भयेऊ। मो कहँ नाथ विविध सुख दयेऊ
मो पर होई न प्रति उपकारा। वन्दौं तव पद बारहिं बारा ॥

—तुलसीदास

श्रीरामकृष्ण की विषय-प्रतिपादन शैली कुछ अनूठी ही थी। प्रत्येक मत या पन्थ वाले उनके भाषण से मुग्ध हो जाते थे। सीधे-सादे दृष्टान्तों द्वारा इतनी सरल रीति से वे हर एक विषय को समझाते थे कि छोटा बालक भी उसे समझ जाता था। उनके पास आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यही मालूम पड़ता था कि धर्म बड़ा सरल विषय है। बड़े बड़े शब्द, घटपटादिक का प्रयोग, बड़े बड़े ग्रन्थों का प्रमाण या और कोई आडम्बर उनके समझाने में आता ही नहीं था! सरल सीधी भाषा में नित्य के व्यवहार में से एक दो मार्मिक दृष्टान्त उनके मुँह से सुनते ही गहन से गहन विषय का तत्व श्रोताओं की समझ में तत्काल आ जाता था।

उनके विषय-प्रतिपादन में एक विशेष बात यह थी कि वे कभी भी प्रसंग से सम्बन्ध न रखने वाली अनावश्यक बातों को बताकर श्रोता के मन में भ्रम उत्पन्न नहीं होने देते थे। उनके बोलने में कभी भी स्वमत-मण्डन, परमत-खण्डन आदि आडम्बर या सन्दिग्धता नहीं रहती थी। उनका मुख्य आधार दृष्टान्तों पर रहता था। प्रश्नकर्ता का

भाव ध्यान में रखकर उसके उत्तर में वे कुछ सिद्धान्त-वाक्य कह देते और उनको स्पष्ट समझाने के लिए एक-दो अत्यन्त मार्मिक दृष्टान्त देते थे। मतभेद होने पर वे कभी विवाद नहीं करते थे। एक दिन वे बाल की खाल निकालने वाले एक संशयी श्रोता से बोले—"एक बात में अगर समझना हो तो यहाँ आया करो और यदि वाद-विवाद करना हो और व्याख्यान द्वारा समझना हो तो केशव * के पास जाओ!" किसी को यदि अपना कथन जँचता सा न दिखे तो वे कहते थे—"मुझे जो कहना था सो मैं कह चुका। अब इसमें से तुम्हें जो जँचे सो ले लो।" और इतना कहकर वे चुपचाप बैठ जाते थे। कभी कभी वे केवल उदाहरण ही देकर सन्तुष्ट नहीं होते थे, वरन् अपने कथन को स्पष्ट करने के लिए रामप्रसाद, कमलाकान्त आदि साधकों के एक दो पद भी अपनी सुरीली आवाज में गाकर सुनाते थे।

वे कहते थे—"जिसने अपना सारा भार माता को सौंप दिया है उसके अन्तःकरण में वह स्वयं रहती है और उसके द्वारा जो कहना चाहिए वही वह कहलाती है। माता का सहारा मिलने पर किसका ज्ञान-भाण्डार खाली हो सकता है? वह कितना भी खर्च क्यों न करे माता उसके अन्तःकरण में ज्ञान की राशि लाकर रख देती है।" इसी को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने निम्न लिखित बात बतलाई। एक दिन बारूद के कारखाने के कुछ सिपाहियों ने मुझसे प्रश्न किया—'धर्म-लाभ करने के लिए मनुष्य को संसार में किस

---

* केशवचन्द्र सेन। ब्राह्मसमाज के प्रसिद्ध नेता। इनके सम्बन्ध में अगले प्रकरण में विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्रकार रहना चाहिए ?' इतने में मुझे एक ओखली का दृश्य दिखाई दिया। एक स्त्री धान कूट रही है और दूसरी उस ओखली में के धान को हाथ से चलाती या फेरती जाती है। इससे मैं समझ गया कि माता ही बता रही है कि संसार में कितनी सावधानी से रहना चाहिए! दोनों स्त्रियाँ आपस में बोलती भी हैं, पर धान चलाने वाली स्त्री को अपने हाथ को मूसल के आघात से बचाने के लिए बड़ी साव-धानी रखनी पड़ती है। वैसे ही सांसारिक कार्य करते समय मनुष्य को सावधानी रखनी चाहिए। तभी बन्धन में पड़ने का भय नहीं रहता। ओखली का चित्र सामने दिखते ही मन में ये बातें आ गईं और धान कूटने का उदाहरण देकर मैंने उन सिपाहियों को यह बात समझा दी। उसे सुनकर उन लोगों को बड़ा आनंद हुआ। लोगों के साथ बोलते समय दृष्टान्त देने की आवश्यकता पड़ने पर ऐसे ही कुछ चित्र आँखों के सामने आ जाते हैं।"

विषय का प्रतिपादन करते समय दृष्टान्त के लिए जो उदाहरण वे दिया करते थे वे इतने मार्मिक और समर्पक होते थे कि श्रोता को उनकी सूक्ष्म अवलोकन-शक्ति पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता था। जिन्होंने 'श्रीरामकृष्णवचनामृत'* नामक पुस्तक पढ़ी है, उन्हें इसका निश्चय हो गया होगा, तथापि और भी कुछ भी बातें तथा उदाहरण यहा दे देने से पाठकों को उनकी प्रतिपादन-शैली की अपूर्वता की और अधिक स्पष्ट कल्पना हो सकेगी।

मान लो, जटिल सांख्य शास्त्र की बातें हो रही हैं। पुरुष और प्रकृति के पारस्परिक सम्बन्ध का वर्णन करते हुए श्रीरामकृष्ण कहते हैं—

* यह पुस्तक श्रीरामकृष्ण आश्रम, नागपुर द्वारा तीन भागों में प्रकाशित हुई है।

" सांख्य शास्त्र में बताया गया है कि पुरुष अकर्ता है, वह कुछ भी नहीं करता, सब कुछ प्रकृति किया करती है। उसके सब कार्यों पर पुरुष साक्षीरूप होकर केवल निरीक्षण किया करता है, पर मज़ा तो यही है कि पुरुष के बिना अकेली प्रकृति को कुछ भी करते नहीं बनता।" श्रोताओं का क्या पूछना है, सभी पण्डित ही पण्डित थे! कोई रोज़गारी, कोई आफिस के नौकर, बहुत हुआ तो कोई डॉक्टर या वकील और अधिकांश तो स्कूल और कालेज के विद्यार्थी! परिणाम यह हुआ कि श्रीरामकृष्ण के कथन को किसी ने नहीं समझा और सभी आपस में एक दूसरे के मुँह की ओर ताकने लगे! अपने श्रोताओं को कुछ भी न समझते देखकर श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"अरे! इसमें आश्चर्य की बात कौनसी है? किसी के घर विवाह-कार्य होते नहीं देखा? गृहस्वामी आज्ञा देकर, आनन्द के साथ एक मसनद से टिककर हुक्का पीते हुए बैठा रहता है, पर उस बेचारी गृहस्वामिनी की हड़बड़ी को तो देखो, उसको कहीं चैन नहीं है। वह भाण्डार-घर में जाती है, मण्डप में आती है, रसोई-घर में जाती है, यह काम हुआ या नहीं, वह काम कितना हुआ यह सब देखती है, बाजार से क्या लाना बाकी है सो बताती है, इतने में बाहर की लक्ष्मी, सरस्वती आदि चार स्त्रियाँ आ जाती हैं उन्हें बुलाती है, बैठालती है, 'आओ बैठो' कहते कहते ही बीच में गृहस्वामी के पास पहुँचकर—'ऐसा हुआ, इतना हुआ, इतना बचा, ऐसा करना होगा' बताती है—सारी बातें संभालते संभालते बेचारी के नाकों दम हो जाता है! और इधर गृहस्वामी क्या करता है? वह बैठा सिर्फ हुक्का गुड़गुड़ाते, बैठे ही बैठे सिर हिलाकर 'हाँ, ठीक है, अच्छा है, ऐसा

ही करो—' इस तरह कहता रहता है—क्यों है न ठीक बात? यही प्रकृति और पुरुष के बारे में भी समझो।"

कुछ समय में मान लो वेदान्त की चर्चा चलने लगी। श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"वेदान्त में कहा है कि ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति, पुरुष और प्रकृति एक ही हैं। ये दो कोई भिन्न भिन्न पदार्थ नहीं हैं। एक ही पदार्थ हैं, पर इतना ही है कि वह कभी पुरुष भाव से रहता है और कभी स्त्री भाव से।" इस विषय को स्पष्ट करने के लिए श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"अरे! यह कैसे होता है बताऊँ? जैसे सांप—कभी चलता रहता है और कभी गुण्डल बाँधकर चुपचाप बैठा रहता है। जब वह चुपचाप बैठा रहता है, तब तो हुआ पुरुषभाव। उस समय कोई कार्य नहीं होता। उस समय प्रकृति पुरुष में लीन हो गई रहती है। और जब सांप चलता रहता है तब हुआ प्रकृतिभाव। उस समय मानो प्रकृति पुरुष से अलग होकर काम करती है। इसे इसी प्रकार जानो।"

थोड़ी देर के बाद प्रश्न निकला कि—"माया ईश्वर की शक्ति है, वह ईश्वर में ही वास करती है, तब फिर क्या ईश्वर भी हमारे ही समान मायाबद्ध है?" इसके उत्तर में श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"अरे! नहीं रे भाई, वैसा नहीं है, माया ईश्वर की है, और वह उसी में सदा रहती है तो भी ईश्वर इससे मायाबद्ध नहीं हो जाता। यही देखो न, सर्प के मुँह में सदा विष रहता है, उसी मुँह से वह हरदम खाता पीता है, पर वह स्वयं उस विष से कभी भी नहीं मरता। वह जिसको काटता है वही मरता है। इसी प्रकार समझो!"

एक समय हम में से किसी एक को वेदान्त पर बहस करने की धुन सवार हुई। इसलिए उसने पहले के समान श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए आना बन्द सा कर दिया। श्रीरामकृष्ण के कान तक जब यह बात पहुँची कि वह आजकल वेदान्त की चर्चा बहुत किया करता है तब एक दिन उसके आने पर वे उससे बोले — "क्यों रे! सुना है तू आजकल सदा वेदान्त की चर्चा में ही लगा रहता है? इसमें कोई हर्ज नहीं, पर वेदान्त-चर्चा इतनी ही है न कि 'ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या,' या और कुछ दूसरा है? —"

शिष्य — "हाँ महाराज, बस यही है और दूसरा क्या होगा?"

श्रीरामकृष्ण — "श्रवण, मनन, निदिध्यासन; ब्रह्म सत्य, जगत् मिथ्या यह बात पहले सुन ली; फिर उसका मनन किया, अर्थात् इस बात को लगातार मन में गुनते रहे; तदनन्तर निदिध्यासन अर्थात् मिथ्या वस्तु जो जगत् है, उसका त्याग करके सद्वस्तु जो ब्रह्म है उसी के ध्यान में मन को लगा दिया—बस हो गया! वेदान्त का मतलब इतना ही है या और भी कुछ है? पर ऐसा न करके बहुत सा सुना और मान लो कि सब कुछ समझ भी लिया, पर जो मिथ्या वस्तु है उसके त्याग करने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया, तो फिर इससे लाभ ही क्या हुआ? तब तो यह सब संसारी लोगों के ज्ञान के समान ही हुआ! ऐसे ज्ञान से सार वस्तु कैसे प्राप्त होगी? धारणा चाहिए, त्याग चाहिए, तब तो कुछ होगा! वह न करते हुए केवल मुख से — 'काँटा नहीं है, चुभना नहीं है' कहने से कहीं काँटा चुभने की पीड़ा दूर होती है? वैसे ही केवल मुँह से 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' कहते रहना, परन्तु संसार में रूपरसादि विषय सामने आये कि

तत्काल उनको ही सत्य समझकर उनके बन्धन में पड़ जाना ऐसे से कहीं उस सद्वस्तु की प्राप्ति होती है?

"एक बार ऐसा हुआ कि पंचवटी के नीचे एक साधु उतरा हुआ था, लोगों के साथ वह वेदान्त पर बहुत बहस किया करता था, जिससे लोगों को मालूम हो कि 'अहाहा! साधु हो तो ऐसा हो!' बाद में कुछ दिनों पश्चात् मेरे कान में बात पहुँची कि उसका एक स्त्री से सम्बन्ध हो चला है। दूसरे दिन मैंने झाऊतला की ओर शौच के लिए जाते समय उससे कहा—'कहो बाबाजी! तुम तो वेदान्त की बड़ी बड़ी बातें बघारते हो फिर यह कैसे हुआ?' वह बोला—'ऐं! इसमें क्या है? मैं अभी तुमको समझाए देता हूँ कि इसमें कोई दोष नहीं है—अजी! जहाँ संसार ही बिलकुल मिथ्या है, वहाँ क्या केवल यही बात सत्य हो सकती है? यह भी मिथ्या ही है!' उसका यह निर्लज्ज उत्तर सुनकर मुझे उस पर क्रोध आया और मैं बोला—'आग लगे तुम्हारे इस वेदान्त-ज्ञान को!—' इसीलिए कहता हूँ कि ऐसे ज्ञान को क्या चूल्हे में डालना है? यह तो बिल्कुल ज्ञान है ही नहीं!"

वह शिष्य कहता था—"सचमुच मैं यही समझ बैठा था कि पंचदशी आदि ग्रन्थों को पढ़े बिना वेदान्त कभी समझ में नहीं आ सकता और उसके सिवाय मुक्ति कभी नहीं मिल सकती। परन्तु श्रीरामकृष्ण के उस दिन के उपदेश से मेरी आँखें खुल गईं और मुझे निश्चय हो गया कि वेदान्त की चर्चा करने और उसे पढ़ने का केवल इतना ही उद्देश है कि 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' इस सिद्धान्त की धारणा मन में ठीक तरह से हो सके।"

श्रीरामकृष्ण के सिद्धान्त — "जितने मत हैं उतने मार्ग हैं–" को सुनकर एक दिन एक ने पूछा — "तो फिर महाराज! इन अनेक मार्गों में से हम किसे स्वीकार करें?" श्रीरामकृष्ण बोले — "जिसे जो मार्ग अच्छा लगे उसे ही वह पक्का पकड़ ले बस हो गया। जो भाव पसन्द हो उसे ही दृढ़ता से धारण करना पर्याप्त है। ईश्वर तो भाव का विषय है, भाव के सिवाय उसका आकलन कैसे हो सकता है? इसलिए किसी भी एक भाव को दृढ़ता से धारण करके उसकी (ईश्वर की) आराधना करना चाहिए। भाव के अनुसार ही लाभ होगा। भाव का अर्थ समझे? ईश्वर के साथ कोई भी एक सम्बन्ध जोड़ लेने को भाव कहते हैं। ईश्वर का मैं दास हूँ अथवा अपत्य हूँ या अंश हूँ ऐसा कोई सम्बन्ध ईश्वर के साथ जोड़कर, उसी भाव को सदा सर्वकाल, खाते-पीते, बोलते-चालते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, मन में गुनना चाहिए। यह भी एक प्रकार का अहंकार ही है। इसको कहते हैं 'पक्का अहंकार'। इसके रहने में कोई हर्ज नहीं। और मैं ब्राह्मण, मैं क्षत्रिय, मैं अमुक का पुत्र — यह सब है 'कच्चा अहंकार'। इसको त्याग देना चाहिए, और नित्यशः मन में 'पक्का अहंकार' रखते हुए — उसी का मनन करते हुए — ईश्वर के प्रति स्थापित किए हुए अपने सम्बन्ध या भाव को अधिकाधिक दृढ़ करते जाना चाहिए। तभी ईश्वर के पास अपना ज़ोर या हठ चल सकता है। यही देखो न! नया परिचय होने पर कैसे बोलते हैं–'आप,' 'आपका,' 'आपको'। कुछ सम्बन्ध बढ़ने पर 'आप' आदि चला जाता है और शुरू होता है —'तुम,' 'तुम्हारा'। और फिर घनिष्ट सम्बन्ध हो जाने पर तो यह 'तुम' भी चला जाता है

और 'तू' 'तेरा' 'बेटा!' आदि के सिवाय दूसरे शब्द ही बाहर नहीं आते। ईश्वर से भी हमारी इतनी ही आत्मीयता हो जानी चाहिए, यहाँ तक कि ईश्वर हमें खुद ही अपना मालूम पड़ना चाहिए! तभी उसके पास हमारा हठ या उस पर हमारा ज़ोर चल सकेगा।

"जब कोई दुश्चरित्र स्त्री पहले पहल परपुरुष पर प्रीति करना सीखती है तब वह कितना परदा, कितनी लाज लज्जा दिखाती है, नाज़ नखरे करती है! पर कुछ ही दिनों में वह सारी अवस्था बदल जाती है, और समय आ पड़ने पर वह अपनी सारी लोक-लज्जा को ताक में रखकर, अपने कुल के नाम और कीर्ति को लात मारकर, खुले आम परपुरुष का हाथ पकड़कर घर से बाहर निकल जाने में भी कमी नहीं करती। और मान लो, उसके बाद वह पुरुष किसी कारण उस स्त्री को अपने पास न रखना चाहे तब क्या वह उसके गले को पकड़कर यह नहीं कहेगी—'अरे वाह! तेरे लिए मैंने सब लोक-लज्जा छोड़ दी, कुलशील का त्याग किया और अब तू कहता है कि अपने पास नहीं रखूँगा? भलमनसाहत से चुपचाप मुझको अपने घर में रखता है या नहीं, बोल?' वैसे ही जिस मनुष्य ने ईश्वर के लिए सर्वस्व का त्याग कर दिया है, उसको अपने आत्मीय से भी अधिक आत्मीय बनाकर अपना लिया है, उस मनुष्य को ईश्वर को दर्शन देना ही पड़ता है। नहीं तो क्या वह मनुष्य ईश्वर को डरेगा? क्या वह ऐसा न कहेगा कि 'भगवन्! तेरे ही लिए तो मैंने सर्वस्व का त्याग किया और अब तू मेरी ओर देखता तक नहीं? सीधे तौर से दर्शन देता है या नहीं, बोल!'"

× × × ×

'ईश्वर' 'माया' आदि के स्वरूप के सम्बन्ध में उनका दृष्टान्त सुनिए :—

जिस प्रकार पानी को कोई 'वारि' कहते हैं, कोई 'पानी', कोई 'वॉटर' तो कोई 'ऐक्वा' उसी प्रकार एक सच्चिदानन्द को ही कोई 'गॉड' कहते हैं, कोई 'हरि' कहते हैं, तो कोई 'राम' या कोई 'अल्लाह' कहते हैं!

× × × ×

मनुष्य मानो केवल तकिये के गिलाफ हैं। गिलाफ जैसे भिन्न भिन्न रंग और आकार के होते हैं वैसे ही मनुष्य भी कोई सुरूप, कोई कुरूप, कोई साधु, कोई दुष्ट होते हैं। बस इतना ही अन्तर है। पर जैसे सभी गिलाफ में एक ही पदार्थ—कपास—भरा रहता है, उसी के समान सभी मनुष्यों में वही एक सच्चिदानन्द भरा हुआ है।

पहरेदार चोरलालटेन की सहायता से सभी को देख सकता है, पर वह खुद किसी को दिखाई नहीं देता। वह यदि खुद लालटेन का प्रकाश अपने मुँह पर डाले, तभी लोग उसे देख सकते हैं। उसी तरह ईश्वर भी सब को देखता है, पर वह किसी को दिखाई नहीं देता। वही अगर कृपा करके अपने को प्रकाशित करे तभी उसका दर्शन होता है।

× × × ×

प्रश्न—यदि ईश्वर सर्वत्र भरा हुआ है तब वह हमें क्यों नहीं दिखाई देता?

उत्तर—काई से ढँके हुए तालाब के किनारे खड़े होकर 'तालाब में पानी ही नहीं है' कहने के समान यह बात हुई। तुमको पानी पीना है, तो उस काई को दूर हटा दो; वैसे ही तुम्हारी आँखों पर

माया का परदा पड़ जाने के कारण तुमको ईश्वर दिखाई नहीं देता। उसको देखने की इच्छा हो, तो उस माया के परदे को दूर करो।

× × × ×

माया पहचान में आते ही स्वयं दूर हट जाती है। जैसे मालिक को अपने घर में उसके घुसने का पता लग गया है यह जानकर चोर भाग जाता है, वही हाल माया का है।

× × × ×

श्रीरामकृष्ण —ईश्वर-दर्शन होने से हज़ारों जन्म के पाप एकदम नष्ट हो जाते हैं।

शिष्य —ऐसा कैसे हो सकता है महाराज ! मुझको यह बात नहीं जँचती।

श्रीराम० —क्यों भला ? किसी गुफ़ा में हज़ारों वर्ष का अन्धकार वहाँ दीपक ले जाने पर एकदम दूर हो जाता है या धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा करके दूर होता है ? यही बात ईश्वर-दर्शन के सम्बन्ध में भी जानो !

× × × ×

प्रश्न —क्या जीव का सोहंभाव सम्भव है ? यदि है तो किस प्रकार सम्भव है ?

उत्तर —जैसे किसी के घर में पुराना ईमानदार नौकर हो, घर के सभी लोग उसे अपने में से ही एक जानकर सारा बर्ताव करते हैं। किसी दिन घर का मालिक उसके किसी विशेष कार्य से प्रसन्न होकर उसका हाथ पकड़कर उसे अपने पास बिठा लेता है और सब से कहता है — " आज से मुझमें और इसमें कोई भेदभाव नहीं करना।

सब को मेरी आज्ञा के समान इसकी आज्ञा का भी पालन करना चाहिए। कोई आज्ञाभंग करेगा तो वह बात मुझे सहन नहीं हो सकेगी।" बेचारा स्वामीनिष्ठ सेवक! अपने ऊपर मालिक की इतनी कृपा देखकर उसका हृदय भर आता है और वह गद्दी पर बैठने में संकोच करता है, पर मालिक उसे ज़बरदस्ती वहाँ बैठाता है! जीव का सोहंभाव भी इसी प्रकार का है। बहुत दिनों की सेवा से प्रसन्न होकर ईश्वर किसी किसी को अपने ही समान विभूतिसम्पन्न बनाकर अपने ही आसन पर बिठा लेते हैं।

× × × ×

धीवर के जाल में फँसने वाली मछलियाँ तीन प्रकार की होती हैं। कुछ तो जैसी की तैसी पड़ी रहती हैं, वहाँ से निकलने का प्रयत्न तक नहीं करतीं। और तो क्या, वे यह भी नहीं जानतीं कि उन पर कोई संकट आ पड़ा है! कुछ मछलियाँ भागने का प्रयत्न करती हैं, पर उन्हें निकलने का मार्ग नहीं मिलता। और एक आध बहादुर मछली ऐसी रहती है जो जाल को काटकर निकल भागती है!—वैसे ही इस संसार में भी तीन प्रकार के जीव दिखाई देते हैं—बद्ध, मुमुक्षु और मुक्त।

× × × ×

भक्त—महाराज! ईश्वर साकार है या निराकार?

श्रीराम०—अरे बाबा! वह साकार भी है और निराकार भी। यह कैसा है समझे? जैसे पानी और बरफ। पानी का आकार नहीं रहता, पर बरफ का रहता है। ठण्ड के कारण ही पानी बरफ हो जाता है। उसी तरह भक्तिरूपी ठण्डक से अखण्ड-सच्चिदानन्द-सागर में स्थान स्थान पर साकार बरफ जम जाता है।

एक दिन श्रीरामकृष्ण अपनी भक्त-मण्डली से बातें कर रहे थे। एक ने पूछा—"महाराज ! परमार्थ-साधना में क्या सद्गुरु अत्यन्त आवश्यक है? क्या गुरु के बिना काम चल ही नहीं सकता?"

श्रीरामकृष्ण—न बनने की कौन सी बात है? गुरु के बिना भी साधक अपने ध्येय को प्राप्त कर सकता है। अन्तर केवल यही है कि सद्गुरु की सहायता रहने पर उसका मार्ग बहुत कुछ सुगम हो जाता है।

ऐसी बातें हो ही रही थीं कि सामने गंगा में से एक जहाज़ जाता हुआ श्रीरामकृष्ण को दिखाई दिया। उसी समय उस मनुष्य की ओर देखकर वे कहने लगे—"यह जहाज़ चिनसुरा कब पहुँचेगा बताओ भला?"

वह मनुष्य बोला—मैं समझता हूँ, शाम को लगभग ५–६ बजे तक पहुँच जाएगा।

श्रीरामकृष्ण—उस जहाज़ के पीछे की ओर एक छोटी सी डोंगी भी रस्सी से बंधी है, देखी? वह भी उस जहाज़ के साथ ही शाम को चिनसुरा पहुँच जायगी, यह बात ठीक है न? पर समझो कि रस्सी खोलकर डोंगी अलग करके चलाई जाय तो वह चिनसुरा कब पहुँचेगी बताओ भला?

वह मनुष्य बोला—मैं समझता हूँ, तब तो वह डोंगी कल सबेरे से पहले वहाँ नहीं पहुँच सकेगी।

श्रीरामकृष्ण—इसी तरह साधक अकेले ही ईश्वर-दर्शन के मार्ग में अग्रसर होगा तो भी उसे ईश्वर की प्राप्ति होगी, पर उसे समय

बहुत लगेगा, और वही यदि भाग्य से सद्गुरु की सहायता पा ले, तो लम्बी यात्रा बहुत थोड़े ही समय में पूर्ण कर लेगा। समझ गये न?

× × × ×

शिष्य —महाराज! 'नेति' 'नेति' विचार किसे कहते हैं और उस विचार द्वारा विज्ञान किस तरह प्राप्त होता है?

श्रीरामकृष्ण —एक अंधेरे कमरे में एक मनुष्य सोया था। उसे ढूँढ़ने के लिए दूसरा एक मनुष्य वहाँ गया। पहले उसका हाथ एक कुर्सी पर पड़ा। वह बोला 'अरे! यह नहीं है।' और ऐसा कहकर वह दूसरी ओर टटोलने लगा। अब उसका हाथ एक मेज़ पर जाने लगा। तब वह फिर बोल उठा—'अरे यह भी नहीं है।' अब वह पुनः टटोलने लगा, और भी अनेक वस्तुओं का स्पर्श उसे हो गया और वह 'अरे यह भी नहीं है,' 'नेति' 'नेति' कहता चला। कुछ समय में उसका हाथ उस पलंग पर सोये हुए मनुष्य पर पड़ा, त्योंही वह आनन्द के साथ कहने लगा, 'यहाँ वह है!' ('इति!', 'इति!') उसका कार्य आधे से अधिक हो चुका! उसको ज्ञान हो चुका, पर अभी तक विज्ञान नहीं हुआ। उस मनुष्य को उठाकर उससे उसने दो चार बातें कीं, तब उसका काम पूर्ण हो गया! विज्ञान अर्थात् विशेष रूप से जानना,—बातचीत करना आदि—समझे?

कोई दूध का केवल नाम ही सुने होता है, कोई दूध को देखे होता है और कोई दूध को चखे होता है! वैसे ही—कोई तो 'ईश्वर है' ऐसा सुने होता है, कोई ईश्वर का दर्शन किए होता है और कोई ईश्वर के साथ बातें किए होता है। ये लोग क्रमशः अज्ञानी, ज्ञानी और विज्ञानी कहाते हैं।

एक दिन एक स्त्री भक्त उनसे बोली—"मन में तो बहुत इच्छा होती है कि ईश्वर का लगातार नाम-स्मरण करूँ, पर वैसा बनता नहीं–क्या किया जाय?"

श्रीराम०—ईश्वर की ही सब प्रकार से शरण लेना क्या सरल बात है? महामाया का प्रभाव इतना प्रबल है कि वह बिलकुल शरण लेने ही नहीं देती! जिसका संसार में अपना कहने लायक कोई नहीं है, उसके भी गले में वह एक बिल्ली का ही फंदा बाँधकर उससे संसार कराती है! उस बिल्ली के लिए ही वह उसे इधर से उधर भटक-कर दूध माँगकर लाने में लगाएगी! कोई पूछे कि 'क्यों जी, तुम्हें दूध किसलिए चाहिए' तो वह कहेगा, 'क्या करें जी, हमारी बिल्ली खाली रोटी नहीं खाती इसीलिए दूध चाहिए!'

"या मान लो, बिलकुल टूटने की स्थिति में पहुँचा हुआ एक घर है। घर में कर्ताधर्ता कोई नहीं है, सिर्फ दो चार विधवा स्त्रियाँ ही बची हैं। उन बेचारियों को मृत्यु भी नहीं ले जाती। घर जगह जगह पर गिर पड़ा है। छप्पर आज गिरे या कल ऐसी अवस्था हो गई है। दीवाल में कहीं कहीं पीपल के वृक्ष उग गये हैं। पिछवाड़ा तो घसपात से जंगल बन गया है। और वे वहाँ पर श्मशानरूप गृह में पिछवाड़े के जंगल से ही पत्ते तोड़कर भाजी के समान खाती रहेंगी, पर फिर भी ईश्वर की ओर मन न लगाएंगी! अथवा मान लो, किसी स्त्री का पति मर गया है। अब तो उसे संसार में अटके पड़े रहने का कोई कारण नहीं है न? अब उसको ईश्वर की ओर मन लगाने में क्या कुछ हर्ज है? पर नहीं, वह अब अपने भाई के ही घर जाकर वहीं का कारबार करने लगेगी, और वहाँ जाकर सब तरफ

अपनी शेखी मारती फिरेगी कि—'मैं अगर यहाँ न आई होती तो भैय्या को खाने तक को न मिलता।' वाहरी देवी! तेरी स्वयं क्या दशा होगी सो तो पहले देख! पर वह वैसा नहीं करेगी। उसको तो अपने भैय्या के संसार चलाने की इच्छा है न? इसीलिए कहता हूँ कि महामाया का प्रभाव बड़ा विचित्र है। उसके पंजे से छूटने के लिए ईश्वर की कृपा चाहिए। तू व्याकुल होकर उसकी प्रार्थना कर तब वह तुझे माया के बन्धन से मुक्त कर देगा।"

योगमार्ग, कुण्डलिनी, षट्चक्र, सप्तभूमिका आदि गहन विषयों को भी वे सरल बनाकर समझाते थे। कुण्डलिनी के सुषुम्ना मार्ग से मस्तक की ओर जाते समय प्रत्येक चक्र में क्या क्या दर्शन होते हैं इसके सम्बन्ध में वे कहते थे, "वेदान्त में सप्तभूमिका का वर्णन है, प्रत्येक भूमिका पर भिन्न भिन्न प्रकार के दर्शन होते हैं। मनुष्य के मन की स्वाभाविक गति नीचे की तीन भूमिकाओं में—गुह्य, लिंग और नाभि में अर्थात् खाने पीने, उपभोग करने आदि में रहती है। इन तीनों भूमिकाओं को छोड़कर मन यदि हृदय-भूमि तक ऊपर चढ़ जाय तो उसे ज्योतिदर्शन होता है; परन्तु हृदय-भूमि तक जाकर भी उस (मन) के वहाँ से नीचे उतरने की सम्भावना रहती है। हृदयभूमि के ऊपर (कण्ठ तक) यदि मन चढ़ जाय तो उसे ईश्वरी विषयों के सिवाय अन्य चीज़ें नहीं रुचतीं, और न उससे अन्य बातें बोली ही जाती हैं। उस समय (साधनाकाल में) मेरी ऐसी दशा हो जाती थी कि कोई सांसारिक बातें करता था तो मुझे ऐसा मालूम पड़ता था कि मानो कोई मेरे सिर पर लाठी चला रहा हो। तब तो मैं एकदम वहाँ से पंचवटी की ओर दौड़ जाता था। विषयी लोगों को

देखते ही मैं डर से छिपकर बैठ जाता था। अपने रिश्तेदार लोग मुझको खाई खन्दक के समान प्रतीत होते थे। मुझे ऐसा लगता था कि मैं उनसे जाकर मिला कि खन्दक में गिरा! उन लोगों को देखते ही मानो एकाएक दम घुटने लगता था — मालूम होता था कि अब प्राण निकल रहे हैं! उनके पास से दूर भाग जाऊँ तब कहीं कुछ अच्छा लगे। कुण्डलिनी कण्ठ-प्रदेश तक चली गई हो, तब भी उसके नीचे की भूमिका पर उतरने की सम्भावना रहती है। अत: उस समय भी सावधान ही रहना चाहिए, पर यदि एक बार कुण्डलिनी कण्ठ को छोड़कर भ्रकुटि तक चढ़ जाय, तब वहाँ से पतन होने का भय नहीं रहता। वहाँ पर परमात्मा का दर्शन होकर निरन्तर समाधि-सुख की प्राप्ति होती है। उस भूमि और सहस्रार के मध्य में केवल एक काँच के समान पारदर्शक परदा मात्र रहता है। वहाँ परमात्मा इतने समीप रहता है कि वहाँ हम अब परमात्मा के साथ एकरूप से प्रतीत होते हैं, पर अब तक भी एकत्व प्राप्त नहीं होता है। यहाँ से यदि मन उतरा ही तो अधिक से अधिक कण्ठ या हृदय तक ही उतरता है। उससे और नीचे कभी भी नहीं उतरता। जीवकोटि के लोग यहाँ से नीचे कभी भी नहीं उतरते। इक्कीस दिन तक निरन्तर समाधि-अवस्था में रहने से यह परदा एकदम फट जाता या नष्ट हो जाता है और जीवात्मा परमात्मा के साथ एकरूप हो जाता है। सहस्रार कमल ही सप्तम भूमि है।"

श्रीरामकृष्ण के मुँह से इन वेद-वेदान्त, दर्शन, योगशास्त्र आदि की बातें सुनकर एक दिन हममें से एक ने उनसे पूछा — "पर महाराज! आप लिखने पढ़ने के पीछे तो कभी नहीं लगे, तब यह सब जानकारी आपको कैसे प्राप्त हुई?" थोड़ा सा हँसकर वे तुरन्त ही

बोले — "अरे ! पढ़ा लिखा नहीं तो क्या हुआ? मैंने सुना कितना है? और वह सब मेरे ध्यान में है। अच्छे अच्छे शास्त्री-पण्डितों के मुख से वेद-वेदान्त, पुराण सब मैंने सुना है। उनमें का सार समझ लेने के बाद उन सब पोथी-पुराणों की एक माला बनाकर माता के गले में पहनाकर मैंने उससे कहा — "माता ! ये ले अपने शास्त्र और पुराण; मुझे तो केवल अपनी शुद्ध भक्ति ही दे।"

१४—श्रीरामकृष्ण और श्री केशवचन्द्र सेन



"केशव के चले जाने पर, माता! मैं कलकत्ता जाकर किससे बोलूँगा?"

"केशव की मृत्यु की वार्ता सुनकर मैं तीन दिन तक बिस्तर में पड़ा था। ऐसा मालूम होता था कि मेरा एक अंग ही गिर गया!"

—श्रीरामकृष्ण

श्री केशवचन्द्र सेन की प्रथम भेंट और सहवास।
(सन् १८७५)

अब तक श्रीरामकृष्ण के गुरुभाव का भिन्न भिन्न दृष्टियों से वर्णन किया गया। इस प्रकार गुरुपदवी पर प्रतिष्ठित होकर संसार में प्रसिद्ध होने के बाद के उनके जीवन का वृत्तान्त अब आगे वर्णन किया जाएगा।

श्रीरामकृष्ण को अपनी माता की मृत्यु के कुछ दिन पहले ब्राह्म-समाज के प्रसिद्ध नेता श्री केशवचन्द्र सेन से भेंट करने की इच्छा हुई। उस समय केशवचन्द्र को कलकत्ते के उत्तर की ओर कुछ मील दूरी पर बेलघारिया नामक स्थान में श्रीयुत जयगोपाल सेन के बगीचे में साधन-भजन में निमग्न रहते सुनकर, एक दिन श्रीरामकृष्ण हृदय को साथ लेकर, उनसे भेंट करने के लिए विश्वनाथ उपाध्याय की गाड़ी में बैठकर बेलघारिया गए। वे वहाँ दोपहर के थोड़ी ही देर बाद पहुँचे। श्रीरामकृष्ण उस दिन सिर्फ़ रेशमी किनार की एक धोती पहनकर उसकी एक छोर को बाँये कन्धे पर डाले हुए थे।

गाड़ी से उतरते ही हृदय ने केशवचन्द्र को कुछ लोगों के साथ पुष्करिणी (छोटे तालाब) के किनारे बैठे देखा, और आगे जाकर

उनको नमस्कार करके उसने कहा —"मेरे मामा को हरिकथा और हरिगुण सुनना बड़ा अच्छा लगता है और उसे सुनकर उन्हें समाधि भी लग जाती है। आपका नाम सुनकर आपके मुख से ईश्वरीय वार्ता सुनने के लिए वे यहाँ आए हैं। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं उन्हें यहाँ पर ले आऊँ।" केशवचन्द्र के उन्हें लाने के लिए कहते ही हृदय गाड़ी के पास गया और श्रीरामकृष्ण को ले आया। श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए केशवचन्द्र आदि लोग बड़े उत्सुक थे। उन्हें देखकर उन लोगों को किंचित् भी भास नहीं हुआ कि ये कोई अलौकिक पुरुष होंगे।

केशवचन्द्र के पास जाकर श्रीरामकृष्ण बोले — "बाबू! मैंने सुना है कि आपको नित्य ईश्वर का दर्शन होता है। वह दर्शन किस प्रकार का रहता है सो जानने की इच्छा से मैं आपके पास आया हूँ।" इस तरह दोनों का संवाद प्रारम्भ हुआ। श्रीरामकृष्ण के प्रश्न का केशवचन्द्र ने क्या उत्तर दिया सो तो मालूम नहीं, पर थोड़ी ही देर में "के जाने मन काली केमन षड्दर्शने ना पाय दर्शन" (रामप्रसाद के पद) को गाते हुए श्रीरामकृष्ण को समाधि लग गई। उनकी समाधि को देखकर उस मण्डली को यह बिलकुल नहीं मालूम पड़ा कि यह कोई आध्यात्मिक उच्च अवस्था है। उल्टा इसे वे कोई ढोंग या मस्तिष्क का विकार समझ बैठे! उनकी समाधि उतारने के लिए हृदय उनके कान में प्रणव का उच्चारण करने लगा, और उसे सुनते सुनते श्रीरामकृष्ण के मुखमण्डल पर अपूर्व तेज दिखाई देने लगा। अर्धबाह्य दशा प्राप्त होने पर श्रीरामकृष्ण ने सरल सरल दृष्टान्त देकर इतनी सरल भाषा में गूढ़ आध्यात्मिक विषय समझाना शुरू किया कि वे सब लोग उसे सुनते सुनते चित्रवत् तटस्थ होकर अपना देहभान भी भूल गए। मध्याह्न स्नान और भोज-

नादि का समय हो गया तथापि किसी को उसका स्मरण नहीं रहा। उन लोगों की इस प्रकार की तन्मय अवस्था को देख श्रीरामकृष्ण हँसते हुए बोले —“ गाय के झुण्ड में कोई दूसरा जानवर घुस जाय तो सभी गायें उसके शरीर को चाटने लगती हैं। आज की अवस्था भी वैसी ही दिखाई देती है।” तत्पश्चात् वे केशवबाबू से बोले –“ तेरी पूँछ झड़ गई है!” पर यह देखकर कि इसका अर्थ कोई नहीं समझा, वे बोले —“ यह देखो — जब तक पूँछ झड़ नहीं जाती तब तक मेंढक पानी से बाहर नहीं निकलता, पर जब उसकी पूँछ झड़ जाती है, तब वह पानी में भी रह सकता है और पानी के बाहर भी रह सकता है। उसी प्रकार मनुष्य की अविद्यारूपी पूँछ जब तक नहीं झड़ती, तब तक तो वह संसाररूपी पानी में ही रहता है और जब उसकी वह पूँछ झड़ जाती है, तब वह सांसारिक और पारमार्थिक दोनों विषयों में इच्छानुसार विचरण कर सकता है! केशव, हाल में तेरा मन उसी प्रकार का हो गया है और इसीलिए यह संसार में भी और सच्चिदानन्द के ध्यान में भी रह सकता है।” इस प्रकार और भी कुछ समय बातचीत में बिताकर उस दिन श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर लौट आए।

इसी दिन से केशवबाबू की श्रीरामकृष्ण के प्रति इतनी दृढ़ भक्ति हो गई कि जब कभी उन्हें समय मिलता था तब वे श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर आते थे और कभी कभी वे अपने ‘कमल कुटीर’ बंगले में उन्हें ले जाते तथा उनके सत्संग में बहुत सा समय बिताते थे। क्रमशः उन दोनों में इतना प्रेम हो गया कि उनको आपस में मिले बिना चैन ही नहीं पड़ती थी। दोनों की कुछ दिनों तक भेंट न होने पर या तो श्रीरामकृष्ण ही उनके पास आते, या केशवबाबू ही उनसे

मिलने दक्षिणेश्वर जाते थे! वैसे ही ब्राह्मसमाज के वार्षिकोत्सव के समय केशवचन्द्र उन्हें लेकर उत्सव के स्थान में जाते और उनके सहवास में एक दिन व्यतीत करते थे। उनके वार्षिकोत्सव का यह कार्यक्रम ही हो गया था। कई बार तो अपने अनुयायियों के साथ वे जहाज़ में बैठकर दक्षिणेश्वर जाते थे और श्रीरामकृष्ण को जहाज़ में बिठाकर उनका अमृतमय उपदेश सुनते हुए गंगा जी में सैर करते थे!

दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण की भेंट के लिए जाते समय वे कभी भी रिक्तहस्त नहीं जाते थे। फल इत्यादि कुछ न कुछ वे अवश्य साथ ले जाते थे और उसे श्रीरामकृष्ण के सामने रखकर वे उनको प्रणाम करते थे और उनके एक शिष्य के समान उनके पैरों के पास बैठकर उनसे बातचीत करना शुरू करते थे। एक दिन श्रीरामकृष्ण दिल्लगी में उनसे बोले —"केशव! तू अपनी वक्तृता द्वारा सभी को हिला देता है, मुझे भी तो कुछ बता।" केशवचन्द्र इस पर नम्रता से बोले —"मैं क्या लोहार की दूकान में सुई बेचने आऊँ? आप ही कहते जाइए मैं सुनता हूँ! आपके ही श्रीमुख की दो चार बातें मैं लोगों को बताता हूँ, जिसे सुनकर वे गद्गद हो जाते हैं! बस यही मैं करता हूँ।"

एक दिन दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण ने केशवचन्द्र सेन से कहा —"ब्रह्म का अस्तित्व मानना है तो उसके साथ ही ब्रह्मशक्ति का भी अस्तित्व मानना चाहिए। ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति दोनों सदा अभेद भाव से रहती हैं।" केशवबाबू यह बात समझ गए। तब श्रीरामकृष्ण पुनः बोले —"ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति के सम्बन्ध के समान ही भागवत, भक्त और भगवान् तीनों का सम्बन्ध होते हुए वे भी नित्य युक्त हैं। ये

तीनों एक ही हैं। एक के ही तीन रूप हैं।" केशवबाबू को यह बात जँच गई। तब श्रीरामकृष्ण बोले — "गुरु, कृष्ण और वैष्णव ये तीनों भी एक ही हैं, यह बात मैं अब तुझे समझाकर बताता हूँ।" इस पर केशवबाबू हाथ जोड़कर नम्रता से बोले — "महाराज! अब तक जो सुना उसके आगे अभी मेरी बुद्धि दौड़ नहीं सकती, अतः अभी इतना ही बस है।" इसी तरह उन दोनों में सदा दिल खोलकर बातें होती थीं। श्रीरामकृष्ण के दिव्य सहवास का केशवचन्द्र के जीवन पर बहुत परिणाम हुआ और उन्हें उत्तरोत्तर वैदिक धर्म का रहस्य अच्छी तरह समझ में आ जाने पर उनका धार्मिक मत भी आगे चलकर बदलता गया।

कोई विशेष आघात हुए बिना मनुष्य का मन संसार से उचटकर पूर्ण रूप से ईश्वर की ओर नहीं लगता। श्रीरामकृष्ण से परिचय होने के लगभग तीन वर्ष बाद केशवबाबू को अपनी पुत्री का विवाह कूच-बिहार के महाराजा के साथ कर देने के कारण, इस प्रकार का आघात प्राप्त हुआ। इस विवाह से ब्राह्मसमाज में बड़ा ही हल्ला मच गया और ब्राह्मसमाज के जिन लोगों को केशवबाबू का यह कार्य पसन्द नहीं आया उन लोगों ने उस समाज से अलग होकर 'साधारण ब्राह्मसमाज' नामक एक नई संस्था बना ली। दोनों पक्षों में सदा वाद-विवाद और लड़ाई-झगड़े होने लगे। ऐसे छोटे से सामाजिक विषय को लेकर इस प्रकार के झगड़े खड़े होते देख श्रीरामकृष्ण को बहुत बुरा लगा। लड़की के विवाह के सम्बन्ध के ब्राह्मसमाज के नियमों को सुनकर श्रीरामकृष्ण बोले — "जन्म, मृत्यु, विवाह ये सभी ईश्वराधीन बातें हैं। इनके सम्बन्ध में कड़े नियम बनाना उचित नहीं है। केशव ने ऐसा क्यों किया सो मालूम नहीं होता।" इस विवाह की बात आरम्भ कर

यदि कोई श्रीरामकृष्ण के सामने केशवचन्द्र की निन्दा करता था तो वे कहते — "केशव ने ऐसी निन्दा के लायक क्या किया है? केशव संसारी मनुष्य है; अपने लड़के-लड़कियों का जिसमें कल्याण हो ऐसा भी वह न करे? संसारी मनुष्य यदि धर्मानुकूल आचरण रखते हुए काम करे तो उसमें इतनी निन्दनीय बात कौनसी है? केशव ने इसमें कोई अधर्म तो नहीं किया। उसने तो केवल अपना पितृकर्तव्य ही पूर्ण किया।" कुछ भी हो, इस विवाह से उत्पन्न होने वाले लड़ाई-झगड़ों के कारण केशवचन्द्र का मन संसार से हटकर उत्तरोत्तर परमार्थ-मार्ग में अधिकाधिक तन्मय होने लगा।

केशवचन्द्र की भक्ति श्रीरामकृष्ण पर उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। वे उन्हें साक्षात् धर्ममूर्ति समझते थे। उन्हें वे बारम्बार अपने घर ले जाकर अपने सोने-बैठने और ईश्वर-चिन्तन के स्थान में घुमाते फिरते थे और उन स्थानों में उनके चरण पड़ने से वे स्वयं अपने को बड़ा भाग्यवान समझते थे, और प्रकट में यह कह भी डालते थे कि— "अब इनमें से किसी भी स्थान में मैं रहूँ, तो मुझे ईश्वर का विस्मरण नहीं हो सकता!" हममें से कितने ही लोगों ने उन्हें दक्षिणेश्वर में 'जय विधानेर जय' कहकर श्रीरामकृष्ण को साक्षात् ईश्वर जानकर प्रणाम करते हुए देखा है।

दूसरी ओर श्रीरामकृष्ण का भी उन पर अपार प्रेम था। केशवचन्द्र की बुद्धिमत्ता, भक्ति और वक्तृता की वे सब से प्रशंसा करते थे। वे कहते थे — "मैं माता से सदा विनय करता हूँ — माता! केशव की कीर्ति दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़े।" केशवचन्द्र की अन्तिम बीमारी में एक दिन उनकी तबीयत बहुत ही खराब सुनकर

उन्हें बिलकुल चैन न पड़ी, और वे "उसकी बीमारी को कम हो जाने दे" यह विनती श्री जगदम्बा से करने लगे। इतना ही नहीं वरन् "मेरे केशव को अच्छा कर दे तो तुझे गुड़ नारियल चढ़ाऊँगा" यह मानता भी उन्होंने देवी को मान दी। उस बीमारी में उनसे मिलने के लिए भी वे एक-दो बार गये। उसमें से एक अवसर का अत्यन्त हृदयस्पर्शी, रोचक तथा उद्बोधक वृत्तान्त 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत' पुस्तक में वर्णित है। अस्तु—

श्रीरामकृष्ण का केशवचन्द्र पर कितना अद्भुत प्रेम था यह केशवचन्द्र की मृत्यु (सन् १८८४) के समय सब को प्रतीत हुआ। श्रीरामकृष्ण कहते थे—"केशवचन्द्र की मृत्यु का समाचार सुनकर मैं तीन दिन तक बिस्तर में पड़ा रहा। मुझे ऐसा मालूम होता था कि मेरा एक अंग ही मानो गलकर गिर गया है।"

१५–ब्राह्मसमाज और श्रीरामकृष्ण

कलकत्तानिवासियों को श्रीरामकृष्ण का वृत्तान्त सर्वप्रथम श्री. केशवचन्द्र सेन द्वारा ही विदित हुआ। केशवचन्द्र सेन बड़े उदार स्वभाव के तथा गुणग्राही पुरुष थे। अतः श्रीरामकृष्ण की दिव्य संगति में उन्हें जो नई नई बातें या नये नये विचार मालूम होते, उन्हें वे बड़े प्रेम से अपने व्याख्यान में बताते और अपने ही समान सभी को श्रीरामकृष्ण की दिव्य संगति का लाभ हो, इस उद्देश से वे श्रीरामकृष्ण की तथा उनकी उच्च आध्यात्मिक अवस्था की बातें 'सुलभ समाचार' 'सण्डे मिरर', 'थिइस्टिक क्वार्टरली रिव्हू' आदि समाचार-पत्रों में बारम्बार लिखकर प्रकाशित करते। व्याख्यान में और उपासना के समय भी वे श्रीरामकृष्ण के मुख से सुने हुए विचारों और उक्तियों का मनमाना उपयोग करते। उसी तरह फुरसत मिलते ही वे स्वयं और कभी-कभी शिष्य मण्डली के साथ दक्षिणेश्वर जाते, तथा विविध विषयों पर वार्तालाप करते हुए उनके सत्संग में कुछ समय आनन्द से बिताते थे।

ब्राह्मसमाज के केशवचन्द्र सेन आदि नेताओं की धर्म-जिज्ञासा और ईश्वर-प्रेम को देखकर, श्रीरामकृष्ण उन्हें साधन-भजनादि में रुचि दिलाकर ईश्वर-दर्शन का मार्ग दिखाने का सदैव प्रयत्न करते थे। उनके साथ ईश्वरी चर्चा और भजन करने में उन्हें इतना आनन्द आता था कि वे कभी कभी स्वयं ही केशवचन्द्र के घर चले

जाते थे। समाज के अन्य लोगों से परिचय हो जाने पर, वे उन लोगों के भी घर जाकर वहाँ उनके साथ कुछ समय आनन्द से बिताते थे। कई बार ऐसा भी होता था कि उपासना होते समय वहाँ पर श्रीरामकृष्ण अकस्मात् आ जायँ, तो केशवचन्द्र अपनी उपासना बन्द करके व्यासपीठ पर से नीचे उतर जाते थे और श्रीरामकृष्ण के साथ ईश्वरी विषयों पर बातें शुरू कर देते थे और उनके श्रीमुख से प्रवाहित होने वाले उपदेशामृत का सब लोग मिलकर पान करते थे! तब तो उस दिन की उपासना अधूरी ही रह जाती थी।

श्रीरामकृष्ण का स्वभाव ही ऐसा था कि किसी को अन्तःकरण से ईश्वर पर प्रेम करते देख वे उसे अपना अत्यन्त आत्मीय जान लेते थे और वे सदैव इस बात पर ध्यान रखते थे कि उसके ईश्वर-दर्शन के मार्ग में उत्तरोत्तर किस तरह प्रगति हो रही है और वे उसको उस क़ाम में हर तरह से सहायता देते थे। इसी कारण ब्राह्म समाज के नेताओं में से केशवचन्द्र सेन, विजयकृष्ण गोस्वामी, प्रतापचन्द्र मुजुमदार, चिरंजीव शर्मा, शिवनाथ शास्त्री आदि लोगों पर उनका बड़ा प्रेम था। इन सब सच्चे ईश्वरानुरागी लोगों के साथ बैठकर भोजन करने में भी वे कभी नहीं हिचकते थे; क्योंकि वे कहते थे कि ऐसे लोगों की एक भिन्न ही जाति होती है। इन सब लोगों के मन पर पाश्चात्य शिक्षा और विचार का प्रभाव रहने के कारण उनकी उपासना आदि प्रसगों में भी अन्तःकरण की उमंग की अपेक्षा बाहरी दिखावट या आडम्बर थोड़ा बहुत अवश्य घुस गया था। उसे दूर करने के लिए तथा वे लोग ईश्वर-प्राप्ति को ही अपने जीवन का ध्येय जानें इस हेतु से, वे उन लोगों को सदा

साधना आदि पर विशेष ध्यान देने के लिए जोर देते थे। उनके इस उपदेश के अनुसार चलने के कारण केशवचन्द्र सेन की आध्यात्मिक उन्नति विशेष हो गई। वैसे ही ईश्वर का 'माता' यह प्यारा नाम और ईश्वर की मातृभाव से उपासना भी उनके समाज में प्रचलित होने लगी और समाज के भजन, पद और साहित्य में भी श्रीरामकृष्ण का भाव प्रविष्ट होकर उसमें एक प्रकार की सजीवता और मधुरता उत्पन्न हो गई।

श्रीरामकृष्ण को यह बात पूर्ण रीति से मालूम थी कि मैं जो कुछ कहूँगा वह सब ये लोग मान लें ऐसा नहीं है। इसीलिए उपदेश की बातें बता चुकने पर वे बहुधा उनसे कह देते —"तुम लोगों को मुझे जो कुछ बताना था सो बता दिया। इसमें से जितना तुम्हें जँचे उतना ग्रहण करो।" उन्हें यह भी मालूम था कि ब्राह्मसमाज के सभी सभासद केशवचन्द्र के समान अन्तःकरण से ईश्वर के भक्त नहीं हैं। वे कहते थे — "एक दिन मैं केशव के प्रार्थना-मन्दिर में गया था। उस समय वहाँ उपासना हो रही थी, ईश्वर के ऐश्वर्य का बहुत समय तक वर्णन करके वक्ता महाशय बोले —'अच्छा अब आइए हम सब ईश्वर का ध्यान करें।' मैं समझा कि अब ये लोग बहुत समय तक ध्यानस्थ रहेंगे। पर हुआ क्या? दो मिनट में ही उनका ध्यान समाप्त भी हो गया। इस प्रकार के ध्यान से कहीं ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है? उन लोगों के ध्यान करते समय मैं सभी के चेहरे की ओर देख रहा था और ध्यान समाप्त होने के बाद केशव से बोला —'तुममें से बहुतों को ध्यानावस्थित देखकर मुझे कैसा लगा, बताऊँ? यहाँ दक्षिणेश्वर में कई बार झाऊतला की ओर बानरों का झुण्ड आता है। वे सब बानर कैसे बिल्कुल चुपचाप बैठे रहते हैं। देखने वाले समझते हैं 'अहाहा! कितने अच्छे हैं ये!

इनको लन्दफन्द छल-छिद्र कुछ भी मालूम नहीं है, भला ! ये कितने शान्त हैं !' पर क्या वे सचमुच शान्त रहते हैं? छिः, राम का नाम लो! 'किसके बगीचे में फल लगे हैं, किसकी बाड़ी में ककड़ी और कुम्हड़ा है, कहाँ इमली है'—यही सारे विचार उनके मन में चलते रहते हैं! बस! थोड़ी ही देर में एकदम 'हूप्' करके कूदते-फांदते, वे क्षणार्ध में अदृश्य हो जाते हैं और किसी बगीचे में धड़ाधड़ कूदकर उसका सत्यानाश कर डालते हैं!' यहाँ भी मुझे बहुतों का ध्यान उसी प्रकार का दिखाई दिया!' इसे सुनकर सभी लोग हँसने लगे।"

अपने शिष्य-समुदाय को भी उपदेश देते समय वे कई बार इसी तरह विनोद किया करते थे। एक दिन स्वामी विवेकानन्द उनके सामने भजन कर रहे थे। उस समय वे ब्राह्मसमाज के अनुयायी थे; अतः रोज प्रातः सायं समाज के नियम के अनुसार उपासना ध्यान आदि करते थे। एक बार वे समाज-संगीत में से यह पद तन्मय होकर गा रहे थे—"सेई एक पुरातन पुरुष निरंजन, चित्त समाधान कर रे।" गाते गाते यह पंक्ति आई—"भजन साधन तार, कर रे निरन्तर।" इस चरण में दिया हुआ उपदेश विवेकानन्द के मन में अच्छी तरह दृढ़ता से जम जाय इस उद्देश से वे एकदम बोल उठे—"अरे! ऐसा मत कह! उसके बदले 'भजन साधन तार, कर रे दिने दुवार' ऐसा कह! अपने को जो कभी करना ही नहीं है, उसे जोर जोर से कहने से क्या मतलब?" इसे सुनकर सब लोग खिलखिलाकर हँसने लगे और विवेकानन्द भी मन में कुछ कुछ शरमाए।

और एक समय उपासना के सम्बन्ध में केशवचन्द्र सेन आदि से श्रीरामकृष्ण बोले, "आप लोग ईश्वर के ऐश्वर्य का ही इतना

वर्णन क्यों करते हैं? बाप के सामने खड़ा होकर लड़का 'मेरा बाप कितना धनवान है, उसके कितने बाग-बगीचे हैं' ऐसा कहता है या कि उनका कितना प्रेम मुझ पर है इस विचार में मग्न रहता है? बाप ने लड़के को अच्छा खाने पीने को दिया, सुख में रखा, तो उसमें कौनसी विशेषता है? यदि हम सब ईश्वर की सन्तान हैं तो उसको ऐसा करना ही चाहिए। इसलिए जो सच्चा भक्त होता है वह ऐसे विचार मन में न लाकर, अपने ऊपर ईश्वर का कितना प्रेम है यही सोचते सोचते उसी विचार में तन्मय होकर उस (ईश्वर) को हर तरह से हम कैसे अपना बना सकते हैं, यही चिन्तन करते करते उस पर अधिकाधिक प्रेम करने लगता है। अपना सब कुछ (सर्वस्व) उसी को जानकर, इसी तरह की दृढ़ भावना से उसके पास हठ पकड़कर बैठ जाता है, उस पर गुस्सा होता है, उससे जिद करके कहता है—'भगवन्! मेरी प्रार्थना तुझको पूर्ण करनी ही चाहिए, मुझको तुझे दर्शन देना ही चाहिए।' पर यदि ईश्वर के ऐश्वर्य की बातों का ही सतत चिन्तन किया जाय तो 'ईश्वर अपना ही है—यह भावना उतनी दृढ़ नहीं हो सकती और उस पर अपना उतना ज़ोर भी नहीं चल सकता। ऐश्वर्य के चिन्तन से मन में एक प्रकार का भय उत्पन्न होता है और ईश्वर से अपना इतना प्रेममय और निकट सम्बन्ध नहीं रह सकता, इतनी आत्मीयता का भाव नहीं हो सकता। तब मन में यह आने लगता है कि 'ईश्वर कितना महान् है, हम उसके सामने कितने क्षुद्र हैं, कितने छोटे हैं, और वह हमसे कितना दूर है!' यदि उसे प्राप्त करना है तो उसके साथ अत्यन्त आत्मीयता का सम्बन्ध रखना चाहिए!*

ईश्वर को प्राप्त करने के लिए साधन-भजन करने तथा विषय-वासना के त्याग की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके सिवाय और भी एक बात श्रीरामकृष्ण की संगति में ब्राह्मसमाज वालों को मालूम हो गई। वह बात है ईश्वर का साकार भी होना। पाश्चात्य धर्मप्रचारकों के मुँह से सुनकर और कुछ अंग्रेजी पुस्तकों को पढ़कर उनकी यह धारणा हो गई थी कि ईश्वर केवल निर्गुण निराकार है और मूर्ति में उसके आविर्भाव की कल्पना करके उसकी पूजा आदि करना महापाप है। परन्तु "निराकार जल में जैसे साकार वर्फ जम जाता है उसी तरह निराकार सच्चिदानन्द को भक्तिरूपी ठण्डक से साकार रूप प्राप्त होता है," "जैसे वकील को देखते ही अदालत की याद आती है, उसी तरह प्रतिमा पर से ईश्वर की याद आती है", "साकार मूर्ति का सहारा लेकर ईश्वर के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार होता है",—इत्यादि प्रतीकोपासना की बातें श्रीरामकृष्ण के मुँह से सुनकर उनकी समझ में आ गया कि जिसे हम इतने दिनों तक वदनाम करते थे, उस मूर्ति-पूजा के पक्ष में भी कुछ महत्वपूर्ण बातें विचार करने योग्य हैं। तदनन्तर श्रीरामकृष्ण के मुख से "अग्नि और उसकी दाहक शक्ति जैसे एकरूप हैं, उसी प्रकार ब्रह्म और उसकी जगत्प्रसवकारिणी शक्ति भी एकरूप हैं—" इस सिद्धान्त को सुनकर उन लोगों की साकारोपासना की कल्पना पर भी नया ही प्रकाश पड़ा और उन लोगों को निश्चय हो गया कि जैसे ईश्वर को केवल साकार प्रतिपादन करने में दोष है वैसे ही ईश्वर को केवल निराकार वताने में भी दोष है। श्रीरामकृष्ण ने एक दिन केशवचन्द्र आदि से कहा—"ईश्वरस्वरूप की 'इति' करना असम्भव है। वह

साकार है, निराकार भी है और इसके अतिरिक्त और भी कैसा कैसा है सो कौन जान सकेगा और कौन बता सकेगा?"

केशवचन्द्र सेन की लड़की का कूचविहार के राजा के साथ विवाह होने के बाद ब्राह्मसमाज में इस विषय को लेकर बड़ा विवाद मचा, और अन्त में उस समाज के 'भारतवर्षीय' और 'साधारण ब्राह्मसमाज' ऐसे दो भाग हो गए; परन्तु फिर भी श्रीरामकृष्ण का सम्बन्ध ब्राह्मसमाज से कायम ही रहा और दोनों ही समाजों पर उनका प्रेम वैसा ही बना रहा तथा दोनों ही समाज के साधकों को उनसे पूर्ववत् ही आध्यात्मिक मार्ग में सहायता मिलती रही।

समाज के दो विभाग होने पर, साधारण ब्राह्मसमाज का आचार्य-पद श्री विजयकृष्ण गोस्वामी और शिवनाथ शास्त्री को प्राप्त हुआ। विजयकृष्ण के अत्यन्त भक्तिमान् होने के कारण श्रीरामकृष्ण का उन पर बड़ा प्रेम था। श्रीरामकृष्ण के उपदेश के अनुसार साधना शुरू करने पर थोड़े ही समय में उनकी आध्यात्मिक उन्नति बड़े वेग से हो गई। कीर्तन के समय की उनकी तन्मय अवस्था, उनके भगवत्प्रेम में रंगे हुए नृत्य और उनकी भावावस्था आदि को देखकर लोग मुग्ध हो जाते थे। उनकी उच्च आध्यात्मिक अवस्था के सम्बन्ध में श्रीराम-कृष्ण कहते थे—"जिस बैठकखाने में प्रवेश करने पर साधना पूर्ण होकर ईश्वरदर्शन प्राप्त होता है, विजय उसके पास की कोठरी में पहुँचकर उस बैठकखाने को खोलने के लिए दरवाजा खटखटा रहा है।" अस्तु—

ब्राह्मसमाज के दो विभाग हो जाने के समय से उन दोनों पक्षवालों के मन में एक दूसरे के प्रति अच्छे भाव नहीं थे, तो भी

दोनों पक्ष वाले श्रीरामकृष्ण का एक ही जैसा मान करते थे और वारम्वार उनके दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर आते थे। एक दिन केशवचन्द्र अपने अनुयायियों को लेकर दक्षिणेश्वर आए थे कि विजयकृष्ण भी अपनी मण्डली के साथ वहाँ पहुँच गए। ऐसी अचानक भेंट हो जाने से स्वभावतः दोनों पक्ष वालों को संकोच सा होने लगा। स्वयं केशवचन्द्र और विजयकृष्ण को भी कुछ अटपटा सा मालूम होने लगा। यह वात श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में आते ही वे हँसते हुए कहने लगे:—

"सुनिये! एक वार ऐसा हुआ कि भगवान शंकर और श्रीरामचन्द्र में कुछ विवाद हो गया और दोनों में युद्ध होने लगा। अव शंकर के गुरु राम और राम के गुरु शंकर होने के कारण, युद्ध समाप्त होने पर उन दोनों की पूर्ववत् मैत्री होने में देरी नहीं लगी; पर शंकर की सेना के भूत-प्रेतों और राम की सेना के वानर-रीछों की मैत्री नहीं हुई! उन लोगों का युद्ध होता ही रहा! (केशव और विजय को लक्ष्य करते हुए) इसीलिए कहता हूँ कि जो होना था सो गया, अव कम से कम तुम दोनों के मन में तो एक दूसरे के प्रति परस्पर वैरभाव या वैमनस्य न रहे! और यह भाव यदि रहे, तो रहने दो अपने वानर-रीछों और भूत-प्रेतों में!" उस समय से केशवचन्द्र और विजयकृष्ण के वीच में पुनः वोल-चाल शुरू हो गई। विजयकृष्ण के साधन-भजन में जैसे जैसे अधिक उन्नति होती गई, वैसे वैसे उनको मालूम पड़ने लगा कि समाज के काम से छुट्टी लेकर सारा समय साधना में ही लगाना चाहिए।

अतः उन्होंने शीघ्र ही साधारण ब्राह्मसमाज का नेतृत्व छोड़ दिया।

उनके साथ ही और भी बहुत से लोग समाज से अलग हो गए, जिससे वह समाज दुर्बल और अल्पसंख्यक हो गया। विजयकृष्ण के बाद समाज के नेतृत्व का भार श्री शिवनाथ शास्त्री पर आ पड़ा। शिवनाथ शास्त्री भी श्रीरामकृष्ण के पास बारम्बार आया जाया करते थे। परन्तु उन्हें यह भय था कि श्रीरामकृष्ण के उपदेश से विजय-कृष्ण के विचार बदल गए और इसलिए उन्होंने समाज छोड़ दिया इसी कारण उन्होंने अब श्रीरामकृष्ण के पास पहले के समान बारम्बार आना प्रायः बन्द ही कर दिया। स्वामी विवेकानन्द उस समाज के अनुयायी थे और उन पर शिवनाथ का भी बहुत प्रेम था। समाज के अन्य लोगों के समान ही, स्वामी विवेकानन्द भी बारम्बार केशवचन्द्र के पास और दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के पास जाया करते थे। श्रीरामकृष्ण के पास उनके जाने आने का हाल सुनकर शिवनाथ ने एक दिन विवेकानन्द को उपदेश किया कि "श्रीराम-कृष्ण के पास बार बार मत जाया करो," और उन्होंने यह भी कहा — "ऐसे ही यदि सब लोग वहाँ जाने लगेंगे तो समाज शीघ्र ही टूट जायगा।" वे समझते थे कि श्रीरामकृष्ण की यह भाव-समाधि एक प्रकार का मस्तिष्क-रोग है। इसे सुनकर श्रीरामकृष्ण ने उन्हें जो उत्तर दिया उसका वर्णन पीछे हो चुका है। (भाग १, पृ. ३५२)

श्रीरामकृष्ण के प्रभाव से समाज में साधनानुराग उत्पन्न हुआ और ईश्वर की प्राप्ति को ही अपने जीवन का अन्तिम ध्येय बनाकर ईश्वर-प्राप्ति के लिए मन लगाकर प्रयत्न करना भी बहुतों ने प्रारम्भ कर दिया। एक दिन आचार्य प्रतापचन्द्र मुजुमदार दक्षिणे-

श्वर में श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए आए हुए थे। उन्होंने समाज पर श्रीरामकृष्ण के उपदेश के परिणाम के सम्बन्ध में यह कहा— "श्रीरामकृष्ण के दर्शन होने के पूर्व, धर्म किसे कहते हैं यह कोई समझता भी नहीं था, सब आडम्बर ही था। धार्मिक जीवन कैसा होता है, यह बात श्रीरामकृष्ण की संगति का लाभ होने पर ही बहुतों को जान पड़ा।" उस दिन प्रतापचन्द्र के साथ चिरंजीव शर्मा भी थे।

नवविधान समाज पर श्रीरामकृष्ण का प्रभाव विशेष रूप से दिखाई देता था, पर विजयकृष्ण के आचार्य-पद पर रहने तक साधारण ब्राह्मसमाज पर भी उनका प्रभाव कुछ कम नहीं था, पर विजयकृष्ण तथा उनके साथ ही अन्य कुछ सच्चे साधकों के समाज छोड़ देने के समय से ही उस समाज पर से श्रीरामकृष्ण का प्रभाव कम होने लगा। नवविधान समाज का एक विशेष अंग कहा जाय तो आचार्य चिरंजीव शर्मा के रचे हुए संगीत पदों का संग्रह ही था। परन्तु ऐसे उत्तम भावोद्दीपक पद, श्रीरामकृष्ण के सहवास और उनके नाना प्रकार के भाव-दर्शन, समाधि आदि की जानकारी प्राप्त करने के कारण ही वे बना सके। चिरंजीव शर्मा स्वयं उत्तम गायक थे, उनके गायन को सुनते हुए हमने कई बार श्रीरामकृष्ण को समाधि-मग्न होते देखा है।

इस प्रकार ब्राह्मसमाज पर श्रीरामकृष्ण के उपदेश का परिणाम हुआ। 'जितने मत उतने मार्ग' यह नया सिद्धान्त आध्यात्मिक जगत् में उन्होंने अपने अनुभवों से खोज निकाला था। इसलिए सर्व धर्मों और सर्व मतों पर उनका विश्वास था और यही विश्वास उनके मन

में ब्राह्मसमाज के प्रति भी था। संकीर्तन के अन्त में ईश्वर को और सभी सम्प्रदाय के साधकों को नमस्कार करते समय 'आधुनिक ब्रह्मवादियों को प्रणाम' कहकर समाज की भक्तमण्डली को नमस्कार करना वे कभी भी नहीं भूलते थे। श्रीरामकृष्ण का साधनायज्ञ पूर्ण होकर उनमें गुरु-भाव का पूर्ण विकास होने के बाद, मुख्यतः ब्राह्मसमाज से ही उनके कार्य का आरम्भ हुआ और कलकत्ते के सर्वसाधारण लोगों को श्रीरामकृष्ण का परिचय ब्राह्मसमाज ने ही करा दिया। अस्तु —

हम ऊपर बता आए हैं श्रीरामकृष्ण कई बार ब्राह्मसमाज के अनुयायियों के घर पर भी जाकर भजन और ईश्वरी चर्चा करके आनन्द प्राप्त करते थे। इस प्रकार के दो मजेदार आनंदमय प्रसंगों में हम भी सौभाग्य से उपस्थित थे। अतः प्रत्यक्ष आँखों से देखे हुए इन प्रसंगों में से एक का वर्णन अगले प्रकरण में किया जाता है।

---

१६ — मणिमोहन मल्लिक के घर में ब्राह्मोत्सव

"कलियुग में नामस्मरण के समान दूसरा सरल साधन नहीं है।"
"नामस्मरण से मनुष्य का मन और शरीर भी शुद्ध हो जाता है।"

—श्रीरामकृष्ण

कलियुग सम युग आन नहीं, जो नर कर विश्वास।
गाइ रामगुणगण विमल, भव तर विनहिं प्रयास ॥

— तुलसीदास

सन् १८८३ का नवम्बर मास था। उस मास की २५ तारीख को मणिमोहन मल्लिक के घर ब्राह्मसमाज के वार्षिकोत्सव के अवसर पर श्रीरामकृष्ण आमन्त्रित थे। हम भी उस दिन दोपहर को श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर गए हुए थे; उस समय वे वहाँ से जाने की तैयारी में थे। उनके श्रीचरणों में मस्तक रखकर प्रणाम करते ही वे बोले—"अरे वाह आ गए तुम लोग? अच्छा है, कोई हर्ज नहीं, बैठो। थोड़ी ही देरी और होती तो भेंट न होती। आज कलकत्ता जाना है। गाड़ी लाने गए हैं। वहाँ ब्राह्मसमाज का उत्सव है। कुछ भी हो, भेंट हो गई यह अच्छा हुआ। भेंट न होकर वैसे ही लौटना पड़ता, तो बुरा लगता, है न?" हम लोग नीचे एक ओर बैठ गए। कुछ समय बाद हम लोग बोले—"महाराज! आप जा रहे हैं, वहाँ क्या हम को भी आने देंगे?"

श्रीरामकृष्ण—"हाँ! क्यों नहीं आने देंगे? तुमको आना हो तो खुशी से आओ। सिन्दुरिया पट्टी में मणिमोहन मल्लिक का घर है।"

पास ही एक साधारण गोरा सा, दुबला पतला लाल कपड़ा पहने हुए जवान लड़का खड़ा था। उसकी ओर देखकर श्रीरामकृष्ण बोले—"अरे, इनको मणिमोहन के घर का नंबर बता दे भला।" उसने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया—"नं. ८१, चितपुर रोड, सिन्दुरिया पट्टी।" इसके लगभग एक महीने बाद हमें ज्ञात हुआ कि उस युवक का नाम बाबूराम है और ये ही आगे चलकर स्वामी प्रेमानन्द के नाम से विख्यात हुए।

थोड़ी देर में गाड़ी आगई। बाबूराम को अपना हाथ-रूमाल, थैली, पिछौरी आदि चीजें साथ रखने के लिए कहकर श्रीरामकृष्ण श्री जगदम्बा का दर्शन करके गाड़ी में बैठ गए। एक किनारे बाबूराम भी बैठ गया; गाड़ी कलकत्ते की ओर रवाना हो गई। बाद में हम नाव में बैठकर कलकत्ता गए और ढूँढ़ते ढूँढ़ते करीब चार बजे मणि-मोहन के घर पहुँचे। वहाँ पूछने पर मालूम हुआ कि श्रीरामकृष्ण ऊपर हैं। ऊपर जाकर देखा तो बैठकखाना पत्रपुष्पों से सुन्दर सजाया गया था और कुछ लोग आपस में बातचीत कर रहे थे। उससे मालूम हुआ कि माध्याह्न उपासना, भजन आदि अभी समाप्त हुआ है, और अब इसके बाद सायंकालीन उपासना और कीर्तन आदि होगा। स्त्री-भक्तों के आग्रह के कारण श्रीरामकृष्ण भीतर गए थे।

यह देखकर कि सायंकालीन उपासना में अभी देर है, हम लोग घूमने के लिए बाहर चले गए। संध्या होते ही हम लोग वहाँ वापस लौट आए। घर के सामने के रास्ते पर से ही हमें भीतर भजन और

मृदंग की आवाज सुनाई दी। कीर्तन अभी ही शुरू हुआ होगा यह समझकर हम लोग शीघ्रता से उस बैठकखाने की ओर गए। वहाँ हमें जो दृश्य दिखाई दिया उसका ठीक ठीक वर्णन करना असम्भव है। बैठकखाने के भीतर और बाहर बड़ी भीड़ थी। प्रत्येक दरवाजे और खिड़की के सामने इतनी भीड़ थी कि उसमें से भीतर जाना या बाहर आना बिलकुल असम्भव था। हर एक सिर ऊपर किये हुए भक्तिपूर्ण अन्तःकरण से एक टक भीतर की ओर देख रहा था। हर एक आगे बढ़ने का प्रयत्न करता था। ऐसी विकट भीड़ में से धक्के खाते खाते हम लोग किसी तरह भीतर तो पहुँचे। वहाँ बाहर की अपेक्षा कुछ कम भीड़ थी, इसलिए भीतर का दृश्य किसी तरह दिख जाता था।

अहाहा! कैसा था वह दृश्य! उस बैठकखाने में मानो स्वर्गीय आनन्द का तूफान उमड़ पड़ा हो! सब लोग तन्मय हो गये थे। संकीर्तन करने वालों में से कोई हँसते थे, कोई रोते थे, कोई ज़ोर ज़ोर से नाचते थे, कोई जमीन पर गिरकर लोटपोट हो रहे थे। कोई अत्यन्त व्याकुल होकर उन्मत्त के समान आचरण करते थे और इन सब उन्मत्तों के मध्यभाग में भावावेश में श्रीरामकृष्ण स्वयं नृत्य कर रहे थे। नाचते हुए वे आगे जाते और वहाँ से पुनः पीछे सरकते हुए वहीं लौट जाते। इतनी जबरदस्त भीड़ थी, तो भी वे जब आगे या पीछे सरकते थे, तब पास में बैठे हुए लोग मन्त्रमुग्ध-से उनके लिए रास्ता बना देते! उनके मुख पर हास्य की छटा थी और वदनमण्डल पर अपूर्व तेज चमक रहा था। उनके शरीर से मधुरता और कोमलता के भाव मानो टपक रहे थे और साथ ही साथ नृत्य करते समय

उनके शरीर में सिंह का बल प्रकट हुआ दिखाई देता था। उनके उस नृत्य की उपमा ही नहीं थी, उसमें कोई आडम्बर नहीं था, कूद-फांद नहीं थी, न कहीं बलपूर्वक अंगविक्षेप करने का प्रयत्न ही था। सब कार्य बिलकुल स्वाभाविक और अन्तःकरण की स्फूर्ति से होता हुआ दिखाई देता था। सुन्दर निर्मल जल में जैसे मछली छोड़ दी जाय, तो वह जैसे आनंद से उसमें क्रीड़ा करती है, कभी शान्ति से, कभी जल्दी जल्दी तैरती है और पानी में चारों ओर चक्कर लगाती है, वही हाल श्रीरामकृष्ण के इस अपूर्व नृत्य का था! ऐसा मालूम होता था कि आनंद-सागर में गोता लगाने से उनके अंतःकरण में जो अपार सुख और आनंद हो रहा है उसे ही वे नृत्य के द्वारा प्रकट करके दिखा रहे हैं। इस अपूर्व नृत्य के बीच बीच में वे संज्ञा-शून्य हो जाते थे; उनकी पहनी हुई धोती भी गिर पड़ती तब कोई भी उसे उनकी कमर में किसी तरह लपेट देता! भावावेश में किसी को बेहोश होते देख वे उसके वक्षःस्थल को स्पर्श करके उसे पुनः सचेत कर देते थे! ऐसा दिखता था कि उनके शरीर से एक दिव्य और उज्ज्वल आनंद का प्रवाह चारों ओर बह रहा है और उस प्रवाह में आ पड़ने वाले यथार्थ भक्त को ईश्वर का दर्शन हो रहा है। मृदु वैराग्यवान् को तीव्र वैराग्य हो रहा है, सबके मन से आलस्य दूर हो गया है और आध्यात्मिक मार्ग में अग्रसर होने की शक्ति सभी को मिल रही है; इतना ही नहीं वरन् घोर विषयी मनुष्य के मन से भी क्षण भर के लिए संसार की आसक्ति दूर हो रही है। उनके भावावेश के प्रवाह में सभी लोग आ पड़े थे और उस प्रवाह की पवित्रता से उनके मन साफ धोये जाकर उच्च आध्यात्मिक सीढ़ियों पर चढ़ रहे

थे। साधारण ब्राह्मसमाज के आचार्य श्री विजयकृष्ण गोस्वामी की तो बात ही निराली थी। ब्राह्म मण्डली में से कुछ अन्य लोग भी उस दिन भावाविष्ट और संज्ञाशून्य हो गए थे! आचार्य चिरंजीव शर्मा की भी वही अवस्था थी! तन्मय होकर भक्तिविषयक पद अपनी सुरीली मधुर आवाज़ में एकतारि (वाद्य) पर गाते गाते उन्हें भी भावावेश हो गया! इस प्रकार दो-ढाई घण्टे तक यह अपूर्व संकीर्तन और नृत्य चलने के बाद "एमन मधुरनाम जगते आनिल के" यह पद गाया गया, और सर्व धर्म-सम्प्रदायों और भक्ताचार्यों को प्रणाम करने के बाद उस दिन का वह आनंद का बाज़ार उठ गया।

संकीर्तन के अन्त में सभी लोगों के बैठ जाने पर "हरि-रस-मदिरा पिये मम मानस मात रे" यह पद गाने के लिए श्रीरामकृष्ण ने आचार्य नगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय से प्रार्थना की और उन्होंने भी तन्मय होकर वह पद दो तीन बार दुहराकर गाया और सब को आनन्दित किया।

इसके बाद "रूपरसादि विषयों से मन को बाहर निकालकर ईश्वर की सेवा में लगाए रखने से जीव को परम शान्ति प्राप्त होती है—" इस आशय का उपदेश श्रीरामकृष्ण ने श्रोतागणों को दिया। बैठकखाने की एक ओर परदे की आड़ में स्त्रियाँ भी बैठी थीं। उन्होंने भी आध्यात्मिक विषयों पर अनेक प्रश्न श्रीरामकृष्ण से पूछे और श्रीरामकृष्ण ने भी उनको उचित उत्तर दिया। उस दिन बताये हुए विषय श्रोता लोगों के मन में दृढता से जम जायँ इस उद्देश से उत्तर देते हुए ही उन्होंने श्री जगदम्बा का नाम-गान शुरू कर दिया और रामप्रसाद, कमलाकान्त आदि साधकों के अनेक भक्तिरसपूर्ण पद भी उन्होंने स्वयं गाए।

इधर श्रीरामकृष्ण भजन गाने में मग्न थे, उसी समय श्री विजय-कृष्ण घर में एक तरफ कुछ भक्तों को श्री तुलसीदास कृत रामायण सुनाकर उसका अर्थ समझा रहे थे। कुछ समय के बाद सायंकाल की उपासना शुरू करने के पूर्व श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करने के लिए वे बैठकखाने में आए। उन्हें देखते ही श्रीरामकृष्ण एक छोटे बालक के समान उनकी दिल्लगी करने लगे। वे बोले, "आजकल विजय को संकीर्तन के सिवाय और कुछ नहीं सूझता। यह तो सब ठीक है, पर उसका नाचना शुरू होते ही मेरी छाती धड़कने लगती है! हाँ! उसका क्या ठिकाना? किसी समय पटाव के मयाल तख्ते टूट पड़ें तो? (सभी लोग हँसते हैं।) नहीं नहीं, मैं सच कहता हूँ। हमारे गाँव में एक बार सचमुच ऐसी घटना हुई थी। एक साधु महाराज अपने शिष्य के घर दूसरी मंज़िल पर संकीर्तन कर रहे थे। मयाल तख्ते बड़े मजबूत नहीं थे। संकीर्तन अच्छे रंग में था। नृत्य भी प्रारम्भ हुआ। साधु महाराज भी अच्छे तेरे जैसे हृष्टपुष्ट थे। नाचते नाचते एकाएक पटाव की लकड़ी टूट गई और साधु महाराज एकदम नीचे मंज़िल में आ पहुँचे! इसीलिए डर लगता है, कहीं तेरे भी नृत्य में ऐसा ही न हो जाय!" (सभी हँसते हैं।) विजय-कृष्ण के गेरुए वस्त्र की ओर देखकर वे बोले—"आजकल गेरुए रंग का भी विजय को बड़ा शौक हो गया है। दूसरे लोग तो केवल अपने पहनने के कपड़े को ही गेरुआ रंगाते हैं पर विजय की चाल देखो। उसके वस्त्र, चादर, अंगरखा, जूते—सभी गेरुए हैं! पर मैं यह नहीं कहता हूँ कि यह कुछ खराब है। एक बार मन की ऐसी अवस्था हो जाती है कि उस समय ऐसा ही करने की बड़ी इच्छा

होती है। गेरुआ के सिवाय और कुछ अच्छा नहीं लगता। और यह ठीक भी है, क्योंकि गेरुआ रंग त्याग का ही चिह्न है न? इसलिए साधक को वह रंग हमेशा ईश्वर के लिए सर्वस्व-त्याग के व्रत का स्मरण दिलाया करता है।" उस समय विजयकृष्ण ने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया और "ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः। तुझे शान्ति प्राप्त हो!" ऐसा आशीर्वाद प्रेमपूर्वक प्रसन्न मन से उन्हें श्रीरामकृष्ण ने दिया।

श्रीरामकृष्ण के पद गाते समय और एक छोटी सी बात हुई, परन्तु उससे श्रीरामकृष्ण के स्वभाव की अच्छी कल्पना हो सकती है और सदैव ईश्वर-चिन्तन में तन्मय रहते हुए भी वे बाह्य जगत् की वस्तुओं की ओर कितनी बारीकी से निगाह रखते थे यह ज्ञात हो सकता है। गाना गाते समय उनकी दृष्टि सहज ही बाबूराम के मुख की ओर गई और वे तुरन्त ताड़ गये कि इसे भूख लगी है। उन्होंने तुरन्त ही अपने लिए आवश्यक बताकर थोड़े से सन्देश (मिठाई) और एक गिलास जल मँगवा लिया और हमारे पहले वह कभी नहीं खायगा यह समझकर उसमें से नाम को कुछ स्वयं खाकर बाकी सब उन्होंने बाबूराम को खाने के लिए दे दिया!

विजयकृष्ण श्रीरामकृष्ण का आशीर्वाद लेकर उपासना शुरू करने के लिए नीचे आये और श्रीरामकृष्ण फलाहार के लिए भीतर बुला लिए गये। रात के नौ बज गये थे। हम लोग बैठकखाने से नीचे उतरकर विजयकृष्ण की उपासना सुनने के लिए कुछ रुक गये। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" आदि ब्रह्म की महिमा बताने वाले वाक्यों से उपासना प्रारम्भ की गई। कुछ समय में श्रीरामकृष्ण भी वहाँ आ गये

और उपासना सुनते हुए सब के साथ १०–१५ मिनट बैठ रहे। तदनन्तर उन्होंने जमीन पर साष्टांग प्रणाम किया और रात्रि अधिक हुई जानकर वापस जाने के लिए गाड़ी लाने को कहा। गाड़ी आने पर वे उपासनागृह से धीरे धीरे बाहर आए और ठण्ड से बचने के लिए मोजे, बन्डी और कनटोप पहनकर गाड़ी में बैठ गये। सभी ने उनको प्रणाम किया और गाड़ी दक्षिणेश्वर के लिए रवाना हो गई। विजयकृष्ण की उपासना देखने के लिए कुछ देर और ठहरकर हम लोग भी घर गये।

---

१७ – श्रीरामकृष्ण के पास भक्तमण्डली का आगमन

"कमल के खिलने पर भ्रमरों को बुलाना नहीं पड़ता।"

—श्रीरामकृष्ण

ब्राह्मसमाज से उनका जो सम्बन्ध हुआ था उससे श्रीरामकृष्ण यह बात जान गये कि पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त सभी लोगों को अपने सभी उपदेशों पर विश्वास हो ही जायगा सो बात नहीं है, उनके मन पर जड़वाद का प्रभाव पड़ जाने के कारण उनकी बहुत आध्यात्मिक अवनति हो चुकी है और इस प्रभाव के दूर होने और धर्म के सच्चे रहस्य को समझने में इन लोगों को कुछ समय लगेगा। धर्म सम्बन्धी विषय इनके लिए एक तरह से नवीन ही होने के कारण ईश्वर-प्राप्ति के लिए सर्वस्व-त्याग का कठोर असिधारा-व्रत ग्रहण करने का साहस इन्हें नहीं हो सकता। और ईश्वर-दर्शन के लिए व्याकुलता जब तक इन्हें न हो, तब तक संसार के विषयों के समान ये लोग धर्म को भी लोकाचार की ही एक बात समझते रहेंगे, और उसके आगे उनकी प्रापञ्चिक दृष्टि नहीं जा सकेगी। यह सब जानते हुए भी श्रीरामकृष्ण ने उनको उपदेश देते समय अपने उदार मत और विचारों को उनसे स्पष्ट बता देने में कभी कमी नहीं की। "ईश्वर के लिए सर्वस्व-त्याग किए बिना उसका दर्शन कभी प्राप्त नहीं होता", "जितने मत उतने मार्ग हैं", "किसी भी मार्ग से जाने से उस मार्ग के अन्त में उपासक अपने उपास्य के साथ एकरूप हो जाता

है", "मन और मुख एक करना ही साधन है" "ईश्वर पर पूर्ण निष्ठा और विश्वास रखकर, फलों की आशा न करते हुए, सदैव सत्-असत्-विचारपूर्वक संसार के सभी कर्तव्य-कर्मों को करते रहना ही ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग है"— आदि आध्यात्मिक तत्वों का वे उनके पास निःसंकोच प्रतिपादन करते थे।

ऐसा होते हुए भी, ईश्वर के लिए सर्वस्व होम करने वाले त्याग के मूर्तिमान अवतार श्रीरामकृष्ण को अपने समान त्यागी भक्त कब दिखाई देंगे, ऐसी उत्कण्ठा उनके मन में होवे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। मानव-जन्म धारण करके जो प्राप्त करना चाहिए सो उन्हें पूर्णतः प्राप्त हो चुका था और सदैव अपने निजानन्द में निमग्न रहते हुए, अपने अनुभव का लाभ दूसरों को देने के लिए, अब वे तैयार बैठे थे। कमल पूरा खिल चुका था और उसमें से दिव्य मधु का पान करने के लिए मधुलोलुप भ्रमरों के झुण्ड के झुण्ड आने का समय निकट आ गया था। किंबहुना, ऐसे भ्रमरों का आना इसके पूर्व ही आरम्भ हो गया था। इसके बाद उनका जीवन केवल "बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय" ही था। उन्हें अब अपने स्वयं के लिए कुछ प्राप्त करना बाकी नहीं था। उन्हें अब सारी आतुरता इस बात की थी कि अपने पास सच्चे भक्त, सच्चे साधक कब आवें और उन्हें मैं अपनी विविध अवस्थाओं और अनुभव की बातें कब बताऊँ? वे उस समय बड़ी व्याकुलता से प्रार्थना करते— "माता! अपने त्यागी भक्तों को यहाँ ले आ तो मैं उनके साथ दिल खोलकर तेरी बातें करूँगा और आनन्द करूँगा! ये सब भक्त कब आएंगे, कितने होंगे, उनमें से किससे माता कौनसा कार्य कराएगी, माता उन्हें संन्यासी बनाएगी या गृह-

स्याश्रमी ही रखेगी—" आदि बातों पर विचार करने में ही उस समय इस अद्भुत संन्यासी के दिन के दिन बीत जाया करते थे! श्रीरामकृष्ण कहते थे—" क्या कहूँ रे! तुम सब से भेंट करने के लिए इतनी व्याकुलता रहती थी और मन में कुछ ऐसी वेदना होती थी, की उससे मैं बेहोश हो जाता था। ऐसा मालूम होता था कि 'ज़ोर से गला फाड़कर मनमाना रोऊँ' पर लोकलज्जा के भय से रोते नहीं बनता था। मन को किसी प्रकार समझाकर दिन तो बिता डालता था, परन्तु संध्याकाल को मन्दिरों की आरती शुरू होने पर तो 'और भी एक दिन बीत गया और अब तक कोई नहीं आए' यह सोचकर धैर्य बिलकुल छूट जाता था। तब छत पर जाकर ज़ोर ज़ोर से इस प्रकार चिल्लाता 'तुम सब कहाँ हो रे भाई, आओ, आओ, तुम्हारी भेंट के लिए मेरे प्राण व्याकुल हो रहे हैं।—' और गला फाड़कर रोने लगता! ऐसा मालूम होता था कि अब मैं जरूर पागल हो जाऊँगा! ऐसी व्याकुलता में कुछ दिन बिताने के बाद तुम लोग जब एक-एक करके आने लगे, तब कहीं मेरा मन शान्त हुआ। और पहले देख चुकने के कारण मैं तुम लोगों को जैसे जैसे तुम आते गए, वैसे वैसे पहचानता भी गया! ऐसा होते होते जब पूर्ण* आया तब माता बोली—'तेरे पहले देखे हुए जितने भक्त आने वाले थे उतने अब पूरे हो गए। अब इस श्रेणी के कोई भी बाकी नहीं रहे!' ऐसा बताकर माता उन सबकी ओर उँगली दिखाकर बोली —"बस ये ही तेरे अन्तरंग भक्त हैं!"

इसके पश्चात् का श्रीरामकृष्ण का जीवन अपनी भक्तमण्डली के

---

* श्रीरामकृष्ण देव का एक भक्त।

साथ आनंद और उनके साथ की हुई उनकी विचित्र अद्‌भुत लीला से पूर्ण है। इस लीला का सांगोपांग वर्णन करना असम्भव है। श्रीरामकृष्ण के भक्त असंख्य थे और उनमें से प्रत्येक के जीवन में श्रीरामकृष्ण की दिव्य संगति ने क्रान्ति पैदा कर दी थी। इसी कारण श्रीरामकृष्ण की लीला का पूर्ण वर्णन करने के लिए उनके प्रत्येक भक्त के चरित्र का वर्णन करना चाहिए। पर यहाँ यह बात तो सम्भव नहीं है। अतः उनके भक्तों में से एक दो का साधारण विस्तृत वृत्तान्त दे देना बस होगा और उसी पर से दूसरों के सम्बन्ध में भी कल्पना कर लेना सम्भव हो जायगा। अतः अब इनके भक्तगणों में श्रेष्ठ भक्त नरेन्द्रनाथ (स्वामी विवेकानन्द) के जीवन के इतिहास और उस पर श्रीरामकृष्ण का जो अपूर्व प्रभाव पड़ा था उसी की यथाशक्ति आलोचना की जाएगी। ऐसा करते हुए दूसरों का भी थोड़ा बहुत वृत्तान्त विषय के सन्दर्भ से आ ही जाएगा।

श्री केशवचन्द्र सेन से भेंट होने के लगभग चार वर्ष बाद (सन् १८७५) श्री रामचन्द्र दत्त और मनमोहन मित्र दोनों, समाचार-पत्रों में श्रीरामकृष्ण का वृत्तान्त पढ़कर उनके दर्शन के लिए आये और उन लोगों में दर्शन के प्रथम दिन से ही श्रीरामकृष्ण के प्रति दृढ़ भक्ति उत्पन्न हो गई। उन लोगों के स्वभाव में क्रमशः इतना परिवर्तन हो गया कि उनके पहचान वाले भी आश्चर्य करने लगे। श्रीरामकृष्ण के प्रति उनकी भक्ति इतनी बढ़ गई कि वे दोनों ही उन्हें अपने इष्ट देव के समान भजने लगे। वे श्रीरामकृष्ण को बारम्बार अपने घर ले जाते थे तथा उनके सत्संग में कुछ काल बड़े आनंद से बिताते थे। श्रीरामकृष्ण भी उनके सम्बन्ध में कभी कभी कहते—"अब राम

का स्वभाव तुमको इतना उदार दिखता है, पर जब वह यहाँ पहले पहल आया तब वह इतना कृपण था कि कहा नहीं जा सकता। एक दिन उससे मैंने इलायची लाने के लिए कहा, तो उसने कहीं से एक पैसे की रद्दी इलायची लाकर सामने रख दी और नमस्कार किया! इसी से जान लो कि राम के स्वभाव में कितना अन्तर हुआ है!" ये दोनों ही श्रीरामकृष्ण का दर्शन करके अपने को इतना धन्य समझने लगे कि अपने समान ही सभी को आनंद प्राप्त हो इस उद्देश से वे अपने नातेदारों और जानपहचानवालों को भी श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए साथ में लेकर जाने लगे। श्रीरामकृष्ण की भक्तमण्डली में से बहुतों को उनका प्रथम दर्शन इन्हीं के कारण हुआ।

सन् १८८० से श्रीरामकृष्ण के लीलासहचर त्यागी भक्तों का उनके पास आना आरम्भ हुआ। उनमें से प्रथम तो ब्रह्मानन्द आए। इनका पूर्वाश्रम का नाम राखालचन्द्र था और मनमोहन मित्र की बहन के साथ इनका विवाह हुआ था; विवाह के थोड़े ही दिनों के बाद उन्होंने श्रीरामकृष्ण का नाम सुना और शीघ्र ही उनका दर्शन किया। श्रीरामकृष्ण कहा करते थे—"राखाल के आने के कुछ दिन पूर्व भावावस्था में मैंने यह देखा कि माता एक छोटे बालक को मेरी गोदी में बैठाकर कह रही है—'यह तेरा लड़का है भला!' यह सुनते ही मेरे शरीर में डर से रोमांच हो आया और मैंने चकित होकर पूछा—'माता! अरे! यह क्या बात है? मेरा लड़का यह कहाँ से आया?' यह सुनकर माता हँसकर बोली—'अरे पगले! सचमुच लड़का नहीं है, यह तेरा त्यागी मानसपुत्र है!' तब मुझे धैर्य हुआ।

इस दर्शन के कुछ दिनों बाद राखाल आया और उसे देखते ही मैं पहचान गया कि यही वह लड़का है।"

राखाल के सम्बन्ध में हम लोगों को श्रीरामकृष्ण ने बाद में यह बताया*—

"उस समय राखाल का स्वभाव ऐसा था मानो वह तीन चार वर्ष का छोटा बालक हो! वह मुझसे सदा माता के समान जानकर वर्ताव करता था। देखते ही देखते वह एकदम मेरी गोदी में आकर बैठ जाता था! और घर जाना तो दूर रहा, उसे यहाँ से एक कदम भी दूसरी ओर जाना अच्छा नहीं लगता था! उसका बाप शायद उसको यहाँ आने न देगा इस डर से मैं उसे बीच बीच में जबरदस्ती घर भेज देता था। उसका बाप अच्छा धनी जमींदार था, पर साथ ही बड़ा कृपण भी था। उसका लड़का यहाँ न आने पावे इसके लिए उसने शुरू शुरू में बड़ी खटपट की, पर आगे जब उसने देखा कि यहाँ बड़े बड़े श्रीमान् लोग और विद्वान् लोग आते हैं, तब उसने अपने लड़के के भी यहाँ आने में रोकटोक करना छोड़ दिया। अपने लड़के के लिए वह बीच बीच में यहाँ आया करता था और राखाल के कल्याण के लिए मैं अनेक बातें बताकर उसको समझा देता था।

"राखाल के ससुराल वालों ने उसे यहाँ आने से कभी नहीं रोका; क्योंकि मनमोहन की माता, पत्नी, बहन और घर के सब

---

* राखाल के सम्बन्ध की ये सभी बातें श्रीरामकृष्ण ने एक ही समय नहीं बताईं, पर सभी वृत्तान्त को एक सिलसिले में देने के लिए सभी बातें इकठ्ठी लिख दी गई हैं।

लोग सदा यहाँ आते जाते रहते थे। राखाल का यहाँ आना शुरू होने के बाद कुछ दिनों में मनमोहन की माता राखाल की स्त्री को यहाँ लेकर आई। तब 'इसके सहवास से मेरे राखाल की ईश्वरभक्ति तो नष्ट नहीं हो जायगी' ऐसी शंका होने के कारण मैंने उसको अपने पास बुलाकर पैर से लगाकर सिर के केश पर्यंत उसके सर्वांग की बारीकी के साथ परीक्षा की और जान गया कि 'इससे डरने का कोई कारण नहीं है। यह दैवी शक्ति है। इससे इसके पति के धर्ममार्ग में कभी रुकावट नहीं होगी। जब इतना कर लिया तब कहीं मेरे जी में जी आया और नौबतखाने में (अपनी पत्नी को) संदेशा भेजा कि 'अपनी बहू को देख लो और उसके हाथ में मिठाई के लिए एक रुपया दे दो!'

"मेरे पास रहने पर राखाल अपना देहभान भूल जाता था और उसके मन में एकदम बालक-भाव उत्पन्न हो जाता था। उस समय उसको देखकर सभी लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे और मैं भी भावाविष्ट होकर उसे दूध पिलाता, मक्खन खिलाता और उसको खेल खेलाता! कभी कभी उसको मैं कन्धे पर भी बिठा लेता! और आश्चर्य यह है कि उसको भी इसमें बिलकुल संकोच नहीं लगता था, पर मैंने उसे यह बता रखा था कि तू थोड़ा बड़ा होकर अपनी स्त्री के साथ रहने लगेगा, तब यह तेरा बाल स्वभाव चला जायगा!

"वह कभी गलती करता था तो मैं उसे सजा भी देता था। काली माई के मन्दिर से एक दिन प्रसाद का मक्खन आया था। भूख लगने के कारण उसने वह सब मक्खन अकेले ही खा लिया। यह देखकर मैंने उसे अच्छी तरह डाँट सुनाई और उससे कहा, 'तू तो

बड़ा लोभी दिखता है रे! यहाँ आकर लोभ छोड़ना सीखना तो दूर रहा, पर वह सब मक्खन अकेला ही खा डाला। क्या कहूँ तुझको?' यह सुनकर उसे बड़ा बुरा लगा और पुनः उसने ऐसा काम कभी नहीं किया।

"राखाल के मन में उन दिनों छोटे बालक के समान मत्सर और अभिमान भी था। उसके सिवाय यदि किसी दूसरे से मैं प्रेम से बर्ताव करता था तो उसे वह सह नहीं सकता था। इससे मुझे उसके बारे में कभी कभी बड़ा डर लगता था; क्योंकि माता ही जिनको यहाँ ले आती है उनसे द्वेष करने से उलटा उसी का कहीं अनिष्ट या अकल्याण न हो जाय।

"यहाँ आने के लगभग तीन वर्ष के बाद राखाल की तबीयत कुछ बिगड़ गई और वह बलराम के साथ वृन्दावन गया। उसके कुछ दिनों के पूर्व मैंने भावावस्था में देखा था कि माता उसे एक ओर हटा रही है। तब मैं व्याकुल होकर बोला—'माता! वह अभी छोटा है, वह क्या जाने? इसीलिए वह कभी कभी अभिमान करता है। बस इतना ही दोष उसमें है। तू उसको अपने काम के लिए यहाँ से हटाती है तो इतना तो अवश्य कर, कि उसे कहीं भी हो, अच्छे स्थान में आनन्द से रख, बस यही चाहिए।' इसके बाद थोड़े दिनों में वह वृन्दावन चला गया।

"वहाँ भी उसकी तबीयत ठीक नहीं रहती है यह सुनकर बड़ी चिन्ता होने लगी; क्योंकि माता ने दिखाया था कि राखाल सचमुच ही व्रज का राखाल (गोप) है! अतः मुझे यह भय होने लगा कि उसको यहाँ की सब पिछली बातों का स्मरण हो आने पर कहीं वह

देहत्याग न कर दे! इसलिए मैंने माता से पुनः प्रार्थना की और उसने 'चिन्ता मत कर' ऐसा आश्वासन दिया। उसके सम्बन्ध में माता ने ऐसी कितनी ही बातें दिखाईं, पर उन सब बातों को बताने का निषेध है।"

इस प्रकार राखाल के सम्बन्ध में कितनी ही बातें श्रीरामकृष्ण ने हमको बताईं। युवावस्था में राखाल ने ईश्वर-प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व त्याग करके संन्यास ग्रहण किया! और बेलूर मठ की स्थापना होने पर राखालचन्द्र (स्वामी ब्रह्मानन्द) उसके प्रथम अध्यक्ष हुए। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे कि "आध्यात्मिक दृष्टि से राखाल मुझसे बड़ा है।" पच्चीस वर्ष तक सतत परिश्रमपूर्वक शिवज्ञान से जीवों की सेवा करके और अनेक लोगों को सन्मार्ग में लगाकर स्वामी ब्रह्मानन्द सन् १९२२ में समाधिस्थ हुए।

श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए राखालचन्द्र के आने के तीन-चार महीने बाद ही नरेन्द्रनाथ ने श्रीरामकृष्ण का प्रथम दर्शन किया।

१८—नरेन्द्रनाथ का परिचय

"यहाँ इतने लोग आते हैं, पर उनमें नरेन्द्र के समान एक भी नहीं है।"

"किसी समय मालूम पड़ता है कि कोई दशदल, कोई षोड़शदल, और कोई अधिक से अधिक शतदल पद्म है, पर पद्म में नरेन्द्र सहस्रदल पद्म है!"

"दूसरे लोग—कोई लोटा, कोई कलसी और यदि कोई और अधिक है तो गागर है, पर नरेन्द्र तो हंडा है!"

"दूसरे लोग—कोई गड्ढा, कोई कुँआ,—और अधिक से अधिक तालाब है, पर नरेन्द्र तो है सरोवर!"

—श्रीरामकृष्ण

कलकत्ते में दत्त घराना बड़ा प्रसिद्ध था। धन, मान, विद्या आदि में कायस्थ घरानों में वह प्रथम था। नरेन्द्र के प्रपितामह राममोहन दत्त ने वकालत के पेशे में अच्छा पैसा कमाया था। उनके पुत्र दुर्गाचरण का पहले से ही धर्म की ओर झुकाव था। विवाह होने पर भी उनका मन संसार में नहीं लगता था और उन्होंने एक पुत्र होते ही संसार और सम्पत्ति का त्याग करके तीर्थ-यात्रा के लिए प्रस्थान कर दिया और वे पुनः फिर कभी भी घर वापस नहीं आए। शास्त्रों की आज्ञा के अनुसार केवल जन्मभूमि के दर्शन के लिए वे बारह वर्ष में एक बार कलकत्ता आये थे। घर के लोगों को समाचार मिलते ही वे लोग उन्हें आग्रह करके घर में ले गए, परन्तु वहाँ जाने पर वे मौन व्रत धारण करके जो एक जगह बैठ गए सो तीन दिन तक वहाँ से बिलकुल हिले ही नहीं! चौथे दिन सवेरे लोग देखते

हैं तो दुर्गाचरण कहीं चले गए थे! तत्पश्चात् पुनः कभी भी उनका समाचार नहीं मिला।

दुर्गाचरण के पुत्र विश्वनाथ भी एक प्रसिद्ध वकील थे और उन्होंने अपनी वकालत से बहुत धन कमाया, परन्तु उनका स्वभाव बड़ा उदार और खर्चीला था और वे अपने रिश्तेदारों तथा मित्रों को बहुत मानते थे, जिसका फल यह हुआ कि वे अपने पीछे कुछ भी नहीं छोड़ गए। उन्हें संगीत का बड़ा शौक था; और उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र (नरेन्द्र) को संगीत की शास्त्रीय रीति से शिक्षा देने के लिए एक शिक्षक भी नियत कर दिया। उनका स्वभाव बड़ा शान्त और गम्भीर था। यदि कभी कोई कुछ गलती करता था तो वे उस पर क्रुद्ध होने के बदले उसकी गलती लोगों को बता देते थे जिससे वे लोग उस अपराधी को ताना मारते थे और वह लज्जित हो जाता था। एक दिन नरेन्द्र ने अपनी माता को कुछ उलटा जवाब दे दिया। विश्वनाथ नरेन्द्र से एक शब्द भी नहीं बोले, परन्तु जिस कमरे में नरेन्द्र अपने सहपाठी तथा मित्रों के साथ वार्तालाप या लिखाई-पढ़ाई करता था उस कमरे की दीवार पर उन्होंने चुपचाप कोयले से बड़े बड़े अक्षरों में लिख दिया– "आज नरेन्द्र ने अपनी माता को अनुचित जवाब दिया।" नरेन्द्र और उसके मित्रों की दृष्टि उस वाक्य पर पड़ी और नरेन्द्र को अपने आचरण के सम्बन्ध में बड़ा पश्चात्ताप हुआ और उसने पुनः कभी भी अपनी माता के साथ उत्तर-प्रत्युत्तर नहीं किया। विश्वनाथ बाबू का अन्तःकरण बड़ा कोमल था। अपने रिश्तेदारों में से कई एक को वे पात्रापात्र का विचार न करते हुए सदैव द्रव्य से सहायता करते थे। नरेन्द्र के बड़े होने पर

उनके ध्यान में यह बात आई और एक दिन वह अपने पिता से बोला भी — "इस प्रकार हर एक को मदद देना ठीक नहीं है।" विश्वनाथ बाबू ने उत्तर दिया — "बेटा! मनुष्य जीवन कितना दुःखमय है इसकी तुझे कोई कल्पना नहीं है। जब तू इस बात को समझेगा, उस समय तेरे मन में, अपने दुःख को क्षण भर भूलने के लिए अफीम खाने वाले लोगों के प्रति भी, दया आएगी।" विश्वनाथ बाबू की बहुत सी संतति हुई। उनकी लड़कियाँ अल्पायु रहीं। तीन चार लड़कियों के बाद नरेन्द्र का जन्म होने के कारण वे अपने मातापिता के बड़े लाड़ले पुत्र थे।

नरेन्द्र की माता भुवनेश्वरी देवी भी बड़ी सुन्दरी और गुणों से पूर्ण थीं। वह बड़ी भक्तिमती स्त्री थीं। रामायण और महाभारत की सब कथाएँ उन्हें मालूम थीं। उनको लिखना पढ़ना तो थोड़ा ही आता था, पर वह बहुश्रुत थीं। पति के मृत्यु के बाद उनके धैर्य, सहिष्णुता, तेजस्विता आदि गुण सब के देखने में आए। हजारों रुपयों का कारबार करने वाली उस मानी स्त्री को प्रति मास तीस रुपयों में अपना संसार चलाना पड़ा। तब भी उनका धैर्य कम नहीं हुआ और वह कभी दुःखी या क्लेशित होते नहीं दिखाई पड़ीं।

ऐसे माता-पिता की कोख से नरेन्द्र का जन्म हुआ। उसकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी और वह किसी भी विषय को सहज ही में खेलते खेलते समझ लेता था। बालकपन से उसकी सत्यनिष्ठा प्रबल थी। छुटपन से ही वह बड़ा ढीठ, साहसी और स्वातन्त्र्यप्रिय था। उसका स्वर मधुर था और साथ ही साथ उसे व्यायाम का भी शौक था। सब के साथ उसका बर्ताव बड़ा प्रेमयुक्त रहता था और वह अपने

स्वाभाविक अलौकिक गुणों के कारण सभी को प्रिय था। वह अपना अध्ययन सहज ही किसी भी समय कर डालता और फिर सारा समय आनन्द से निश्चिन्त होकर खेलने में बिताता था। उसका मन बड़ा कोमल था और दीन, दुर्बल, दुःखी लोगों को देखकर उसकी आँखों में आँसू आ जाते थे और वह उनको बिना कुछ दिये वापस नहीं जाने देता था। छुटपन में वह बड़ा क्रोधी था। वह किसी पर गुस्सा होता था तो उसका सर्वांग गुस्से से थर थर काँपने लगता, और सब को भय लगने लगता था कि मालूम नहीं यह अब क्या करेगा और क्या नहीं। उसकी माता कहती थीं — "पुत्र होने के लिए मैंने काशी विश्वनाथ — वीरेश्वर से मानता की थी। मालूम नहीं, वीरेश्वर ने मेरे पास अपने एक आध भूत को ही तो नहीं भेज दिया? नहीं तो गुस्से से क्या कोई ऐसा भूत के समान आचरण करता है?" इस गुस्से के लिए उसने एक अपूर्व दवा खोज निकाली थी। जब नरेन्द्र गुस्से में आता था तो वह वीरेश्वर का नाम लेकर उसके सिर पर एक दो घड़े ठण्डा पानी डाल देती। इस दवा से उसका क्रोध तत्क्षण शान्त हो जाता था! दक्षिणेश्वर में एक दिन नरेन्द्र बोला, "धर्म करना शुरू करने से और कुछ चाहे न हुआ हो, पर ईश्वर की कृपा से इतना तो अवश्य हुआ, कि इस दुष्ट क्रोध को मैं जीत सका!"

बचपन से ही नरेन्द्र को ध्यान करना बड़ा अच्छा लगता था और उसमें वह तत्काल तन्मय हो जाता था। सोते समय उसे रोज एक तेजोमण्डल दिखाई देता था और यह भास होता था कि उस गोले को कोई उसकी ओर फेंक रहा है! जब वह गोला उसकी ओर आते आते बिलकुल पास आ जाता, तब उसे ऐसा लगता था कि मैं

उसमें डूब रहा हूँ और उसकी वाह्यसंज्ञा लुप्त हो जाती थी। वहुत दिनों तक वह यही समझता था कि सभी को इसी तरह नींद आती होगी; परन्तु ऐसी वात नहीं है यह उसे वाद में मालूम पड़ा।

विद्यार्थी अवस्था में ही नरेन्द्र ब्राह्मसमाज का अनुयायी वन गया था और उत्तरोत्तर उसका ध्यान धर्म की ओर अधिकाधिक खिंचता गया। उसने लगभग इसी समय भिन्न भिन्न धर्मों के ग्रन्थों का अभ्यास करना शुरू किया, जिससे वह भिन्न भिन्न मतों के वादविवाद से ऊव गया और सत्य क्या है यह जानने की उसकी उत्कण्ठा वढ़ चली। नरेन्द्र की एफ़. ए. की परीक्षा होने के वाद विश्वनाथ वावू ने उसके विवाह की चर्चा चलाई और रामचन्द्र दत्त आदि रिश्तेदारों ने भी नरेन्द्र से उस सम्वन्ध में आग्रह किया, परन्तु नरेन्द्र ने विवाह करने से साफ़ इन्कार कर दिया।

धार्मिक प्रेरणा के कारण ही नरेन्द्र विवाह के लिए राज़ी नहीं होता था यह वात धीरे धीरे विश्वनाथ वावू और रामचन्द्र दत्त के ध्यान में आ गई और रामचन्द्र दत्त उससे एक दिन वोले—"यदि तेरे मन में सचमुच धर्म-प्राप्ति करने की इच्छा है, तो व्यर्थ ही ब्राह्म-समाज आदि स्थानों मे भटकने से कोई लाभ नहीं होगा। दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण के पास चला जा।"

उस समय नरेन्द्र 'जनरल असेम्व्लीज इन्स्टिट्यूशन' में एफ्. ए. क्लास में था। उस संस्था के प्रिन्सिपल हेस्टी नामक एक विद्वान् सज्जन थे। उनकी विद्वत्ता, अत्यन्त शुद्ध आचरण, शिष्यों के प्रति प्रेम आदि गुणों के कारण, नरेन्द्र के मन में उनके प्रति वड़ी आदर-बुद्धि थी। एक दिन उन्होंने क्लास में वताया कि सृष्टिसौन्दर्य देखने में मग्न

हो जाने से कभी कभी वर्डस्वर्थ कवि को भावसमाधि लग जाती थी। तब विद्यार्थियों ने उनसे इस विषय के सम्बन्ध में और अधिक बताने के लिए आग्रह किया। उन्होंने इस विषय को यथासम्भव सरल बनाकर समझाया और कहा—"चित्त की पवित्रता और किसी विषय में मन की एकाग्रता होने से यह अवस्था प्राप्त हो जाती है। ऐसे पुरुष बहुत विरले दिखाई देते हैं। मेरे देखने में तो दक्षिणेश्वर के श्रीरामकृष्ण परमहंस ही एक अकेले ऐसे पुरुष हैं। वहाँ जाकर उनकी यह अवस्था देखने से तुम्हें इस विषय की बहुत सी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।" इसे सुनकर तो उसी दिन से ही नरेन्द्र दक्षिणेश्वर जाने का विचार करने लगा।

इसके पहले एक दिन नरेन्द्र तथा श्रीरामकृष्ण की अचानक ही अकल्पित रीति से भेंट हो गई थी। कलकत्ते के सिमला नामक विभाग में रहने वाले सुरेशचन्द्र मित्र को लगभग इसी समय श्रीरामकृष्ण के दर्शन का सौभाग्य मिला था और प्रथम दर्शन के दिन से ही उनकी श्रीरामकृष्ण पर बड़ी भक्ति हो गई थी। वे बारम्बार श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर आते थे और कभी कभी उन्हें अपने घर ले जाकर कुछ समय उनके सत्संग तथा उपदेशामृत पान करने में बिताते थे। एक दिन श्रीरामकृष्ण उनके घर आये हुए थे। उन्हें कुछ पद सुनने की इच्छा हुई। वहाँ बैठे हुए लोगों में से किसी को अच्छा गाना नहीं आता था; इसलिए सुरेश ने अपने घर के पास ही रहने वाले विश्वनाथ बाबू के लड़के (नरेन्द्र) को गाने के लिए बुलवाया। नरेन्द्र ने भी उस दिन एक दो पद उत्तम रीति से गाकर सुनाए। इस प्रकार भगवान् श्रीरामकृष्ण परमहंस और उनके मुख्य

लीलासहायक श्री स्वामी विवेकानन्द की यह प्रथम भेंट हुई। यह ईसवी सन् १८८० के नवम्बर मास की बात है।

उस दिन नरेन्द्र को देखते ही श्रीरामकृष्ण का ध्यान उसकी ओर खिंच गया। उन्होंने सुरेन्द्र और राम को अलग एक ओर बुलाकर नरेन्द्र के बारे में बहुत सी बातें पूछीं और एक दिन उसको अपने साथ दक्षिणेश्वर लेते आने के लिए सुरेश से कहा। नरेन्द्र का गाना समाप्त होने पर श्रीरामकृष्ण स्वयं नरेन्द्र के समीप गए और उसके शरीर के सब लक्षणों को बारीकी से ध्यानपूर्वक देखते हुए उससे दो चार बातें करके उससे भी उन्होंने शीघ्र ही किसी दिन दक्षिणेश्वर आने के लिए कहा।

रामचन्द्र दत्त के कहते ही नरेन्द्र दक्षिणेश्वर चलने के लिए तैयार हो गया और रामचन्द्र, सुरेन्द्र और अन्य तीन चार आदमी मिलकर सभी दक्षिणेश्वर गए।

उस दिन नरेन्द्र को देखकर श्रीरामकृष्ण को जैसा मालूम पड़ा वह एक दिन उन्होंने सहज ही बात निकलने पर हम लोगों से बताया। वे बोले, " उस दिन नरेन्द्र (पश्चिमी दरवाजे की ओर उंगली दिखाकर) इस दरवाजे से कमरे के भीतर आया। उसका ध्यान अपने शरीर की ओर बिलकुल नहीं था। उसके सिर के बाल और शरीर के कपड़े भी औरों के समान व्यवस्थित नहीं थे। किसी भी बाह्यवस्तु की ओर उसका लक्ष्य नहीं था। उसका सभी कुछ निराला ही था। उसकी आँखों से ऐसा दिखाई दिया कि उसके मन को किसी ने जबरदस्ती अन्तर्मुखी बना दिया है। यह सब देखकर मैंने यह सोचा कि विषयी लोगों के आगार इस कलकत्ता शहर में इतना बड़ा सतोगुणी अधिकारी कहाँ से आ गया।

"जमीन पर दरी बिछी हुई थी। उस पर उसे बैठने के लिए कहा गया, तो वह दरी के एक किनारे एक गंगाजल के रखे हुए घड़े के समीप बैठा। उस दिन उसके साथ उसके दो चार मित्र भी आये थे, पर उन लोगों का स्वभाव बिलकुल ही भिन्न दिखाई दिया। साधारण लोगों की जैसे भोग की ओर दृष्टि रहती है वैसे ही उन लोगों की भी दिखी।

"गाने के लिए जब उससे कहा गया तब मालूम हुआ कि उसे बंगाली गाने दो चार ही आते हैं। उनमें से ही एक आध गाने के लिए कहने पर उसने ब्राह्मसमाज का गाना —'चल मन निज निकेतने' ऐसी तन्मयता के साथ गाया कि उसे सुनकर मुझे भावावस्था प्राप्त हो गई। गाना होने पर थोड़ी देर में ये लोग चले गये।

"उसके चले जाने के बाद उससे पुनः भेंट करने के लिए मेरा मन चौबीसों घण्टे इतना व्याकुल रहता था कि मैं कह नहीं सकता। बीच बीच में तो ऐसी वेदना होती थी कि मानो कोई कलेजे को निचोड़ रहा हो! वह वेदना जब असह्य सी हो जाती, तब मैं उठकर झाऊतला की ओर चला जाता था —क्योंकि वहाँ किसी के आने का डर नहीं रहता था और वहाँ लाज-लज्जा को एक ओर समेटकर रख देता और आ रे नरेन्द्र! आ, तेरे बिना मेरे प्राण निकल रहे हैं' इस तरह चिल्ला कर ज़ोर ज़ोर से गला फाड़कर रोता! कुछ समय तक इस प्रकार रोने से मन कहीं थोड़ा शान्त होता था। और यह एक-दो दिन की बात नहीं, लगातार छः महीने तक ऐसा ही रहा! यहाँ आये हुए बहुत से लड़कों के सम्बन्ध में ऐसा ही हुआ, परन्तु नरेन्द्र की भेंट के लिए जैसी व्याकुलता हुई, उसके सामने औरों के सम्बन्ध की तो कुछ भी नहीं थी!"

श्रीरामकृष्ण ने जो यह बात हमें उस दिन बतलाई वह संक्षेप में ही बताई होगी; क्योंकि इसी भेंट के बारे में स्वयं नरेन्द्र ने हमसे यह कहा था —

"गाना तो मैंने गाया, पर गाना समाप्त होते ही श्रीरामकृष्ण शीघ्रता से उठकर मेरे पास आये और मेरा हाथ पकड़कर मुझे उत्तर की ओर के बरामदे में ले गये। ठण्ड के दिन होने के कारण हवा को रोकने के लिए बरामदे में सामने की ओर परदे लगे हुए थे। बरामदे में पहुँचकर कमरे के उस ओर के किवाड़ बंद कर देने से किसी बाहरवाले को वहाँ पर क्या हो रहा दिखाई नहीं देता था। उस बरामदे में पहुँचते ही श्रीरामकृष्ण ने जब उस ओर के कमरे के दरवाजे बंद कर दिये तब मुझे ऐसा लगा कि वे मुझे अलग में कुछ उपदेश देने वाले हैं! परन्तु सभी बातें विपरीत दिखाई दीं। मेरे हाथों को अपने हाथ में रखकर लगातार आँसू बहाते, ज़ोर से साँस लेते, किसी अत्यन्त परिचित मनुष्य के समान मुझसे प्रेम से कहने लगे —'यहाँ आने में क्या इतने दिन लगाना चाहिए? मैं यहाँ कितनी उत्सुकता से तेरी राह देखता रहता हूँ इसका तू विचार तक नहीं करता। विषयी लोगों की रामकहानी सुनते सुनते मेरे कान जलने की नौबत आ रही है, मन की बातें बताने के लिए कोई मनुष्य न मिलने के कारण वे भीतर के भीतर ही उबलकर मेरा पेट फुला रही हैं!—' आदि आदि वे कितनी ही बातें कहने लगे और रोने लगे! कुछ देर में मेरे सामने हाथ जोड़कर खड़े हो गए और कहने लगे—'प्रभो! मुझे मालूम है कि तू तो पुरातन नारायण ऋषि है, और जीवों की दुर्गति का निवारण करने के लिए पुनः शरीर धारण करके आया है!'

"यह सब देखकर मैं अत्यन्त आश्चर्यचकित हुआ और मन में कहने लगा —'मैं यहाँ किसके दर्शन के लिए आया और किससे भेंट हो गई? इनको तो उन्माद-वायु हुआ सा दिखता है। नहीं तो मैं तो विश्वनाथ दत्त का लड़का हूँ, मुझको ये इस प्रकार की बातें क्यों कहते हैं?' पर मैं प्रगट में कुछ न कहकर चुपचाप उनकी बातें सुनता रहा। तदनन्तर मुझको वहीं ठहरने के लिए कहकर वे अपने कमरे में गए और वहाँ से थोड़ी सी मिठाई लाकर अपने हाथ से मेरे मुँह में डालने लगे! मैंने बहुत कहा कि —'आप मेरे हाथ में दे दीजिए; उसे मैं अपने साथियों के साथ खाऊँगा,' पर वे किसी भी तरह माने ही नहीं। वे बोले —'वे लोग खाएँगे बाद में; तू पहले खा ले भला।' ऐसा कहकर उन्होंने मुझे दो-चार कौर खिला ही दिए। तब फिर मेरा हाथ पकड़कर बोले —'तू ऐसे ही यहाँ और एक बार अकेला ही, जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी आएगा न? बोल भला 'आऊँगा'—इतना आग्रह करने पर मुझे 'आऊँगा' ऐसा कहना ही पड़ा। उसके बाद मैं कमरे के भीतर वापस आकर अपने मित्रों के साथ बैठ गया।

"वहाँ बैठकर उनकी ओर बारीकी से ध्यान देकर देखने लगा और सोचने लगा। उनके बोलने, दूसरों से बर्ताव करने आदि में उन्माद के कोई चिह्न नहीं दिखते थे! उनका उपदेश सुनकर और भावसमाधि को देखकर मन में लगा कि यथार्थ में ईश्वर के लिए उन्होंने सर्वस्व का त्याग कर दिया है और उनका बर्ताव 'बोले वैसा चले' इस वर्ग के समान है।

"जैसे मैं तुमको देखता हूँ और जिस तरह मैं तुमसे बातचीत

करता हूँ, ठीक वैसे ही ईश्वर को भी देखा जा सकता है और उससे बातचीत की जा सकती है, परन्तु ऐसा करने की इच्छा ही किसको होती है? लोग स्त्री-पुत्र के शोक में घड़ों के हिसाब से आँसू बहाते हैं, इच्छित वस्तु न मिलने या सम्पत्ति का नाश हो जाने पर तो रोते रोते आँखों में सूजन तक आ जाती है, पर ईश्वर की प्राप्ति के लिए भला कितने लोग इस तरह का शोक करते हैं? 'भगवान्! दर्शन दे' कहकर यदि कोई सचमुच ही व्याकुल होकर उसकी पुकार करेगा, तो ईश्वर उसको अवश्य ही दर्शन दिये बिना नहीं रहेगा। उनके मुख से ये बातें सुनकर मन में मालूम होने लगा कि ये दूसरों के समान यों ही व्यर्थ की फाल्तू गप्पें नहीं लगा रहे हैं; वरन् स्वयं अत्यन्त व्याकुलता से ईश्वर की प्रार्थना करके और उसके प्रत्यक्ष दर्शन करके ही यह बात दूसरों को बता रहे हैं। परन्तु इतने ही में मुझे उनके उस समय के उन्मादवत् आचरण का स्मरण आ गया और मेरी यह समझ में ही नहीं आया कि उस आचरण का इस उपदेश से मेल कैसे हो सकता है। बहुत विचार करके यह निश्चय किया कि यह अर्धोन्माद होगा, पर मन में ऐसा निश्चय करने का कोई मतलब नहीं था। साथ ही उनके ईश्वर के लिए किये हुए त्याग, उनकी अपूर्व तपस्या आदि की बातें एकदम मन में आ जाती थीं और उनकी अर्धोन्माद-अवस्था भी मन में नहीं जँचती थी; क्योंकि ईश्वर के लिए इस प्रकार त्याग किये हुए कितने मनुष्य हमारे देखने में आये हैं? इस प्रकार के विचारों से मन में हलचल मच गई, पर अन्त में—'ये कोई भी क्यों न हों, ये अत्यन्त त्यागी और पवित्र होने के कारण मान देने के सर्वथा योग्य हैं—' ऐसा सोचकर, उनके चरणों में मस्तक टेककर मैंने उस दिन उनसे विदा ली।"

इसके बाद लगभग एक मास बीत गया। कॉलेज की पढ़ाई, ध्यान, गायन सीखना, अखाड़े की कसरत, ब्राह्मसमाज की उपासना आदि में लगे रहने के कारण इस महीने में नरेन्द्र को दक्षिणेश्वर जाने की फुरसत नहीं मिली; पर तो भी अकेले आने का वचन श्रीरामकृष्ण को दे चुकने के कारण उनके मन से वह बात गई नहीं थी; अतः किसी तरह समय निकालकर वह एक दिन पैदल ही दक्षिणेश्वर गए। उस दिन की बात उन्होंने हमें एक बार इस तरह बताई—

"दक्षिणेश्वर जाने के लिए मैं उस दिन पैदल ही चला। इसके पहले केवल एक ही बार मैं वहाँ गया था और वह भी गाड़ी में बैठकर; इसलिए दक्षिणेश्वर इतना दूर होगा इसकी मुझे बिलकुल कल्पना ही नहीं थी। कितना चल चुका, पर रास्ता खतम ही नहीं होता था। अन्त में वहाँ पहुँच ही गया और तुरन्त श्रीरामकृष्ण के कमरे में गया। वे अपने छोटे पलंग पर अकेले ही विचारमग्न होकर बैठे थे। आस पास कोई नहीं था। मुझे देखते ही बड़े आनन्दित होकर उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया और अपने पलंग पर एक ओर बिठाया। थोड़ी ही देर में मुझे दिखाई दिया कि उन्हें भावावेश प्राप्त हो गया है और वे मुँह से अस्पष्ट स्वर में कुछ कहते हुए मेरी ओर एकटक देखते हुए धीरे धीरे मेरी ही तरफ सरकते आ रहे हैं, और मुझे ऐसा लगा कि अब फिर उसी दिन के समान कोई बात होगी! मन में ऐसा आते ही मेरे पास आकर उन्होंने अपना दाहिना पैर मेरे शरीर पर रखा! ऐसा करते ही जो चमत्कार हुआ सो क्या बताऊँ? मुझे ऐसा दिखने लगा कि वह कमरा और उसकी सारी चीज़ें बड़े वेग से घूम घूमकर कहीं अन्तर्धान हो रही हैं, और सारा

विश्व और उसके साथ मेरा अहंकार भी एक सर्वग्रासी महाशून्य में विलीन होने के लिए बड़े वेग से चला जा रहा है ! यह हाल देखकर मैं भयभीत हो गया । मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि 'मैं-पन (अहंकार) का नाश ही तो मृत्यु है; तब फिर अब मृत्यु में क्या कमी है?' इतने में मेरा धैर्य जाता रहा और मैं एकदम चिल्लाया–'अजी! यह आप मुझे क्या कर रहे हैं? मेरे मातापिता हैं न अभी।' यह सुनकर वे खिलखिलाकर हँसने लगे, और अपने हाथों से मेरे वक्षःस्थल को मलते हुए कहने लगे —'अच्छा तो फिर अभी रहने दे। एकदम ही होने की कोई जरूरत नहीं है। धीरे धीरे होगा!' और आश्चर्य की बात यह है कि उनके इस स्पर्श से वह सारा अद्भुत दृश्य लुप्त हो गया और पहले के समान मुझको देह की सुधि आ गई!

"मन में पुनः हल चल मच गई! यह मनुष्य है कौन? और इसने जो प्रयोग किया क्या उसे 'हिप्नाटिजम (मोहनी विद्या)' कहा जाय? पर यह बात भी मन में नहीं जँचती थी। मैंने पढ़ा था कि दुर्बल मन वाले मनुष्य पर ही वह चल सकता है, और मुझे तो यह अभिमान था कि मेरी इच्छा-शक्ति बड़ी प्रबल है। तब इसे क्या कहा जाय? किसी के मन को केवल अपनी इच्छा से ही मिट्टी के लोंदे के समान चाहे जैसा आकार दे देने वाले इस मनुष्य को अर्धोन्मादी भी कैसे कहें? और भला यदि वैसा न कहें तो इनका पहले दिन का आचरण अर्धोन्माद के समान नहीं था तो क्या था? इस तरह कितने ही विचार आने के कारण मन में बड़ी अशान्ति मच गई।

"उस दिन भी उन्होंने मेरा बड़ा लाड़ प्यार किया और नित्य के परिचित मनुष्य के समान मेरे साथ बर्ताव किया। उनके इस प्रेम-

पूर्ण व्यवहार का भी मैं कोई अर्थ नहीं लगा सका। उनका वह सारा दिन मेरे साथ बोलने, मुझे खाने को देने और तरह तरह से लाड़ प्यार करने में बीता। फिर संध्या होते देख मैंने उनसे आज्ञा ली। मुझे रवाना होते देख वे खिन्न वदन होकर मेरी ओर देखते हुए बोले —'पुनः शीघ्र ही आयेगा न यहाँ ? बोल 'आऊँगा' — अतः उस दिन भी पुनः शीघ्र आने का आश्वासन देकर मैं उनके पैरों पर अपना मस्तक रखकर अपने घर को वापस लौटा।"

लगभग ८–१० दिन के बाद नरेन्द्र पुनः दक्षिणेश्वर गया। श्रीरामकृष्ण की इच्छा-शक्ति का प्रभाव अपने मन पर न होने देने का मानो उसने निश्चय ही कर लिया था। इस दिन का वृत्तान्त श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्र दोनों के मुँह से हमें बाद में सुनने को मिला।

उस दिन दक्षिणेश्वर में बहुत भीड़ रहने के कारण या और दूसरे कारण से श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को नजदीक के यदु मल्लिक के बगीचे में अपने साथ टहलने के लिए चलने को कहा। यदुनाथ मल्लिक और उनकी माता दोनों की श्रीरामकृष्ण पर बड़ी भक्ति थी और अपनी गैर-हाजिरी में भी श्रीरामकृष्ण के वहाँ आने पर गंगाजी की ओर का बैठकखाना उनके बैठने के लिए खोल देने के लिए उन्होंने अपने नौकरों से कह रखा था। श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्र बगीचे में कुछ देर तक टहलकर उस बैठकखाने में जाकर बैठ गये, और थोड़े ही समय में श्रीरामकृष्ण को समाधि लग गई। नरेन्द्र उनके पास ही बैठा हुआ उनकी वह समाधि-अवस्था देखने में मग्न था। इतने ही में श्रीरामकृष्ण एकदम उसके पास आये और उन्होंने पिछले समय के समान पुनः स्पर्श किया। नरेन्द्र आज बहुत सावधानी से बैठा हुआ था,

तो भी उस शक्तिपूर्ण स्पर्श के कारण उसकी बाह्यसंज्ञा तत्काल नष्ट हो गई। उस स्थिति में कुछ समय बीतने के बाद जब उसे पुनः देह-भाव हुआ तब उसने देखा कि श्रीरामकृष्ण मेरे वक्षःस्थल पर हाथ फेर रहे हैं और मुझे देहभान होता जा रहा है, तथा यह देखकर वे भीतर ही भीतर हँस रहे हैं।

बाह्यसंज्ञा के लोप होने पर उस दिन नरेन्द्र को क्या क्या अनुभव हुआ इसके विषय में हमने उसके मुँह से कुछ भी नहीं सुना। हमें मालूम होता है कि विशेष रहस्य की बातें होने के कारण नरेन्द्र उन बातों को दूसरों को न बताता होगा। पर एक दिन सहज ही बोलते हुए श्रीरामकृष्ण ने उस दिन का वृत्तान्त हमसे बतलाया। इससे मालूम होता है कि उस अनुभव का नरेन्द्र को शायद स्मरण ही नहीं रहा होगा। श्रीरामकृष्ण ने कहा:—

"बाह्यसंज्ञा के लोप हो जाने पर, उस दिन मैंने नरेन्द्र से कितनी बातें पूछीं। तू कौन है, कहाँ से आया है, किस लिए आया है (जन्म लिया है), यहाँ (पृथ्वी पर) कितने दिन रहने वाला है, इत्यादि। और उसने भी अन्तर्मुख होकर उन प्रश्नों का उत्तर दिया। उसके सम्बन्ध में मैंने जो कुछ देखा था उसका उसके उत्तरों से ठीक ठीक मेल होता गया। उन सब बातों को बताने का निषेध है। उसके बताने से मुझको इतनी बात तो मालूम हो गई कि जिस दिन उसे इस बात का स्मरण हो जायगा कि मैं कौन हूँ तो उस दिन से वह इस लोक में नहीं रहेगा, योगमार्ग से तत्काल शरीर का त्याग कर देगा। नरेन्द्र ध्यानसिद्ध महापुरुष है!"

नरेन्द्रनाथ के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण को जो जो दर्शन हुए,

उनमें से किसी किसी के बारे में वे कभी कभी हमें बताते थे। वे कहते थे —"नरेन्द्र के समान अधिकारी पुरुष इस युग में पृथ्वी पर आज तक कभी नहीं आया !" "नरेन्द्र पुरुष है और मैं प्रकृति हूँ।" "नरेन्द्र मेरा श्वशुरगृह है।" कभी कभी कहते थे —"नरेन्द्र अखण्ड के राज्य का पुरुष है। अखण्ड के राज्य में जहाँ देव-देवी आदि कोई भी ब्रह्म से अपना पृथक् अस्तित्व रख नहीं सके, वहाँ केवल सात ऋषियों को मैंने ध्यानस्थ बैठे हुए देखा। नरेन्द्र उन्हीं में से एक का अंशावतार है। जगत्पालक नारायण ने, नर और नारायण दो ऋषियों के रूप में जगत् के कल्याण के लिए तपश्चर्या की, उन्हीं में से एक ऋषि का अवतार नरेन्द्र है।" कभी वे कहते थे —"शुक देव के समान ही नरेन्द्र को माया स्पर्श नहीं कर सकती !" इन्हीं में से एक अद्भुत दर्शन का वर्णन उन्होंने एक दिन इस प्रकार किया:—

वे बोले —"एक दिन मन समाधि-स्थिति में ज्योतिर्मय मार्ग से उच्च उच्चतर स्थान में चढ़ रहा था। चन्द्र, सूर्य, तारकों से मण्डित स्थूल जगत् को सहज ही पार करके वह सूक्ष्म भाव-जगत् में प्रविष्ट हुआ। वहाँ की उच्च उच्चतर भाव-भूमिकाओं में से जाते हुए, मुझे रास्ते के दोनों ओर देवताओं की नाना प्रकार की भावघन विचित्र मूर्तियाँ दिखाई दीं। धीरे धीरे इस भाव-जगत् की चरम सीमा के पास आ पहुँचा। यहाँ ऐसा दिखाई दिया कि एक ज्योतिर्मय परदे के द्वारा खण्ड और अखण्ड प्रदेशों का विभाग किया गया है। इस परदे के उस पार के अखण्ड के राज्य में भी मैं प्रविष्ट हुआ; पर वहाँ देखता हूँ तो देहधारी कोई नहीं ! दिव्य देहधारी देवी-देवता भी यहाँ प्रवेश

करने का साहस न करते हुए, यहाँ से कितने ही नीचे के प्रदेश में अपना अपना अधिकार चलाते हुए बैठे रहते हैं, परन्तु थोड़ी ही देर में वहाँ ज्योतिर्मय दिव्य देहधारी सात ऋषि समाधिमग्न होकर बैठे हुए दिखाई दिये। वे ज्ञान, पुण्य, त्याग और प्रेम में मनुष्य की अपेक्षा तो क्या कहूँ, देवी-देवताओं की अपेक्षा भी श्रेष्ठ थे। उनकी ओर आश्चर्यचकित होकर देखते हुए उनकी महानता तथा दिव्य तेज का विचार कर रहा था कि इतने में ही सामने के अखण्ड राज्य के ज्योतिर्मण्डल में से एक अंश घनीभूत हुआ और उसमें से एक दिव्य बालक का निर्माण हुआ! वह दिव्य बालक घुटनों से चलते चलते सप्तर्षियों में से एक के पास पहुँचा, और अपने कोमल हाथों से उनके गले को आलिंगन करके अपनी अमृतमयी वाणी से पुकारते हुए, उन्हें समाधि से उठाने का प्रयत्न करने लगा। थोड़ी ही देर में उस ऋषि की समाधि टूट गई, और अपने अर्धोन्मीलित नेत्रों से वे उसकी ओर देखने लगे। उस समय की उनकी चर्या को देखकर ऐसा मालूम हुआ कि यह बालक उनका बिलकुल जीव-प्राण है। ऋषि की समाधि को उतरी देखकर उस बालक को बड़ा आनंद हुआ और वह बोला—'मैं चलता हूँ, तुमको मेरे साथ आना चाहिए।' ऋषि ने इसका कुछ उत्तर न देकर, केवल सिर हिलाकर ही इसकी स्वीकृति दे दी, और उस बालक की ओर प्रेमपूर्ण दृष्टि से देखते हुए वे पुनः समाधिमग्न हो गये। कितने आश्चर्य की बात है कि उनके शरीर और मन का एक अंश उज्ज्वल ज्योति के रूप में विलोम मार्ग से पृथ्वी पर उतरता हुआ मुझे दिखाई दिया! नरेन्द्र को देखते ही मैं पहचान गया कि यही वह ऋषि हैं।" अस्तु—

श्रीरामकृष्ण के अलौकिक शक्ति-प्रभाव से नरेन्द्र अपने में इस प्रकार पुनः एक वार भावान्तर होते देखकर अत्यन्त चकित हो गया। उनकी प्रचण्ड दैवी शक्ति के सामने अपनी बुद्धि और शक्ति के अल्पत्व का उसे प्रत्यक्ष अनुभव हो गया! उन्हें अर्धोन्माद होने की जो कल्पना उसे हो रही थी, वह समूल नष्ट हो गई और उसे पूर्ण निश्चय हो गया कि अपनी इच्छा-मात्र से ही चाहे जिसके मन को फेरकर उसे उच्च मार्ग की ओर, सहज खेल ही खेल में झुकाने वाला यह पुरुष सामान्य मनुष्य नहीं है, वरन् कोई दैवीशक्तिसम्पन्न असामान्य योग्यता रखने वाला महापुरुष होना चाहिए। और अपने ऊपर इस महा-पुरुष का कितना प्रेम है, यह स्मरण करके वह स्वयं अपने को धन्य मानने लगा!

श्रीरामकृष्ण की असामान्य दैवी शक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर लेने के कारण नरेन्द्र के मन में धीरे धीरे उनके प्रति पूज्यबुद्धि उत्पन्न होने लगी। तथापि उसका स्वभाव अभिमानी और खोजी (संशयी) होने के कारण श्रीरामकृष्ण की प्रत्येक बात की वारीकी से परीक्षा करने के वाद ही उसे ग्रहण करने का निश्चय उसने अपने मन में किया। उसके मन पर श्रीरामकृष्ण के परिचय का जो तात्कालिक परिणाम हुआ वह उनके त्याग के सम्बन्ध का था। "त्याग के विना ईश्वर-प्राप्ति नहीं हो सकती"—इस वात पर वचपन से ही नरेन्द्र का विश्वास था, और श्रीरामकृष्ण के दर्शन से यह विश्वास शीघ्रता से वढ़ता गया।

नरेन्द्र को देखने के समय से ही श्रीरामकृष्ण उसके लिए कैसे पागल हो गये थे, इसकी कुछ कल्पना तो पाठकों को हो ही गई होगी।

इसमें संशय नहीं है कि जब नरेन्द्र पहले ही उनके दर्शन के लिए अकेला गया, उसी समय उसको समाधि लगाकर ब्रह्मज्ञ-पदवी पर एकदम आरूढ़ करने का इरादा उन्होंने किया था, क्योंकि उसके चार वर्ष के बाद जब नरेन्द्र ने श्रीरामकृष्ण के चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया और निर्विकल्प समाधि के लिए लगातार आग्रह करना शुरू किया तब अनेक बार उस दिन का स्मरण कराके श्रीरामकृष्ण हम सब के सामने उससे कहते थे—"क्यों? तू उस दिन बोला था कि 'मेरे माँ बाप हैं और मुझको उनकी सेवा करनी है!' किसी समय दिल्लगी में वे यह भी कहते थे—"यह देख, सुन—एक बार एक मनुष्य मरकर भूत हो गया। बहुत दिनों तक अकेले रहने के कारण उसे अच्छा नहीं लगता था और वह अपने लिए कोई साथी ढूँढ़ने लगा। किसी मनुष्य के मरने की खबर मिलते ही, अब मुझे साथी मिलेगा यह सोचकर उसे बड़ा आनन्द होता था और बड़ी उत्कण्ठा से वह वहाँ दौड़ जाता था। पर होता क्या था? वह जहाँ जाता था वहीं उसे ऐसा दिखता था कि वह मृत मनुष्य गंगाजल के स्पर्श से या और किसी उपाय से उद्धार पा गया है। यह देखकर वह बेचारा निराश होकर अपने कपाल पर हाथ रखता और पुनः अकेला ही रहने लगता। इस तरह उस बेचारे को साथी कभी मिला ही नहीं! उसी भूत के समान मेरी दशा हो गई। तुझे देखकर आशा हुई कि इस समय तो मुझे साथी अवश्य मिलेगा। पर क्या हुआ? तू भी कहने लगा कि मेरे माँ बाप हैं! परिणाम यही हुआ कि उस समय भी मुझे कोई साथी नहीं मिला!"

नरेन्द्र को देखते ही श्रीरामकृष्ण ने अपनी योगदृष्टि द्वारा तुरन्त

जान लिया कि यह महान् अधिकारी पुरुष है। जगदम्बा की कृपा से मुझे जो अनुभव प्राप्त हुए हैं, उन्हें इसको बताकर उसका कार्य जगत् में फैलाने के लिए यह सर्वथा योग्य पुरुष है, यह जानकर अपने सब अनुभव उसे एकदम बताकर उसे तुरन्त सिद्ध पुरुष बना देने की इच्छा से प्रथम भेंट के समय ही समाधि का अनुभव कराने के लिए सम्भवतः वे उत्कण्ठित हुए होंगे, परन्तु नरेन्द्र के उस समय के उद्गार से, यह मेरे अनुभव ग्रहण करने के लिए अभी तक पूर्ण रूप से योग्य नहीं हुआ है, सर्वथा उसके पात्र नहीं हुआ है यह जानकर उन्होंने उस समय अपना इरादा स्थगित कर दिया और उन्होंने यह निश्चय किया कि उसे सभी उच्च आध्यात्मिक तत्वों का यथावकाश निश्चय कराके उसकी उन्नति क्रमशः की जाय। नरेन्द्र में असाधारण सामर्थ्य और गुण हैं यह वे जान गये थे और ईश्वर, जीव, जगत्, मनुष्य-जीवन के ध्येय आदि के यथार्थ तत्व को पूरा न समझकर यदि वह (नरेन्द्र) उसे अधूरा ही समझेगा, तो उसका परिणाम अच्छा नहीं होगा यह भी वे जान गये थे। वे कहा करते थे — "यदि वैसा होगा तो अन्य प्रचारकों के समान नरेन्द्र एक आध कोई नया पंथ चलाकर जगत् में कीर्ति और मान्यता प्राप्त करेगा, परन्तु वर्तमान समय के युगप्रयोजन को पूर्ण करने के लिए जिन उदार आध्यात्मिक तत्वों का प्रचार करना आवश्यक है उन मतों का अनुभव प्राप्त करना और उनका प्रचार करना इससे नहीं बनेगा।" इसीलिए श्रीरामकृष्ण का ध्यान इन बातों की ओर खिंचने लगा कि नरेन्द्र को मेरी उच्च आध्यात्मिक अवस्था और मतों का सर्वथा निश्चय कैसे हो, उसकी सर्व शंकाओं तथा संशयों का किस तरह पूर्ण रूप से समाधान हो और वह

वर्तमान समय के युगप्रयोजन को पूरा करने के काम में मेरा सहायक किस तरह बने। श्रीरामकृष्ण सदा कहा करते थे — "यदि गड्ढा, तालाब आदि में पानी बहता नहीं है, तो उसमें काई आदि पैदा हो जाती है; उसी प्रकार जहाँ आध्यात्मिक जगत् में सत्य के एक अंश को ही मनुष्य पूर्ण सत्य मान बैठता है, वहीं नये पंथ की उत्पत्ति होती है।" इससे यह दिखता है कि असाधारण बुद्धि वाला नरेन्द्र भी कदाचित् इसी प्रकार का कोई नया पंथ निर्माण न कर बैठे, और इसी भय से नरेन्द्र को पूर्ण सत्य का अधिकारी बनाने के लिए वे प्रयत्न करते थे।

प्रथम भेंट के समय से ही श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र के लिए कितने पागल हो गये थे, इस बात की पूरी कल्पना करा देना बहुत कठिन है। संसारी मनुष्य जिन कारणों से आपस में प्रेम करते हैं उनमें से एक भी कारण विद्यमान न रहने पर भी, नरेन्द्र की भेंट के लिए उनका मन जैसा व्याकुल रहता था और उससे भेंट हो जाने पर उनका आनन्द जैसा उमड़ पड़ता था, उस प्रकार की अवस्था और किसी की होती हुई हमारे देखने में तो कहीं नहीं आई। किसी एक का दूसरे पर निष्कारण इतना प्रेम हो सकता है, इस बात की हमें कभी कल्पना भी नहीं थी। श्रीरामकृष्ण को नरेन्द्र से भेंट करने के लिए कितनी व्याकुलता रहती थी इसकी कल्पना नीचे दी हुई एक-दो बातों से हो सकेगी।

नरेन्द्र की प्रथम भेंट के थोड़े ही दिनों बाद स्वामी प्रेमानन्द को श्रीरामकृष्ण के प्रथम दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। नरेन्द्र ७-८ दिनों से दक्षिणेश्वर नहीं आया था। इस कारण श्रीरामकृष्ण की अवस्था किस तरह की हो गई थी उसका निम्नलिखित वर्णन वे (प्रेमानन्द) गद्गद

होकर हमसे कई बार किया करते थे। वे कहते थे — "स्वामी ब्रह्मानन्द के साथ हम कुछ लोग एक दिन श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर गये थे। हम लोगों ने उनके कमरे में जाकर देखा तो वे श्री काली-मन्दिर में देवी के दर्शन के लिए गये हुए थे। हम लोगों से वहीं बैठने के लिए कहकर ब्रह्मानन्द उनको लाने के लिए मन्दिर की ओर गये। थोड़ी ही देर में वे उन्हें पकड़कर संभालते हुए — 'यहाँ सीढ़ी है, संभलकर उतरिये,' 'यहाँ सीढ़ी है, धीरे चढ़िये' कहते हुए उनके कमरे की ओर लेकर आते हुए दिखाई दिये। भावावेश में श्रीरामकृष्ण को बिलकुल ही बाह्यसंज्ञा नहीं रहती थी ऐसा हमने सुना था; इसलिए उनको ऐसी स्थिति में देखकर हमने पहचान लिया कि वे भावावेश में होंगे। इस अवस्था में वे अपने कमरे में आकर छोटे पलंग पर बैठ गये और थोड़ी ही देर में उन्हें देह की पूरी सुधि आ गई। हम लोगों को देखते ही उन्होंने बड़े प्रेम से हमसे कुशल प्रश्न किये और मुझे अपने पास बुलाकर मेरे हाथ, पैर, मुँह इत्यादि अवयवों की ध्यानपूर्वक परीक्षा की। फिर मेरी हथेली अपनी हथेली पर उलटी रखते हुए हाथ ढीला छोड़ने के लिए कहकर, उन्होंने मेरे हाथ का वज़न देखा और कहा — 'ठीक है!' ऐसे वज़न करने से उन्हें क्या पता लगा यह तो वे ही जानें। तत्पश्चात् हमारे ही साथ आए हुए रामदयाल बाबू से उन्होंने नरेन्द्र का कुशल समाचार पूछा और उसकी स्वस्थ प्रकृति सुनकर वे बोले — 'आज सात आठ दिन हो गये, वह यहाँ नहीं आया है। उससे भेंट करने की बड़ी इच्छा है। उसे एक दिन यहाँ आने के लिए कहो।'

"तदनन्तर बहुत समय तक अनेक प्रकार के धार्मिक विषयों पर

वे हमसे बातचीत करते रहे। लगभग दस बजे हम लोगों ने फला-हार किया और उनके कमरे के उत्तर की ओर बरामदे में जाकर हम सब सो गये। ब्रह्मानन्द श्रीरामकृष्ण के कमरे में ही सोये। हमको सोये कोई आधा घण्टा ही हुआ होगा कि इतने में देखते हैं कि श्रीरामकृष्ण अपनी धोती बगल में दबाये अपने कमरे से बाहर आ रहे हैं। पास आकर वे रामदयाल बाबू के सिरहाने के पास बैठ गये और उसे पुकारकर बोले — 'क्यों रे? नींद लग गई क्या?' हम दोनों ही हड़बड़ाकर एकदम उठ बैठे और बोले — 'नहीं, अभी नहीं महाराज!' यह सुनकर वे बोले — 'क्या बताऊँ? नरेन्द्र के लिए प्राण छटपटा रहे हैं, उसको एक बार यहाँ आने के लिए कह देना। कहोगे न? नरेन्द्र शुद्ध सतोगुणी साक्षात् नारायण है। बीच-बीच में उससे भेंट हुए बिना मैं जीवित नहीं रह सकता।' रामदयाल बाबू को मालूम था कि श्रीरामकृष्ण का नरेन्द्र पर कितना प्रेम है, इसीलिए उनका कहना सुनते ही — 'महाराज! कोई चिन्ता न कीजिए, प्रातः होते ही मैं उसके पास जाकर उसको यहाँ आने के लिए कहता हूँ।'—इत्यादि कहकर उनको सान्त्वना देने का उन्होंने बहुत प्रयत्न किया; परन्तु उस रात को श्रीरामकृष्ण की व्याकुलता किसी प्रकार कम नहीं हुई। अपने साथ दूसरे की नींद खराब कर रहा हूँ ऐसा सोचकर वे उठकर कमरे में जाते, परन्तु थोड़ी ही देर में, पुनः हमारे पास आकर नरेन्द्र के गुण वर्णन करने लगते और उसकी भेंट के लिए प्राण कैसे छटपटा रहे हैं सो बड़ी दीनता के साथ बताने लग जाते। सारी रात यही हालत रही। नरेन्द्र के प्रति उनका वह अगाध प्रेम देखकर हमारा अन्तःकरण भी गद्गद हो गया और हमें यह

भी ज्ञात हो गया कि इनको ऐसी व्याकुलता में डालने वाले नरेन्द्र का मन कितना कठोर होगा। उषःकाल होते ही हम लोग श्रीरामकृष्ण से विदा लेकर और श्री जगदम्बा को प्रणाम करके कलकत्ता वापस आये।

"वैसे ही और एक वार वैकुण्ठनाथ सान्याल श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए दक्षिणेश्वर गये थे। उस समय भी नरेन्द्र के बहुत दिनों तक न आने के कारण श्रीरामकृष्ण आनंदित नहीं थे। वैकुण्ठनाथ कहते थे—'उस दिन उनकी सारी बातें नरेन्द्र के सम्बन्ध की थीं। वे मुझको पुकारकर बोले—'यह देख, नरेन्द्र शुद्ध सतोगुणी है, वह अखण्ड के राज्य के चार में से एक है और सप्तर्षियों में से एक है। उसके गुणों का अन्त नहीं है!' और यह कहते कहते नरेन्द्र की भेंट की व्याकुलता सहन न होकर वे एक बालक के समान रोने लगे। थोड़ी देर में उन्होंने अपने शोक को किसी तरह रोका, और ये लोग मुझे क्या कहेंगे ऐसा सोचकर वे अपने कमरे के उत्तर के बरामदे में झटपट निकल आये। पर वहाँ भी क्या हुआ? 'माता! माता! उससे भेंट किये बिना मुझसे रहा नहीं जाता।' कहकर उन्हें ज़ोर ज़ोर से रोते हुए हम लोगों ने सुना! कुछ समय में अपना रोना बन्द करके वे कमरे में आकर हमारे पास बैठे और दीनता से कहने लगे—'इतना रोया, पर नरेन्द्र अब तक नहीं आया। उसकी भेंट के लिए प्राण छटपटा रहे हैं और कलेजा मानो निचोड़ा जा रहा है! पर उसको इसकी कुछ परवाह है क्या?'—ऐसा कहते हुए अस्थिर होकर वे पुनः वहाँ से उठकर बाहर गये, कुछ समय में फिर भीतर आकर कहने लगे—'मैं बूढ़ा आदमी हूँ, मुझको उसके लिए ऐसा

पागल होते देखकर लोग क्या कहते होंगे भला? तुम सब तो अपने आदमी हो; तुम्हारे पास कोई लज्जा नहीं मालूम होती। पर दूसरा कोई देखेगा तो क्या कहेगा? पर मैं भी क्या करूँ? कुछ भी करने से जीव की व्याकुलता शान्त नहीं होती!' नरेन्द्र के प्रति उनके इस अलौकिक प्रेम को देखकर हम लोग आश्चर्यचकित हो गये और उनको समझाने के लिए उनसे बोले—'सच है महाराज, नरेन्द्र ने आपके प्रति बड़ा अपराध किया है। उसकी भेंट न होने से आपको बड़े कष्ट होते हैं, यह जानकर भी वह यहाँ नहीं आता इसे क्या कहा जाय?' अस्तु—

"इसके बाद और एक दिन हम दक्षिणेश्वर गये थे। उस दिन वहाँ उनके जन्म-दिन के उपलक्ष्य में उत्सव था। भक्तमण्डली ने उस दिन उनको नूतन वस्त्र ग्रहण कराया और उनके शरीर में चंदन लगाकर सुन्दर सुन्दर फूलों की मालाएँ पहनाई थीं। उनके कमरे के पूर्व की ओर बरामदे में संकीर्तन हो रहा था और श्रीरामकृष्ण अपने भक्तों के साथ उसे सुन रहे थे। परन्तु आज के आनन्द के अवसर पर नरेन्द्र की अनुपस्थिति के कारण श्रीरामकृष्ण के मन में नीरसता आई हुई दिखाई देती थी। उसके रास्ते की ओर उनकी आँखें लगातार लगी हुई थीं और वे बीच बीच में निराशा से—'आज अभी तक नरेन्द्र नहीं आया!' हमारी ओर देखते हुए कहते जाते थे। अन्त में दोपहर के करीब नरेन्द्र आ पहुँचा और उनके पैरों पर मस्तक नवाकर उनके पास बैठ गया। उसके आते ही श्रीरामकृष्ण का आनन्द उमड़ पड़ा, और वे एकदम उठकर नरेन्द्र के कन्धे पर बैठकर गम्भीर समाधि में मग्न हो गये! समाधि उतरने पर नरेन्द्र से ही सम्भाषण करने लगे

और उसको कुछ खाने को देने की तैयारी में वे लग गये। उस दिन फिर कीर्तन आदि वैसा ही रह गया!"

उपरोक्त वर्णन से श्रीरामकृष्ण का नरेन्द्र पर कितना अद्भुत प्रेम था इसकी कुछ कल्पना हो सकेगी। नरेन्द्र को श्रीरामकृष्ण के दिव्य सत्सङ्ग का लाभ पाँच वर्ष तक हुआ। हर सप्ताह में वह दक्षिणेश्वर जाकर श्रीरामकृष्ण का दर्शन करता; और बीच में दो-दो, तीन-तीन दिन तक वहाँ रह भी जाता। श्रीरामकृष्ण की अद्भुत शक्ति की प्रत्यक्ष जानकारी उसको पहली एक दो भेंट में ही प्राप्त हो चुकी थी, और ऐसे असाधारण शक्तिसम्पन्न महापुरुष के अपने ऊपर इतने अपार प्रेम की स्मृति उसके मन में सदैव जागृत रहने के कारण, उनके पास गये बिना उससे नहीं रहा जाता था। यदि किसी सप्ताह में वह वहाँ नहीं जा पाता था तो श्रीरामकृष्ण को चैन नहीं पड़ती थी और वे उसे खास सन्देशा भेजकर बुलवा लेते थे और यदि इतने पर भी उसका आना नहीं हो सकता था तो वे स्वयं कलकत्ता जाकर उससे भेंट करते थे। पहले दो वर्ष में करीब करीब हर सप्ताह उनके दर्शन के लिए जाने में नरेन्द्र ने कभी नागा नहीं किया, परन्तु बी. ए. की परीक्षा हो जाने के बाद उसके पिता की अकस्मात् मृत्यु हो गई, और संसार का सारा भार उसी पर आ पड़ा। इस कारण कुछ दिनों तक वह नियमित रूप से दक्षिणेश्वर नहीं जा पाता था। पर श्रीरामकृष्ण के गले के रोग से बीमार पड़ने पर तो वह उनकी सेवा करने के लिए सदैव उनके पास ही रहने लगा।

योगदृष्टि से नरेन्द्र के उच्च श्रेणी के आध्यात्मिक अधिकारी होने की बात को जान लेने पर उसको भविष्य के महत्व के कार्य के लिए किस तरह तैयार करना चाहिए इसका निश्चय उन्होंने अपने आप कर

लिया था, और उसको अपनी दिव्य शक्ति का परिचय देकर और अपने अपूर्व प्रेम द्वारा पूर्ण रीति से जकड़कर, उन्होंने उसे सब प्रकार से अपना बना लिया था। और तब फिर उन्होंने उसे अनेक प्रकार की शिक्षा देकर उसकी सब शंकाओं का समाधान और संशयों की निवृत्ति की। उसकी शिक्षा पूर्ण होने के बाद धर्म-संस्थापन-कार्य के करने की रीति का भी अच्छी तरह उपदेश देकर अन्त में अपने सर्व भक्तगणों का भार उसको सौंपकर वे निश्चिन्त हो गये।

इन पाँच वर्षों की दीर्घ अवधि में इस गुरु-शिष्य को एक दूसरे के साथ रहने में जो आनन्द हुआ होगा, उनके आपस में जो सुख-संवाद हुए होंगे, ईश्वरी कथावर्णन में जो अमृतवृष्टि हुई होगी, उन सब का ठीक ठीक वर्णन करना बिलकुल असम्भव है। नरेन्द्र का स्वभाव अत्यन्त संशयी और खोजी था। अमुक अमुक व्यक्ति कहते हैं इसीलिए वह बात सत्य है ऐसा वह मानने वाला नहीं था। और गुरु भी ऐसे ज़बरदस्त मिले कि "मैं कहता हूँ इसीलिए किसी बात पर विश्वास मत कर, तुझे स्वयं अनुभव हो तभी विश्वास कर—" इस तरह बारम्बार सचेत करके बताते थे और शिष्य के द्वारा स्वयं अपनी सब प्रकार की परीक्षा कराने के लिए सदैव तैयार रहते थे! ऐसी जोड़ी इकट्ठी हो जाने के कारण इन दोनों के सहवास में से नये नये आध्यात्मिक विचारों का अमृतमय प्रवाह बाहर निकले और उसको पान करके सारे जगत् की आध्यात्मिक तृषा शान्त हो, तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है? श्रीरामकृष्ण के सत्संग से नरेन्द्र की आध्यात्मिक उन्नति क्रमशः किस प्रकार होती गई इसका केवल सिंहावलोकन ही करना यहाँ सम्भव है और अगले प्रकरण में इसी का वर्णन है।

१९—श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्रनाथ

"नरेन्द्र इन्द्रियलुब्ध, संसार आदि किसी में भी लिप्त नहीं है।"

मैं बोला—"माता! इसको माया से बद्ध करके रख; नहीं तो समाधिमग्न होकर यह देहत्याग कर देगा।"

"नरेन्द्र के समान आधार (अधिकारी पुरुष) कलियुग में आज तक नहीं हुआ!"

—श्रीरामकृष्ण

कालेज में पढ़ते समय, धार्मिक सत्यान्वेषण की व्याकुलता के कारण नरेन्द्र के बाह्य आचरण में इतनी लापरवाही रहती थी कि बहुतों को उसके सम्बन्ध में भ्रम हो जाता था। उसके प्रबल आत्म-विश्वास, असाधारण सत्यनिष्ठा, अलौकिक तेजस्विता आदि गुणों से पूरी तरह परिचित न रहने के कारण बहुत से लोग उसे उद्धत, दांभिक और स्वच्छंद भी कहा करते थे! इसमें सन्देह नहीं कि लोगों की निंदा-स्तुति के प्रति उदासीनता, स्पष्टवक्तृता, निर्भयता आदि गुण उसमें विशेष रूप से रहने के कारण दूसरों की उसके बारे में ऐसी भ्रमपूर्ण धारणा हो जाती थी। नरेन्द्र के विषय में उसके एक पड़ोसी ने एक दिन यह कहा—"इसके उस पार के घर में एक लड़का रहता है, उसके समान विचित्र लड़का संसार भर में नहीं होगा। वह कहीं एक दो परीक्षा ही पास हुआ है, पर उसे घमण्ड कितना है! वह अपने बाप के सामने भी तबला बजाने में कमी नहीं करता। बड़ों के सामने भी खुशी से चुरुट पीता रहता है—कहाँ तक उसकी बातें बताएँ।" और इसके दो चार दिनों के बाद ही दक्षि-

णेश्वर में श्रीरामकृष्ण के मुँह से नरेन्द्र के सम्बन्ध में यह सुन पड़ा —"ये सभी लड़के किसी तरह ख़राब नहीं हैं; कोई एक या कोई डेढ़* परीक्षा पास हुआ है; सब स्वभाव से अच्छे सभ्य और शान्त हैं, पर नरेन्द्र के समान इनमें से कोई एक भी नहीं दिखता। गाने में, बजाने में, विद्याभ्यास में, बोल-चाल में, और धार्मिक विषय में—सभी बातों में नरेन्द्र होशियार है! ध्यान करने बैठता है, तब रात बीत जाती है और सवेरा हो जाता है तिस पर भी उसे सुध नहीं आती और उसका ध्यान समाप्त नहीं होता है। हमारा नरेन्द्र तो खरा सिक्का है। बजाकर देखो कैसा खन् खन् बोलता है। मैं इन सब लड़कों को देखता हूँ कि ये लोग घोर परिश्रम करके (शरीर को काष्ठवत् सुखाकर) रात को दिन करके, किसी प्रकार बस दो या तीन परीक्षा पास कर लेते हैं। उनकी सारी शक्ति इसी में ख़र्च हो जाती है। पर नरेन्द्र को देखो—हँसते, खेलते और अन्य काम करते हुए वह अपना विद्याभ्यास कैसे सहज खेलते हुए कर लेता है! परीक्षा पास करना मानो उसके हाथ का खेल है! वह ब्राह्मसमाज में जाता है, वहाँ भजन करता है पर दूसरे ब्राह्मसमाजियों की तरह नहीं। वह तो सच्चा ब्रह्मज्ञानी है, ध्यान करते समय उसे ज्योतिदर्शन होता है। क्या योंही नरेन्द्र मुझे इतना प्रिय है?"

---

*मैट्रिक	१	जूनिअर बी. ए.	२॥
कालेज का प्रथम वर्ष	१॥	बी. ए.	३
एफ्. ए.	२	फर्स्ट बी. एल.	३॥
		बी. एल.	४

शायद श्रीरामकृष्ण इस क्रम से परीक्षाओं की गिनती करते होंगे।

नरेन्द्र की इस प्रकार स्तुति सुनकर उससे परिचय करने की इच्छा से हमने पूछा—"महाराज! नरेन्द्र कहाँ रहता है?" श्रीरामकृष्ण बोले—"नरेन्द्र विश्वनाथ दत्त का लड़का है; उसका घर सिमला में है।" बाद में कलकत्ता आकर पूछने से पता लगा कि जिसके सम्बन्ध में हमने अभी ही विचित्र बातें सुनी थीं वही यह नरेन्द्र है। ऐसे परस्पर-विरोधी वर्णन सुनकर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ और उस समय हमें इस बात का अनुभव हुआ कि केवल बाह्य आचार को देखकर किसी के सम्बन्ध में निश्चित मत बना लेना कितना भ्रमपूर्ण होता है।

अन्तर्दृष्टि से नरेन्द्र की योग्यता जान लेने के कारण उसके सम्बन्ध में अपना मत किसी के भी पास स्पष्ट रूप से प्रकट करने में श्रीरामकृष्ण कमी नहीं करते थे। किसी की चार लोगों के सामने प्रशंसा करने से उसे बहुधा अपने खुद के विषय में अभिमान हो जाता है—यह जानते हुए भी श्रीरामकृष्ण सब लोगों के सामने उसकी स्तुति किया करते थे; क्योंकि उन्हें तो यह अच्छी तरह निश्चय था कि इस स्तुति का नरेन्द्र के मन पर कोई अनिष्ट परिणाम कभी नहीं हो सकता। वरन् यदि इसके विपरीत उसे ऐसा मालूम होता हो कि मैं इतनी स्तुति का पात्र नहीं हूँ तो वह अपने में इन गुणों को लाने के लिए अधिक ही प्रयत्न करेगा। एक बार केशवचन्द्र सेन, विजय-कृष्ण गोस्वामी आदि बड़े बड़े लोग श्रीरामकृष्ण के पास बैठकर उनका उपदेश सुन रहे थे। उस समुदाय में नरेन्द्र भी था। बोलते बोलते भावावेश में उनकी दृष्टि केशवचन्द्र पर से नरेन्द्र की ओर गई और उसके भावी जीवन का उज्ज्वल चित्र उनके अन्तश्चक्षुओं के सामने

आ जाने से, वे बड़े प्रसन्न मन से उसकी ओर देखने लगे। केशव आदि लोगों के चले जाने के बाद श्रीरामकृष्ण हमसे कहने लगे —"ऐसा दिखा कि जिस एक शक्ति के उत्कर्ष के कारण केशव जगद्विख्यात हुआ है, वैसी अठारह शक्तियों का नरेन्द्र में पूर्ण उत्कर्ष हुआ है। और ऐसा दिखा कि यदि विजय और केशव का ज्ञान दीपक की ज्योति के समान है, तो नरेन्द्र का ज्ञान प्रत्यक्ष सूर्य के समान प्रखर है।" दूसरा कोई होता तो वह इस स्तुति के कारण फूला नहीं समाता, पर नरेन्द्र को इस कथन में आश्चर्य मालूम हुआ कि कहाँ जगद्विख्यात केशवचन्द्र सेन और कहाँ एक यःकश्चित् मेरे जैसा कालेज का एक सामान्य विद्यार्थी! ऐसा होते हुए भी श्रीरामकृष्ण केशवचन्द्र की अपेक्षा मेरी अधिक स्तुति क्यों कर रहे हैं यह सोचकर सरल स्वभाव वाला नरेन्द्र उनसे बोला —"महाराज! यह कैसी अनोखी सी बात आप कर रहे हैं? कहाँ केशवचन्द्र सेन और कहाँ मेरे समान एक साधारण विद्यार्थी! कृपा करके आप उनके साथ मेरी तुलना कभी भी न किया कीजिए।" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण और भी अधिक प्रसन्न होकर बोले —"पर इसको मैं क्या करूँ रे? तुझको क्या यही मालूम होता है कि मैं यह सब खुद आप ही होकर बोलता हूँ? माता मुझे जैसा दिखाती है, वैसा बोलता हूँ! उसने जब मुझको कभी भी कोई झूठी बात नहीं दिखाई, तब फिर भला इतनी ही बात कैसे झूठी हो सकती है?"

पर केवल 'माता दिखाती है,' 'माता कहलाती है' कहकर श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से छुटकारा नहीं पाते थे। श्रीरामकृष्ण के भिन्न भिन्न दर्शनों के सम्बन्ध में संशय होने के कारण स्पष्टवक्ता और

निर्भय नरेन्द्र कई वार कह वैठता था—"महाराज! यह सब दृश्य माता दिखाती है या कि आपके ही मन का खेल है? मुझे यदि इस प्रकार के कोई दर्शन प्राप्त हुए होते, तो मैं कम से कम यही समझता कि ये सब मेरे मन के ही खेल हैं। इन्द्रियों को होने वाले अनुभव सदा सच ही रहते हों ऐसा नहीं है। उन पर विश्वास रखने से बहुधा मनुष्य के फँसने की ही सम्भावना रहती है। आप मुझ पर प्रेम करते हैं, सभी बातों में मुझे बड़ा बनाने की आपकी इच्छा है, इसी कारण आपको ऐसे दर्शन प्राप्त होते हैं; और कोई दूसरी बात नहीं है।" ऐसा कहकर नरेन्द्र अनेक तर्क और युक्तियों द्वारा श्रीरामकृष्ण को अपने कथन का निश्चय कराने का प्रयत्न करता था। श्रीरामकृष्ण का मन यदि उस समय उच्च भावभूमि पर आरूढ़ रहता था, तो नरेन्द्र के इस प्रयत्न से उन्हें कौतुक मालूम पड़ता था और उसकी इस सत्यनिष्ठा को देखकर वे प्रसन्न होते थे। पर जब वे साधारण भावभूमि में रहते थे, तब अपने सरल स्वभाव के कारण उनके मन में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होते थे। उन्हें मालूम पड़ता था कि—"सच है। काया, वचन और मन से सत्यपरायण रहने वाला नरेन्द्र कभी असत्य नहीं बोलेगा। उसके समान अत्यन्त सत्यनिष्ठ मनुष्य के मन में मिथ्या संकल्प का उदय ही नहीं होता है, तब क्या मेरे दर्शन ही असत्य हैं?" ऐसा विचार आने से उनके मन में हलचल मच जाती थी; परन्तु उन्हें पुनः ऐसा लगता था, "पर मैंने तो आज तक अनेक प्रकार की परीक्षा करके देख ली है कि माता ने मुझे कभी भी असत्य का दर्शन नहीं कराया है और बारम्बार मुझे उसने स्वयं आश्वासन भी दिलाया है। तब फिर यह

नरेन्द्र मेरे दर्शनों को कल्पना के खेल कैसे कहता है? और मेरे बताते ही उसे वे सत्य क्यों नहीं मालूम पड़ते?"

मन में इस प्रकार की गड़बड़ी मचने के कारण श्रीरामकृष्ण माता के पास दौड़ जाते थे और माता अपने बालक की सान्त्वना किए बिना कैसे रहती! वह कहती थी—"उसके कहने की ओर तू क्यों ध्यान देता है? कुछ दिनों में आप ही आप वह सारी बातें मानने लगेगा।" तब कहीं उनके जी में जी आता था! इस प्रकार का एक उदाहरण यहाँ पर दे देना उचित होगा।

ब्राह्मसमाज के दो विभाग हो जाने पर नरेन्द्र साधारण ब्राह्म-समाज का अनुयायी हो गया। प्रत्येक रविवार को वह समाज की उपासना में उपस्थित होकर भजन आदि में भाग लेता था। एक बार एक दो सप्ताह तक नरेन्द्र के दक्षिणेश्वर न आने से श्रीरामकृष्ण को चैन नहीं पड़ी। उसकी राह देखते देखते थककर उन्होंने कल-कत्ता ही जाकर उससे भेंट करने का निश्चय किया; और वह दिन इतवार होने के कारण ब्राह्मसमाज के उपासना-मन्दिर में ही नरेन्द्र के रहने की सम्भावना देखकर वे वहीं जाने वाले थे। केशवचन्द्र, विजयकृष्ण आदि के समय में समाज में जैसा अपना मान हुआ करता था वैसा अब होगा या नहीं, अथवा बिना बुलाये वहाँ जाना शिष्टा-चार-संमत होगा या नहीं, अथवा अपने जाने से वहाँ के लोगों को कहीं संकोच तो नहीं होगा—आदि बातों का कुछ भी विचार न करते हुए वे संध्या होते होते उपासना-गृह में आ पहुँचे। उस समय उपासना हो रही थी। किसी ने भी श्रीरामकृष्ण का स्वागत नहीं किया वरन् बहुतों की ऐसी समझ थी कि विजयकृष्ण आदि के समाज

छोड़ने के कारण ये ही हैं, इसलिए केवल 'आइए, बैठिए' कहने का साधारण शिष्टाचार भी किसी ने नहीं किया।

पर श्रीरामकृष्ण का उधर ध्यान ही नहीं गया। सभागृह में आते ही उन्हें भावावस्था प्राप्त हो गई थी और वेदी तक जाते ही वे समाधिमग्न हो गये। वहाँ श्रोतृसमाज में नरेन्द्र था ही। श्रीरामकृष्ण को वहाँ आये हुए देखकर वह उनके पास आकर खड़ा हो गया। उपासना बन्द हो गई और सभागृह में गड़बड़ मच गई। समाधि-स्थिति में खड़े हुए श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए हर एक मनुष्य अपनी जगह छोड़कर आगे बढ़ने लगा। श्रीरामकृष्ण के आसपास भीड़ हो गई और उस भीड़ को हटाने की बात तो दूर रही, उलटा उसके बढ़ने का ही रंग दिखने लगा। आखिर भीड़ इतनी बढ़ गई कि नरेन्द्र आदि को यह चिन्ता होने लगी कि श्रीरामकृष्ण यहाँ से ठीक ठीक बाहर कैसे निकल सकते हैं, इसीलिए उन्होंने चालाकी से सभागृह के गैस के लैम्प बुझा दिए, और नरेन्द्र उस अन्धकार में श्रीरामकृष्ण को पकड़कर दरवाजे में से धीरे से ही बाहर निकल आया।

मेरे लिए श्रीरामकृष्ण यहाँ आये और उन्हें किसी ने 'आइये, बैठिये' तक नहीं कहा, यह देखकर नरेन्द्र को मृत्यु से भी बढ़कर दुःख हुआ। नरेन्द्र कहता था — "इस दिन मेरे लिए श्रीरामकृष्ण को अपमानित होना पड़ा इस बात का मेरे मन में बड़ा दुःख हुआ और मेरी भेंट के लिए ऐसे पराये स्थान में आने के बारे में मैंने उन्हें बहुत उलहना दिया, परन्तु उन्होंने उस ओर बिलकुल लक्ष्य न करके मेरी बात हँसी में उड़ा दी। इस पर मैं बोला — 'आप सदा

'नरेन्द्र नरेन्द्र' करते हुए लगातार मेरा चिन्तन करते हैं; पर यह ठीक नहीं है। आपको मालूम है न, राजा भरत का हिरन से अत्यधिक प्रेम रहने के कारण उसको हिरन बनकर ही जन्म लेना पड़ा? बस वैसा ही कहीं आपका न हो जाय।' इसे सुनते ही श्रीरामकृष्ण का चेहरा गम्भीर हो गया और वे दुःख के आवेश में बोले—'तू कहता है वह सब सच तो है रे! पर तेरी भेंट हुए बिना मेरे प्राण छटपटाने लगते हैं, उसे मैं क्या करूँ?' पर उस दिन बात यहीं पर समाप्त नहीं हुई। दक्षिणेश्वर वापस आने पर यह बात जगदम्बा के कान में डालने के लिए वे मन्दिर में गए और वहाँ उन्हें समाधि लग गई। समाधि उतरने पर वे हँसते हुए अपने कमरे में वापस आकर मुझसे कहने लगे—'जा रे मूर्ख! मैं तेरा कहना बिल्कुल नहीं मानता! माता कहती है कि तू उसको साक्षात् नारायण समझता है, इसलिए वह तुझे इतना प्यारा लगता है; पर जिस दिन तू उसको नारायण नहीं मानेगा, उस दिन तुझे उसका मुख भी देखने का मन नहीं होगा।' बस! इस तरह मेरे सभी कहने को उन्होंने अपनी एक फटकार से उड़ा दिया।'

नरेन्द्र की सत्यनिष्ठा के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण की अत्यन्त उच्च धारणा थी। उनका विश्वास था कि अत्यन्त सत्यपरायण नरेन्द्र के मुँह से असत्य बात कभी बाहर नहीं निकल सकती; इसलिए किसी बात की सत्यता पर उन्हें विश्वास होते हुए भी यदि उसे नरेन्द्र कह दे कि यह सत्य नहीं है, तो सरल स्वभाव वाले श्रीरामकृष्ण के मन में उस बात की सत्यता के बारे में शंका उत्पन्न हो जाती थी। एक दिन चातक पक्षी की बात निकलने पर नरेन्द्र बोला—"महाराज!

लोग जो कहते हैं कि चातक पक्षी स्वाति नक्षत्र के मेघ से बरसने वाले पानी के सिवाय दूसरा पानी नहीं पीता सो केवल कविकल्पना है। मैंने स्वयं एक चातक पक्षी को नदी का पानी पीते देखा है और एक दिन आपको भी दिखा दूँगा—" खुद नरेन्द्र के इस तरह कहने के बाद फिर क्या पूछना है! श्रीरामकृष्ण बोले—"तू ही कह रहा है, तब होगा ही वैसा। तब फिर कहना चाहिए कि इतने दिनों तक मेरी गलत कल्पना ही थी।" इसके बाद एक दिन नरेन्द्र बड़ी जल्दी जल्दी श्रीरामकृष्ण को पुकारकर कहने लगा—"यह देखिए महाराज, चातक पक्षी नदी का पानी पी रहा है।" श्रीरामकृष्ण उस पक्षी की ओर देखकर हँसते हुए नरेन्द्र से बोले—"अरे वाहरे मूर्ख! यह तो चामचिका (छोटा चमगादड़) है! उस दिन तूने यह कहकर कि चातक किसी दूसरी जगह का पानी पीता भी है, व्यर्थ ही मुझको सोच-विचार में डाल दिया था। जा, अब से मैं तेरी किसी बात पर विश्वास नहीं करूँगा।"

शुरू से ही श्रीरामकृष्ण इस बात की ओर ध्यान रखते थे कि नरेन्द्र के मन में सदा उच्च विचार ही घूमते रहे और उनसे ही प्रेरित होकर वह अपने सब काम करता रहे। इसी कारण नरेन्द्र के साथ उनका व्यवहार अन्य भक्तों की अपेक्षा दूसरी ही तरह का रहा करता था। भगवद्भक्ति को हानि न पहुँचने देने के लिए आहार-विहार, निद्रा, जप, ध्यान आदि सभी विषयों में जिन नियमों का श्रीरामकृष्ण स्वयं पालन करते थे और दूसरों को भी पालन करने का उपदेश देते थे उन्हीं के बारे में वे सभी के सामने निःसंकोच भाव से कहा करते थे कि वे सब नियम नरेन्द्र को लागू नहीं हैं, और

न उनके न पालन करने से उसे दोष ही लग सकता है! 'नरेन्द्र नित्यसिद्ध है', 'नरेन्द्र ध्यानसिद्ध है', 'नरेन्द्र के भीतर रहने वाली ज्ञानाग्नि निरन्तर धधकती हुई जल रही है और सब प्रकार के आहार आदि के दोष उसमें जलकर भस्म हो जाते हैं; इसलिए वह कहीं भी कुछ भी खा ले, तो भी उससे उसको दोष नहीं लगेगा।' 'ज्ञानखड्ग द्वारा वह अपने माया-बन्धन को सदैव तोड़ा करता है, इसलिए महामाया उस पर अपना प्रभाव नहीं चला सकती" इत्यादि कितनी बातें नरेन्द्र के सम्बन्ध में वे हमारे पास सदा बताया करते थे।

शिष्य के मन की इतनी बारीकी से परीक्षा करके उससे तदनुरूप व्यवहार रखना जगद्गुरु के सिवाय औरों में सम्भव नहीं होता। श्रीरामकृष्ण से भी बिलकुल अपने पेट की बातें नरेन्द्र को बताये बिना नहीं रहा जाता था। वे सभी विषयों में उसका मत पूछा करते थे। अपने पास आने वाले मनुष्यों की बुद्धि और विश्वास की परीक्षा करने के लिए कई बार वे उनको नरेन्द्र के साथ वाद-विवाद करने में लगा देते थे और आप चुपचाप तमाशा देखते रहते थे! श्रीरामकृष्ण जैसे महापुरुष का अपने ऊपर इतना प्रेम है, इस बात का निरन्तर विचार रखते हुए उनके इस प्रेम के अनुकूल ही अपना बर्ताव सदा बनाये रखने की ओर नरेन्द्र का लक्ष्य रहने लगा और तीन चार वर्ष की अवधि में वह सब प्रकार से उनका बन गया।

श्रीरामकृष्ण के पास नरेन्द्र का आना शुरू होने के कुछ महीने बाद ही 'श्रीरामकृष्णकथामृत' नामक अलौकिक ग्रन्थ के रचयिता श्रीरामकृष्ण के परम भक्त श्रीयुत 'एम्' (महेन्द्रनाथ गुप्त) को उनका (श्रीरामकृष्ण का) प्रथम दर्शन प्राप्त हुआ। अपनी प्रथम भेंट

की बात उन्होंने अपनी पुस्तक में बतलाई ही है। नरेन्द्रनाथ कहता था, "करीब उसी समय एक बार मैं रात्रि को श्रीरामकृष्ण के पास ही रह गया था। संध्या समय पंचवटी के नीचे सहज ही बैठा था कि इतने में श्रीरामकृष्ण वहाँ आये और मेरा हाथ पकड़कर हँसते हँसते कहने लगे—'आज तेरी विद्या और बुद्धि कितनी है सो देखना चाहता हूँ। तूने तो ढाई परीक्षा ही पास की है, पर आज साढ़े तीन परीक्षा पास किया हुआ 'मास्टर' आया है। चल देखूँ तो तू उसके साथ बहस करने में कहाँ तक टिकता है?' अतएव मुझको श्रीरामकृष्ण के साथ जाना पड़ा! कमरे में पहुँचने पर श्रीरामकृष्ण ने 'एम्' का परिचय करा दिया और फिर हम लोग भिन्न भिन्न विषयों पर आपस में बातें करने लगे। श्रीरामकृष्ण एक ओर चुपचाप बैठकर हमारी बातें सुन रहे थे। कुछ समय के बाद 'एम्' के चले जाने पर वे बोले—'साढ़े तीन परीक्षा पास करने से भी क्या लाभ है? मास्टर स्त्रियों के समान शरमाता है, उससे ठीक बोलते भी नहीं बनता!' इस तरह वे बहुधा किसी न किसी को मुझसे वाद-विवाद करने में लगा देते थे और स्वयं आराम से बैठकर मजा देखते थे!"

श्रीरामकृष्ण की संसारी भक्त-मण्डली में केदारनाथ चट्टोपाध्याय नाम के एक गृहस्थ थे। वे बड़े भगवद्भक्त और सरल स्वभाव वाले थे। उनका बड़ा प्रेमी स्वभाव था। भजन, कीर्तन आदि सुनते समय उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगती थी! उनकी इस भक्ति को देखकर श्रीरामकृष्ण उनकी सदा प्रशंसा करते थे। वे ढाका में रहते थे और बीच बीच में श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए आते थे। जब वे आते थे तब श्रीरामकृष्ण अपने अन्य भक्तों से उनका परिचय करा

देते थे। एक दिन केदारनाथ श्रीरामकृष्ण के पास बैठे हुए थे तब नरेन्द्र वहाँ आया। श्रीरामकृष्ण के कहने से नरेन्द्र ने एक दो पद गाये। सुनते सुनते केदारनाथ उसी में तन्मय हो गये और उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। गाना समाप्त होने पर उस दिन केदारनाथ के साथ भी श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को विवाद करने में लगा दिया। केदारनाथ अपने कथन का अच्छा समर्थन करते थे और अपने विरुद्ध पक्ष वाले के विचारों की गलतियाँ स्पष्ट करके दिखा देते थे। वे यदि किसी प्रश्न पर कोई अपूर्व उत्तर देकर उसे निरुत्तर कर देते थे और वह उत्तर श्रीरामकृष्ण को पसन्द आ जाता था तो वे हर एक से दिल खोलकर यही कहते थे कि—"केदार ने उस दिन इस प्रश्न का ऐसा उत्तर दिया—" नरेन्द्र के साथ विवाद होते समय उस दिन नरेन्द्र ने पूछा कि "भगवान् यदि सचमुच दयामय है तो फिर उसकी सृष्टि में इतनी विषमता, दुःख और कष्ट क्यों है? सिर्फ पेटभर अन्न न मिलने के कारण हजारों मनुष्य क्यों मरते हैं?" इस पर केदार ने उत्तर दिया—"दयामय होने पर भी, अपनी सृष्टि में दुःख, कष्ट, अल्पमृत्यु आदि रखने का ईश्वर ने जिस दिन निश्चय किया था उस दिन की सभा में उसने मुझे नहीं बुलाया तब उसने ऐसा क्यों निश्चय किया यह मैं कैसे जानूं?" यह सुनकर सब के सब हँसने लगे। उस दिन तो नरेन्द्र की तीक्ष्ण तर्कशैली के सामने केदार को हारना पड़ा।

केदारनाथ के चले जाने पर श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र से बोले—क्यों रे! कैसा है केदार, देखा न? कितनी भक्ति है! ईश्वर का केवल नाम उसके कान में पड़ते ही उसकी आँखों से कैसी अश्रुधारा

बहने लगती है! ईश्वर का नाम कान में पड़ते ही जिसकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगती है, वह जीवन्मुक्त है। केदार बड़ा अच्छा मनुष्य है न?"

नरेन्द्र का स्वभाव बड़ा तेजस्वी तथा अन्तःकरण पवित्र था। पुरुष होकर जो स्त्रियों के समान आचरण करते हो — फिर चाहे वह धर्म-मार्ग में हो या और बातों में हो — उनकी वह मन से घृणा करता था। दृढ़ संकल्प और निरन्तर उद्योग के बल पर ईश्वर-प्राप्ति का प्रयत्न करना छोड़कर, स्त्रियों के समान रो रोकर ईश्वर-दर्शन की इच्छा करना वह पुरुषत्व का अपमान करना समझता था। ईश्वर पर सर्वथा भार सौंपने पर भी पुरुष पुरुष ही है। उसका मत था कि पुरुष को अपने पुरुषत्व को देखते हुए जिस रीति से उचित हो उसी रीति से आत्मसमर्पण करना चाहिए। इसलिए श्रीरामकृष्ण की बात उसे न जँची और वह बोला — "महाराज! यह मैं भला कैसे समझूँ? आप जान सकते हैं इसलिए आप वैसा कहते हैं सो ठीक है। नहीं तो सिर्फ रोने गाने से अच्छे और बुरे की पहचान नहीं हो सकती। देखिये न, सिर्फ एक ओर टक लगाकर देखते रहिए तो भी आँखों में पानी आ जाता है, राधा की विरहावस्था के गाने सुनकर कई लोगों की आँखें डबडबा जाती हैं। पर वैसा होने का कारण भक्ति का उमड़ना न होकर, अपनी स्त्री का विरह याद आने के कारण या स्वयं अपने को उस अवस्था में कल्पना कर लेने के कारण, उनकी आँखों में पानी आ जाता है, पर मेरे समान जिस व्यक्ति को ऐसी अवस्था का अनुभव नहीं है उसे कोई कैसे भी गाने सुनावे, बिलकुल रोना नहीं आता।" इस तरह अपने को न जँचने वाली बात को स्पष्ट रूप से उन्हें बता

देने में नरेन्द्र कभी कमी नहीं करता था और श्रीरामकृष्ण भी उसके इस प्रकार स्पष्टवक्ता होने के कारण उस पर प्रसन्न होते थे।

हम पीछे बता चुके हैं कि श्रीरामकृष्ण के पास आना शुरू करने के पहले नरेन्द्र ब्राह्मसमाज में जाया करता था। 'मैं निराकार ईश्वर की ही उपासना किया करूँगा' इस आशय के प्रतिज्ञापत्र पर उसने हस्ताक्षर भी कर दिए थे। इसके पहले से ही राखाल और नरेन्द्र का परिचय हो चुका था। राखाल ने समाज के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर किया था। नरेन्द्रनाथ जब श्रीरामकृष्ण के पास आने लगा, तब वहाँ भी राखाल को आते देखकर उसे बड़ी खुशी हुई। राखाल का शुरू से ही साकारोपासना की ओर आकर्षण था, और श्रीरामकृष्ण के उपदेश से उसकी यह सगुण भक्ति पुनः जागृत हो गई। एक दिन नरेन्द्रनाथ दक्षिणेश्वर आया हुआ था। वहाँ उसने श्रीरामकृष्ण के साथ राखाल को भी मन्दिर में जाकर देवता को प्रणाम करते देखा। सत्यपरायण नरेन्द्र को इस पर क्रोध आ गया और उसने समाज के प्रतिज्ञापत्र पर किए हुए हस्ताक्षर का राखाल को स्मरण दिलाया और उसके वर्तमान आचरण के सम्बन्ध में उसकी कड़ी आलोचना की। बेचारा गरीब राखाल! नरेन्द्र के सामने उससे कुछ बोलते ही नहीं बना और उस दिन से नरेन्द्र के सामने जाने में भी उसे डर लगने लगा। यह सब बात श्रीरामकृष्ण के कान में पहुँचने पर उन्होंने एक दिन नरेन्द्र को अलग बुलाकर उससे कहा —"देख! इसके बारे में राखाल से तू अब कुछ मत बोल। तुझको देखते ही वह डर से काँपने लगता है। अभी उसके मन की प्रवृत्ति साकारोपासना की ओर है। ऐसी अवस्था में वह क्या करे?

सभी को तेरे समान निर्गुण की धारणा पहले से ही कैसे हो सकती है ?" उस समय से नरेन्द्र ने राखाल को साकारोपासना के विषय में कभी दोष नहीं दिया।

नरेन्द्र को उत्तम अधिकारी जानकर शुरू से ही श्रीरामकृष्ण उसको अद्वैत-तत्त्व का उपदेश दिया करते थे। उसके वहाँ आते ही वे उसे अष्टावक्रसंहिता आदि पुस्तकें पढ़ने को दिया करते थे। नरेन्द्र को ये सब ग्रन्थ नास्तिक विचारों से भरे हुए मालूम पड़ते थे। श्रीरामकृष्ण के आग्रह के कारण वे उन पुस्तकों को थोड़ा सा पढ़ते, और तुरन्त ही स्पष्ट रूप से कहने लगते—"इसमें और नास्तिकता में क्या अन्तर है ? जीव जो उत्पन्न किया गया है, वह स्वयं कहे कि मैं उत्पन्नकर्ता हूँ तो इसे और क्या कहा जाय ? इसकी अपेक्षा और अधिक पाप क्या हो सकता है ? मैं ईश्वर हूँ, तू ईश्वर है, जन्म-मरणशील सभी पदार्थ ईश्वर हैं—इसके समान क्या कोई दूसरी विचित्र बात हो सकती है ? इन ग्रन्थकर्ता ऋषियों के मस्तिष्क बिगड़ गये होंगे; अन्यथा वे इस प्रकार कभी न लिखते !" इसे सुनकर श्रीरामकृष्ण कुछ हँसते और कहते—"अरे ! यदि तुझको यह सब न जँचता हो, तो तू मत मान, पर उन ऋषियों की निन्दा क्यों करता है ? और ईश्वर के स्वरूप की 'इति' भी तू क्यों करता है ? तू सत्यस्वरूप ईश्वर की हृदय से प्रार्थना कर और तुझको उसके जिस स्वरूप का निश्चय हो जाय उसी पर विश्वास रख तब तो ठीक हो जाएगा न ?" तो भी वह श्रीरामकृष्ण के कथन पर ध्यान नहीं देता था और उन ग्रन्थों में वर्णित विषय का श्रीरामकृष्ण के पास और दूसरे लोगों के पास दिल खोलकर उपहास किया करता था!

श्रीरामकृष्ण उसके सम्बन्ध में कहा करते थे कि ज्ञानमार्ग का साधक होते हुए भी नरेन्द्र के अन्तःकरण में भक्तिभाव और कोमलता के गुण भी पूर्ण रूप से भरे हुए हैं। एक दिन नरेन्द्र को आते हुए देखकर श्रीरामकृष्ण हम लोगों की ओर रुख करके बोले—"शुष्क ज्ञानी की आँखें क्या कभी इस तरह की होती हैं? ज्ञान के साथ भक्ति भी उसके अन्तःकरण में भरी हुई है। केवल पुरुषोचित भाव ही जिसमें रहते हैं, उसके स्तन के चारों ओर का भाग कभी भी काला नहीं रहता है। महावीर अर्जुन का ऐसा ही था।"

नरेन्द्र के दक्षिणेश्वर आने पर कई बार उसको दूर से देखते ही श्रीरामकृष्ण को भावावेश प्राप्त हो जाता था! फिर देहभान होने पर बहुत समय तक वे उसके साथ धार्मिक विषयों की चर्चा करते रहते थे। कई बार इस प्रकार की चर्चा चलते चलते उन्हें गाना सुनने की इच्छा हो जाती थी और नरेन्द्र के गायन शुरू करते ही वे समाधिमग्न हो जाते थे। ऐसा होने पर भी नरेन्द्र अपना गाना जारी रखता था। श्रीरामकृष्ण को देह की सुधि आ जाने पर वे कई बार नरेन्द्र से कोई विशेष पद गाने के लिए कहते थे और सब के अन्त में 'जो कुछ है, सो तू ही है' यह पद गाने के लिए कहते थे। इस प्रकार नरेन्द्र के आने से मानो उनका आनंद उमड़ पड़ता था।

हम पीछे कह चुके हैं कि दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर के एक घर में उस समय प्रतापचन्द्र हाजरा नामक एक सज्जन रहते थे। जप-ध्यान आदि करने में वे अपना बहुत सा समय बिताते थे। उनके घर की साम्पत्तिक स्थिति अच्छी नहीं थी, और ईश्वर की भक्ति करने से सम्पत्ति के प्राप्त होने की इच्छा उनके मन में रहती थी। उनका यह

कहना था कि—"ईश्वर की उपासना करने से वह हमारी सब प्रकार की इच्छाएँ पूर्ण करता है; उसके पास ऐश्वर्य की कमी नहीं है, इसलिए भक्त की इच्छा होने पर वह उसे सम्पत्ति भी देता है।" श्रीरामकृष्ण उन्हें शुरू से ही इस प्रकार की सकाम भक्ति न करके निष्काम भाव से भक्ति करने के लिए उपदेश दिया करते थे। पर वह बात उनको नहीं जँचती थी। उनकी इच्छा थी कि श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए जैसे अनेक लोग आते हैं वैसे ही मेरे पास भी आया करें। इसी कारण आने वालों के साथ वे वेदान्त की दो चार गप्पें लगाकर उन पर अपना प्रभाव डालने का प्रयत्न करते थे और उनकी बुद्धि अच्छी होने के कारण उसमें वे कई बार सफल भी हो जाते थे। श्रीरामकृष्ण हम लोगों को हाजरा महाशय से बहुत सम्बन्ध न रखने के लिए कहा करते थे। वे कहते—"हाजरा बहुत गहरी बुद्धि वाला है, उसका कभी मत सुनो।"

वहाँ आने वाले लोगों में से नरेन्द्र के साथ उनकी अच्छी घनिष्ठता हो गई थी। नरेन्द्र उनके साथ पाश्चात्य तत्ववेत्ताओं के मत के सम्बन्ध में कई बार चर्चा करता था। परन्तु कोई विवादास्पद प्रश्न उठने पर नरेन्द्र के सामने उनको सदा हार माननी पड़ती थी। वे सदैव ही नरेन्द्र का कहना बड़ी सावधानी से सुनते थे और इसलिए नरेन्द्र भी उन पर खुश रहता था। उन दोनों की ऐसी दोस्ती देखकर हम लोग कई बार हँसते हुए कहते थे—"अब क्या कहें भाई! हाजरा महाशय हो गए हैं नरेन्द्र के दोस्त!"

एक दिन अद्वैत मत की बातें हो रही थीं; जीव और ब्रह्म की एकता की बात श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को कई प्रकार से समझाई।

उनका सब कथन नरेन्द्र ने ध्यानपूर्वक सुना परन्तु वह उसे नहीं जँचा। इसके बाद नरेन्द्र नित्य के समान हाजरा महाशय के पास गया और उसी समय सुने हुए अद्वैत मत का उपहास करते हुए कहने लगा— "यह कितनी विचित्र बात है? कहते थे—घर ईश्वर, बर्तन ईश्वर, पेड़ ईश्वर, तुम हम सभी ईश्वर हैं!—ऐसा होना क्या कभी सम्भव हो सकता है?" हाजरा महाशय ने भी नरेन्द्र के कथन का समर्थन किया और वे दोनों ज़ोर ज़ोर से हँसने लगे। श्रीरामकृष्ण उस समय भावावस्था में थे। नरेन्द्र के हँसने की आवाज़ सुनकर वे अपने पहनने की धोती बगल में दबाकर बाहर आए और "तुम्हारी क्या बातें हो रही हैं रे?" कहकर हँसते हुए नरेन्द्र के पास जाकर उन्होंने उसके शरीर को स्पर्श किया और आप समाधिमग्न हो गए।

नरेन्द्रनाथ कहता था—"श्रीरामकृष्ण के उस दिन के अद्भुत स्पर्श से क्षणार्ध में मुझमें कैसा विलक्षण भावान्तर हो गया। कितने आश्चर्य की बात थी! मुझे सचमुच ही ऐसा दिखने लगा कि इस सारे ब्रह्माण्ड में ईश्वर के सिवाय और कुछ भी नहीं है। यह देखकर मैं सोचने लगा कि देखूँ, मेरे मन की यह अवस्था कब तक टिकती है। पर उस दिन तो उस स्थिति में कोई अन्तर नहीं हुआ। घर लौटकर आया वहाँ भी वही स्थिति रही! जो कुछ दिखे, वह सभी ईश्वर माल्रम पड़े! भोजन करने के लिए बैठा, वहाँ भी यही दिखने लगा कि थाली, कटोरी, अन्न, परोसने वाला, मैं स्वयं खाने वाला, सभी ईश्वर हैं! किसी प्रकार एक दो कौर खाये पर आगे खाया ही नहीं गया! माता ने पूछा—'ऐसा चुप क्यों बैठा है? आज खाता क्यों नहीं है?' तब मैं सचेत हुआ और फिर एक दो कौर खाकर

चुप बैठ गया। दिन भर, खाते-पीते, बोलते-चालते, कालेज जाते समय, ऐसा ही लगता था कि सब कुछ ईश्वरमय ही है। और किसी भूत द्वारा ग्रसित मनुष्य के समान सदा यही विचार मन में बना रहता था, दूसरा विचार मेरे मन में आता ही नहीं था! रास्ते में चलते समय गाड़ी को सामने से आती हुई अच्छी तरह देखकर भी उसके सामने से हटकर एक ओर चलने की प्रवृत्ति नहीं होती थी। ऐसा लगता था कि क्या हर्ज है? गाड़ी भी तो ईश्वर ही है न? उसमें और मुझमें क्या अन्तर है? हाथ पैर मानो बिलकुल ढीले से लगते थे। और मैं कितना भी खाता था, तो भी तृप्ति नहीं होती थी—ऐसा मालूम हो कि इतनी देर तक मैंने कहाँ खाया? कोई दूसरा ही खाता था! खाने को बैठूँ तो बीच में ही नींद आ जाती थी! फिर जागूँ और दो-चार कौर खाऊँ! किसी दिन तो मैं इतना खा डालता था कि उसका कोई हिसाब ही नहीं रहता था! और आश्चर्य यह है कि उससे स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ भी नहीं होती थी। यह सब हाल देखकर माता के मुँह का पानी उतर गया। वह बेचारी कहती थी—'तुझको कुछ न कुछ हो गया है, पर तू बतलाता नहीं है।' कभी कभी वह कहती—'अब इसका बचना कठिन है!' भला यह सर्वेश्वर-भाव जब कुछ कम हो तो यह सारा संसार स्वप्नवत् मालूम पड़े! हेदुया पुष्करिणी (तालाब) के पास की रेल की पटरी पर सिर पटककर देखता था कि यह पटरी सच्ची है या स्वप्न में की है। हाथ पैर में शक्ति न रहने के कारण ऐसा मालूम होता था कि अब अवश्य ही अर्धांग वायु हो जाएगा! इसी अवस्था में बहुत दिन बीतने के बाद मेरा यह भाव कुछ कुछ कम हो चला और जब

पूर्ववत् देहस्मृति प्राप्त हुई, तब मैंने समझा कि यही उस अद्वैत विज्ञान का थोड़ा सा अनुभव है; तब तो शास्त्र में इसके विषय में जो कुछ लिखा है वह गलत नहीं है; और उस समय के बाद अद्वैत तत्व के सम्बन्ध में मेरे मन में फिर कभी भी संशय नहीं हुआ।"

श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में और भी एक अद्भुत घटना का वर्णन हमने नरेन्द्र के मुँह से सुना है। उसी समय से श्रीरामकृष्ण के विषय में हमारा मत बिल्कुल बदल गया है। उस समय तक तो हम यही समझते थे कि जैसे और दूसरे साधु, सन्त रहते हैं, उन्हीं के समान श्रीरामकृष्ण भी एक साधु हैं; परन्तु नरेन्द्रनाथ के मुँह से नीचे लिखी वार्ता सुनकर हमें निश्चय हो गया कि श्रीरामकृष्ण सामान्य साधु नहीं, वरन् श्रीकृष्ण, श्रीचैतन्य, ईसामसीह आदि महापुरुषों की श्रेणी के महापुरुष हैं। वह वार्ता इस प्रकार है:—

एक दिन दोपहर के समय हम लोग नरेन्द्रनाथ के घर गये और संध्या समय तक उसके साथ अनेक विषयों की चर्चा करते रहे। बाद में उसके साथ हेदुया तालाब पर टहलने गये। आज नरेन्द्रनाथ बड़ा प्रसन्न था और श्रीरामकृष्ण का अलभ्य सहवास प्राप्त करने से उसके मन पर जो परिणाम हुआ था, उसका वह तन्मय होकर वर्णन कर रहा था। उसकी वृत्ति अत्यन्त तल्लीन हो गई थी और उसी तल्लीनता की उमंग में उसके हृदय का आनन्द निम्नलिखित पद के रूप में बाहर छलक रहा था—

प्रेमघन बिलाय गोरा राय।
चाँद निताई डाके आय आय।
(तोरा के निबि रे आय।)

प्रेम कलसे कलसे ढाले —।
तबू ना फुराय।
प्रेम शान्तिपुर डुबु डुबु नदे भेसे जाय।
(गौर प्रेमेर हिल्लोलेते,) नदे भेसे जाय॥*

नरेन्द्र तन्मय होकर यह पद कितनी ही बार दुहरा कर गाता रहा। पद समाप्त होने पर वह स्वयं अपने से ही कहने लगा— "सचमुच लूट मची हुई है। प्रेम कहो, भक्ति कहो, ज्ञान कहो, मुक्ति कहो—जिसको जो चाहिए उसको गौरांग वही बाँटता जा रहा है। यह कैसी अद्भुत शक्ति है! (क्षण भर रुककर) रात को दरवाज़े की सांकल लगाकर बिछौने पर पड़ा हुआ था कि इतने में एकाएक, इस शरीर के भीतर रहने वाले को आकर्षण करके ले जाकर दक्षिणेश्वर में उपस्थित किया और फिर वहाँ बहुत समय तक वार्तालाप और उपदेश होने के बाद फिर वहाँ से वापस घर में पहुँचा दिया। अद्भुत शक्ति है यह! यह गौरांग, यह दक्षिणेश्वर का गौरांग जैसा चाहता है वैसा कर लेता है!"

इस तरह श्रीरामकृष्ण के दिव्य सहवास में नरेन्द्र के दिन बीतते थे, तथापि धर्मजिज्ञासा की धुन में उसके पढ़ने में कोई कमी नहीं होती थी; क्योंकि अन्य सभी विषयों के समान धर्मविषय को भी अपनी बुद्धि के बल से अपना लेने की पराक्रमपूर्ण भावना उसमें थी। सन्

* अर्थ—गौरांग प्रेमधन बाँट रहे हैं। चाँद निताई 'आओ' 'आओ' पुकार रहे हैं। जिसकी इच्छा उसे लेने की हो वह आओ रे आओ। कैसा आश्चर्य है, घड़े पर घड़े प्रेम के ढाले जा रहे हैं, पर वह कम नहीं पड़ रहा है! प्रेम के प्रवाह में सारा शान्तिपुर बहता जा रहा है। गौरांग के प्रेम-प्रवाह में सारा शान्तिपुर बह चला है।

१८८१ में एफ़. ए. की परीक्षा हो जाने के बाद उसने मिल आदि पाश्चात्य तत्वशास्त्रज्ञों के ग्रन्थों का अध्ययन कर ही लिया था। अब डेकार्ट का 'अहंवाद,' ह्यूम और बेन का 'नास्तिकवाद,' स्पिनोजा का 'अद्वैत चिद्वस्तुवाद,' डार्विन का 'उत्क्रान्तिवाद,' कैंट और स्पेंसर का 'अज्ञेयवाद' आदि भिन्न मतों के परिशीलन में उसका समय बीतने लगा। जर्मन तत्वज्ञों में से कैंट, हेगेल, शोपेनहार, फिक्टे, आदि के ग्रन्थ भी उसने पढ़ लिए। शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों, स्नायुओं आदि की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए लगभग इसी समय वह बीच बीच में मेडिकल कालेज में भी जाकर वहाँ के व्याख्यान सुना करता था। इस तरह १८८४ में बी. ए. की परीक्षा पास होने के पूर्व ही पाश्चात्य तत्वज्ञानियों के मतों की उसने अच्छी जानकारी प्राप्त कर ली थी और उसे मालूम हो चुका था कि इन सब मतमतान्तरों की उलझन में पड़कर ईश्वर-प्राप्ति का निश्चित मार्ग पा सकना तो दूर रहा वरन् इसके विपरीत ये सभी मत, मानवबुद्धि की सीमा के परे रहने वाली सद्वस्तु की पहचान तक करा देने में सर्वथा ही असमर्थ हैं और यह जानकर तो उसके मन की अशान्ति और भी अधिक बढ़ गई।

ऐसा होते हुए भी, उसके मन को यह बात छू तक नहीं सकी कि मन को समझाने के लिए व्यर्थ ही जिस पर चाहे विश्वास कर लूँ या चाहे जिसके कहने के अनुसार चलने लगूँ। और इसीलिए श्रीरामकृष्ण की भिन्न भिन्न आध्यात्मिक अवस्थाओं और अनुभवों की भी परीक्षा करके देखने में उसने कोई कमी नहीं की। उसके सभी संशयों का छेदन करने वाला श्रीरामकृष्ण के समान गुरु यदि उसको न

मिलता, तो उसका मन संशय-सागर में न जाने कहाँ कहाँ भटकता फिरता? श्रीरामकृष्ण ने उसको स्पष्ट रूप से बता दिया कि— "अन्तःकरण से की हुई प्रार्थना को ईश्वर सदा श्रवण करता है, और जिस प्रकार मेरे और तेरे बीच में बातें हो रही हैं, उसकी अपेक्षा और भी अधिक स्पष्ट रीति से हम ईश्वर को देख सकते हैं, उसका बोलना सुन सकते हैं, इतना ही नहीं वरन् उसको स्पर्श भी किया जा सकता है—यह बात मैं शपथपूर्वक कहने को तैयार हूँ!" उसी तरह उन्होंने यह भी कहा कि "ईश्वर के भिन्न भिन्न स्वरूप केवल मन के खेल हैं, उनमें कोई सत्यता नहीं है, ऐसा यदि तू समझता हो तो भी कोई हर्ज नहीं है; परन्तु इस जगत् का नियंता कोई एक ईश्वर है इस बात पर भी यदि तेरा विश्वास है, तो तू अन्तःकरण से इस प्रकार प्रार्थना कर कि 'हे ईश्वर! तू कैसा है यह मैं नहीं समझता हूँ; इसलिए तू कैसा है यह मुझको तू ही समझा दे।' वह अन्तर्यामी तेरी इस प्रार्थना को अवश्य ही सुनेगा। इस आश्वासन से नरेन्द्र के अस्वस्थ चित्त को धीरज प्राप्त हुआ और तभी से उसने साधनाओं का आरम्भ किया। एकान्तवास, अध्ययन, तपस्या और बारम्बार दक्षिणेश्वर जाने में ही अब नरेन्द्र का समय व्यतीत होने लगा। उसके पिता की इच्छा उसको वकील बनाने की थी, इसलिए उन्होंने उसे अभी से ही निमाईचरण बसु नामक प्रसिद्ध वकील के यहाँ काम सीखने के लिए रख दिया था और उसका विवाह कर देने का निश्चय करके उन्होंने लड़की ढूँढना भी शुरू कर दिया था।

उन दिनों श्रीरामकृष्ण स्वयं ही बीच बीच में नरेन्द्र के घर जाया करते थे और उसे साधन-भजन के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के उप-

देश दिया करते थे। भक्त लोगों के मुँह से नरेन्द्र के विवाह का विचार होते सुनकर श्रीरामकृष्ण के चित्त को चैन नहीं पड़ती थी और अन्य साधारण लोगों के समान नरेन्द्र भी कहीं संसारी न बन जाय, इस भय से उनके मन में बड़ी हलचल पैदा हो गई थी! माँ-बाप के सुख के लिए, और उन्हें दुःख न हो यह सोचकर, शायद नरेन्द्र विवाह कर ही न डाले ऐसा सोचकर, वे उसे ब्रह्मचर्य-पालन के प्रति उत्साहित किया करते थे। वे कहते थे—"बारह वर्ष तक अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करने से मनुष्य की मेधानाड़ी खुलती है, तब उसकी बुद्धि अत्यन्त सूक्ष्म विषय में भी प्रवेश कर सकती है और उसको आकलन कर सकती है। इस प्रकार की बुद्धि की सहायता से ही, ईश्वर का साक्षात्कार प्राप्त किया जा सकता हैं; इस प्रकार की शुद्ध बुद्धि ही उसकी धारणा कर सकती है।" वे श्री जगदम्बा के पास अत्यन्त करुणा से कहते रहते थे—"माता! नरेन्द्र को संसार में मत जकड़। उसके विवाह के मनसूबे को रद्द कर दे!" बाद में जब जगदम्बा ने उन्हें बता दिया कि "नरेन्द्र का विवाह नहीं होगा" तब कहीं उनके जी में जी आया और वे उस सम्बन्ध में निश्चिन्त हुए। विवेकानन्द कहते थे—"एक दिन श्रीरामकृष्ण मुझको ब्रह्मचर्य-पालन का उपदेश कर रहे थे कि मेरी आजी ने वह बात सुनकर मेरे माता-पिता को बता दी। तब तो इस भय से कि संन्यासी की संगति में मैं कदाचित् संन्यासी ही न हो जाऊँ, उन्होंने मेरे विवाह का प्रयत्न बहुत जोरों से शुरू कर दिया। पर इसका क्या लाभ हुआ? श्रीरामकृष्ण की प्रबल इच्छा-शक्ति के सामने, उनके सभी प्रयत्न निष्फल हुए। कई बार तो ऐसा भी हुआ था कि विवाह की

और सब बातें तो ठीक हो जाती थीं पर किसी बिलकुल साधारण सी बात पर से विवाह की बातचीत टूट जाती थी। "इस संन्यासी की संगत छोड़ दे —" ऐसा भी नरेन्द्र से कहने की कोई हिम्मत नहीं करता था; क्योंकि उसका तेज़ स्वभाव सभी को मालूम था और उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी काम उससे करने के लिए कहने पर उसका उलटा ही परिणाम होगा यह भय उन्हें सदैव ही लगता रहता था। अस्तु —

श्रीरामकृष्ण के दिव्य सहवास में उसके दिन इस समय कैसे आनंद से बीतते थे, इस सम्बन्ध में बाद में वह हम लोगों को कई बार बताया करता था कि —"श्रीरामकृष्ण के सत्संग में दिन कैसे आनंद से जाते थे इसकी कल्पना औरों को करा सकना कठिन है। खेलना, गपशप लगाना, इत्यादि साधारण बातों में भी वे हम लोगों को सदा उच्च श्रेणी की शिक्षा, हमारे बिना मालूम हुए किस प्रकार दिया करते थे उसका अब स्मरण करके मन चकित हो जाता है! जैसे कोई शक्तिशाली पहलवान अपने छोटे से शिष्य के साथ कुश्ती खेलते समय, स्वयं सावधानी रखते हुए, किसी समय मानो स्वयं बड़े प्रयत्न से उसको पटक रहा है ऐसा दिखा देता है; या किसी समय स्वयं ही उस शिष्य द्वारा गिराया जा रहा है और इस प्रकार वह उसके आत्मविश्वास को निरन्तर बढ़ाया करता है वही हाल श्रीरामकृष्ण का हम लोगों के साथ रहता था। हमारे मन को ज़रा भी दुःख न पहुँचाते हुए वे हमारे दोष हमें दिखा दिया करते थे। वे हमारे छोटे से भी गुण की प्रशंसा करके उसे और अधिक बढ़ाने के लिए हमें उत्तेजना दिया करते थे। किसी वासना के फंदे में पड़कर हम अपने

जीवन का ध्येय नष्ट न कर डालें इस उद्देश से वे हमारे प्रत्येक आचरण की बारीकी से जाँच करते थे और हमें सदा सत् और असत् का विचार करते रहने के लिए सिखाते थे। आश्चर्य की बात तो यह है कि वे हमारे प्रत्येक व्यवहार को बारीकी से देख रहे हैं यह बात हमें उस समय कभी भी मालूम नहीं पड़ती थी! उनकी शिक्षा देने की और मनुष्य बनाने की अपूर्व कुशलता इसी में थी। श्रीरामकृष्ण के साधनास्थल पंचवटी में ही हम लोग ध्यान-धारण आदि किया करते थे। ध्यान-धारणा ही नहीं वरन् गप्पें, खेलकूद आदि भी हम लोग वहीं किया करते थे। बहुधा श्रीरामकृष्ण भी वहीं आया करते थे। और जब वे वहाँ रहते थे, तब तो मानो आनंद की बाढ़ आ जाती थी। वहाँ हम लोग छुआ-छुऔवल खेलते, पेड़ों पर चढ़ते, माधवी लता के नीचे लटकती हुई मजबूत रस्सी से झूला झूलते, और कभी तो वहीं रसोई भी बनाते। एक दिन मुझको रसोई बनाते देखकर श्रीरामकृष्ण ने स्वयं भी वहीं भोजन किया; वे ब्राह्मण के सिवाय अन्य किसी के हाथ का अन्न नहीं खा सकते थे। यह बात मालूम रहने के कारण, हम लोगों ने उनके लिए पहले से ही श्री जगदम्बा के प्रसाद की व्यवस्था कर रखी थी। परन्तु श्रीरामकृष्ण ने मेरे ही हाथ का भोजन करने का हठ किया। वे बोले—'तेरे समान शुद्ध सत्त्वगुणी मनुष्य के हाथ का अन्न खाने में कोई दोष नहीं लग सकता!' उनके ऐसा करने में मैंने बहुत आपत्ति की; पर फिर भी उन्होंने उस ओर ध्यान ही नहीं दिया और मेरे हाथ का अन्न बड़े आनन्द के साथ खाया!" अस्तु—

पर ये आनन्द के दिन बहुत समय तक नहीं रहे। सन् १८८४ में बी. ए. परीक्षा का फल प्रकाशित होने के पूर्व ही नरेन्द्र के पिता

का अकस्मात् देहान्त हो गया और गृहस्थी का सारा बोझ उसी पर आ पड़ा। विश्वनाथ बाबू ने अपने रोजगार में बहुत सा पैसा कमाया था, पर वे बड़े खर्चीले स्वभाव के थे, इसलिए वे अपने पीछे कुछ भी नहीं छोड़ गए। इतना ही नहीं वरन् वे कुछ कर्ज भी शेष छोड़ गए थे। आमदनी कुछ भी नहीं और खर्च ज्यों का त्यों बना हुआ है, ऐसी विकट परिस्थिति में उस मान और अमीरी में बढ़े हुए कुटुम्ब की जो दशा हुई होगी वह कल्पना के बाहर है! कुछ समय तक तो नरेन्द्र किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। उसको सब ओर अन्धकार ही दिखाई देने लगा। पर चुपचाप बैठने से कैसे काम चले। घर में ५–६ आदमी खाने वाले थे, उनका क्या प्रबन्ध किया जाए? इस बात को सोचकर कोई नौकरी पाने का प्रयत्न भी उसने किया। पर कहीं नौकरी भी मिलने के चिह्न नहीं दिखते थे। ऐसी दशा में ३–४ मास बीत गए और उसके कुटुम्ब की दशा उत्तरोत्तर अधिक खराब होने लगी।

नरेन्द्र पर ऐसा प्रसंग आते देखकर श्रीरामकृष्ण के चित्त में बड़ी करुणा उत्पन्न हो गई। अपने पास आने वाले लोगों से नरेन्द्र के घर की परिस्थिति बतलाकर वे कहते थे—"अरे रे! बेचारे पर कितना बुरा प्रसंग आ पड़ा है! उसको कोई नौकरी मिल जाय तो कितना अच्छा हो!" ऐहिक सुख-दुःखों के विषय में सर्वथा उदासीन रहने वाले श्रीरामकृष्ण के मुँह से नरेन्द्र के सम्बन्ध में ये उद्गार सुनकर सभी को बड़ा आश्चर्य होता था। श्रीरामकृष्ण हर एक के पास उसके विषय में ऐसी बातें कहा करते हैं यह बात एक दिन नरेन्द्र के कान में पड़ी। अपने मानी स्वभाव के कारण उसे

यह बिलकुल पसंद नहीं आया। वह तुरन्त ही श्रीरामकृष्ण से बोला —"महाराज! आप ने यह क्या कर रखा है? मेरे जैसे एक यःकश्चित् क्षुद्र मनुष्य के बारे में हर एक के पास इस तरह दीन वचन कहना आप को शोभा नहीं देता!" यह बात सुनकर श्रीरामकृष्ण की आँखों में पानी आ गया और वे आँसू बहाते हुए बोले—'नरेन्! नरेन्! ज़रूरत पड़ने पर हाथ में झोली लेकर मैं तेरे लिए घर घर भिक्षा माँगने को भी तैयार हूँ रे! फिर तेरे लिए लोगों के पास इतनी सी बात कहने में मुझे तुच्छता कैसे मालूम हो सकती है?"

इस कष्टप्रद अवस्था का वृत्तान्त बाद में कभी कभी नरेन्द्र बताया करता था। वह कहता था—"उन दिनों नौकरी की तलाश में मैं सारा दिन नंगे पैर, धूप में, भूखाप्यासा लगातार घूमता और संध्या समय हताश होकर घर वापस लौट आता। यह प्रतिदिन का क्रम बन गया था। कभी कोई साथ रहता था और कभी नहीं। बहुत दिनों तक भटकने पर जब नौकरी मिलने के कोई चिह्न नहीं दिखाई दिए, तब मेरा मन अत्यन्त हताश हो गया। ऐसा मालूम पड़ने लगा कि यह संसार दुर्बल और दुःखी लोगों के लिए नहीं है और यह दैवी सृष्टि नहीं है, शैतान की बनाई हुई है। थोड़े ही दिनों के पूर्व जो लोग मुझको सहायता करने का अवसर पाकर अपने को धन्य मानते थे, वे ही मुझे इस समय जानबूझकर टालने लगे। एक दिन दोपहर के समय मैं तेज धूप में घूमते घूमते बिलकुल थक गया और मेरे पैर में फफोले आ गए थे, इसलिए मैदान में पुतले की छाया में मैं थोड़े समय के लिए लेट गया। उस दिन मेरे साथ मेरे एक दो मित्र भी थे। उनमें से एक, मेरे

दुख: से दु:खी होकर मेरी उदासीन अवस्था में मुझे धीरज देने के लिए 'दीनानाथ दयालु दयानिधि हर सभी दु:ख तेरे' आदि भजन गाने लगा। पर उसे सुनकर मुझे ऐसी पीड़ा होने लगी मानो कोई मेरे सिर पर डंडा मार रहा हो! माता और भाई-बहनों की दीन और असहाय अवस्था का चित्र मेरी आँखों के सामने खिंच रहा था और दु:ख, अभिमान और निराशा से अन्त:करण में खलबली मच रही थी। इससे मैं एकदम चिल्ला उठा— 'बस! बस! बन्द कर। पेट की चिन्ता जिसको न मालूम हो, भूख की व्याकुलता की जिसको कल्पना न हो, उन्हीं को आराम कुर्सी पर हाथ पैर पसारकर पंखे की हवा खाते हुए तेरा यह पद सुनना मीठा लगेगा! मुझको भी यह पहले मीठा लगता था। पर सचमुच अब मुझ पर इस विपत्ति के प्रत्यक्ष आ पड़ने पर उस पद का गाना मेरी दिल्लगी करने के समान है।' मेरे इस आक्षेप से उस बेचारे को बड़ा बुरा लगा। मेरे मन की उस समय क्या दशा थी उसे वह बेचारा क्या जाने?

"उन दिनों, प्रात:काल उठते ही, सब से पहले मैं किसी के बिना जाने यह देख लेता था कि घर में सबके लिए काफी खाने का सामान है या नहीं। यदि नहीं होता था तो मैं माता से यह कहकर तुरन्त ही घर से बाहर चला जाता कि 'आज मुझे एक जगह भोजन करने के लिए जाना है।' एक पैसे की कोई चीज़ लेकर खा लेता या निराहार ही दिन बिता देता था, पर किसी को कुछ मालूम नहीं पड़ने देता था। दु:ख में सुख की बात इतनी ही थी कि, ईश्वर मंगलमय है, इसके सम्बन्ध में मेरे मन में कभी भी शंका नहीं हुई। प्रात:काल उठते ही प्रथम उसका नामस्मरण करके फिर अन्य कार्य प्रारम्भ करता था। एक दिन मैं इसी तरह नाम-

स्मरण कर रहा था कि मेरी माता एकदम चिल्ला उठी, 'बस रे दुष्ट! चुप रह। बचपन से ही लगातार भगवान् भगवान् करता है। उसी ने तो ऐसी दशा कर दी है।' उसके ये शब्द मेरे कलेजे में तीर के समान चुभ गये। मैं अपने मन में कहने लगा—'क्या ईश्वर सचमुच में है? यदि है, तो वह मेरी इतनी करुणापूर्ण प्रार्थना को क्यों नहीं सुनता। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कहा करते थे कि 'ईश्वर यदि सचमुच दयामय होता, तो उसकी सृष्टि में इतना दुःख-क्लेश क्यों रहता?' इस बात का स्मरण हो आया और हृदय संशयग्रस्त हो गया।

"कोई भी बात छिपाकर या चोरी से करने का मेरा स्वभाव कभी भी नहीं था। अतः ईश्वर नहीं है और यदि है भी तो उसी को लिये हुए उसकी आराधना करते रहने में कोई लाभ नहीं है, यह बात मैं उस समय साफ साफ कहने लगा! इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में हर एक कहने लगा कि 'नरेन्द्र नास्तिक हो गया।' इतना ही नहीं वरन् मैंने किसी किसी से यह भी कहने में कमी नहीं की कि—'संसार के दुःखों को क्षण भर भूलने के लिए यदि कोई मद्यपान करने लगे, या वेश्यागृह जाना शुरू करके उसी में सुख मानने लगे, तो मैं उसको उसके लिए दोषी नहीं ठहराऊँगा। इतना ही नहीं वरन् संसार के दुःख और कष्टों को भूलने के लिए यदि यही एक मार्ग है और इस बात का निश्चय मेरे मन में हो जाय, तो मैं भी इसी मार्ग का अवलम्बन करने में कभी आगा-पीछा नहीं करूँगा।'

"बस! हो चुका! होते होते यह बात स्वयं श्रीरामकृष्ण के कान में पहुँची। बीच बीच में भी भक्त-मण्डली में इस विषय की

चर्चा होने लगी। कोई कोई तो मेरी यह हीन दशा देखने के लिए खुद ही मेरे पास आने लगे! मेरे आचरण के सम्बन्ध में लोगों को इतना संशय हो गया इस बात का मुझे बड़ा खेद हुआ और मेरा मानी स्वभाव पुनः जागृत हो उठा और अपने पास आने वाले लोगों के साथ मैं ईश्वर के अस्तित्व के विषय में जोरशोर से वादविवाद करने लगा। लोगों का यह निश्चय होते देख, कि मेरा सचमुच ही अधःपतन हो गया है, मुझे अच्छा लगता था और मैं मन में कहता– 'अच्छा हुआ, अब यह बात श्रीरामकृष्ण के कान में पड़ने पर उन्हें भी निश्चय हो जाएगा।' और मुझे ऐसा लगता था कि—'मनुष्य के भले और बुरे मत की इस संसार में यदि इतनी थोड़ी कीमत है, तो श्रीरामकृष्ण का भी मत बुरा हो जाय तो उसमें क्या हर्ज है?' पर हो गई बात कुछ और ही। मैंने सुना कि मेरे अधःपतन की यह बात जानकर श्रीरामकृष्ण प्रथम तो कुछ भी नहीं बोले, पर जब बाद में भवनाथ रोते रोते उनके पास जाकर बोला—'महाराज, नरेन्द्र का ऐसा हाल होगा यह तो कभी स्वप्न में भी ख्याल नहीं था' तब वे एकदम चिल्ला उठे—'चुप बैठो रे लड़को! माता ने बतलाया है कि वह कभी भी बुरे मार्ग में प्रवृत्त नहीं होगा। यदि तुम लोग पुनः कभी इस प्रकार मेरे पास बोले, तो मैं तुम लोगों का मुख तक नहीं देखूँगा!'

"पर इस तरह जबरदस्ती नास्तिक बुद्धि का प्रदर्शन करने से क्या होता है? बाल्यकाल से और विशेषकर श्रीरामकृष्ण के दर्शन के समय से जो अनुभव प्राप्त हुआ था, उसके कारण तुरन्त ही ऐसा मालूम होता था—'छिः! ईश्वर नहीं है ऐसा कैसे हो सकता है?

ईश्वर तो होना ही चाहिए; नहीं तो, यही कहना होगा कि इस घोर संसार में जीवित रहने का कोई मतलब ही नहीं है। कितने भी दुःख क्यों न आवें, तो भी उसके दर्शन करने का मार्ग अवश्य ही ढूँढ निकालना होगा।' इस प्रकार के परस्पर-विरोधी विचारों के बीच में मन डाँवाडोल होने लगा।

"ग्रीष्मकाल बीत गया और वर्षा आरम्भ हो गई तो भी मैं नौकरी के लिए प्रतिदिन भटकता ही रहा। एक दिन मैं दिन भर भूखे ही पानी बरसते में घूमते घूमते हैरान हो गया और लगभग संध्या समय इतना थक गया कि मैं अब आगे एक कदम भी नहीं रख सकता था। आँखों के सामने अंधेरा छा गया और मैं वैसे ही किसी के बरामदे में लेट गया। उसी दशा में मेरा कितना समय बीता सो मैं नहीं कह सकता, पर मुझे इतना तो स्मरण है कि मन के परदे पर नाना प्रकार के चिन्ता के चित्र खिंचने लगे और मिटने लगे। एकाएक ऐसा मालूम हुआ कि मानो मन पर से एक एक परदा कोई दूर हटा रहा है और ईश्वर न्यायी है या नहीं, उसकी सृष्टि में इतनी विषमता क्यों है, इत्यादि जिन समस्याओं के इतने दिनों तक हल न होने के कारण मेरा मन चंचल हो गया था, उन बातों को कोई समझा रहा है! यह देखकर मेरे सब संशय दूर हो गये, मन आनन्द से पूर्ण हो गया, शरीर में एक प्रकार की अद्भुत स्फूर्ति आ गई और सारी थकावट दूर हो गई। तत्क्षण ही मैं उठकर घर चला आया और देखता हूँ तो रात थोड़ी ही शेष थी।

"उसी दिन से मैं स्तुति और निन्दा के विषय में पूर्ण उदासीन

बन गया; और मेरे मन में यह निश्चय हो गया कि 'पैसा कमाने तथा कुटुम्ब का पोषण करने के लिए ही मेरा जन्म नहीं हुआ है' और ऐसा निश्चय होते ही मैं अपने पितामह के समान संसार-त्याग करने की तैयारी चुपचाप करने लगा। दिन भी निश्चित हो गया। इतने में ही यह सुना कि उस दिन श्रीरामकृष्ण कलकत्ते में किसी भक्त के घर आने वाले हैं। यह सुनकर मैंने सोचा—'बस्! ठीक हो गया। एक वार अन्तिम गुरुदर्शन करके संसार को सदा के लिए 'राम राम' कर लूँगा।' श्रीरामकृष्ण से भेंट होते ही वे बोले— 'आज तुझको मेरे साथ दक्षिणेश्वर चलना होगा।' मैंने बहुत टाल-मटोल की पर उन्होंने एक न मानी। बचने का कोई उपाय न देखकर मैं उनके साथ गाड़ी में बैठकर रवाना हुआ। रास्ते में वे मुझसे एक भी बात नहीं बोले। गाड़ी से उतरते ही दूसरे लोगों के साथ मैं भी उनके कमरे में जाकर बैठ गया। थोड़ी ही देर में उन्हें भावावेश हो आया और वे पलंग पर से उतरकर मेरे पास आये और मेरे गले में हाथ डालकर आँसू बहाते बहाते गाने लगे—

'कथा बलते डराइ[१], ना बलते ओ डराइ—
(आमार) मने सन्द[२] हय बुझि तोमाय हाराइ, हा—राइ!'*

"इतने समय तक मैंने किसी तरह बड़े कष्ट से अपने मन को रोककर रखा था, पर अब मुझसे नहीं रहा गया। कण्ठ भर आया और उनके समान मेरी भी आँखों से आँसू बहने लगे! मुझे निश्चय

---

१ डरता हूँ २ संशय

* बोलने में भी डर लगता है, न बोलने में भी डर लगता है। मेरे मन में संशय होता है कि मैं शायद तुमको खो बैठूँ!

हो गया कि श्रीरामकृष्ण सब कुछ जान गये! हम दोनों का यह विचित्र आचरण देखकर सब लोग चकित हो गए! धीरे धीरे श्रीरामकृष्ण को देह की सुधि हो आई और एक मनुष्य के ऐसा हाल होने का कारण पूछने पर वे कुछ हँसकर बोले—'ऊँ:, कोई खास बात नहीं है। हमको यों ही कुछ हो गया, बस!' बाद में रात्रि के समय और सब लोगों को अलग हटाकर, मुझको अपने पास बुलाकर वे बोले, 'मुझको मालूम है कि तू माता जगदम्बा के काम के लिए यहाँ आया है, तू संसार में कभी नहीं रह सकता; तो भी जब तक मैं हूँ, तब तक तो तू मेरे लिए संसार में रह।' ऐसा कहकर श्रीरामकृष्ण पुन: फूट फूटकर आँसू बहाने लगे!

"श्रीरामकृष्ण से विदा लेकर मैं घर लौटा और पुन: मेरे पीछे संसार की अनेक चिन्ताएँ लग गईं। नौकरी ढूँढने के लिए मेरा पुन: पूर्ववत् भटकना शुरू हो गया। अन्त में मैं एक वकील के यहाँ मुन्शी का काम करके और कुछ पुस्तकों का भाषान्तर करके थोड़ा बहुत पैसा कमाने लगा, पर कमाई का कोई निश्चित साधन न रहने के कारण घर की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही। क्या किया जाय कुछ समझ में नहीं आता था। एक दिन मन में आया कि 'श्रीरामकृष्ण की बात तो ईश्वर मानता है न? तो ऐसा ही करना चाहिए जिससे घर के लोगों को खाने पीने का कष्ट न हो। यही प्रार्थना ईश्वर से करने के लिए श्रीरामकृष्ण के पास धरना देकर बैठना चाहिए। तब सब ठीक हो जायगा। मेरे लिए इतनी बात वे अवश्य करेंगे।' इस विचार से मन में स्फूर्ति आई और जल्दी-जल्दी तत्काल ही मैंने दक्षिणेश्वर की राह ली। वहाँ पहुँचते ही मैं तुरन्त श्रीराम-

कृष्ण के कमरे में गया और उनसे बोला — 'महाराज! मेरे घर के लोगों के लिए अन्नवस्त्र की कोई व्यवस्था कर देने के लिए आपको जगदम्बा से प्रार्थना करनी ही चाहिए! मैं उनके कष्टों को देख नहीं सकता।'

"श्रीरामकृष्ण — अरे भाई! यह इस तरह की बात मुझसे बोलते नहीं बनेगी। तू ही यह बात उसके कान में क्यों नहीं डालता? तू माता को नहीं मानता, इसीलिए तो तुझको ऐसे कष्ट होते हैं।

"मैं — मुझको तो माता की जानकारी भी नहीं है। आप ही मेरे लिए माता से इतना कह दीजिए। आपको इतना करना ही चाहिए। मैं आपको आज किसी तरह नहीं छोड़ूँगा।

"इस पर श्रीरामकृष्ण बड़े प्रेम से बोले — नरेन्! तुझे मैं क्या बताऊँ? मैंने कितनी ही बार माता से कहा होगा कि 'माता! नरेन्द्र के दुःख-कष्टों को दूर कर।' पर तू माता को नहीं मानता, इसीलिए तो माता उधर ध्यान भी नहीं देती! पर जब तेरा इतना आग्रह ही है तो ठीक है। आज मंगलवार है, मैं कहता हूँ कि तू आज रात को माता के मन्दिर में जाकर उसे प्रणाम कर और तुझको जो चाहिए सो तू ही माँग ले। माता तुझको वह अवश्य देगी। मेरी माता चिन्मयी, ब्रह्मशक्ति — केवल इच्छा-मात्र से संसार को निर्माण करने वाली है। यदि उसी ने ठान लिया तो वह क्या नहीं कर सकती?'

"इस आश्वासन से मेरे मन में दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो गया कि श्रीरामकृष्ण ही जब इस तरह कह रहे हैं, तब तो केवल प्रार्थना करते ही अब सारे दुःख अवश्य ही दूर हो जाएंगे! मन अत्यन्त उत्कण्ठित

हो गया — और दिन कब जाता है और रात कब होती है ऐसा लगने लगा। धीरे धीरे रात आई। एक प्रहर रात्रि बीतने पर श्रीरामकृष्ण ने मुझे माता के मन्दिर में जाने के लिए कहा। मैं रवाना तो हुआ पर मन में एक प्रकार का विचित्र नशा-सा छा गया था, पैर थरथर काँप रहे थे और अब मुझे माता का दर्शन होगा और उसके शब्द सुनने को मिलेंगे, इसी भावना में अन्य सब चिन्ताओं तथा विचारों का विस्मरण हो गया और यही एक बात मन में घूमने लगी। मन्दिर में गया और देखा तो यही दिखाई दिया कि माता सचमुच चिन्मयी है और जीवित है और उसके शरीर में से रूप, प्रेम, लावण्य, करुणा, मानो प्रवाहित हो रहे हैं! यह देखकर भक्ति और प्रेम से मेरा हृदय भर आया और मैं विह्वल होकर गद्गद अन्तःकरण से बारम्बार प्रणाम करते हुए कहने लगा — 'माता! विवेक दे, वैराग्य दे, ज्ञान दे, भक्ति दे और जिस प्रकार मुझको तेरा दर्शन निरन्तर प्राप्त हो वही उपाय कर!' मन को बहुत शान्ति मिली। जगन्माता के सिवाय और सभी विचारों को मैं भूल गया और अत्यन्त आनन्द के साथ श्रीरामकृष्ण के कमरे की ओर वापस लौटा।

"मुझको देखते ही उन्होंने पूछा — 'क्यों रे? सांसारिक दुःख और कष्टों को दूर करने के लिए तूने माता से प्रार्थना की या नहीं?' इतना सुनते ही, जैसे कोई हिलाकर जगा दे उस तरह चकित होकर मैं बोला — 'अरे रे! सचमुच ही मैं तो यह सब भूल ही गया, अब क्या करूँ?' श्रीरामकृष्ण बोले — 'जा, जा, पुनः प्रार्थना करके आ।' मैं पुनः मन्दिर में गया, और जगन्माता के सामने जाते ही फिर सब भूलकर भक्ति और ज्ञान देने के लिए उससे प्रार्थना करके लौट आया!

मुझको देखते ही हँसते हुए श्रीरामकृष्ण बोले — 'क्यों रे? अब भी ठीक प्रार्थना की या नहीं?' इसे सुनकर मुझे पुनः स्मरण हो आया और मैं बोला — 'नहीं महाराज! माता को देखते ही मैं सारी बातें भूल गया और पुनः भक्ति-ज्ञान के लिए ही प्रार्थना करके चला आया! अब कैसा होगा?' श्रीरामकृष्ण बोले — 'वाह रे पण्डित! थोड़ा सावधान रहकर इतनी सीधी सादी प्रार्थना भी तुझसे ठीक करते नहीं बनी? इधर देख, चाहता है तो तू फिर एक बार और जा और प्रार्थना करके आ। जा भला जल्दी।' मैं पुनः गया, परन्तु मन्दिर में प्रवेश करते ही मुझे मन में बड़ी लज्जा होने लगी। मैंने मन में कहा — 'यह कितनी क्षुद्र बात मैं जगन्माता से माँगने के लिए आया हूँ? राजा प्रसन्न हो गया और उससे क्या माँगा, 'कुम्हड़ा!' मेरी भी तो इसी प्रकार की मूर्खता होगी!' ऐसा सोचकर मैं जगन्माता को पुनः पुनः प्रणाम करके कहने लगा — 'माता! मुझे और कोई भी चीज़ नहीं चाहिए; केवल ज्ञान और भक्ति दे!' मन्दिर से वापस लौटते समय सारा नशा उतर गया और मालूम पड़ने लगा कि यह सब श्रीरामकृष्ण का ही खेल होना चाहिये! नहीं तो, तीन तीन बार मन्दिर जाकर ऐसा कैसे होता? श्रीरामकृष्ण के कमरे में जाते ही मैं उनके पास धरना देकर बैठ गया और बोला — 'यह सब कुछ नहीं है, महाराज! सब आप ही का खेल है! अब आप ही को मेरे लिए माता से प्रार्थना करनी होगी।' इस पर वे बोले — 'क्या करूँ रे? मैं किसी के लिए भी ऐसी प्रार्थना आज तक कभी भी नहीं कर सका; ऐसी बात मेरे मुँह से बाहर ही नहीं निकलती। इसीलिए तो तुझसे कहा कि तू माता के पास जो चाहे सो माँग ले। माता तुझे वह वस्तु अवश्य ही देगी।

पर तुझे इतनी सीधी-सी बात भी करते नहीं बनी। तेरे भाग्य में संसार-सुख नहीं है, उसे मैं भी क्या करूँ?' पर मैं इस पर थोड़े ही चुप बैठने वाला था? मैं पुनः बोला — 'कुछ नहीं महाराज! आज मैं आपको छोड़ता ही नहीं; आपको इतनी बात तो करनी ही होगी; मुझे निश्चय है कि आप यदि मन में ले लें तो सब कुछ हो जायगा।' उन्होंने जब देखा कि यह किसी भी तरह नहीं मानता तब वे बोले — 'अच्छा तो, जाओ, तुम लोगों को रूखे सूखे अन्न और मोटे वस्त्र की कमी नहीं रहेगी!' और तब से हमारी सभी कठिनाइयाँ * किसी न किसी तरह दूर होती गईं।"

नरेन्द्र के जीवन में उपरोक्त घटना बड़े महत्व की है। इतने दिनों तक ईश्वर के साकार स्वरूप पर उसका विश्वास नहीं था। इतना ही नहीं, वरन् भिन्न भिन्न देवताओं की और मूर्तिपूजा की दिल्लगी उड़ाने में भी वह कमी नहीं करता था। कई बार तो वह इस हद तक चला जाता कि प्रत्यक्ष श्रीरामकृष्ण के सामने भी जगदम्बा की हँसी उड़ाने में वह आगापीछा नहीं करता था! एक दिन शान्ति के सागर श्रीराम-कृष्ण भी उसकी निन्दा से इतने चिढ़ गये कि आँखें लाल करके वे उसकी ओर दौड़ पड़े और चिल्लाने लगे — "निकल साले यहाँ से। मेरे सामने मेरी माता को गाली देने में तुझको शरम नहीं आती?" नरेन्द्र ने देखा कि मैं आज मर्यादा के बाहर चला गया और वह ऐसा सोचकर वहीं एक ओर चुपचाप श्रीरामकृष्ण का हुक्का भरते हुए बैठ गया। कुछ समय के बाद श्रीरामकृष्ण का ध्यान उसकी ओर गया और उसका हृदय भर आया, तब वे बोले — "नरेन्द्र! तेरे जैसे होशियार

* इसके बाद शीघ्र ही नरेन्द्र को नौकरी मिल गई।

लड़के को क्या ऐसा कहना चाहिए? बोल भला! तू मेरी माता की निन्दा करने लगा इससे मेरा सिर घूमने लगा। तुझे निन्दा ही करनी है तो मेरी निन्दा कर। और मेरी चाहे जितनी निन्दा कर, पर मेरी माता की तू व्यर्थ ही क्यों निन्दा करता है?"

इस तरह आज नरेन्द्र को साकार स्वरूप पर विश्वास करते देखकर श्रीरामकृष्ण के आनन्द की सीमा नहीं रही। हर किसी से 'नरेन्द्र जगन्माता को मानने लगा' कहकर वे अपना आनन्द प्रकट करने लगे। तारापद घोष एक दिन दक्षिणेश्वर गये हुए थे। दोपहर का समय था। नरेन्द्र बरामदे में एक ओर सोया हुआ था। तारापद कहते थे —"मेरे वहाँ जाने पर जैसे ही मैंने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया कि वे नरेन्द्र की ओर उंगली दिखाकर बड़े हर्ष से बोले—'अरे! यह देखा क्या? यहाँ एक लड़का सोया है। वह बड़ा अच्छा लड़का है, उसका नाम नरेन्द्र है। वह इतने दिनों तक जगन्माता को नहीं मानता था, पर कल से मानने लगा है। उसके घर की स्थिति अच्छी नहीं है इसीलिए मैंने उससे जगन्माता की प्रार्थना करने के लिए कहा, पर वह धन दौलत कुछ नहीं माँग सका और बोला—'मुझे लाज लगी!' मन्दिर से आया और मुझसे कहने लगा, 'मुझे जगदम्बा का एक आध भजन सिखा दो। मैंने उसे एक गाना सिखा दिया! सारी रात वह उसी गाने को गाता हुआ बैठा रहा। इसीलिए अभी ज़रा सोया है। (अत्यन्त आल्हाद से हँसते हुए) नरेन्द्र आखिर जगन्माता को मानने लगा! क्यों? अच्छा हुआ या नहीं?' उनके इस आनन्द को देखकर मैं भी बोला, 'हाँ महाराज! अच्छा हुआ!' कुछ समय के बाद वे पुनः हँसते हुए बोले—'नरेन्द्र जगन्माता को मानने लगा, अच्छा

हो गया, नहीं भला?' उस दिन उनके पास बोलने के लिए इसके सिवाय दूसरा विषय ही नहीं था। हर एक के पास वे आनन्द से कहते थे—'नरेन्द्र जगन्माता को मानने लगा; अच्छा हो गया, नहीं भला?' उस दिन भावावेश में भी उनके पास दूसरा विषय नहीं था। लगभग आठ बजे श्रीरामकृष्ण का भावावेश समाप्त हुआ और मैं और नरेन्द्र दोनों ही श्रीरामकृष्ण से विदा लेकर घर लौटे।"

श्रीरामकृष्ण के अपने प्रति अपार प्रेम का स्मरण करके नरेन्द्र कई वार कहा करता था कि—"अकेले श्रीरामकृष्ण ने ही मेरी प्रथम भेंट के समय से ही, सभी विषयों में सब समय मुझ पर लगातार एक जैसा विश्वास रखा। ऐसा और किसी ने नहीं किया, माँ-बाप ने भी नहीं किया। अपने इस विश्वास और प्रेम से ही उन्होंने मुझे सदा के लिए बाँध लिया। किसी पर निष्काम प्रेम करना वे ही जानते थे और वे ही करते थे। और दूसरे सब लोग तो स्वार्थ के लिए प्रेम का केवल बाहरी प्रदर्शन ही करते हैं।" अस्तु—

गृहस्थी की गाड़ी को किसी तरह ठीक ठीक चलती हुई देखकर नरेन्द्र निश्चिन्त हुआ और साधन-भजन, ग्रन्थपाठ आदि में अब उसका बहुतसा समय बीतने लगा। समय मिलते ही वह श्रीरामकृष्ण का दर्शन कर आता था और साधन-मार्ग की अपनी कठिनाइयाँ उन्हें बता दिया करता था। श्रीरामकृष्ण भी कब क्या करना चाहिए, कैसे करना चाहिए आदि विषयों के सम्बन्ध में उसे बड़े प्रेम से उपदेश करते थे और साधन-भजन आदि बढ़ाने के लिए उसे उत्तेजना देते तथा धीरज भी। साक्षात् सद्गुरु के निरीक्षण में नरेन्द्र की आध्यात्मिक उन्नति बड़े वेग से होने लगी और निर्गुण साक्षा-

स्कार की व्याकुलता होने के कारण वह और भी अधिकाधिक कठोर साधना करने लगा। यह देखकर श्रीरामकृष्ण को बड़ा आनन्द हुआ और नरेन्द्र के ईश्वरानुराग और तीव्र वैराग्य की वे हर एक से दिल खोलकर चर्चा करने लगे।

नरेन्द्र की व्याकुलता बढ़ती गई। उसे मालूम होने लगा कि 'श्रीरामकृष्ण यदि मन में ठान लें तो क्या ईश्वर-दर्शन, क्या समाधि— ये सभी मेरे हाथ के मैल हैं। उनके पास धरना देकर बैठा तो जाय?' यह विचार मन में आते ही उसने श्रीरामकृष्ण के पास तकाजा करना शुरू कर दिया। वह कहता था — "महाराज! मुझे निर्विकल्प समाधिसुख का अनुभव आपको प्राप्त करा देना चाहिए।" इस पर श्रीरामकृष्ण जो उत्तर सदा औरों को देते वही नरेन्द्र को भी देने लगे। वे कहते थे — "मैं क्या कर सकता हूँ! मेरे हाथ में क्या है? माता की जैसी इच्छा होगी वैसा होगा।" इस पर नरेन्द्र कहता था — "महाराज! आपकी इच्छा होगी तो माता की भी इच्छा हो जाएगी।" इस पर वे कहते थे — "अरे! पर इस प्रकार जल्दी करने से कैसे होगा? बीज को जमीन में बोते ही क्या तुरन्त उसका पेड़ उगकर उसमें फल लगने लगते हैं? समय आए बिना कुछ नहीं हो सकता!" इस पर नरेन्द्र एक दिन ढिठाई से बोला — "पर महाराज! यह समय कब आएगा? आप तो दिनोंदिन अशक्त * हो रहे हैं। आप चले जाएंगे तब फिर मैं किसकी ओर देखूँगा?" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण चकित होकर नरेन्द्र के मुख की ओर देखने लगे और कुछ न कहकर चुपचाप बैठे रहे।

---

* इस समय श्रीरामकृष्ण गले के रोग से पीड़ित थे और बीमार पड़े थे।

होते होते एक दिन नरेन्द्र नित्य के समान ध्यानस्थ बैठा था कि उसे एकाएक समाधि लग गई! उसके पास उसके और गुरुबन्धु भी ध्यान कर रहे थे। उन लोगों का ध्यान समाप्त हुआ, और वे देखते क्या हैं?—नरेन्द्र बिलकुल स्थिर बैठा हुआ है और उसकी दृष्टि नासाग्र में जमी हुई है। श्वासोच्छ्वास बन्द है और शरीर में प्राण रहने के कोई भी चिह्न नहीं दिख रहे हैं। यह कैसी अवस्था है—यह सोचकर डर के मारे घबराकर एक दो लोग श्रीरामकृष्ण से यह बात बताने के लिए दौड़ते हुए दूसरी मंज़िल पर गए। श्रीरामकृष्ण अपने बिस्तर पर ही चुपचाप बैठे थे और उनकी मुखमुद्रा शान्त और गम्भीर मालूम पड़ती थी। उनका कहना सुनकर वे गम्भीरता से बोले—"रहने दो उसको वैसे ही कुछ समय तक! हाल हाल में वह मानो मेरा माथा खाली कर रहा था!" उनका इस प्रकार शान्तिपूर्ण उत्तर सुनकर वे लोग चकित हो गये; पर उनको निश्चय हो गया कि सब बात श्रीरामकृष्ण को मालूम है, और नरेन्द्र की जान को किसी प्रकार का ख़तरा नहीं है। यह समझकर वे लोग वापस लौट आए और नीचे नरेन्द्र के पास बैठे रहे। बहुत समय के बाद नरेन्द्र को देहभान हुआ। उसका अन्तः-करण भर आया था। नेत्रों से अश्रुधारा वह रही थी और उसके हृदय में दिव्य आनन्द और शान्ति का प्रचण्ड प्रवाह बहने लगा था। देहभान होते ही प्रथम उसने श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया और तत्काल वह उठकर सीढ़ी की ओर दौड़ पड़ा। ऊपर श्रीरामकृष्ण अभी तक चिन्तित बैठे थे। ऊपर जाकर उनके सामने साष्टांग प्रणाम करके नरेन्द्र हाथ जोड़कर चुपचाप खड़ा रहा। कृतज्ञता, आनन्द, शान्ति आदि से उसका हृदय भर गया था, और उसके

मुख से शब्द भी नहीं निकलता था। अपने प्रधान शिष्य को देखकर श्रीरामकृष्ण का आनन्द उमड़ पड़ा! उन्होंने उसके हृदय की हलचल को पहचान लिया और वे उससे बोले—"अब माता ने तुझे सब कुछ दिखा दिया है और तेरे सन्दूक की सिर्फ़ चाभी मेरे पास दे दी है। अब इस अनुभव को अच्छी तरह यत्नपूर्वक रख और कुछ दिनों तक लोगों से मत मिलना तथा किसी से बहुत न बोलना। वैसे ही कुछ दिनों तक अपने हाथ से रसोई बनाकर खाया कर—समझा? अच्छा, अब जा। थोड़ा आराम कर ले, और थोड़ी देर के बाद माता के मन्दिर में जाकर उसको प्रणाम कर आना।"

इस प्रकार श्रीरामकृष्ण की कृपा से नरेन्द्र ने मानव-जीवन का ध्येय प्राप्त कर लिया। श्रीरामकृष्ण का अपने भक्त-समुदाय के प्रति कितने प्रेम और आत्मीयता का व्यवहार रहता था, उनकी आध्यात्मिक उन्नति की ओर वे कितनी बारीकी से ध्यान रखते थे, उनको अपने मार्ग में वे किस प्रकार सहायता देते थे, उसका एक उदाहरण नरेन्द्र की आध्यात्मिक उन्नति के संक्षेप इतिहास के रूप में बताया गया है। यद्यपि श्रीरामकृष्ण का नरेन्द्र के प्रति सब से अधिक प्रेम था, तथापि औरों पर कुछ कम न था। हर एक को यही मालूम पड़ता कि मुझ पर ही श्रीरामकृष्ण का सब से अधिक प्रेम है। जिसको जितने प्रेम की आवश्यकता मालूम पड़ती है उससे यदि अधिक प्रेम का उसे प्रत्यक्ष अनुभव होता है तो उसकी ऐसी धारणा होने में क्या आश्चर्य है? किसी को दस रुपये मिलने में ही आनन्द होता हो तो उसे यदि पन्द्रह रुपये मिल जायँ, और १००) चाहने वाले को १५०) मिल जायँ, तो क्या दोनों को ही एक समान आनन्द

नहीं होगा? वही स्थिति श्रीरामकृष्ण की भक्त-मण्डली की थी। जिसको जितने प्रेम की आवश्यकता रहती थी, उससे कितना ही अधिक प्रेम उसको श्रीरामकृष्ण से मिला करता था; और इसी कारण सभी भक्त आनन्द में रहते थे।

हम कह चुके हैं कि श्रीरामकृष्ण के बहुत से भक्त लोग उनके पास सन् १८८१ के बाद आये और श्रीरामकृष्ण के धर्म के पुनरुज्जीवित करने का बहुतसा कार्य इसी समय हुआ। सन् १८८१ से १८८५ के अप्रैल तक अपने भक्तों के साथ अद्भुत लीला करके उन्होंने सारे कलकत्ता शहर को और उसके द्वारा सारे बंगाल प्रान्त को हिला दिया और लोगों की धर्म सम्बन्धी कल्पना में भारी क्रान्ति पैदा कर दी। सन् १८८५ में उनके गले में एक विचित्र रोग हो गया और उस समय से लगभग डेढ़ वर्ष तक वे प्रायः रुग्णशय्या में ही पड़े रहे। उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था, तब भी उनका उत्साह ज्यों का त्यों बना रहा और उन्होंने अपनी बीमारी की अवस्था में ही अपने भक्तगणों को एकत्रित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके इस अन्तिम डेढ़ वर्ष का वृत्तान्त अगले प्रकरण में दिया जाएगा।

---

२० — पानिहाटी का महोत्सव



सन् १८८५ के ग्रीष्म काल में श्रीरामकृष्ण को कड़ी गर्मी के कारण बहुत कष्ट होते देखकर उनके भक्तों ने उनके लिए बर्फ़ का प्रबन्ध किया। और वे भी हर रोज़ बर्फ़ डाला हुआ ठण्डा पानी पीकर छोटे बच्चे के समान आनन्द प्रकट करने लगे, परन्तु एक दो महीने बीतने पर उनके गले में पीड़ा होने लगी और वह क्रमशः बढ़ने लगी।

लगभग एक मास बीत गया फिर भी उस पीड़ा के कम पड़ने के कोई चिह्न नहीं दिखते थे। वरन् इसके विपरीत एक नया विकार पैदा हो गया। अधिक समय तक बोलते रहने से, तथा समाधि के बाद, वह पीड़ा बहुत अधिक बढ़ने लगी। कुछ दिनों के बाद गले पर कुछ सूजन आ गई, इसलिए उन भक्त लोगों ने उस पर लेप आदि लगाया। कुछ दिनों तक लेप लगाने के बाद भी सूजन कम न हुई, तब भक्त लोग बहूबाजार के डाक्टर राखालचन्द्र को बुलाकर लाए। उन्होंने गले में भीतर से लगाने के लिए औषधि दी और बाहर की ओर मालिश करने के लिए भी कुछ औषधि देकर बहुत न बोलने और बारम्बार समाधि-मग्न न होने के लिए ताकीद कर दी।

क्रमशः ज्येष्ठ मास आया। कलकत्ते से उत्तर की ओर १३–१४ मील पर पानिहाटी नामक स्थान है। वहाँ हर वर्ष उस महीने में श्रीरघुनाथदास गोस्वामी की स्मृति में वैष्णव सम्प्रदायवालों का उत्सव हुआ करता है। श्रीरघुनाथदास श्रीकृष्ण चैतन्य (गौरांग महाप्रभु) के शिष्यों

में से ही एक थे और ईश्वर-प्राप्ति के लिए उन्होंने इसी मास की शुक्ल त्रयोदशी के दिन संसार का त्याग करके संन्यास लिया था। इसी घटना के स्मरणार्थ यह उत्सव वहाँ मनाया जाता था। अनेक स्थान के वैष्णव भक्त उस दिन वहाँ जमा होते थे और सारा दिन कीर्तन, भजन, नामस्मरण में ही बीतता था। बाद को श्रीरामकृष्ण भी इस उत्सव में प्रतिवर्ष शामिल होने लगे थे, परन्तु सन् १८८० से वे किसी न किसी कारणवश वहाँ जा नहीं सके। इस वर्ष जाने की इच्छा से उन्होंने अपनी भक्त-मण्डली से कहा—"इस उत्सव में आनन्द का बाजार भरता है, ईश्वर के नामघोष से दसों दिशायें गूँज जाती हैं। तुम 'यंग बंगाल' वाले लोगों ने कभी ऐसा मज़ा नहीं लूटा होगा। तुम लोग साथ आओ तो सोचता हूँ, हो आएँ।' इसे सुनकर रामचन्द्र दत्त आदि लोगों को बडा आनन्द हुआ, परन्तु कुछ लोग उनकी बीमारी को देखकर उनके जाने में राजी नहीं हुए। उन लोगों के सन्तोष के लिए उन्होंने कहा—"हम लोग ऐसा करेंगे कि यहाँ से बिलकुल सवेरे ही थोड़ासा फलाहार करके चलेंगे, और वहाँ जाकर एक दो घण्टे ही ठहरेंगे, और फिर लौट आएँगे और बीमारी के बारे में थोड़ी सावधानी रखेंगे, किसी से बहुत नहीं बोलेंगे, बस् सब ठीक रहेगा।" उनके इस उत्तर से सबको समाधान हो गया और वे लोग वहाँ जाने की तैयारी करने लगे।

ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी का सूर्योदय हुआ। आज ही पानिहाटी का उत्सव था। बड़े तड़के ही लगभग पचीस भक्त दो नौकाएँ लेकर दक्षिणेश्वर पहुँचे। कोई कोई कलकत्ते से पैदल ही आए। श्रीरामकृष्ण के लिए एक अलग नौका घाट पर तैयार थी। सवेरे से कुछ भक्त स्त्रियाँ

आई थीं, उन्होंने तथा माताजी ने रसोई बनाकर सब को खिला दिया। लगभग दस बजे सब लोग चलने के लिए तैयार हो गए। श्रीरामकृष्ण के फलाहार कर चुकने पर माताजी ने "क्या मैं भी साथ चलूँ?" यह पूछने के लिए एक स्त्री को भेजा। श्रीरामकृष्ण बोले — "तुम सब तो चलती ही हो; उसकी जाने की इच्छा हो तो वह भी आ जाय।" श्रीरामकृष्ण का संदेशा पाकर माताजी बोलीं — "वहाँ बड़ी भीड़ होगी। नौका से उतरकर भीड़ में से होते हुए देवदर्शन करना मुझसे नहीं हो सकेगा, इसलिए मैं नहीं आती, तुम लोग दो चार उन्हीं की नौका में चली जाओ, यही ठीक होगा।"

लगभग दोपहर के समय नौका पानिहाटी के घाट पर जा लगी। उस दिन कुछ रिमझिम रिमझिम वृष्टि हो रही थी। ये लोग उतरे और देखते हैं, तो वहाँ उत्सव-स्थान में लोगों की बहुत भीड़ लगी है। जिधर देखें उधर हरिनाम की गर्जना हो रही है। नौका में बैठते समय नरेन्द्र, बलराम, गिरीश, रामचन्द्र, महेन्द्रनाथ आदि लोगों ने श्रीरामकृष्ण से विनती की थी — "आज आप किसी भी भजनमण्डली में शामिल न होवें, आज भजन करने लगेंगे तो देह की सुधि भूलकर समाधिमग्न हो जाएँगे, और इससे आपका दर्द व्यर्थ ही और बढ़ जाएगा।" नौका से उतरते ही श्रीरामकृष्ण अपनी भक्त-मडण्ली के साथ सीधे श्रीयुत मणि सेन के घर गए। श्रीरामकृष्ण के आते ही सभी ने उठकर उनका स्वागत किया और उन्हें ले जाकर बैठकखाने में बिठाया। दस पन्द्रह मिनट वहाँ ठहरकर श्रीरामकृष्ण देवदर्शन के लिए रवाना हुए।

मन्दिर में जाते ही उन्हें भावावेश हो आया! उनके देवदर्शन करते समय ही वहाँ एक भजन-मण्डली आ पहुँची। वहाँ ऐसी प्रथा थी

कि प्रत्येक भजन-मंण्डली पहले देव के सामने कुछ समय तक भजन करे और फिर वहाँ से निकलकर गंगा के किनारे बालू पर बैठकर भजन करे। उस भजन-मण्डली के वहाँ रहते ही एक अच्छे हृष्टपुष्ट, जटाधारी, मुद्रा लगाए हुए, गौरवर्ण के बाबाजी घूमते फिरते माला जपते हुए वहाँ आ पहुँचे। भजन-मण्डली को उत्साह दिलाने के लिए ही शायद, वे एकदम उसमें शामिल हो गए और भावाविष्ट होने के समान हाथ हिलाते हुए हुंकार करते हुए नाचने लगे।

देवदर्शन करके जगमोहन (सभामण्डप) में ही एक ओर खड़े होकर श्रीरामकृष्ण भजन सुन रहे थे। बाबाजी का वह वेश और ठाटबाट देखकर वे कुछ मुस्कराते हुए नरेन्द्र आदि की ओर देखकर बोले—"देखो, ढंग तो देखो!" उनके मुँह से ये शब्द सुनकर शिष्यगण हँसने लगे और आज श्रीरामकृष्ण को भावाविष्ट न होते और अच्छी सावधानी से व्यवहार करते देख उनको बड़ा आनन्द हुआ। पर इधर तो शिष्यगण बाबाजी की ओर देखने में ही मग्न थे और उधर श्रीरामकृष्ण कभी के वहाँ से निकलकर कूदकर उस भजन-मण्डली के बीच में जाकर खड़े हो गये थे और भावाविष्ट होकर उनका देहभान भी प्रायः लोप हो चुका था! इस आकस्मिक स्थिति को देखकर उनकी भक्त-मण्डली में हलचल मच गई, उनके मुँह का पानी उतर गया और सब के सब दौड़कर उस भजन-मण्डली में घुस गए तथा उन्होंने श्रीरामकृष्ण को घेर लिया। थोड़ी देर में कुछ देहभान होते ही वे (श्रीरामकृष्ण) सिंह-बल से नृत्य करने लगे। नृत्य करते हुए बीच में ही उन्हें समाधि लग जाती थी और उसके उतरते तक वे उसी तरह निश्चेष्ट खड़े रहते थे। उस स्थिति में वे गिर न पड़ें, इसलिए उन्हें कोई भक्त अच्छी तरह पकड़ रखता

था। समाधि उतरते ही पुनः नृत्य शुरू हो जाता था। यही क्रम लगातार चलता रहा। नृत्य करते समय ताल के अनुसार जल्दी जल्दी आगे-पीछे सरकते हुए वे ऐसे दिखाई देते थे मानो किसी मछली के समान वे ब्रह्मानन्द-समुद्र में उछलते हुए स्वच्छन्द तैरते हुए, मनमाने विहार कर रहे हों! उनके प्रत्येक अवयव पर कोमलता, माधुर्य और उद्दाम उत्साह का तेज झलकता था। स्त्री-पुरुषों के हावभावमय अनेक मनोहर नृत्य हम लोगों ने देखे होंगे, परन्तु दिव्य भावावेश में देहभान खोकर तन्मयता से नृत्य करते समय श्रीरामकृष्ण के शरीर पर जो एक प्रकार का रुद्र-मधुर सौन्दर्य और तेज दिखाई देता था, उसकी आंशिक छटा भी किसी के शरीर पर हमारे देखने में नहीं आई! जब प्रबल भावोल्लास से उनका शरीर डोलने लगता था, तब यही मालूम होता था कि उनका शरीर कठोर जड़ उपादानों का बना हुआ नहीं है, वरन् प्रचण्ड आनन्द-सागर में यह एक तरंग-सी उठ गई है जो बड़े वेग से आसपास के सब पदार्थों को डुबाती हुई आगे बढ़ रही है, और थोड़े ही समय में वह उस आनन्द-सागर के साथ एकरूप हो जाएगी तथा उसका यह वर्तमान आकार शीघ्र ही लोगों को दिखाई देना बंद हो जाएगा।

असल और नकल चीज़ लोगों की दृष्टि के सामने ही थी। सब लोग उस वेशधारी बाबाजी को एक ओर छोड़कर श्रीरामकृष्ण को घेरकर नृत्य करने लगे और ऐसे दिव्य आनन्द में डेढ़ घण्टे के लगभग समय बीत गया! श्रीरामकृष्ण को कुछ देहभान होते ही भक्त-मण्डली ने निश्चय किया कि वहाँ से करीब एक मील पर चैतन्य देव के परम भक्त राघव पण्डित का घर है, वहाँ की श्री राधाकृष्ण की मूर्ति का

दर्शन कराके श्रीरामकृष्ण को वापस नौका ओर ले चलें। इसके लिए श्रीरामकृष्ण की सम्मति मिलते ही वह सब समाज राघव पण्डित के घर की ओर जाने के लिए चल पड़ा! भजन-मण्डली भी उनके साथ चलने लगी और पुनः हरिनाम की गर्जना शुरू हुई। भक्त-मण्डली ने फिर एक बार श्रीरामकृष्ण के चारों ओर घेरा बना लिया और श्रीरामकृष्ण बड़े आनन्द से नृत्य करते हुए धीरे धीरे आगे बढ़ने लगे। दो चार कदम जाते ही उन्हें भावावेश हो आया और सब समाज वहीं खड़ा रह गया। उन्हें देहभान होते ही पुनः सब लोग धीरे धीरे आगे बढ़ने लगे। दो चार कदम बढ़ते ही पुनः वैसा ही हो गया और लगातार यही क्रम जारी रहा।

उस दिन श्रीरामकृष्ण के शरीर पर दिव्य तेज की प्रभा फैलकर उनकी शरीर-कान्ति इतनी तेजःपुञ्ज और उज्ज्वल दिखाई देती थी कि कम से कम हम लोगों को तो उस तरह की कान्ति देखने का स्मरण नहीं होता। उनकी उस दिव्य शरीर-कान्ति का यथोचित वर्णन करना हमारे लिए असम्भव है। भावावेश प्राप्त होने पर एक क्षणार्ध में ही शरीर में इतना विचित्र परिवर्तन हो सकता है, इस बात की हमें कभी कल्पना भी नहीं थी। ऐसा मालूम होता था कि इनका शरीर आज नित्य की अपेक्षा कितना अधिक बड़ा दिख रहा है! उनके मुखमण्डल पर अपूर्व तेज झलकने लगा था और उस तेज से मानो चारों दिशाएँ पूर्ण हो गई थीं। उनके शरीर की छटा उनके पहने हुए गेरुए वस्त्रों पर पड़ने से ऐसी मालूम होती थी कि मानो वे अग्निज्वाला से लपेट लिए गए हैं। उनके उस भावोद्दीप्त, तेजःपुञ्ज किंचित् हास्ययुक्त मुखमण्डल की ओर देखकर सभी का देहभान लोप हो गया!—और वह

सारा समाज, वशीकरण किए हुए के समान उनकी ओर देखते हुए उनके साथ चलने लगा।

श्री मणि सेन के घर से निकलकर कुछ दूर जाने के बाद, उनके उस भावावेश, दिव्य शरीर-कान्ति और मनोहर नृत्य को देखकर नए उत्साह के साथ भजन-मण्डली गाने लगी —

सुरधुनीर तीरे हरि बले के रे,
बुझि[1] प्रेमदाता निताई एसेछे,
ओरे हरि बले के रे, जय राधे बले के रे।
बुझि प्रेमदाता निताई एसेछे!
(आमादेर[2]) प्रेमदाता निताई एसेछे!
निताई नइले[3] प्राण जुडावे किसे?
(एइ आमादेर) प्रेमदाता निताई एसेछे!

ध्रुवपद गाते समय मण्डली श्रीरामकृष्ण की ओर उँगली दिखाकर लगातर 'एइ आमादेर प्रेमदाता' कहकर बड़े आनन्द से उद्दाम नृत्य करने लगी! उत्सव में आए हुए कोई कोई लोग उस भजन-मण्डली के समीप आते थे और यहाँ क्या हो रहा है, यह देखते और श्रीरामकृष्ण के उस दिव्य रूप, मनोहर नृत्य और उस मण्डली की आनन्दपूर्ण गर्जना को देखकर उसी समुदाय में शामिल हो जाते थे। एक आया, दो आए, चार आए, इसी प्रकार उत्सव में आए हुए बहुतेरे लोग श्रीरामकृष्ण के आसपास जमा हो गए और यह सारा प्रचण्ड जनसमुदाय आराम से धीरे धीरे राघव पण्डित के घर की ओर सरकने लगा।

---

१ मालूम होता है, २ हमारा, ३ न आए तो

कुछ भक्त स्त्रियाँ श्री चैतन्य देव और श्री नित्यानन्द का थोड़ासा प्रसाद श्रीरामकृष्ण के लिए लाई थीं और उनको वह प्रसाद देने के लिए वे अवसर ढूँढ रही थीं। एक मुद्रा लगाए हुए जटाधारी बाबाजी ने यह देख लिया और उनके हाथ में से वह प्रसाद थोड़ासा ले लिया और भीड़ को चीरते हुए रास्ता निकालकर, मानो भाव और प्रेम में गद्गद होते हुए वह प्रसाद बाबाजी ने अपने हाथ से श्रीरामकृष्ण के मुख में डाल दिया। उस समय श्रीरामकृष्ण पूर्ण भावावस्था में थे। बाबाजी का स्पर्श होते ही उनका सर्वांग काँपने लगा, उनका भाव टूट गया, और 'थू थू' करते हुए उन्होंने वह प्रसाद थूककर अपना मुँह पोंछ लिया। यह हाल देखकर सब लोग ताड़ गए कि यह बाबाजी कोई ढोंगी और लुच्चा होना चाहिए और उसकी ओर सब क्रोधभरी दृष्टि से देखने लगे। अब अपनी भलाई नहीं है, यह देखकर बाबाजी होशियारी के साथ वहाँ से खिसके और नौ दो ग्यारह हो गए।

इस एक मील के मार्ग को तय करने में उस प्रचण्ड जनसमुदाय को लगभग तीन घण्टे लग गए। श्रीरामकृष्ण ने मन्दिर में जाकर देव-दर्शन किया और आधा घण्टा विश्राम किया। श्रीरामकृष्ण को वहीं छोड़कर लोग वापस हुए। भीड़ कम हुई देखकर भक्त-मण्डली श्रीरामकृष्ण को नौका की ओर ले गई परन्तु वहाँ भी एक अद्भुत घटना हुई। कोन्नगर के नवचैतन्य मिश्र श्रीरामकृष्ण के पानिहाटी आने का समाचार पाकर, उनके दर्शन करने के लिए बड़ी आतुरता से उन्हें इधर उधर खोज रहे थे। इतने में ही उन्होंने श्रीरामकृष्ण को नौका में चढ़े हुए देखा और वे एकदम तीर के समान दौड़ते हुए जाकर नौका में कूद पड़े और उनके पैरों पर गिरकर 'प्रभो! कृपा कीजिए' कहते हुए

अत्यन्त व्याकुलता के साथ रोने लगे। उनकी भक्ति और व्याकुलता को देखकर श्रीरामकृष्ण का हृदय भर आया और उन्होंने भावावेश में उनके हृदय को स्पर्श किया। उस अद्भुत स्पर्श से उनको किस प्रकार का दर्शन प्राप्त हुआ सो कहा नहीं जा सकता, परन्तु क्षणार्ध में ही उनका रोना आदि बंद हो गया। उनकी मुख-मुद्रा प्रफुल्ल दिखने लगी और वे उन्मत्त के समान श्रीरामकृष्ण के सामने नाचने लगे तथा उनकी अनेकानेक स्तुति करते हुए उन्हें बारम्बार प्रणाम करने लगे। कुछ देर में श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपने पास ले लिया और उनकी पीठ पर से हाथ फिराकर अनेक तरह के उपदेश देकर उन्हें शान्त किया। श्रीरामकृष्ण मुझ पर कृपा करें इस उद्देश से नवचैतन्य ने कितने दिनों तक उनकी राह देखी थी। उनकी वह इच्छा आज सफल होकर उनके आनन्द की सीमा नहीं रही। दो चार दिनों के बाद ही उन्होंने अपनी गृहस्थी का भार अपने पुत्र को सौंपकर संसार का त्याग किया। तब से वे गंगा के किनारे एक पर्णकुटी में रहते हुए साधन-भजन, जप आदि में ही अपना जीवन बिताने लगे। उनके ईश्वरानुराग, भक्ति और प्रेम को देखकर अनेक मनुष्य सन्मार्ग में लग गये। नवचैतन्य के चले जाने पर श्रीरामकृष्ण ने नौका खोलने के लिए कहा। थोडे ही समय में संध्या हो गई और साढे आठ बजे के करीब सब लोग दक्षिणेश्वर आ पहुँचे। श्रीजगदम्बा का दर्शन करके श्रीरामकृष्ण को अपने कमरे में आते ही देख भक्त लोगों ने उन्हें प्रणाम किया और उनसे बिदा ली। जब सब लोग नौका में बैठ चुके तब एक को अपने जूते श्रीरामकृष्ण के कमरे के बाहर भूल आने की याद आई और उसे लाने के लिए वह उधर दौड गया। श्रीरामकृष्ण ने उससे वापस लौटने का

कारण पूछा और उसका उत्तर सुनकर वे हँसते हुए बोले — "अच्छा हुआ! नौका छुटने के पहले तुझको इसकी याद आ गई; नहीं तो आज का सारा आनन्द किरकिरा हो गया होता। क्यों ठीक है न?" वह बेचारा यह सुनकर शरमा गया और उनको प्रणाम करके ज्योंही वापस लौटने ही वाला था त्योंही श्रीरामकृष्ण बोले — "क्यों रे! आज कैसा मज़ा आया? हरिनाम का मानो बाज़ार लग गया था न?" उसके 'हाँ' कहने पर वे आज जिन जिन को भावावेश हो गया था उनके नाम लेते हुए छोटे नरेन्द्र की बात निकालकर उसकी प्रशंसा करने लगे। वे बोले — "उसने अभी हाल ही में यहाँ आना शुरू किया है; पर उसको इतने थोड़े समय में भावावेश होने लगा है, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है? उस दिन उसको भावावेश हुआ तब एक घण्टे तक उसे देहभान नहीं था! वह कहता है — 'आजकल मेरा मन निराकार में लीन हुआ करता है!' लड़का बड़ा अच्छा है न? तू उसके यहाँ एक दिन जाकर उससे बातें-तो कर भला।" वह बोला — "पर महाराज! बड़ा नरेन्द्र मुझको जितना प्यारा लगता है उतना प्यारा और कोई नहीं लगता, इस-लिए मुझको छोटे नरेन्द्र के यहाँ जाने की इच्छा ही नहीं होती।" इस पर से उसका किंचित् तिरस्कार करते हुए श्रीरामकृष्ण बोले — "तू बहुत ही पक्षपाती मनुष्य है। पक्षपाती होना बड़ी हीन बुद्धि का लक्षण है। मनुष्य को कभी पक्षपाती नहीं होना चाहिए। अरे! भगवान् के नाना प्रकार के भक्त रहते हैं; उनके साथ मिलजुलकर आनन्द नहीं कर सकता यह तेरी हीन बुद्धि नहीं तो और क्या है? तब फिर बता तू उसके घर एक दिन जाएगा न?" इसका बेचारा क्या उत्तर देता? 'हाँ' कहकर उसने श्रीरामकृष्ण से विदा ली।

भक्त स्त्रियाँ उस दिन नौबतखाने में माताजी के पास ही रहीं। रात को फलाहार करते समय श्रीरामकृष्ण उनमें से एक से बोले —"आज वहाँ इतनी भीड़ थी और हर एक की दृष्टि मेरी ओर लगी थी। अच्छा हुआ जो यह * मेरे साथ नहीं आई! वह साथ रहती तो लोग यही कहते —'वाह! हंस और हंसिनी! कैसी सुन्दर जोड़ी है!' वह नहीं गई यह उसने बड़ा अच्छा किया।"

श्रीरामकृष्ण के फलाहार हो जाने के बाद उस स्त्री से श्रीरामकृष्ण के उद्गार सुनकर माताजी बोलीं —"आज सबेरे जब मैंने 'क्या मैं भी चलूँ?' कहकर पुछवाया, तब उनके उत्तर पर से मैं समझ गई कि उनकी इच्छा नहीं है कि मैं उनके साथ चलूँ। उनकी यदि ऐसी इच्छा रहती, तो वे कहते कि —'हाँ, कह दो — आए।' पर वैसा न कहते हुए जब उन्होंने उत्तर भेजा कि 'उसकी आने की इच्छा हो तो आने दो' और उन्होंने मेरी इच्छा पर बात छोड़ दी, तभी मैं समझ गई कि मुझको ले चलने की उनकी इच्छा नहीं है!" अस्तु —

उस दिन सारे दिन बहुत परिश्रम होने के कारण, रात भर श्रीरामकृष्ण के शरीर में दाह हो रहा था तथा शरीर में पीड़ा भी थी। इस कारण उनको रात भर बिलकुल नींद नहीं आई। शायद अनेक तरह के लोगों का उनके शरीर को स्पर्श होने के कारण ही ऐसा हुआ हो; क्योंकि कई बार अपवित्र लोगों के स्पर्श से उन्हें गात्रदाह होते हमने देखा था। दूसरे दिन स्नानयात्रा-पर्व था, इसलिए उस दिन गंगास्नान और श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए कलकत्ते से बहुत लोग आए थे। उनमें एक स्त्री, अपनी इस्टेट (जायदाद) के

---

* उनकी पत्नी

भविष्य के लिए कोई प्रबन्ध करना चाहती थी। उसके लिए वह श्रीराम-कृष्ण से आशीर्वाद माँगने आई थी। वह दिन भर उनके पीछे पीछे लगी रही और व्यर्थ ही उन्हें कष्ट देती रही। दोपहर को भोजन के समय भी वह उनके पास से नहीं हटी। इससे श्रीरामकृष्ण बड़े तंग हो गए और उस दिन उन्होंने नित्य के समान भोजन भी नहीं किया। भोजन के बाद उसे कुछ दूसरी ओर गई हुई देखकर श्रीरामकृष्ण किसी दूसरी भक्त स्त्री से बोले—"यहाँ सब लोग तो आते हैं भक्ति, प्रेम आदि प्राप्त करने के लिए। यहाँ आने से क्या उसकी इस्टेट का प्रबन्ध हो जाएगा? मन में कामना रखकर वह संदेश आदि खाने की चीजें लाई थी उनमें से एक भी मुझसे मुँह में डालते नहीं बनी! आज स्नानयात्रा का दिन है। प्रति वर्ष आज के दिन कितनी भावसमाधि और कितना आनन्द हुआ करता था; तीन तीन चार चार दिनों तक उस भाव में कमी नहीं होती थी। और आज देखो न? कुछ भी नहीं हो सका।" वह स्त्री रात को भी दक्षिणेश्वर में ही रही और उसके कारण श्रीरामकृष्ण को बहुत ही कष्ट हुआ। रात को फलाहार के समय वे अपनी एक स्त्री-भक्त से बोले—"यहाँ स्त्रियों की इतनी भीड़ करना ठीक नहीं है। मथुर बाबू का पुत्र त्रैलोक्य बाबू आजकल यहीं रहता है। वह अपने मन में क्या कहता होगा भला? दो चार स्त्रियाँ कभी साथ मिलकर आ जायँ, एकआध दिन यहाँ रह जायँ और वापस चली जायँ—सो नहीं करतीं; उन्होंने तो रोज लगातार भीड़ लगा रखी है! स्त्रियों की इतनी हवा मुझसे सहन नहीं हो सकती!" श्रीराम-कृष्ण को अपने कारण कष्ट होते देखकर सभी स्त्रियों को बड़ा बुरा लगा और वे बेचारी उदास होकर सबेरे अपने अपने घर चली गईं।

इस प्रकरण में दिये हुए वृत्तान्त से पाठकगण कुछ थोड़ा बहुत अनुमान कर सकेंगे कि श्रीरामकृष्ण अपने मन के निरंतर उच्च भावभूमि में रहते हुए भी मामूली दैनिक बातों की ओर कितनी सूक्ष्मता से ध्यान रखा करते थे तथा अपने भक्तों के कल्याण के लिए सदैव चिन्तन करते हुए वे उन्हें किस प्रकार की शिक्षा देते थे।

---

२१ — कलकत्ते में श्रीरामकृष्ण का आगमन

(सितम्बर १८८५)

"स्वयं माता ने ही समझा दिया कि—'ये इतने लोग ऐसे वैसे काम करके आते हैं और तुझको स्पर्श करते हैं; उनकी दुर्दशा देखकर तेरे मन में दया उत्पन्न होती है—और उनके कर्मों का फल तुझे भुगतना पड़ता है; इसीलिए यह ऐसा हो गया है!' (गले की ओर इशारा करके) इसी कारण तो यहाँ रोग उत्पन्न हो गया है! अन्यथा इस शरीर ने न कभी किसी को कष्ट दिया और न कभी किसी की बुराई ही की—तब फिर इसके पीछे रोगराई क्यों लगनी चाहिए?"

—श्रीरामकृष्ण

पानिहाटी के उत्सव और स्नानयात्रा-पर्व दोनों ही दिन श्रीरामकृष्ण को बड़ा कष्ट हुआ। पहले से ही उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उस पर भी उत्सव के दिन तीन चार घण्टे वर्षा में बिताने पड़े तथा बहुत समय तक समाधिमग्न रहने के कारण, उन्हें बड़ा श्रम हुआ। भक्त लोग पुनः डाक्टर राखालचन्द्र को बुलाकर लाए। डाक्टर साहब बोले—"यह सब वर्षा में भीगते रहने का और बारम्बार समाधिमग्न होने का परिणाम है। पुनः ऐसा न होने पावे इस बात की तुम्हें बहुत सावधानी रखनी चाहिए; अन्यथा इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।" डाक्टर के चले जाने पर भक्त-मण्डली ने आपस में निश्चय किया कि अब आगे ऐसा कभी न होने देने के लिए जितनी सावधानी हो सकती है, रखी जाएगी। उन लोगों ने श्रीरामकृष्ण से विनय की कि वे भी बारम्बार समाधिमग्न न होने की

खबरदारी रखें। बालस्वभाव श्रीरामकृष्ण ने उस दिन की घटना का सारा दोष रामचन्द्र दत्त आदि के मत्थे मढ़ दिया। वे बोले — "इन सब लोगों ने यदि कुछ ज़ोर देकर कहा होता तो मैं पानिहाटी जाता ही क्यों?" लगभग इसी समय एक दिन श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए उनके एक भक्त दक्षिणेश्वर गये हुए थे। जब वे वहाँ पहुँचे तब श्रीरामकृष्ण गले में लेप लगाकर अपने कमरे में छोटे पलंग पर चुपचाप बैठे थे। किसी छोटे लड़के को एक जगह बैठे रहने और वहाँ से न हटने की सज़ा देने पर, वह बेचारा जैसा खिन्न और उदास दिखता है ठीक वैसा ही उस समय श्रीरामकृष्ण का चेहरा दिखाई देता था। श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके उन्होंने पूछा — "कहिए, आप आज ऐसे क्यों दिखाई देते हैं?" इस पर, वे अपने गले पर लगे हुए लेप की ओर उँगली दिखाते हुए अत्यन्त मंद स्वर से बोले — "इधर देखो न, दर्द बढ़ गया है, डाक्टर ने कहा है — बहुत मत बोला करो।" वे बोले — "हूँ, मैंने सुना कि उस दिन आप पानिहाटी गये थे और उसी दिन से दर्द बढ़ गया है।" यह सुनकर जैसे कोई लड़का दूसरे के अपराध के कारण नाहक अपने को सज़ा मिलने पर गुस्सा हो जाता है, उसी प्रकार गुस्से से और अभिमान के साथ श्रीरामकृष्ण बोले — "हूँ, हूँ, देखो भला, ऊपर से पानी बरसता था, नीचे कीचड़ था और ठण्डी हवा चल रही थी — और ऐसी हवा में वहाँ ले जाकर राम ने मुझको दिन भर कैसा नचाया? वह अच्छा सुशिक्षित परीक्षा पास डाक्टर है, अगर वह थोड़ा ज़ोर देकर कहता — 'नहीं, जाने का कोई काम नहीं है' तो क्या मैं वहाँ जाता?" वे बोले — "सच है महाराज! राम ने बड़ी भारी ग़लती की, पर अब उससे क्या फ़ायदा? होना था सो हो गया।

अब इसके आगे कुछ दिन अच्छी सावधानी रखिए तो शीघ्र ही दर्द आराम हो जाएगा।" यह सुनकर उन्हें आनन्द हो गया और वे बोले — "अरे, यह सब तो ठीक है पर अभी दर्द रहते तक बोलना बिल्कुल बंद कर देने से काम कैसे चलेगा? अरे, अभी यही देखो न — तुम यहाँ कितनी दूर से आए हो भला? और तुम्हारे साथ यदि बिल्कुल न बोल-कर मैं तुम्हें वैसे ही वापस भेज दूँ तो कैसे बनेगा?" यह सुनकर उस भक्त का हृदय भर आया और वे बोले — "पर महाराज! डाक्टर ने रोका है न? चार दिन बोलना बंद ही कर दें तो इसमें क्या बिगड़ेगा? आपको देखकर ही हमें आनन्द होता है। आप यदि एक अक्षर भी न बोलें, तो भी हमको कुछ बुरा नहीं लगेगा। आप अच्छे हो जायँ तब फिर हम आप मनमाना बोलचाल लेंगे।" पर इस सबको मानता है कौन? डाक्टर की ताकीद, अपनी पीड़ा — सब बात भूलकर वे अनेकानेक विषयों पर पहले के ही समान बोलने लगे!

धीरे धीरे आषाढ़ का महीना आया। महीना भर लेप, औषधि आदि लगाने पर भी दर्द के कम होने के कोई लक्षण नहीं दिखाई दिए। दर्द और दूसरे दिनों में तो बहुत कम रहता था पर एकादशी, पौर्णिमा, अमावस्या आदि तिथियों के दिन बहुत बढ़ जाता था और किसी भी तरह का अन्न उनके गले के नीचे उतरना असम्भव हो जाता था। इसलिए वे अब दूध, लपसी, साबूदाना आदि द्रव पदार्थों पर रहने लगे। डाक्टर लोगों ने परीक्षा करके निर्णय किया कि यह रोग Clergyman's sore throat (रात दिन लोगों से बोलते रहने के कारण धर्मप्रचारकों के गले में रोग होकर फोड़ा आ जाता है वह रोग) है! इसी निदान के अनुसार औषधि और पथ्य का आदेश देकर उन लोगों ने स्पष्ट कह

दिया कि "वारम्वार समाधिमग्न होना और बोलना वन्द किए विना यह रोग आराम होना असम्भव है।" डाक्टरों के कहने के अनुसार औषधि और पथ्य तो ठीक ठीक शुरू कर दिया गया पर उनकी वताई हुई ये दोनों वातें श्रीरामकृष्ण से नहीं वनती थीं। यत्किंचित् उद्दीपन होते ही वे सारी वातें भूलकर एकदम समाधिमग्न हो जाते थे और यदि संसार के ताप से तप्त होकर कोई भी मनुष्य उनके पास शान्तिलाभ के लिए आ जाता था, तो तत्क्षण वे द्रवित होकर उसे उपदेश और धैर्य देते थे और ऐसे लोगों से वे घण्टों वोलते रहते थे।

इस समय श्रीरामकृष्ण के पास धर्मजिज्ञासु लोगों की लगातार भीड़ होने लगी थी। पुराने भक्तों को छोड़कर प्रतिदिन कम से कम ५-७ नये लोग उनके पास आते थे। सन् १८७५ में केशवचन्द्र सेन की प्रथम भेंट के समय हर रोज़ नये नये लोग आने लगे। अत: इन सव से वातें करने में अन्तिम दस वर्षों में श्रीरामकृष्ण को कई वार सचमुच ही खाने पीने और विश्राम करने की भी फ़ुरसत नहीं मिलती थी। इसके सिवाय महाभाव की प्रेरणा के कारण उन्हें नींद भी वहुत कम लगती थी। सदा यही देखने में आता कि रात को ग्यारह वजे सोकर थोड़ी ही देर के वाद वे उठकर भावावेश में कमरे या वरामदे में टहल रहे हैं, इस दरवाज़े को खोलकर, उस दरवाज़े को खोलकर वाहर देख रहे हैं या कभी विस्तर पर ही शान्त पड़े हुए हैं, पर जग रहे हैं। यह क्रम लगभग चार वजे तक होता था। चार वजते ही वे हमेशा उठ जाते थे और श्री भगवान् का नाम-स्मरण, मनन या स्तुति करते रहते थे और अरुणोदय होने पर वे रात को वहीं सो जाने वाले लोगों को जगा देते थे। दिनभर शक्ति से अधिक श्रम करना और रात

को नींद भर न सोना यह क्रम कई वर्षों तक लगातार चलने के कारण अब यदि उनका स्वास्थ्य सदा के लिए खराब हो गया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। अपने को अत्यन्त श्रमित होने का हाल उन्होंने कभी किसी से अपने मुँह से नहीं बताया तो भी भावावस्था में उनका अपनी माता के साथ जो प्रेम-कलह होता था (पृ. १७१ देखिए) उससे यह बात स्पष्ट है।

उन्होंने स्वयं अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में जो जो बातें बता रखी थीं वे अब इधर एक एक करके होती चलीं; तथापि भक्ति-प्रेम से अन्धे हो जाने के कारण इन भक्त लोगों के ध्यान में वे बातें नहीं आईं। उन्होंने पहले से ही बता दिया था कि "जिस समय मैं किसी के भी हाथ का खाने लगूँगा, खाद्य पदार्थ का अग्र भाग दूसरे को देकर स्वयं उसका अवशिष्ट अंश ग्रहण करूँगा, रात के समय कलकत्ते में रहने लगूँगा, तब जानना कि शरीर छोड़ने का दिन समीप आ रहा है। इनमें से बहुतसी बातें हाल में होने लगी थीं—नरेन्द्र के अन्न का अवशिष्ट उन्होंने ग्रहण कर लिया था, बीच बीच में विलम्ब हो जाने पर वे कलकत्ते में बलराम बसु के घर में रात्रि के समय रहने लगे थे। माताजी बतलाती थीं कि—"मैं कहती थी—'नरेन्द्र के अन्न का अवशिष्ट मत ग्रहण कीजिये' तो वे तत्क्षण यही कहते—'नरेन्द्र शुद्ध सत्वगुणी है, उसके अन्न का अवशिष्ट ग्रहण करने में कोई दोष नहीं है।' इस तरह वे किसी प्रकार मुझे समझा देते थे तथापि उनके पूर्व-कथन को स्मरण करके मेरे मन में चिन्ता होने लगी थी।" वैसे ही श्रीरामकृष्ण ने कई बार कहा था—"बहुत से लोग जब मुझे ईश्वर के समान मानने लगेंगे तब शीघ्र ही यह शरीर अन्तर्धान हो जाएगा।"

ऐसा होते हुए भी, श्रीरामकृष्ण के सभी भक्तों के, एक ही समय, एक ही स्थान में, एकत्रित होने का सुयोग आज तक कभी नहीं आया था, इस कारण "इतने लोग उन्हें ईश्वर के समान मानते हैं" यह बात स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं पड़ी थी। इसीलिए बहुतों को मालूम होता था कि श्रीरामकृष्ण का रोग जल्दी आराम हो जाएगा। अस्तु —

लगभग इसी अवधि में एक दिन एक स्त्री दक्षिणेश्वर में उनके दर्शन के लिए आई। दोपहर के भोजन के बाद जब वह उनके हाथ धोने के लिए पानी दे रही थी, उस समय वे एकदम उससे बोले— "माई, मेरे गले में आज बहुत ही दर्द हो रहा है। तू इस रोग को आराम करने का मन्त्र जानती है न? उस मन्त्र को कहकर मेरे गले पर से हाथ फेर भला।" यह सुनकर वह स्त्री कुछ समय तक विस्मित और तटस्थ खड़ी रही, फिर थोड़ी देर में उसने श्रीरामकृष्ण के कहने के अनुसार मन्त्र कहते हुए उनके गले पर से हाथ फिराया। बाद में माताजी के पास जाकर वह इस घटना को बताकर कहने लगी — "माँ! यह वे कैसे जान गये कि मुझे यह मन्त्र मालूम है? बहुत पहले मैंने इस मन्त्र को अच्छा उपयोगी जानकर एक स्त्री से सीखा था; परन्तु ईश्वर की निष्काम भक्ति को ही जन्म का ध्येय जान लेने पर मैंने उस मन्त्र को छोड़ दिया था। और मेरे इस प्रकार के मन्त्र ग्रहण करने की बात मालूम होने से वे मेरा तिरस्कार करेंगे इस डर से मैंने यह बात उन्हें कभी नहीं बताई थी।" यह सुनकर माताजी हँसती हुई बोलीं— "अरी! वे सब बातें जान लेते हैं; और जब कोई मनुष्य अच्छे उद्देश से कोई काम करता है तो वे कभी उसका तिरस्कार नहीं करते। तुझको डरने का कोई कारण नहीं है। मैं

भी तो यहाँ आने के पहले वह मन्त्र ले चुकी थी और यहाँ आने पर यह वात उन्हें वताई तो वे वोले—'तूने मन्त्र लिया इसमें कोई हर्ज नहीं है, पर अव उस मन्त्र को अपने इष्ट देव के चरणों में चढ़ा दे तो ठीक हो जाएगा !" अस्तु—

श्रावण वीता। भादो भी लगभग आधा चला गया; तो भी रोग कम न होकर वढ़ता ही गया। उस समय क्या उपाय किया जाए यह किसी को नहीं सूझता था। पर शीघ्र ही एक ऐसी घटना हुई जिससे उन्हें इलाज के लिए कलकत्ता ले आने का निश्चय उनके भक्तों ने किया। वागवाजार में रहने वाले एक भक्त ने नरेन्द्र, 'एम्' आदि मण्डली को अपने यहाँ भोजन के लिए वुलाया था और श्रीरामकृष्ण से भी विनती करने के लिए एक मनुष्य को भेजा था; परन्तु उसने लौटकर यह संदेशा वताया कि "श्रीरामकृष्ण के गले में फोड़ा हो जाने और उसमें से आज रक्त गिरने के कारण वे नहीं आ सकते हैं।" इसे सुनकर उन लोगों को वड़ी चिन्ता हुई और उन्होंने शीघ्र ही आपस में सलाह करके निश्चय किया कि अव विलम्व करना ठीक नहीं है; एक घर किराये से लेकर वहीं श्रीरामकृष्ण को ले जाकर ठहराना चाहिए और अच्छे अच्छे डाक्टरों से उनके रोग की चिकित्सा करानी चाहिए। भोजन करते समय नरेन्द्र के चेहरे को उदास देखकर किसी ने उसका कारण पूछा तो वह खिन्न मन से वोले—"मैंने खास इसी कारण से वैद्यक ग्रन्थ पढ़े और वहुत से डाक्टरों से पूछा; पर यही मालूम पड़ता है कि इस प्रकार का कण्ठरोग आगे चलकर 'कैन्सर' (Cancer) हो जाता है। आज रक्त गिरने की वात सुनकर मुझे निश्चय हो गया कि यह

वही रोग है। इस कुरोग के लिए कोई औषधि अभी तक नहीं निकली है।"

दूसरे ही दिन सवेरे, रामचन्द्र दत्त आदि लोग दक्षिणेश्वर गये। चिकित्सा के लिए उनको कलकत्ता ले चलने की इच्छा उन्होंने श्रीरामकृष्ण से प्रकट की और उनके विनय को सुनकर उन्होंने भी अपनी सम्मति दे दी। शीघ्र ही बागबाजार में एक छोटासा घर किराये से लेकर वे लोग उन्हें वहाँ ले आये। पर श्रीरामकृष्ण गंगा के किनारे, दक्षिणेश्वर में चारों ओर खुली हवादार जगह में रहने के आदी थे, इसलिए उन्होंने यहाँ आते ही उस छोटे से घर में रहने के लिए इन्कार कर दिया। वे उसी समय वहाँ से निकलकर पास ही में बलराम बसु के घर पर आ गए। श्रीरामकृष्ण को आये देखकर बलराम को बड़ा आनन्द हुआ और दूसरा अच्छा घर मिलते तक वहीं रहने के लिए उन्होंने श्रीरामकृष्ण से विनती की। भक्त लोग तुरन्त ही दूसरा घर ढूँढने लगे पर तब तक खाली बैठना ठीक न समझकर उन लोगों ने उसी दिन बलराम के घर में ही कलकत्ते के प्रसिद्ध वैद्य गंगाप्रसाद, गोपीमोहन, द्वारकानाथ, नवगोपाल आदि को श्रीरामकृष्ण को दिखाने के लिए बुलवा लिया! उन लोगों ने बहुत समय तक परीक्षा करके निश्चय किया कि यह रोग Cancer या 'रोहिणी' है। वैद्यों ने कोई भी आशा नहीं दी और अधिक मात्रा में औषधि लेना श्रीरामकृष्ण को सहन नहीं होता था; इस कारण, किसी होमियोपॅथिक डाक्टर की दवा शुरू करने का निश्चय करके नये घर में जाने के बाद डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार बुलाये गये। एक हफ्ते के बाद श्यामपुकुर मोहल्ले में गोकुलचन्द्र भट्टाचार्य का घर

लेकर वहीं श्रीरामकृष्ण को लाया गया। इधर, दक्षिणेश्वर के परमहंस के औषधि लेने के लिए कलकत्ता आने का समाचार बात की बात में सारे शहर में फैल गया और उनके दर्शन के लिए बलराम के घर में झुण्ड के झुण्ड लोग आने लगे! बलराम का घर एक उत्सव-क्षेत्र ही बन गया! डाक्टरों तथा भक्तों के कहने की ओर बिलकुल दुर्लक्ष्य करते हुए वे अपना सारा समय उन आने वाले लोगों को उपदेश देते हुए बोलने में बिताने लगे। ऐसा मालूम होता था कि मानो जिन्हें दक्षिणेश्वर जाने का सुभीता नहीं है, उनके लिए श्रीरामकृष्ण स्वयं ही उनके दरवाजे पर पहुँच गये हैं! सुबह उठने के समय से दोपहर में भोजन के समय तक और फिर एक दो घंटे विश्राम करने के बाद रात्रि में भोजन करने और सोने के समय तक लगातार दर्शकों का तांता लगा रहता था! हम इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि उस सप्ताह में उन्होंने कितने लोगों को उपदेश देकर सन्मार्ग में लगाया होगा और कितनों को शान्तिसुख और आनन्द प्राप्त कराया होगा। एक सप्ताह के बाद श्रीरामकृष्ण नये घर में रहने के लिए गये।

---

२२ — श्रीरामकृष्ण का श्यामपुकुर में निवास

"शरीर धारण करने पर उसके साथ कष्ट, रोग, दुःख लगे ही हुए हैं —।"

—श्रीरामकृष्ण

नये घर में आते ही डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार ने श्रीरामकृष्ण की पूरी तरह से परीक्षा करके औषधि देना शुरू किया। मथुरबाबू के जीवित रहते समय उनके यहाँ औषधि आदि देने के लिए महेन्द्र-लाल कई बार दक्षिणेश्वर गये थे और उन्होंने उस समय श्रीरामकृष्ण को देखा भी था। परन्तु इस बात को आज बहुत दिन हो गए और शायद उन्हें उस समय का स्मरण भी न हो यह सोचकर किसको औषधि देना है आदि कुछ भी बिना बताए ही वे बुलाए गए थे। परन्तु श्रीरामकृष्ण को देखते ही वे उन्हें पहचान गये और अच्छी बारीकी से परीक्षा करके औषधि देकर उनके साथ बहुत समय तक बड़े आनन्द से धर्मसम्बन्धी बातें करते रहे। तत्पश्चात् उनसे बिदा लेकर कह गए कि दूसरे दिन सबेरे दिन भर का वृत्तान्त उन्हें विस्तृत रूप से बता दिया जाए। उस दिन की विजिट फीस भी उन्होंने ले ली। पर जब उन्हें दूसरे दिन मालूम हुआ कि श्रीरामकृष्ण को उनके भक्त लोग ही यहाँ लाये हैं और उनका सारा खर्च वे ही चला रहे हैं, तब उनकी गुरुभक्ति से बड़े प्रसन्न होकर फीस लेने से उन्होंने इन्कार कर दिया और बोले — "मैं पैसा बिलकुल न लेकर आप लोगों के इस सत्कार्य में थोड़ी बहुत सहायता करूँगा, मुझको भी आप लोग अपने में से ही एक समझिये।"

इस प्रकार औषधि की व्यवस्था हुई, पर श्रीरामकृष्ण की शुश्रूषा के लिए उनके पास किसी के सदैव हाज़िर रहने की ज़रूरत थी। वैसे ही उनके पथ्य की चीज़ें तैयार करने के लिए भी किसी न किसी का वहाँ रहना ज़रूरी था। इसलिए भक्तों ने दक्षिणेश्वर से माताजी को वहाँ लाने का और अपने में से किसी न किसी के बारी बारी से सदैव श्रीरामकृष्ण के पास रहने का निश्चय किया। इन लोगों को इस बात की चिन्ता थी कि माताजी का स्वभाव लज्जाशील होने के कारण वे यहाँ आना कहाँ तक पसन्द करेंगी। इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण से पूछने पर वे बोले —"उसका यहाँ आकर रहना मुश्किल ही दिखता है, पर तो भी उससे पूछ देखो, उसकी इच्छा हो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" माताजी से पूछते ही वे प्रसंग को समझकर अपनी सभी अड़चनों को एक ओर रखकर वहाँ आने के लिए सहमत हो गईं और शीघ्र ही वे श्यामपुकुर के घर में चली आईं और श्रीरामकृष्ण के पथ्य आदि की व्यवस्था करने लगीं।

माताजी के वहाँ आने अथवा न आने के भी कई कारण थे। उनका स्वभाव इतना लज्जाशील था कि इतने दिनों तक वे दक्षिणेश्वर में नौबतखाने में रहकर श्रीरामकृष्ण की सेवा में नित्य मग्न रहती थीं, पर तो भी श्रीरामकृष्ण ने स्वयं अपने आप ही जिन दो चार बाल भक्तों से उनका परिचय करा दिया था उनको छोड़कर किसी दूसरे भक्त को उनके चरणों का अभी तक दर्शन नहीं हुआ था और न उनकी बोली ही सुनने को मिली थी। वहाँ रहते समय वे नित्य तीन बजे सवेरे उठतीं, प्रातर्विधि निपटाकर गंगास्नान कर लेतीं और जो घर में जाकर बैठ जातीं तो सारे दिन भर बाहर ही नहीं निकलतीं।

वे सारे दिन भर जप, ध्यान, पूजा, तथा श्रीरामकृष्ण और उनकी भक्त-मण्डली के लिए रसोई बनाने में ही मग्न रहतीं। वही हाल यहाँ भी रहा। यहाँ तो दक्षिणेश्वर की अपेक्षा जगह भी कम और संकुचित थी। तो भी वे अपना सब काम बिना आडम्बर के इतनी शान्त-रीति से निपटा लेतीं कि वहाँ कोई श्रीरामकृष्ण के पथ्य आदि की व्यवस्था करने के लिए रहती हैं यह पता भी किसी को नहीं लगता था। वहाँ स्नान के लिए भी अलग स्थान न होने के कारण वे सवेरे तीन बजने के पूर्व ही उठकर सब प्रातर्विधि निपटा लेतीं और कब स्नान करके अपने कमरे में चली जातीं सो कोई भी न जान पाता! सारे दिन भर उसी कमरे में रहकर ठीक समय पर वे श्रीरामकृष्ण के खाने पीने के पदार्थों को तैयार करतीं और किसी के द्वारा सन्देशा भेज देतीं। तब सब लोग बाहर निकल जाते और वे स्वयं आतीं और श्रीरामकृष्ण को भोजन करातीं; जब बहुत भीड़ होती तब भक्त लोगों में से कोई एक, वहाँ से थाली लगवाकर ले आता। संध्या समय भी ऐसा ही होता था। रात को लगभग ग्यारह बजे वे सोतीं और पुनः सवेरे ढाई या तीन बजे उठकर अपने काम में लग जातीं। उनका यही नित्यक्रम श्रीरामकृष्ण के वहाँ रहते तक तीन मास तक जारी रहा और इन तीनों महीनों में भी वे और किसी को दिखाई नहीं दीं।

श्रीरामकृष्ण का स्वास्थ्य जब अधिकाधिक बिगड़ने लगा तब उनकी शुश्रूषा के लिए उनके पास सदैव किसी न किसी का रहना बहुत आवश्यक हो गया। नरेन्द्र, शशी, काली आदि लोग वहाँ सदा रहते ही थे, पर उनके सिवाय और भी अधिक लोगों की आवश्य-

कता थी। परन्तु डाक्टर ने जब से उस रोग को संसर्गजन्य बता दिया तब से लोग सदैव उनके पास रहने में कुछ डरने लगे। एक दिन डाक्टर साहब आकर घाव धोकर चले गये। घाव में का रक्त, पीब, पानी आदि गंदे पदार्थ एक ग्लास में वैसे ही रखे हुए थे। सब लोग बैठे ही थे, कि इतने में नरेन्द्र उठा और उस ग्लास में के सब पानी को उन लोगों के सामने ही पी गया! नरेन्द्र की इस विचित्र कृति को देखकर लोग चकित हो गये, उन लोगों का डर न जाने कहाँ भाग गया, और तब से श्रीरामकृष्ण की सेवा में किसी ने भी पीछे पैर नहीं हटाया और कितनों ने तो सद्गुरु की सेवा के लिए अपना सभी स्वार्थ अलग रख देने का संकल्प ही कर लिया। दिन के समय श्रीरामकृष्ण के पास बहुत से लोग बैठे रहते थे, इस लिए नरेन्द्र, काली आदि पहले तो रात को ही आते थे; इसमें उनके घर के लोगों को विशेष आपत्ति नहीं रहती थी; पर जब आगे चलकर कुछ दिनों के बाद श्रीरामकृष्ण को काशीपुर के बगीचे में ले गये और ये लोग उनकी सेवा करने के लिए रात दिन उनके साथ रहने लगे और अपने कालेज के अध्ययन की ओर भी दुर्लक्ष्य करने लगे, तब उनके घर के लोगों को चिन्ता होने लगी। यह सेवा-कार्य छोड़कर पूर्ववत् विद्याभ्यास की ओर लक्ष्य देने के लिए वे लोग उनको उपदेश देने लगे, परन्तु उनका तो सद्गुरु की सेवा में स्वयं अपने को भी बलिदान कर देने का दृढ़ निश्चय हो चुका था; इस कारण उन्होंने उन सब के कहने की कोई परवाह न की और श्रीराम-कृष्ण की सेवा श्रद्धापूर्वक करने का काम जारी रखा।

यहाँ तक सब बातों का ठीक प्रबन्ध हो गया, पर यह सब

खर्च कैसे चलाया जाए? भक्त लोगों को यही चिन्ता होने लगी! रोग असाध्य नहीं था; तथापि उनके आराम होने में बहुत दिन लगने की सम्भावना थी। जो भक्त श्रीरामकृष्ण को कलकत्ता लिवा लाये थे उनमें से कोई भी धनवान नहीं था। अतः सभों की सहायता बिना यह व्यय पूरा होने योग्य न था। मनुष्य चाहे कितना भी भक्तिसम्पन्न क्यों न हो, पर जहाँ पैसे का प्रश्न आ पड़ता है, वहाँ उसकी भक्ति सदा एक समान रह सकेगी यह कैसे कह सकते हैं? श्रीरामकृष्ण के दिव्य सहवास से जिन्हें शान्तिलाभ हो गया था ऐसे रामचन्द्र दत्त, महेन्द्रनाथ, गिरीशचन्द्र, बलराम, सुरेश इत्यादि भक्तों की बात अलग थी। उनका भक्तिभाव तो इतना प्रबल था कि सब प्रकार के प्रसंगों के लिए पर्याप्त होकर और भी शेष रहने योग्य था। परन्तु दर्द के बढ़ने के साथ ही यदि श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश कम पड़ता जाए, तो केवल उसी को देखकर आकृष्ट होने वाले अन्य लोगों का विश्वास और सेवा का उत्साह सदा कैसे कायम रह सकता है? यही चिन्ता भक्त लोगों को होने लगी। पर जैसे जैसे दिन बीतने लगे, वैसे वैसे श्रीरामकृष्ण का आध्यात्मिक शक्तिविकास जब उन्हें उलटा बढ़ता ही दिखाई दिया, तब उनकी सारी चिन्ता न जाने कहाँ भाग गई और उनके अन्तःकरण में नया उत्साह और नया बल उत्पन्न हो गया! उन्हें ऐसा मालूम पड़ने लगा कि हम कैसे कह सकते हैं कि आज तक के श्रीरामकृष्ण के अन्य सभी कार्यों के समान उनकी यह बीमारी भी लोगों के कल्याण के लिए ही नहीं है? कैसे कहें कि किसी विशेष कारण से ही यह पीड़ा उन्होंने अपने ऊपर नहीं खींच ली होगी?

शायद अपने सब भक्त लोगों को अपनी सेवा का अवसर देकर, उन्हें कृतार्थ करने के लिए ही वे इस समय रोगी बन गये हों। शायद ऐसा भी हो कि दक्षिणेश्वर तक भी आने का जिन्हें सुभीता न हो उनके लिए इस बीमारी के बहाने से दयामय भगवान् उनके दरवाजे पर ही आ गये हों! इस प्रकार के विचारों से भक्तों के अन्तःकरण भक्तिभाव से भर जाते थे और वे कहते थे—"श्रीरामकृष्ण अपनी सभी व्यवस्था आप ही कर लेंगे, हमें उसकी चिन्ता क्यों करनी चाहिए? जिन्होंने हमें सेवा का अधिकार देकर धन्य बनाया, वे ही हमें उस अधिकार के कार्य को ठीक ठीक पालन करने का सामर्थ्य भी अवश्य देंगे।" कोई कोई कहने लगे—"जब तक हमारे घर मौजूद हैं, तब तक क्या चिन्ता है? आवश्यकता पड़ने पर अपने घर बेचकर पैसे का प्रबन्ध करेंगे!" कोई बोले—"अपने लड़के-लड़की के विवाह के लिए या बीमारी के लिए हम लोग पैसे का प्रबन्ध किस तरह करते हैं? वैसे ही अब भी करेंगे! घर में जब तक दो चार चीज़ें हैं तब तक चिन्ता की कौनसी बात है?" इस उत्साह से प्रेरित होकर कोई कोई भक्तों ने तो अपनी गृहस्थी के नित्य खर्च को कम करके उस रकम को श्रीरामकृष्ण की सेवा में लगाना शुरू कर दिया। श्रीरामकृष्ण के लिए जो घर लिया गया था उसका सब किराया सुरेन्द्र अपने पास से देने लगे और बलराम, राम, महेन्द्र, गिरीशचन्द्र आदि भक्त मिलकर श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में सभी खर्च चलाने लगे।

श्यामपुकुर में श्रीरामकृष्ण कुल मिलाकर ३–३॥ मास (सितम्बर १८८५ से दिसम्बर १८८५ तक) रहे। डाक्टर सरकार

प्रतिदिन आते थे और उनके स्वास्थ्य की परीक्षा करके औषधि देते थे। श्रीरामकृष्ण के साथ वार्तालाप करते हुए उन्हें समय का भी ध्यान नहीं रहता था। कई वार तो उनके चार चार पाँच पाँच घण्टे वहीं पर वातचीत करने में निकल जाते थे और अन्त में जव उठना ही पड़ता था तो वड़े कष्ट के साथ वे उनसे विदा माँगते थे।

डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार एक अच्छे सद्गृहस्थ थे। पाश्चात्य विद्या से विभूषित रहते हुए भी उन्हें हिन्दू धर्म का अभिमान था। उनका स्वभाव वड़ा सरल था। वे वड़े निर्भीक और परोपकारी सज्जन थे। श्रीरामकृष्ण की चिकित्सा करने के लिए वे जव से आने लगे थे तभी से उन्हें यह अनुभव होने लगा था कि मैं एक विलकुल ही भिन्न वातावरण में आ पहुँचा हूँ। श्रीरामकृष्ण तथा उनकी शिष्य मण्डली से उनका प्रतिदिन किसी न किसी विषय पर वाद विवाद हुआ करता था।

ता. १८-१०-१८८५

एक दिन ज्ञानी मनुष्य के लक्षणों के सम्वन्ध में चर्चा हो रही थी।

श्रीरामकृष्ण—पूर्ण ज्ञान हो जाने का लक्षण है—विचार (वाद) का वन्द होना।

डाक्टर सरकार—पर ऐसा पूर्ण ज्ञानी मिलता कहाँ है? आपने भी तो अव तक मौनव्रत कहाँ धारण किया है? तव आप अपना वोलना अभी तक वन्द क्यों नहीं कर देते?

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)—पानी स्थिर रहने पर भी पानी ही रहता है और हिलता है तो भी पानी ही रहता है! तरंगों के उठने पर भी तो पानी ही वना रहता है! और भी एक वात है। सर्व भूतों में नारायण हैं। यह वात सत्य है, पर हाथी को यदि नारा-

यण मान लें और उसके मार्ग से दूर हटने की इच्छा न भी हो, तो महावत भी तो नारायण ही है ! फिर उसकी बात क्यों नहीं माननी चाहिए ? ईश्वर ही शुद्ध मन और शुद्ध बुद्धि के रूप में अपने अन्तः-करण में निवास करता है, तब उसकी बात क्यों न मानें ? मेरा तो यही भाव है कि मैं यन्त्र हूँ और चलाने वाला वह है; मैं घर हूँ और भीतर रहने वाला वह है; वह जैसा कराए वैसा करना चाहिए और वह जैसा चलाए वैसा चलना चाहिए !

डा. सरकार—तब फिर महाराज ! आप बारम्बार क्यों कहा करते हैं कि इस रोग को तो अच्छा कर दे।

श्रीरामकृष्ण—जब तक यह 'मैं-' पन का ('अहं-' पन का) घड़ा है तब तक यही हाल रहेगा। किसी महासागर में कोई घट (घड़ा) हो, तो उसके बाहर भीतर पानी ही रहता है, पर उस घड़े के फूटे बिना उसका पानी उस महासागर के साथ एक-रूप कैसे हो सकता है ?

डा. सरकार—तो फिर आप जिसे 'अहं-' पन कहते हैं उसे भी कौन बनाये रखे है ?

श्रीरामकृष्ण—परमेश्वर ही ! पर उसने इसे क्यों रखा है यह कौन बताए ? उसकी इच्छा ही ऐसी है। उसकी ऐसी इच्छा क्यों है यह हम कैसे जानें ? डाक्टर ! आपको यदि साक्षात्कार हो जाय तो इन सब बातों का आपको निश्चय हो जाएगा। उसके दर्शन होने से सभी संशय विलीन हो जाते हैं।

और भी बहुत समय तक भिन्न भिन्न विषयों पर वाद होने के पश्चात् डाक्टर वापस जाने के लिए उठे। जाते समय उन्होंने उस

दिन के लिए औषधि की दो गोलियाँ दे दीं। देते समय वे बोले– "हूँ, ये दो गोलियाँ दी हैं भला, एक पुरुष और दूसरी प्रकृति! (हास्य)

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)—हाँ! वे दोनों यथार्थ में एक साथ रहते हैं!

श्रीरामकृष्ण ने डाक्टर को प्रसाद की तरह थोडीसी मिठाई दी।

डा. सरकार (खाते हुए)—आज बड़े मजे में समय कटा भाई! आज समय बड़े आनन्द में बीता।

श्रीरामकृष्ण—तो फिर एक बार 'Thank you' कह दीजिये न!

डा. सरकार—कहता हूँ, पर वह है मिठाई के सम्बन्ध में। वह आपके उपदेश के बारे में नहीं है भला! उपदेश के लिए इस मुँह से 'Thank you' कैसे कहूँ?

श्रीरामकृष्ण—आपको और क्या कहूँ? ईश्वर में मन लगाइए और उसका यथाशक्ति ध्यान करते जाइए।

२२-१०-१८८५

आज श्रीरामकृष्ण के साथ डाक्टर साहब बड़ी देर तक बातें करते हुए बैठे रहे। यह देखकर गिरीश बोले—"डाक्टर साहब! आपको यहाँ आए चार घण्टे हो गए न? मालूम होता है आपको आज और कहीं भी 'विजिट' के लिए नहीं जाना है।"

डाक्टर सरकार (एकदम स्मरण आने पर)—क्या कहते हैं? अरे! मैंने यहाँ आना शुरू किया तब से कहाँ गई डाक्टरी और कहाँ गए रोगी! आपके इन परमहंस की संगति में आजकल हम भी परमहंस होते जा रहे हैं। "करहिं सब तेहि आपु समाना!" (सभी हँसते हैं।)

... श्रीरामकृष्ण — देखिए, डाक्टर साहब ! कर्मनाशा नाम की एक नदी है, उसमें जो डुबकी लगाता है उसके सब कर्मों का नाश हो जाता है और पुन: उससे कर्म होते ही नहीं हैं ! (सभी हँसते हैं ।)

डा. सरकार (गिरीश आदि से) — यह देखिए। आप लोग सभी मुझको अपने में से ही एक जानिए । केवल इनकी बीमारी में ही नहीं वरन् सदा के लिए—समझ गए न ? (श्रीरामकृष्ण से) इस बीमारी में आपको किसी से बोलना नहीं चाहिए। (हँसकर) सिर्फ मेरे साथ बोलने में कोई हर्ज नहीं है । (हँसी)

श्रीरामकृष्ण (छोटे बालक के समान) — डाक्टर ! इस रोग के कारण मुझसे ईश्वर का नामगुण गाते नहीं बनता । मुझको जल्दी आराम कर दीजिए न ?

डा. सरकार — आपको नामगुण से क्या मतलब है ? ध्यान करना ही बस है !

श्रीरामकृष्ण — वाह जी ! मनुष्य को कभी इस तरह क्या एकांगी होना चाहिए ? मैं कभी पूजा करता हूँ, कभी जप करता हूँ, कभी ध्यान, कभी गुणवर्णन अथवा कभी नाम-स्मरण करते हुए आनन्द से नाचता हूँ ! एकांगी क्यों होना चाहिए ? .... तुम्हारा लड़का अमृत अवतार को नहीं मानता, पर उसमें भी क्या दोष है ? ईश्वर को निराकार जानकर विश्वास रखने से भी उसकी प्राप्ति होती है और उसको साकार जानकर उस पर विश्वास करने से भी उसकी प्राप्ति होती है । मुख्य बात यह है कि उसके किसी भी स्वरूप पर विश्वास तो करो और सम्पूर्ण रूप से उसकी शरण में जाओ । अरे ! मनुष्य की बुद्धि ही कितनी होती है ? गलती होना

तो निश्चित ही है; इसलिए चाहे जो मार्ग हो, कोई हर्ज नहीं है— व्याकुलता के साथ उसकी पुकार करना चाहिए कि बस् काम बन जाता है। ईश्वर तो अन्तर्यामी है, व्याकुलता की पुकार को अवश्य सुनेगा। व्याकुलता चाहिए, फिर चाहे जिस मार्ग से जाओ, उसकी प्राप्ति अवश्य ही होगी। शक्कर की टिकिया गोल बनाकर खाओ या चौकोनी बनाकर खाओ, दोनों आकार में शक्कर की टिकिया तो मीठी ही लगेगी।.....................तुम्हारा लड़का बड़ा अच्छा है।

डा. सरकार — वह आप ही का तो चेला है। फिर उसके बारे में पूछना ही क्या है?

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए) — कोई भी साला मेरा चेला नहीं है; मैं ही तो सब का चेला हूँ! सभी ईश्वर के बालक हैं, सभी उसके दास हैं। चन्दा मामा सभी का मामा है। (हँसी)

× × × ×

इसी तरह से डाक्टर और श्रीरामकृष्ण की गप्पें होती रहती थीं। उनके मन में श्रीरामकृष्ण के प्रति पहले से ही आदरभाव था और आगे तो उन्हें श्रीरामकृष्ण के सिवाय कुछ भी सूझता ही नहीं था। एक दिन 'एम्' श्रीरामकृष्ण के पास आए हुए थे, तब डाक्टर की बात चलने पर वे बोले कि मैं आज डाक्टर के यहाँ गया था। उनका चेहरा कितना उतरा हुआ दिखाई दिया।

श्रीरामकृष्ण — क्यों भला? क्या हो गया है?

एम् — कल एक आदमी उनसे बोला — 'आप इतनी डाक्टरी की शेखी क्यों मारते हैं? आपकी विद्या की फजीहत करने के लिए ही परमहंस बीमार पड़े हैं।'

श्रीरामकृष्ण — अरे भाई! उनसे किसने ऐसा कह दिया?

एम् — महिमा चरण ने।

श्रीरामकृष्ण — वाह!

एम् — डाक्टर बोले —'रात को तीन बजे एकदम नींद खुल गई — और मन में सारे विचार परमहंस के ही आने लगे। सवेरे आठ बज गए तो भी परमहंस के ही विचार जारी रहे।'

श्रीरामकृष्ण (हँसते हँसते) — वह अंग्रेजी पढ़ा हुआ आदमी है। उससे 'तू रोज़ मेरा चिन्तन किया कर' कहने की गुंजाइश ही नहीं है! अच्छा हुआ कि वह अपने आप ही करने लगा। अच्छा, हाँ! और क्या क्या बातें हुई?

एम् — मैंने पूछा —'आज की औषधी की क्या व्यवस्था है?' वे खीजकर बोले —'व्यवस्था क्या लिए बैठे हैं, अपने सिर की व्यवस्था करूँ? आज तो मुझको पुनः उनसे जाकर मिलना चाहिए। (श्रीरामकृष्ण हँसते हैं)। वे और भी बोले —'रोज़ मेरा कितना नुकसान होता है, इसकी आपको कल्पना भी है? रोज़ दो तीन रोगियों के यहाँ जाना बाकी ही रह जाता है।'

× × × ×

ता० २३–१०–१८८५

संध्या हो गई। श्रीरामकृष्ण बिस्तर पर पड़े हुए हैं और पड़े पड़े ही श्री जगदम्बा का नाम-स्मरण कर रहे हैं। आसपास भक्त-मण्डली बैठी हुई है। कुछ समय बाद श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए डाक्टर सरकार आए।

डा. सरकार — कल रात को तीन बजे एकदम जाग गया और

मन में आपके ही विचार आने लगे। थोड़ी थोड़ी वर्षा हो रही थी — सोचने लगा कि कमरे के दरवाज़े किसी ने लगा लिए होंगे या खुले ही होंगे।

डाक्टर के प्रेमी स्वभाव और अपने सम्बन्ध में इतनी चिन्ता को देखकर श्रीरामकृष्ण प्रसन्न होकर कहते हैं,—"आप क्या कहते हैं!"...........ऐसा है कि देह रहते तक प्रयत्न करना चाहिए। ....पर मुझको प्रत्यक्ष दिखता है कि देह और आत्मा दोनों भिन्न भिन्न चीज़ें हैं। कामिनी-कांचन की आसक्ति यदि पूर्ण रूप से नष्ट हो जाय तो देह अलग है और आत्मा अलग है ऐसा स्पष्ट रूप से दिखने लगता है। नारियल का पानी सूख जाने पर जैसे उसके भीतर खोपरा (गरी) नरेटी से खुलकर अलग हो जाता है और उस समय खोपरा और नरेटी दोनों अलग अलग दिखने लगते हैं, या जैसे म्यान के भीतर रखी हुई तलवार के विषय में कह सकते हैं— म्यान और तलवार दोनों भिन्न चीज़ें हैं, वैसे ही देह और आत्मा के बारे में जानो। इसी कारण इस बीमारी की बात मैं माता के पास नहीं कह सकता।

× × × ×

कुछ समय के बाद काम-कांचन-त्याग का विषय निकला।

श्रीरामकृष्ण (डाक्टर से) — काम-कांचन-त्याग आप जैसे लोगों के लिए नहीं है। आपको मन से उसका त्याग करना चाहिए। जो संन्यासी हैं उन्हीं के लिए काम-कांचन का प्रत्यक्ष रूप से भी त्याग आवश्यक है। आप लोगों के लिए — गृहस्थ मनुष्यों के लिए —

स्त्री का पूर्ण रूप से त्याग विहित नहीं है, पर एक दो सन्तान हो जाने के बाद भाई-बहन के समान रहना चाहिए।

× × × ×

ता. २७-१०-१८८५

नरेन्द्र आया और श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके उनके पास बैठ गया। उसके पिता के स्वर्गवास होने के समय से उसके कुटुम्ब के लिए बड़े बुरे दिन आ गए थे। घर का खर्च जारी था पर सम्पत्ति कुछ नहीं थी। घर के लोगों के अन्नवस्त्र की कोई व्यवस्था करके स्वयं मुक्त हो जाने के लिए नरेन्द्र कितना प्रयत्न कर रहा था।

श्रीरामकृष्ण को ये सब बातें मालूम थीं।

नरेन्द्र की ओर अत्यन्त प्रेमपूर्ण नेत्रों से देखते हुए श्रीरामकृष्ण बोले—"एक दिन केशवचन्द्र सेन से बोलते बोलते मैंने उनसे यदृच्छा लाभ के बारे में बातें कीं। बड़े आदमियों के घर के लड़के को क्या कभी अन्न की चिन्ता रहती है? ('एम्' की ओर रुख करके) नरेन्द्र की इतनी उच्च अवस्था है, पर फिर भी इस चिन्ता से उसका पीछा क्यों नहीं छुटता? ईश्वर के चरणों में ही सारा लक्ष्य लगाया जाए तो क्या वही अन्नजल की चिन्ता नहीं करेगा?"

एम्—हाँ महाराज! आप जैसा कहते हैं वैसा धीरे धीरे होगा।

श्रीरामकृष्ण—पर तीव्र वैराग्य हो जाने पर ये सब विचार नहीं रहते। तब इतना धीरज नहीं रहता कि 'घर का ठीक प्रबन्ध करने के पश्चात् आराम से साधना करेंगे।' केशव सेन एक बार बोले—'महाराज! यदि कोई घरद्वार की ठीक ठीक व्यवस्था करके

शान्त चित्त से साधना करना चाहे तो क्या यह असम्भव है?' मैंने उससे कहा—'अरे भाई! तीव्र वैराग्य प्राप्त होने पर तो संसार एक खंदक के समान प्रतीत होता है और इष्ट-मित्र सांप के समान मालूम पड़ते हैं। उस समय पैसा इकट्ठा करने का और घर के प्रबन्ध करने का विचार ही मन में नहीं उठता। किसी स्त्री को एक बार अत्यन्त शोकजनक समाचार मिला। अब रोना है यह सोचकर उसने अपनी नाक की नथनी निकालकर पल्ले में सावधानी से बांध ली, और तब 'अरे राम रे' कहती हुई जमीन पर गिर गई—पर वह भी ऐसी सावधानी के साथ कि पल्ले की नथ में धक्का लगकर वह चपटी होने या टूटने न पावे! सच्चे शोक में ऐसी सावधानी रहना कहाँ सम्भव है।'

नरेन्द्र चुपचाप बैठा था। ये सारी बातें उसके मन में चुभने लगीं। श्रीरामकृष्ण उसको कुछ और भी बताने वाले थे कि इतने में कोई दूसरा मनुष्य आ गया, और फिर उनका बोलना वहीं पर बन्द हो गया।

× × × ×

श्यामपुकुर में कुछ दिनों तक श्रीरामकृष्ण की तबीयत ठीक थी, पर बाद में अधिक बिगड़ने लगी। तो भी, डाक्टर के बारम्बार आग्रहपूर्वक सलाह देने पर भी यदि कोई उनके पास आ जाता था, तो वे उसके साथ बातचीत किए बिना कभी नहीं रहते थे! लोगों का आना-जाना लगातार जारी रहता था; और कई दिन तो सचमुच उन्हें भोजन के लिए भी फुरसत नहीं मिलती थी। उनका शारीरिक

स्वास्थ्य तो गिरता गया, पर उनका लोगों को उपदेश देने का उत्साह अधिकाधिक बढ़ता ही रहा।

× × × ×

इन तीन साढ़े तीन महीनों की अवधि में और कोई विशेष घटना नहीं हुई। सिर्फ कार्तिक मास की अमावस्या के दिन (ता० ६ नवम्बर १८८५ को) एक अद्भुत बात हुई। उस दिन श्रीरामकृष्ण 'एम्' से बोले—"आज अमावस्या है, काली-पूजा का दिन है, आज माता की पूजा करनी चाहिए।" 'एम्' ने यह बात और दूसरे लोगों से बताई और उन लोगों ने बड़े उत्साह के साथ पूजा की सारी सामग्री इकट्ठी की।

आज संध्या समय श्रीरामकृष्ण कालीमाई की पूजा स्वयं करने वाले हैं; इसलिए सभी लोग बड़े उत्साहित थे और बड़े आनन्द के साथ संध्या होने की बाट जोह रहे थे। संध्या हो गई—सात बज गये। सारी पूजा-सामग्री ऊपर अटारी पर पहुँचाकर श्रीरामकृष्ण के पास रख दी गई। श्रीरामकृष्ण बिस्तर पर बैठे हुए थे। चारों ओर श्रीरामकृष्ण की पूजा देखने के लिए हर एक आदमी उत्सुक था। कुछ देर बाद श्रीरामकृष्ण ने सभी को कुछ समय तक ध्यान करने के लिए कहा। ध्यान हो चुका पर फिर भी पूजा का पता नहीं था। सभी लोग एक दूसरे के मुख की ओर ताक रहे हैं; इतने में ही गिरीश के मन में यह विचार आया—"क्या आज हम लोग सब के सब श्रीरामकृष्ण की जगदम्बा-ज्ञान से पूजा करें, ऐसा उनके मन में है?" यह विचार उसके मन में आते ही उसका मन भक्ति और उत्साह से पूर्ण हो गया और उस प्रेरणा के साथ वह एकदम उठकर खड़ा हो

गया और "जय रामकृष्ण! जय रामकृष्ण!" इस प्रकार जयघोष करते हुए देवी के लिए तैयार किए हुए सुन्दर पुष्पहार को उसने श्रीरामकृष्ण के चरणों में अर्पण कर दिया! तुरन्त ही उसी के पीछे 'एम्' ने भी चन्दन पुष्प चढ़ाया। तदनन्तर राखाल, राम आदि भक्तों ने भी जयघोष के साथ उनके चरणों में पुष्पांजलि समर्पण की! इतने में निरंजन ने पैरों में फूल चढ़ाकर "जय ब्रह्ममयी! जय ब्रह्ममयी" घोष करते हुए उनके सामने साष्टांग प्रणाम किया। सभी लोग "माता की जय! माँ की जय, काली माई की जय" के नारे लगाने लगे।

इस प्रकार जयघोष होते समय श्रीरामकृष्ण को समाधि लग गई और उनका एकाएक अद्भुत रूपान्तर हो गया! मुखमण्डल पर एक अपूर्व दिव्य तेज झलकने लगा और उनके हस्त की मुद्रा, भक्तों को अभय दान देते समय जैसी चाहिए वैसी हो गई! उनके उस ज्योतिर्मय वदनमण्डल पर रोग का किंचित् भी चिह्न नहीं दिखाई देता था। ऐसा मालूम पड़ने लगा कि प्रत्यक्ष जगदम्बा ही श्रीरामकृष्ण के शरीर में प्रकट होकर अपने भक्तों को अभय दान दे रही हैं और इस भावना से भक्त-मण्डली का हृदय भक्ति और आनन्द से भर आया और सभी लोग हाथ जोड़कर श्री जगदम्बा की स्तुति के पद गाने लगे। बहुत देर के बाद श्रीरामकृष्ण को किंचित् देहभान हुआ। तब उन भक्तों ने नैवेद्य चढ़ाया। उन लोगों की प्रसन्नता के लिए श्रीरामकृष्ण ने नैवेद्य का थोड़ासा भाग स्वयं ग्रहण किया। कुछ समय के बाद वह महाप्रसाद सभी को बाँटा गया और सब लोग श्रीरामकृष्ण को प्रणाम करके आज की अद्भुत घटना के सम्बन्ध में बातें करते हुए आनन्द मनाते हुए अपने अपने घर गये। अस्तु—

क्रमशः रोग बढ़ता ही गया। एक कौर अन्न भी पेट में जाना असम्भव हो गया। बोलने में भी कष्ट होने लगा। कोई भी दवा नहीं लगती थी। दवा से दो चार दिन लाभ होता दिखाई देता था परन्तु फिर पूर्ववत् हो जाता था। शरीर अधिकाधिक दुर्बल और कमज़ोर होता चला। चार क़दम भी चलने की शक्ति नहीं रही। केवल उठकर बैठने में ही घाव में मर्मान्त वेदना होती थी। सभी लोग अत्यन्त चिन्ता में डूब गये। क्या करें किसी को सूझता ही न था। अन्त में डाक्टरों की सलाह से पुनः एक बार घर बदल देने का निश्चय हुआ। श्रीरामकृष्ण के दर्शन के लिए लोगों का लगातार तांता बंधा रहता था, इस कारण उस घर का मालिक भी कुछ दिनों से कुड़कुड़ाने लगा था। क्या दूसरा घर देखा जाय? पर यदि वह घर श्रीरामकृष्ण को पसन्द न पड़े, तब पुनः पिछली बार के समान उन्हें कहीं कष्ट न हो और फिर वहाँ से उनको ऐसी भयानक अवस्था में दूसरी जगह कहाँ ले जायँ? ये ही विचार हो रहे थे कि अन्त में श्रीरामकृष्ण ने ही काशीपुर की ओर घर ढूँढ़ने के लिए कह दिया। भक्त-मण्डली ने उधर घर खोजना पुनः शुरू किया और उसी दिन एक अच्छा हवादार बंगला ८०) मासिक किराये पर ले लिया गया। उसी दिन श्रीरामकृष्ण नये घर में रहने के लिए चले भी गये। यह तारीख २१ दिसम्बर सन् १८८५ की बात है।

---

२३ — काशीपुर में अन्तिम दिन और महासमाधि



"जो राम, जो कृष्ण वही अब रामकृष्ण; तेरी वेदान्तिक दृष्टि से नहीं वरन् प्रत्यक्ष।"

(विवेकानन्द के प्रति)

"और दो सौ वर्ष के बाद वायव्य दिशा की ओर आना पड़ेगा।"

— श्रीरामकृष्ण

नये घर में जाने पर श्रीरामकृष्ण का स्वास्थ्य सुधरने लगा। गले का घाव बहुत कुछ आराम होकर, पेट में थोड़ा बहुत अन्न भी जाने लगा। उठकर बैठने से पहले के समान दर्द भी नहीं होता था। शरीर में दो चार कदम चलने की शक्ति भी आ गई थी। इससे सभी को आनन्द हुआ। परन्तु यह आनन्द बहुत दिनों तक नहीं टिका। रोग पुनः उलट पड़ा। घाव में पुनः बहुत दर्द होना शुरू हो गया। यह हाल देखकर भक्तों ने बहुबाजार के डाक्टर राजेन्द्र दत्त की औषधी शुरू की। तीन चार महीने तक उनकी औषधि देने पर भी कुछ लाभ न होते देखकर डा. नवीन पाल की दवा शुरू की गई। इसके अतिरिक्त बीच बीच में और दूसरे डाक्टर भी आते ही थे। डा. पाल की औषधि से लाभ न होते देखकर, श्रीरामकृष्ण की सम्मति लेकर कलकत्ता मेडिकल कालेज के प्रिन्सिपल डा. कोट्स को बुलाया गया। उन्होंने पूरी परीक्षा करके रोग को असाध्य बताया।

इतने डाक्टरों और वैद्यों की दवा हुई, परन्तु रोग के बारे में कोई भी एक मत निश्चित नहीं हुआ। कोई उसे कण्ठरोग, कोई गण्डमाला और कोई कैन्सर बताते थे। कभी कभी वह घाव मिट सा जाता था और उसके स्थान में एक बड़ा फोड़ा हो जाता था और उससे श्रीरामकृष्ण को बहुत पीड़ा होती थी। कभी कभी वह फोड़ा इतना बढ़ जाता था, कि उससे श्वासोच्छ्वास में भी कष्ट होने लगता था। उस फोडे के फूटते तक उन्हें अपने प्राण निकलने के समान पीड़ा होती थी! पेट में एक कौर भी अन्न नहीं जाता था। एक पात्र दूध में से आधा नीचे पेट में उतरता था और आधा निकल जाता था। कुछ दिनों में वह फोड़ा थोड़ा सा फूट जाता, और उसमें से पीव बहने लगता था और तब उन्हें कुछ समय तक थोड़ा आराम मालूम पड़ता था। पर किसी भी उपाय से रोग ज़रा भी पीछे नहीं हटता था। यह दारुण पीड़ा वे हास्ययुक्त चेहरे के साथ सहा करते थे। रोग कैसे आराम होगा इस बात की उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की और न वे कभी उदास होकर चुपचाप बैठे ही रहे। वे लोगों को उपदेश देने का अपना कार्य अव्याहत गति से चलाते रहे। यदि कोई डाक्टर की अधिक न बोलने की सलाह का उन्हें स्मरण करा देता था, तो वे हँसकर कहते थे, "देह जाने, दुःख जाने; मन! तुमि आनन्दे थाक!*" जब डाक्टर या कोई दूसरे लोग उनके रोग की चर्चा करते थे, तब उनका ध्यान क्षणभर के लिए उस रोग की ओर खिंच जाता था और उन्हें उसकी चिन्ता हुई सी जान पड़ती थी; पर यह अवस्था केवल क्षण मात्र ही

* देह जाने, दुःख जाने, मन! तुम आनन्द से रहो।

रहती; दूसरे ही क्षण वे सब कुछ भूल जाते और ईश्वरी वार्ता करने लगते।

श्रीरामकृष्ण की आयु के इन अन्तिम आठ साढ़े आठ महीनों का तारीख वार वृत्तान्त देना तो यहाँ सम्भव नहीं है और न आवश्यक ही, इसलिए उन दिनों के कुछ प्रसंगों का वर्णन यहाँ दिया जाता है; जिससे पाठकों को स्वयं श्रीरामकृष्ण के श्रीमुख के कुछ शब्द सुनने को मिलेंगे :—

ता. २३-१२-१८८५

श्रीरामकृष्ण ('एम्' से)— कितने दिनों में तू समझता है कि मेरा रोग आराम हो जाएगा?

एम्— रोग बहुत बढ़ गया है इसलिए मालूम होता है उसके आराम होने में भी बहुत दिन लगेंगे।

श्रीरामकृष्ण— फिर भी कितने दिन?

एम्— पाँच छः महीने तो चाहिए ही।

श्रीरामकृष्ण (अधीर होकर)— क्या? पाँच छः महीने लगेंगे?

एम्— हाँ, मालूम तो ऐसा ही पड़ता है, पर यह तो पूरे आराम होने की बात है।

श्रीरामकृष्ण (धीरज धरकर)— हाँ, ऐसा कुछ कहो। क्या कहा पाँच छः महीने? पर क्यों रे! यह सब ईश्वररूप दर्शन और भाव तथा समाधि होने पर भी फिर यह रोग कैसे आया?

एम्— आपको कष्ट तो बहुत हो रहा है पर इसमें भी कुछ उद्देश है।

श्रीरामकृष्ण— कौन सा?

एम्‌ — आपकी अवस्था में अब परिवर्तन हो रहा है। आपके मनका झुकाव अब निराकार की ओर हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण — हाँ, ऐसा मालूम तो पड़ता है — अब उपदेश भी बन्द होने लगा है — बोल ही नहीं सकता। सर्व जगत् राममय दिखने लगा है। एक आध बार मालूम पड़ता है कि अब बोलूँ तो किसके साथ बोलूँ?.................यही देखो न, मेरे लिए इस बंगले को तुम लोगों ने किराये पर लिया है, यह सुनकर देखो कितने लोग आने लगे हैं!

एम्‌ — और भी एक उद्देश दिखता है — लोक-परीक्षा, लोक-कल्याण; पाँच वर्ष की तपस्या से जो साधना-प्रेम, भक्ति आदि का काम नहीं हो सकता था सो यहाँ भक्तों को थोड़े ही दिनों में हो गया है —

श्रीरामकृष्ण — हाँ यह तो सच है। (निरंजन से) तुझको कैसा मालूम पड़ता है?

निरंजन — इतने दिनों तक तो केवल प्रेम मालूम होता था, पर अब तो वहाँ से दूसरी ओर जाने की गुंजाइश ही नहीं है!

यह सुनते सुनते श्रीरामकृष्ण को एकाएक समाधि लग गई। बहुत समय बाद समाधि उतरने पर वे बोले — "ऐसा देखा कि सर्व चराचर जगत् साकार की ओर से निराकार की ओर चला जा रहा है!....ऐसा मालूम होता है कि और भी बहुत सा बोलूँ पर बोलते नहीं बनता। ('एम्‌' से) यह निराकार की ओर झुकाव,— लय होने के लिए ही है न?

एम्‌ (चकित होकर) — हो शायद!

श्रीरामकृष्ण—'लोक-परीक्षा' कहा न तूने, वही ठीक दिखता है। इस बीमारी के कारण ही पता लग रहा है कि अन्तरंग भक्त कौन कौन हैं और बहिरंग भक्त कौन कौन हैं। घरगृहस्थी छोड़कर जो यहाँ सेवा-शुश्रूषा करने आते हैं वे अन्तरंग और जो केवल चेहरा दिखाकर 'कहिये महाराज! क्या हाल है?' कहकर लौट जाते हैं, वे बहिरंग भक्त हैं।

× × × ×

ता. २३-१२-१८८५

आज सवेरे श्रीरामकृष्ण ने प्रेम-रस की लूट मचा रखी थी! निरंजन से बोले—"तू मेरा बाप है, मुझको अपनी गोदी में बैठने दे!" कालीपद के वक्षःस्थल पर हाथ फेरकर बोले—"चैतन्य हो!" उसकी ठुड्डी पकड़कर उसको सुहराते हुए बोले—"जो मन के भीतर से ईश्वरभक्ति करते हैं, उनको यहाँ आना ही चाहिए!" एक भक्त के वक्षःस्थल को वे अपने चरण से स्पर्श करते हुए कुछ देर तक बैठे रहे तब वह आनन्द से विभोर होकर अश्रु बहाते बहाते श्रीचरणों को चापते हुए गद्गद कण्ठ से बोला—"भगवन्! दया-सागर! आपकी कैसी अपार कृपा है!" प्रेम की निरी लूट मची थी! कुछ देर में बोले—"जा, गोपाल को बुला ला।"

× × × ×

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में रहते समय एक दिन अपनी भक्त-मण्डली से बोले थे—"मैं जब जाऊँगा (देह छोड़ूँगा), तब मैं अपने प्रेम के पात्र को फोड़कर जाऊँगा। क्या अब वही समय आ गया? क्योंकि ऊपर वर्णित रीति से प्रेम की लूट इन दिनों में बीच बीच में

हुआ करती थी और आठ ही दिनों के बाद (जनवरी १८८६ में) वह अद्भुत घटना हुई कि जिसका विस्तृत वर्णन पीछे (पृष्ठ १३५–१३८) हो ही चुका है।

× × × ×

ता. ४-११-८८६

नरेन्द्र आकर बैठा। श्रीरामकृष्ण उसकी ओर बड़े प्रेम से देख रहे हैं और बीच बीच में हँस रहे हैं। कुछ देर में मणि से बोले— "आज नरेन्द्र अपने घर से रोता हुआ आया!" सभी चुपचाप बैठे हैं।

नरेन्द्र—कहता हूँ आज वहाँ चला जाऊँ।

श्रीरामकृष्ण—कहाँ?

नरेन्द्र—दक्षिणेश्वर। वहाँ रात को बेल के नीचे धुनी जलाकर बैठूँ।

श्रीरामकृष्ण—अँ हँ, वैसा मत कर! बारूद गोली के कारखाने वाले पहरेदार वहाँ धूनी जलाने नहीं देंगे। पंचवटी अच्छी जगह है। अनेक साधु महात्माओं ने वहाँ जपध्यान किया है। पर रात अंधेरी है और सर्दी भी बहुत है।

सब लोग स्तब्ध बैठे हैं, श्रीरामकृष्ण पुनः बोलने लगे।

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए)—क्या अब और आगे नहीं पढ़ेगा?

नरेन्द्र—आज तक जो भी पढ़ा वह भी सब भूल जाऊँ ऐसी कोई औषधि मुझे मिल जाय तो बड़ा अच्छा हो।

कालीपद श्रीरामकृष्ण के लिए कुछ अंगूर लाए थे। श्रीरामकृष्ण ने टोकनी में से कुछ अंगूर लेकर प्रथम नरेन्द्र को दिये और

शेष अपनी भक्त-मण्डली में बिखेर दिये। संध्याकाळ हो गया। नरेन्द्र और मणि एक किनारे अकेले ही बातचीत कर रहे हैं।

नरेन्द्र — गत शनिवार को यहाँ ध्यान कर रहा था। एकाएक हृदय में न जाने कैसा होने लगा।

मणि — कुण्डलिनी जागृत हुई होगी।

नरेन्द्र — होगी! इड़ा पिंगला स्पष्ट दिखने लगीं। हाजरा के पास जाकर कहा — ज़रा छाती पर हाथ रखकर तो देखिए। कल रविवार था। अटारी पर जाकर उन्हें (श्रीरामकृष्ण को) सब कुछ बता दिया और कहा — 'हर एक को कुछ मिला है अब मुझको भी तो कुछ दीजिए।'

मणि — तब वे क्या बोले?

नरेन्द्र — वे बोले — 'तू एक बार अपने घर की ठीक व्यवस्था करके आ, तब सब कुछ हो जाएगा। तुझको क्या चाहिए?' मैं बोला — 'मुझको ऐसा लगता है कि लगातार तीन चार दिन तक समाधि में मग्न बना रहूँ! यों ही खाने के लिए थोड़ी देर को समाधि उतर जाया करे।' इसे सुनकर वे बोले — 'तू तो बड़ा ही बुद्धिहीन है रे भाई। अरे! उस अवस्था से भी और कोई उच्च अवस्था है। तुझको तो वह गाना आता है — 'जो कुछ है सो तू ही है? जा, तू एक बार अपने घर की ठीक-ठीक व्यवस्था करके आ — समाधि-अवस्था से भी उच्च अवस्था तुझको मिलेगी।'

"तब आज सवेरे घर गया। सब लोग मुझको दोष देने लगे — 'ऐसा क्या मूर्ख के समान व्यर्थ इधर उधर भटकता है? परीक्षा (वकालत की) इतने समीप आ गई है। अध्ययन आदि तो दूर

रहा, केवल इधर उधर भटक रहे हो।' कुछ समय के बाद मैं अपने पढ़ने के कमरे में गया। पुस्तक हाथ में ली, पढ़ने में डर लगने लगा, छाती धड़धड़ धड़कने लगी, रो पड़ा — आज के समान ऐसा कभी भी न रोया होऊँगा। एकाएक क्या मालूम पड़ा कौन जाने, वैसे ही पुस्तक को फेंक दिया और इधर दौड़ पड़ा। रास्ते में लोग देख रहे हैं, जूता कहाँ गिर गया पता नहीं, रास्ते में क्या है ध्यान ही नहीं! अन्त में यहाँ आ ही तो पहुँचा।"

कुछ समय तक चुप बैठकर नरेन्द्र फिर पुनः बोलने लगा।

नरेन्द्र — विवेकचूडामणि का श्लोक याद आ जाने पर मन और अधिक व्याकुल हो उठा। शंकराचार्य ने कहा है — 'ये तीन बातें मनुष्य को बड़े पुण्य से और ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होती हैं — 'मनुष्यत्वं, मुमुक्षुत्वं, महापुरुषसंश्रयः' — ऐसा मालूम पड़ा कि मुझे ये तीनों चीजें प्राप्त हो गई हैं — मनुष्य-जन्म मिला है, बड़े पुण्य से मुक्ति की इच्छा प्राप्त हुई है और ईश्वरकृपा से इनके समान महापुरुष का आश्रय भी मिला है—तब फिर रास्ता अब किस बात का देखना है?

इसे सुनकर मणि का हृदय भर आया। नरेन्द्र पुनः बोलने लगा।

नरेन्द्र — अब संसार की ओर मन नहीं लगता है; और संसार में रहने वाले मनुष्य भी अच्छे नहीं लगते।

कुछ देर ठहरकर —

नरेन्द्र — आप लोग बड़े भाग्यवान् हैं, आप को शान्तिलाभ हो चुका है। पर मेरे प्राणों की तो व्याकुलता बढ़ती जा रही है।

रात को नौ बजे श्रीरामकृष्ण के पास निरंजन और शशी बैठे हैं। मणि जाकर देखता है, तो श्रीरामकृष्ण को नींद लगी है। थोड़े समय में वे जागकर नरेन्द्र की ही बात करने लगे।

श्रीरामकृष्ण—नरेन्द्र की अवस्था सचमुच ही बड़ी आश्चर्य-जनक है। कैसा चमत्कार है! यही नरेन्द्र पहिले साकार को नहीं मानता था; पर देखो तो उसी को आज कैसी व्याकुलता हो रही है।.........ईश्वर-दर्शन के लिए जब प्राण ऐसे व्याकुल हो उठें तब समझ लो कि अब ईश्वर के दर्शन होने में कोई देरी नहीं है!

नरेन्द्र आज रात को दक्षिणेश्वर चला गया। साथ में दो एक भक्त थे।

× × × ×

ता. १४-३-१८८६

आज फाल्गुन शुक्ल नवमी है। आधी रात का समय है। आज श्रीरामकृष्ण की तबीयत बहुत ही खराब हो गई है। उज्ज्वल चांदनी छिटक रही है, जिससे बंगले के चारों ओर का बगीचा मानो आनन्दमय होगया है, पर भक्त-मण्डली के हृदय में आनन्द नहीं है! श्रीरामकृष्ण अटारी पर बिस्तर में छटपटाते हुए पड़े हैं; उनके शरीर की ओर देखा नहीं जाता! केवल अस्थिचर्म ही शेष रह गया है! नींद नाम को भी नहीं आती है। पास में बेचारे एक दो भक्त हताश बैठे हुए हैं। करें क्या? अपने गुरुदेव के लिए वे अपने प्राण भी दे देंगे, पर उनका कष्ट कैसे कम किया जा सकता है? क्षण भर उनकी आँख लगी सी मालूम पड़ती थी पर तुरन्त ही पुनः नींद टूट जाती थी—यही क्रम जारी था। 'एम्' पास ही बैठे थे। श्रीरामकृष्ण ने

उन्हें और निकट आने के लिए इशारा किया; उनसे बोला नहीं जाता था। हरे! हरे! कैसा कष्ट है!

श्रीरामकृष्ण अत्यन्त क्षीण और अस्पष्ट स्वर में कहने लगे —"तुम सब लोग रोते हुए बैठोगे इसलिए मैं यह भोग भोग रहा हूँ; पर तुम यदि कहो कि 'इतने क्लेश होते हैं तो अब बस् कीजिये' तो अभी ही देह त्याग दूँ!"

ये शब्द कान में पड़ते ही भक्त-मण्डली का हृदय शतधा विदीर्ण हो गया। जो उनके मातापिता हैं, उनके इहलोक और परलोक के सर्वस्व हैं, उनके पालनकर्ता परमेश्वर हैं — उन्हीं के मुँह से ये कर्ण-कठोर शब्द बाहर निकल रहे हैं! उन लोगों को वह रात कालरात्रि के समान मालूम होने लगी। श्रीरामकृष्ण की तबीयत बहुत ही खराब होने लगी। क्या किया जाय? डाक्टरों को बुलौवा भेजा गया। गिरीशचन्द्र उतनी रात को डाक्टर नवगोपाल को अपने साथ लेते आये। बिस्तर के आसपास सब लोग इकट्ठे हो गये।

श्रीरामकृष्ण को कुछ अच्छा लग रहा है। वे धीरे धीरे कहते हैं–"देह को क्लेश तो होने ही वाला है। साफ दिख रहा है कि यह पंचभूतों की देह है!" गिरीश की ओर रुख करके वे कहते हैं —"ईश्वर के अनेक रूप दिख रहे हैं, उन्हीं में यह रूप (मेरी देह) भी दिख रहा है!"

वह कालरात्रि किसी तरह बीत गई। सवेरे ७-८ बजे। भक्त-मण्डली चुपचाप बैठी हुई है। श्रीरामकृष्ण के गत रात्रि के कष्ट को स्मरण करते हुए किसी के मुँह से एक शब्द नहीं निकलता है। 'एम्' की ओर देख श्रीरामकृष्ण कहते हैं — "मुझको अब क्या दिखता है

बताऊँ? वही सब कुछ हो गया है, सम्पूर्ण जगत् उसी से व्याप्त है। बलि, बलि काटने की छुरी और मारने वाला सब वही बना हुआ है।"

क्या इसका अर्थ ऐसा है कि श्रीरामकृष्ण जीवों के कल्याण के लिए अपने शरीर का बलिदान दे रहे हैं?

बोलते बोलते उन्हें भावावस्था प्राप्त हो गई। "अहाहा! अहाहा!" कहते कहते वे समाधिमग्न हो गये! कुछ समय में समाधि उतरने पर वे कहते हैं—"अब मुझको कुछ भी कष्ट नहीं हो रहा है, अब मैं बिलकुल पहले के समान हो गया हूँ।" इस सुखदुःखातीत अवस्था को देखकर भक्तगण चकित हो गये। कुछ देर में श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"यह लाटू सिर पर हाथ रखे बैठा है, पर दिखता ऐसा है मानो ईश्वर ही सिर पर हाथ रखकर बैठा हो।" थोड़े ही समय में श्रीरामकृष्ण का प्रेम-सागर मानो उमड़ पड़ा, उनके स्नेह-समुद्र में मानो बाढ़ आ गई। राखाल और नरेन्द्र को बच्चों के समान सुहराते हुए उनके मुँह पर हाथ फिरा रहे हैं।

थोड़ी देर में 'एम्' की ओर देखकर कहते हैं—"और कुछ दिन शरीर रहता, तो बहुतों का कल्याण होता। पर अब यह नहीं रहेगा।" भक्त-मण्डली बिलकुल चित्र के समान बैठी हुई है। श्रीरामकृष्ण और आगे कह रहे हैं—"पर उसे अब (माता) नहीं रखेगी। शायद भोला भाला मूर्ख देखकर लोग सब कुछ पहचान लें और मैं भोला भाला मूर्ख लोगों को सब कुछ दे डालूँ, इसीलिए माता इस शरीर को नहीं रखेगी।"

राखाल (लड़कपन के साथ)—महाराज! आप की अपना शरीर और कुछ दिन रखने के लिए माता से कहिए न।

श्रीरामकृष्ण — माता की जैसी इच्छा होगी वैसा ही होगा।

नरेन्द्र — आपकी इच्छा और माता की इच्छा बिल्कुल एक हो गई है।

× × × ×

कुछ देर ठहरकर श्रीरामकृष्ण कहते हैं — "देह धारण करने पर उसके साथ दुःख लगा हुआ ही है। इसी कारण एक आध वार ऐसा लगता है कि कहीं पुनः आना न पड़े; परन्तु फिर भी एक वात और है — वाहर के न्यौते का चसका लगने पर घर की भाजी रोटी अच्छी नहीं लगती!"

× × × ×

ता. २२-४-१८८६

आज डाक्टर सरकार और राजेन्द्र दत्त दोनों ही श्रीरामकृष्ण के पास आए हैं। शरीर की जाँच कर लेने के बाद ऐसी वात निकल पड़ी कि श्रीरामकृष्ण के लिए होने वाला सारा खर्च उनके भक्त चला रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण — क्या करें? बहुत खर्च हो रहा है।

डा. सरकार — पर उसके लिए आप क्यों दुःखी होते हैं? ये लोग खर्च चलाने के लिए तैयार हैं। (कुछ हँसकर) अब बताइए भला, कांचन चाहिए या नहीं?

श्रीरामकृष्ण (हँसते हुए, नरेन्द्र से कहते हैं) — तू बता भला उनको!

नरेन्द्र ने कुछ उत्तर नहीं दिया। डाक्टर पुनः कहने लगे —

डा. सरकार — इसीलिए तो कहता हूँ — कांचन का त्याग करने से काम नहीं चल सकता।

डा. राजेन्द्र — मैंने सुना है कि इनकी पत्नी इनके पथ्य आदि का प्रबन्ध करती हैं।

डा. सरकार — देखिये भला। और इसीलिए कामिनी भी चाहिए।

श्रीरामकृष्ण (स्मित मुख होकर) — बड़ी मुश्किल हैं बाबा।

डा. सरकार — वाह ! मुश्किल न रहे तो फिर क्या ? सभी परमहंस बन जायँ !

श्रीरामकृष्ण — क्या बताऊँ ? स्त्रियों का स्पर्श तक सहन नहीं होता है। स्पर्श हो जाने पर बिच्छू के डंक मारने के समान पीड़ा होती है।

डा. सरकार — आप जो कहते हैं उस पर मुझे विश्वास है। पर यह तो बताइये — कामिनी के बिना कैसे चल सकता है ?

श्रीरामकृष्ण — पैसे के स्पर्श मात्र से हाथ टेढ़ा मेढ़ा हो जाता है। श्वासोच्छ्वास बंद हो जाता है। पैसे का उपयोग कोई ईश्वर-सेवा में करे तो उसमें दोष नहीं है और स्त्री जगदम्बा का ही एक स्वरूप है ऐसा जानकर संसार-यात्रा की जाय तब उसमें फँस जाने का डर नहीं रहता है। स्त्री कौनसी वस्तु है, यह बात ईश्वर-दर्शन हुए बिना समझ में नहीं आती।

× × × ×

काशीपुर में श्रीरामकृष्ण कुल मिलाकर लगभग आठ महीने रहे। उत्तरोत्तर उनका रोग बढ़ता ही गया। डाक्टर आ चुके, वैद्य देख गये, हकीम हो चुके; मन्त्र-तन्त्र, टटका-टोना सब कुछ हो गया — पर किसी से कुछ लाभ न हुआ। उनको आराम होने के उद्देश से उनकी भक्त-मण्डली में से बहुतों ने व्रत नियम आदि प्रारम्भ किये,

परन्तु उसका भी कोई उपयोग नहीं हुआ। कुछ दिनों तक घाव में से पीव बहने के बाद वह बन्द होकर रक्त बहना शुरू हो गया! किसी दिन तो इतना रक्त बहता था कि ऐसा डर लगने लगता था कि क्या अब रक्त बहना बन्द ही न होगा। रक्त बहते समय उन्हें प्राणान्त पीड़ा होती थी। एक दिन इसी प्रकार रक्तस्राव होते समय वे रामचन्द्र दत्त के गले से लिपटकर बोले —"इतना रक्तस्राव हो रहा है, पर तो भी प्राण नहीं निकलते!" उनकी वह दारुण पीड़ा देखी नहीं जाती थी; परन्तु वह समय निकल जाने के बाद वे अपना सब कष्ट भूल जाते थे और फिर तुरन्त ही ईश्वर सम्बन्धी बातें करने लगते थे।

इन दिनों श्रीरामकृष्ण की सेवा के लिए राखाल, योगेन, शशी, नरेन्द्र, बाबूराम, लाटू, शरत, गोपाल आदि बालभक्त सदैव उपस्थित रहा करते थे। गृहस्थ भक्तों में से ''एम्', राम, गिरीश आदि लोग सदा आते जाते रहते थे। माताजी तो थीं ही। परन्तु इन सब में से शशी ने गुरुसेवा की हद कर दी। उसका ध्यान सब बातों की ओर रहता था। श्रीरामकृष्ण को किस समय क्या चाहिए, उन्हें कब क्या देना आदि सब बातों पर उसका ध्यान लगातार रहा करता था। वह रात-दिन श्रीरामकृष्ण के पास बैठा रहता था। उसको भूख, प्यास, नींद से कोई मतलब नहीं था। वह रात दिन कुछ नहीं गिनता था, उसको बस इतना ही मालूम था —"मैं भला और मेरी सेवा भली।" तीसरी कोई बात वह जानता ही नहीं था। उसके अन्य गुरुबन्धुओं में से कई ध्यान-धारणा, जप, तप, व्रत आदि करते थे, परन्तु शशी के लिए कुछ भी नहीं था! उसके लिए तो जप तप साधन सब कुछ गुरुसेवा ही थी। ज्ञानेश्वरी के

तेरहवें अध्याय में 'आचार्योपासनम्' पद की व्याख्या करते समय श्री ज्ञानेश्वर महाराज* की गुरुभक्ति उमड़ पड़ी और उसी उमंग में उन्होंने गुरुसेवा का जो आकर्षक वर्णन दिया है और गुरुसेवा की जो पराकाष्ठा दिखाई है—वैसी ही गुरुसेवा अन्तिम समय में शशी ने प्रत्यक्ष करके दिखला दी! धन्य हो शशी! तुम्हारी गुरुभक्ति की तुलना नहीं की जा सकती। जो उसकी अद्भुत गुरुसेवा को देखते थे वे चकित हो जाते थे! अस्तु—

दिनोंदिन श्रीरामकृष्ण का स्वास्थ्य अधिकाधिक गिरता गया। उनको मालूम ही हो गया था कि अब उनकी देह बहुत दिन नहीं रहेगी और इसी कारण उन्होंने अन्तिम व्यवस्था करना भी शुरू कर दिया था। हाल हाल में वे दो तीन बार कह चुके थे—"जहाज़ में दो भाग पानी भर गया है और एक भाग के शीघ्र ही भरने पर वह समुद्र में डूब जाएगा।" प्रतिदिन, किसी न किसी समय, सब को बाहर जाने के लिए कहकर वे नरेन्द्र को पास बुला लेते थे और उसको नाना प्रकार के उपदेश देते थे। उसको निर्विकल्प समाधि-सुख की प्राप्ति अभी हाल ही में हुई थी और वह जान चुका था कि मेरे जीवन का ध्येय क्या है, तथा मुझे अपनी जिंदगी में क्या काम करना है। उस समय उसको श्रीरामकृष्ण ने बतलाया था कि "तुझको अब माता ने सब कुछ दिखा दिया है। उस सारे अनुभव को तेरे हृदय में बन्द करके उसकी कुंजी माता ने मेरे हाथ

---

* श्री ज्ञानेश्वर महाराज महाराष्ट्र में एक प्रसिद्ध साधु हो गए हैं। उन्होंने गीता पर ज्ञानेश्वरी नाम की टीका लिखी है जो महाराष्ट्र में बहुत लोकप्रिय है।

में दे दी है। अब इसके आगे तुझको मेरा काम करना है। उस काम को पूरा किये बिना तू यहाँ से जा नहीं सकता।" वे अब नरेन्द्र को अपना काम समझा रहे थे। नरेन्द्र के साथ उनका ऐसा कौनसा परामर्श हो रहा है इसकी एक दो भक्तों के सिवाय औरों को कुछ भी कल्पना न रहने के कारण, श्रीरामकृष्ण अब महाप्रयाण की तैयारी कर रहे हैं, यह जानने के लिए कोई उपाय नहीं था।

एक दिन उनकी तबीयत बहुत खराब हो जाने के कारण अन्तकाल समीप आया हुआ जानकर भक्तमण्डली व्याकुल हो गई। एक व्यक्ति तो यह बोलता भी गया—"महाराज! अब हम किसके मुँह की ओर निहारें?" यह सुनकर श्रीरामकृष्ण को दुःख हुआ और वे अत्यन्त क्षीण स्वर में बोले—"नरेन्द्र तुम लोगों को सिखायेगा!" इस बात को सुनकर नरेन्द्र सोचने लगा कि यह जवाबदारी मेरी शक्ति के बाहर है और बोला—"महाराज! यह काम मुझसे नहीं बन सकेगा।" तत्काल ही श्रीरामकृष्ण उसकी ओर क्षणभर देखकर बोले—"तू क्या कहता है? तेरी हड्डियाँ तक यह काम करेंगी।"

और भी एक दूसरे दिन सब लोगों से बाहर जाने के लिए कहकर श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को अपने कमरे में बुलाया और उससे ध्यानस्थ होकर बैठने के लिए कहा। नरेन्द्र ध्यानस्थ हो गया और शीघ्र ही उसका बाह्य जगत् का ज्ञान लुप्त हो गया। कुछ समय बाद ध्यान विसर्जन करके वह देखता है तो श्रीरामकृष्ण भी पास ही बैठे हैं और उनके नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है! श्रीरामकृष्ण उसकी ओर देखकर बोले—"नरेन्द्र! मेरे पास जो कुछ था, न था, वह सब तुझको देकर अब आज मैं सच्चा फकीर बन गया हूँ। धर्मप्रचार

के कार्य में तुझको यह शक्ति उपयोगी होगी।" श्रीरामकृष्ण ने अपनी सब सिद्धियों का दान कर दिया यह देखकर नरेन्द्र की आँखों में पानी आ गया।

इस तरह जुलाई (सन् १८८६) का महीना समाप्त हुआ। उनके उत्तरोत्तर क्षीण होते हुए स्वास्थ्य की ओर देखकर सब को मालूम हो चुका कि अब अन्तकाल समीप आ गया है। भक्त लोग बारम्बार कहते कि "महाराज! आपके स्वयं ही मन में लिए बिना रोग अच्छा नहीं होगा।" इस पर वे हँसकर कहते—"शरीर कागज़ की एक थैली है और बस अब उसमें एक छेद हुआ दिखाई देता है! ऐसी बात की कहीं चिन्ता की जाती है?" और इन सब बातों को वे दिल्लगी में उड़ा देते थे।

अगस्त महीने की १३ या १४ तारीख को श्रीरामकृष्ण का रोग बहुत ही बढ़ गया। बिस्तर के आस पास लोग स्तब्ध बैठे थे। उनका क्लेश किसी से देखा नहीं जाता था। नरेन्द्र उनके बिलकुल समीप बैठा था। एक क्षण भर—एक ही क्षण के लिए—उसके मन में विचार आया कि "जो राम और कृष्ण हुआ था वही अब रामकृष्ण होकर आया है इस प्रकार ये बारम्बार कहा तो करते हैं; पर उनके इन कष्टों को देखकर मन में संशय हुए बिना नहीं रहता है। इस समय यदि ये पुनः वैसा ही कहकर दिखलाएँगे, तो मैं सत्य मानूँगा।" इस विचार के आने भर की देरी थी, कि एकदम उसकी ओर टक लगाकर देखते हुए श्रीरामकृष्ण गम्भीर स्वर में बोल उठे —"अँ, अभी तक शंका, अभी भी संशय बना है न? पक्का ध्यान में रख कि जो राम और जो कृष्ण हुआ था वही अब रामकृष्ण होकर

आया है। यह तेरे वेदान्त की दृष्टि से नहीं वरन् प्रत्यक्ष रूप से सत्य है"— इन शब्दों के कान में पड़ते ही सब भक्तगण और विशेषकर नरेन्द्र बिलकुल चकित हो गये।

१६ अगस्त। आज रविवार है (और श्रावणी पौर्णिमा), सवेरे ही उन्होंने एक से पंचांग देखकर कोई अच्छा दिन बिताने के लिए कहा। उसी दिन का शुभाशुभ फल बताकर वह भक्त आगे का दिन, अर्थात् भाद्रपद कृष्ण प्रतिपदा का फल ज्योंही बताना आरम्भ करने वाला था, त्योंही उसे रुकने के लिए कहकर वे कुछ दूसरी ही बात बोलने लगे। उस दिन उनका सभी कुछ व्यवहार निराला ही दिखने लगा। दोपहर के समय डा. नवीन पाल उनको देखने के लिए आये। श्रीरामकृष्ण उनसे बोले—"आज अत्यन्त क्लेश हो रहा है; पीठ का कमर के पास का भाग मानो जल रहा है।" ऐसा कहकर उन्होंने अपना हाथ सामने किया! नाड़ी देखकर डाक्टर श्रीरामकृष्ण की ओर एक टक देखने लगे। श्रीरामकृष्ण ने पूछा—"है कोई उपाय?" डाक्टर साहब को अब क्या बोलना चाहिए सो समझ नहीं पड़ा। श्रीरामकृष्ण आप ही बोले—"अब कोई उपाय नहीं है। रोग असाध्य हो गया है, बस यही बात है न?" यह सुनकर नीचा सिर करके डाक्टर बहुत धीरे से ओंठ में ही बोले—"हाँ सचमुच ऐसा ही मालूम होता है।" त्योंही देवेन्द्र की ओर देखकर श्रीरामकृष्ण कहते हैं—"ये लोग इतने दिनों तक मुझसे कहते थे—'रोग अच्छा हो जाएगा'— और यही कहकर मुझको यहाँ ले आये और अब रोग आराम नहीं होता तो व्यर्थ ही कष्ट क्यों उठाया जाय?"— डाक्टर वहाँ से चले गये। उस समय से फिर

उन्होंने अपने रोग, दर्द और औषधि की चर्चा भी नहीं निकाली। कुछ समय में वे कहने लगे —"देख, हमारी हंडी हंडी दालभात खाने की इच्छा हो रही है —" यह सुनकर देवेन्द्र उन्हें एक छोटे बच्चे के समान समझाने लगा, पर वे किसी तरह नहीं मानते थे।

डाक्टर गये उसी समय से उनकी मुद्रा बिलकुल बदल गई। वे अपनी बीमारी को बिलकुल भूलकर बड़े आनन्दित दिखने लगे। थोड़े ही समय में एक सज्जन उनसे योग सम्बन्धी प्रश्न पूछने के लिए आये। उनके साथ वे लगभग दो घण्टे बातचीत करते रहे। उनके चेहरे पर रोग या दर्द के कुछ भी चिन्ह नहीं दिखते थे। कुछ देर में डाक्टर आये और वे उनको एक औषधि देकर बोले—"इस औषधि से आपको अवश्य ही लाभ होगा।" उसे लेकर श्रीरामकृष्ण कुछ क्रुद्ध-से होकर बोले —"माता! और कितने दिनों तक तू मुझे जूठन खाने में लगाने वाली है?"

उस रात को वे नित्य की अपेक्षा अधिक अन्न खा सके और बड़े आनन्द से कहने लगे—"मुझको कुछ भी नहीं हुआ है, केवल (गले की ओर उंगली दिखाकर) यह यहाँ पर कुछ हुआ-सा दिखाई देता है।" रात को वे तकिये के सहारे टिककर अपने बिस्तर पर बैठे हुए बहुत देर तक लोगों से बातचीत करते रहे। सिर्फ उनका शरीर अन्य दिनों की अपेक्षा बहुत अधिक गरम लगता था। कुछ देर बाद वे बोले —"तुम लोग मुझको हवा करो।" लोग हवा करने लगे। नरेन्द्र उनके पैरों को अपनी गोदी में रखकर धीरे धीरे दाब रहा था। श्रीरामकृष्ण उससे बोले —"इन लड़कों की अच्छी खबरदारी रखना भला।" उन्होंने इन शब्दों का उच्चा-

रण उस रात को कम से कम तीन-चार बार किया होगा ! कुछ समय के बाद वे कहने लगे — "मुझको कुछ नींद आ रही है, सोता हूँ।" ऐसा कहते हुए वे बिस्तर पर लेट गये। सवा दो या ढाई घण्टे तक उन्हें अच्छी नींद आई। एक बजे के लगभग उन्होंने एकदम करवट बदली। उसी समय भर्राते हुए स्वर में ॐ ॐ का उच्चारण होते हुए लोगों को सुनाई दिया। उस समय उनका सर्वांग रोमाञ्चित हो गया था और मुखमण्डल अत्यन्त शान्त और तेजोमय दिखाई देता था। नरेन्द्र ने उनके पैरों को जल्दी जल्दी, परन्तु धीरे से एक तकिये पर रख दिया और स्वयं जीने की ओर दौड़ गया ! उससे वह दृश्य देखा नहीं गया। एक डाक्टर पास ही बैठे थे। वे नाड़ी देखने लगे पर उनको नाड़ी का पता ही नहीं लगा। त्योंही वे ज़ोर ज़ोर से रोने लगे। शशी अभी तक यही समझता था कि यह हमेशा के समान समाधि ही है। इसी कारण वह एकदम ज़ोर से चिल्लाकर बोला — "कितना चिल्लाता है रे गधा !" थोड़ी ही देर में नरेन्द्र भी ऊपर आ गया। अब तक सब कोई यही समझते थे कि यह समाधि है। इसीलिए उसको उतारने के लिए सभों ने 'हरि ॐ' का ज़ोर ज़ोर से जप करना शुरू किया। सवेरे पाँच बजे के करीब श्रीरामकृष्ण का शरीर ठण्डा पड़ने लगा; तथापि कमर का भाग गरम लगता था; इसीलिए कोई नहीं समझता था कि यह 'महासमाधि' (मृत्यु) है। पहले ही कुछ लोग अन्य डाक्टरों को लाने के लिए चले गये थे। डा. सरकार आये और सब लक्षणों को देखकर उन्होंने इसे 'महासमाधि' ही बताया।

तो भी किसी किसी को अब तक संशय बना था। डा. सरकार

के चले जाने के बाद वहाँ उस समय कुछ संन्यासी आये और उन्होंने सब लक्षणों को देखकर इसका 'महासमाधि' होना ही प्रकट किया।

बस, हो गया। अब संशय के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं रही। इधर उधर एकदम हाहाकार मच गया। भक्त-मण्डली को दशों दिशायें शून्य मालूम पड़ने लगीं। उन लोगों को इस विस्तृत जगत् में अकेले ही छोड़कर उनके इहलोक और परलोक के आधार, उनके सर्वस्व, उनके देवाधिदेव उन्हें छोड़कर चले गये। सबेरे से ही यह दुःखद समाचार सारे शहर भर में फैल गया था। सबेरे ही नीचे की मन्ज़िल की बैठक में एक सुन्दर विमान बनाकर उसे पुष्प-मालादि से सजाकर उस पर श्रीरामकृष्ण के शरीर को लाकर रख दिया गया था। सारे शहर भर में शोक की छाया पड़ी-सी मालूम होती थी। उस महापुरुष का अन्तिम दर्शन करने के लिए चारों ओर से झुण्ड के झुण्ड लोग काशीपुर के उस बंगले में आकर इकट्ठे होने लगे!

दोपहर के समय श्रीरामकृष्ण के शरीर का तथा उनकी सब शिष्य-मण्डली का फोटो उतारा गया। संध्याकाल तक लोगों की लगातार भीड़ लगी हुई थी। संध्या समय लगभग छः बजे श्रीरामकृष्ण के पार्थिव शरीर का अग्नि-संस्कार करने के लिए आखिरी जुलूस रवाना हुआ। साथ में भजन-मण्डलियाँ थीं। चारों दिशाओं में हरि-नाम की गर्जना और श्रीरामकृष्ण के जयजयकार का घोष हो रहा था।

शीघ्र ही ये लोग काशीपुर के घाट पर जा पहुँचे। वहाँ कुछ समय तक भजन आदि होने के बाद चन्दन और तुलसी के काष्ट की चिता पर श्रीरामकृष्ण का शरीर स्थापित किया गया और थोड़ी ही

देर में अग्निदेव ने अपना काम समाप्त कर दिया ! तब फिर उनकी अस्थियों को एक तांबे के पात्र में रखकर शिष्य-मण्डली शून्य मन के साथ काशीपुर के बंगले की ओर वापस लौटी।

३५8

समाप्त।

श्रीरामकृष्ण परमहंस देव के

जीवनचरित्र का विवरण

द्वितीय भाग

१८६४-६५ श्रीमत् तोतापुरी का दक्षिणेश्वर में आगमन; श्रीरामकृष्ण का संन्यास-ग्रहण तथा वेदान्त-साधना।

१८६५-६६ अक्षय की पुजारी के पद पर नियुक्ति; श्रीमत् तोतापुरी का प्रयाण।

१८६६-६७ इस्लामधर्मसाधना और जन्मभूमि-दर्शन।

१८६८-६९ पुनरागमन और तीर्थ-यात्रा।

१८६९-७० हृदय की पत्नी की मृत्यु और उसका द्वितीय विवाह; अक्षय की मृत्यु।

१८७१ मथुरबाबू की मृत्यु।

१८७२-७३ श्री माताजी का दक्षिणेश्वर में आगमन और षोडशी पूजा।

१८७४ रामेश्वर की मृत्यु।

१८७५ ईसाई-धर्मसाधना और श्री केशवचन्द्र सेन से प्रथम भेंट।

१८७६ श्री चन्द्रादेवी की मृत्यु।

१८७९ भक्त-मण्डली के आगमन का प्रारम्भ।

१८८० श्री नरेन्द्रनाथ का आगमन।

१८७९-८५ भक्त-मण्डली का आगमन और लीला।

१८८५ अस्वास्थ्य का प्रारम्भ।

,, (सितम्बर) दक्षिणेश्वर से प्रयाण और श्यामपुकुर में आगमन।

,, (दिसम्बर) काशीपुर में आगमन।

१८८६ (अगस्त १६,) महासमाधि।

१८९३ शिकागो की सर्व-धर्मपरिषद् और स्वामी विवेकानन्दजी से हिन्दू धर्म का श्रेष्ठत्व-स्थापन।

१८९७ श्रीरामकृष्ण मठ स्थापना।

१९०२ स्वामी विवेकानन्दजी की महासमाधि।

१९२० (जुलाई २०) श्री माताजी की महासमाधि।

१९२२ (अप्रैल १०) स्वामी ब्रह्मानन्दजी (राखाल महाराज) की महासमाधि।

नामानुक्रमणिका



हमारे अन्य प्रकाशन

हिन्दी विभाग

२७. शिक्षा (द्वि. सं.) ||=)
२८. शिकागो-वक्तृता (प. सं.) ||=)
२९. हिन्दू धर्म के पक्ष में (द्वि. सं.) ||=)
३०. मेरे गुरुदेव (च. सं.) ||=)
३१. कवितावली (प्र. सं.) ||=)
३२. भगवान रामकृष्ण धर्म तथा संघ (द्वि. सं.) ||=)
३३. शक्तिदायी विचार (प्र. सं.) ||=)
३४. वर्तमान भारत (तृ. सं.) ||)
३५. मेरा जीवन तथा ध्येय (द्वि. सं.) ||)
३६. पवहारी बाबा (द्वि. सं.) ||)
३७. मरणोत्तर जीवन (द्वि. सं.) ||)
३८. मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनायें (प्र. सं.) ||)
३९. सरल राजयोग (प्र. सं.) ||)
४०. मेरी समर-नीति (प्र. सं.) |≡)
४१. ईशदूत ईसा (प्र. सं.) |=)
४२. विवेकानन्दजी से वार्तालाप (प्र. सं.) १|=)
४३. विवेकानन्दजी की कथायें (प्र. सं.) १|)
४४. श्रीरामकृष्ण-उपदेश (प्र. सं.) ||=)
४५. वेदान्त—सिद्धान्त और व्यवहार —स्वामी शारदानन्द, (प्र. सं.) |=)

मराठी विभाग

१-२. श्रीरामकृष्ण-चरित्र — प्रथम भाग (तिसरी आवृत्ति) ४|
द्वितीय भाग (दुसरी आवृत्ति) ४|=
३. श्रीरामकृष्ण-वचनामृत (पहिली आवृत्ति) ५||)
४. श्रीरामकृष्ण-वाक्सुधा — (तिसरी आवृत्ति) ||=
५. कर्मयोग — (पहिली आवृत्ति) — स्वामी विवेकानंद १||=
६. शिकागो-व्याख्यानें — (दुसरी आवृत्ति) — स्वामी विवेकानंद ||=
७. माझे गुरुदेव — (दुसरी आवृत्ति) — स्वामी विवेकानंद ||=
८. हिंदु-धर्मांचें नव-जागरण — (पहिली आवृत्ति) — स्वामी विवेकानंद ||-
९. शिक्षण — (पहिली आवृत्ति) — स्वामी विवेकानंद ||-
१०. पवहारी बाबा — (पहिली आवृत्ति) — स्वामी विवेकानंद ||
११. साधु नागमहाशय-चरित्र (भगवान श्रीरामकृष्णांचे सुप्रसिद्ध शिष्य) — (दुसरी आवृत्ति) २ रु.

श्रीरामकृष्ण आश्रम, धन्तोली, नागपुर—१, म. प्र.